In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

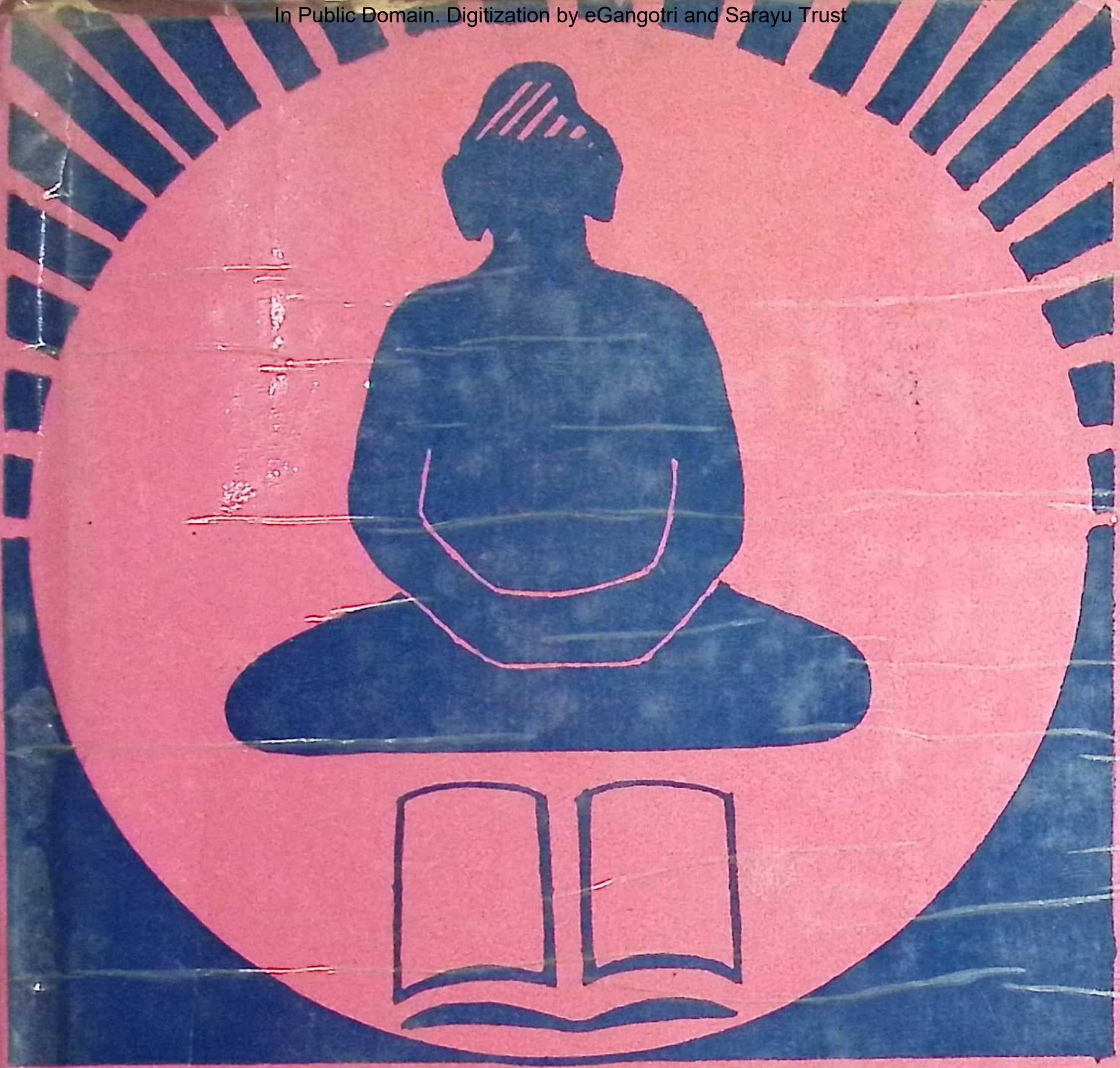

द्रव्यगुण-शास्त्र के क्षेत्र में डल्हण का योगदान

डॉ० शिवकुमार व्यास

प्राक्कथन
प्रो० ज्योतिर्मित्र आचार्य

आमुख
प्रो० शिवचरण ध्यानी

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

लेखक

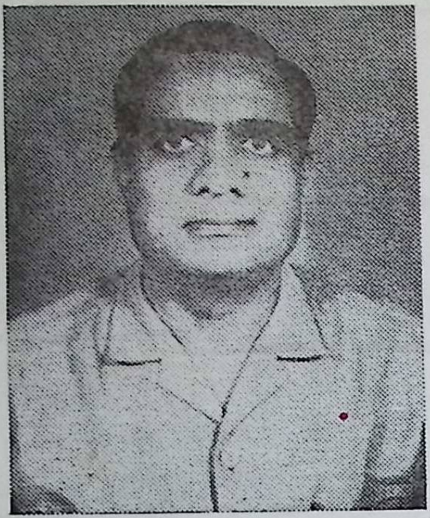

आदिर्भाव : २१ मई, १६३६
तिरोभाव : ३० जुलाई, १६८७

प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रणेता डॉ० शिवकुमार व्यास का जन्म २१ मई, १६३६ ई० को हरयाणा प्रान्तान्तर्गत गुड़गाँव जिले के बहोड़ा ग्राम में आदि गौड़ ब्राह्मणों के भरद्वाज गोत्र में वैद्य पं० रामचन्द्र जी व्यास के पौत्र एवं वैद्य पं० भूदेव शर्मा व्यास के पुत्र के रूप में हुआ। पितामह एवं पिता से आपको आयुर्वेद विरासत के रूप में प्राप्त हुआ।

प्रारम्भिक आधारभूत शिक्षा ग्राम में ही सम्पन्न हुई। पंजाब विश्वविद्यालय, सोलन से आपने मैट्रिकुलेशन (१६५३), प्रभाकर (१६५४) एवं इण्टरमीडिएट (१६६१) परीक्षायें उत्तीर्ण की। मैट्रिक उत्तीर्ण कर आपने हकीम अजमल खाँ द्वारा संस्थापित आयुर्वेद एवं यूनानी तिब्बिया कॉलेज में प्रवेश लेकर १६५७ में भिषगाचार्य धन्वन्तरि (डी० आई० एम० एस०) परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। तदनन्तर १६६२ में आयुर्वेदाचार्य धन्वन्तरि (बी० आई० एम० एस०) परीक्षा को चरक में विशेष योग्यता सहित प्रथम श्रेणी में प्रथम स्थान प्राप्त कर उत्तीर्ण किया एवं सुवर्ण पदक से अलंकृत हुए। आयुर्वेद के तलस्पर्शी ज्ञानार्थ अनिवार्यभूत संस्कृत ज्ञान निमित्त आपने दरभंगा संस्कृत विश्वविद्यालय से १६७१ में साहित्याचार्य परीक्षा उत्तीर्ण की और इसी विश्वविद्यालय

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

आयुर्वेदीय अनुसन्धान ग्रन्थमाला

दशम प्रसून

द्रव्यगुण-शास्त्र के क्षेत्र में डल्हण का योगदान

CONTRIBUTIONS OF ḌALHAṆA IN THE FIELD OF DRAVYA-GUṆA-ŚĀSTRA

Vaidyaraj Zandu Bhatji
National Ayurvedic Library
Punjabi Bagh, New Delhi-26
Call No.
Book No. 003667

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

आयुर्वेदीय अनुसन्धान-ग्रन्थमाला के विकसित प्रसून

प्रो० ज्योतिर्मित्र आचार्य : निर्देशक-सम्पादक

1. Prof. Jyotir Mitra : History of Indian Medicine from Pre-Mauryan to Kushan Period, Jyotiralok Prakashan, Varanasi, 1982.

२. प्रो० ज्योतिर्मित्र आचार्य : चरक एवं सुश्रुत के दार्शनिक विषय का अध्ययन, श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि०, कलकत्ता, १९८२।

३. डॉ० सरिता हांडा : अग्निपुराण की दार्शनिक एवं आयुर्वेदीय सामग्री का अध्ययन; ज्योतिरालोक प्रकाशन, वाराणसी, १९८२।

4. Prof. Jyotir Mitra : A Critical Appraisal of Ayurvedic Material in Buddhist Literature with special reference to Tripitaka, Jyotiralok Prakashan, Varanasi, 1985.

५. डॉ० उषा कुशवाहा : सांख्य दर्शन और आयुर्वेद, विविधा प्रकाशन, वाराणसी, १९८६।

६. डॉ० जयन्ती भट्टाचार्य : गरुडपुराण की दार्शनिक एवं आयुर्वेदिक सामग्री का अध्ययन, वाराणसेय संस्कृत संस्थान, वाराणसी, १९८६।

७. डॉ० योगेन्द्र कुमार त्रिपाठी : न्याय-सूत्र एवं चरक-संहिता, विविधा प्रकाशन, वाराणसी, १९८७।

८. डॉ० रवीन्द्रनाथ त्रिपाठी : महायान ग्रन्थों में निहित आयुर्वेदीय सामग्री, ज्योतिरालोक प्रकाशन, वाराणसी, १९८८।

९. डॉ० जयराम यादव : मौलिक सिद्धान्त के क्षेत्र में डल्हण का योगदान, ज्योतिरालोक प्रकाशन, वाराणसी, १९८९।

१०. डॉ० शिवकुमार व्यास : द्रव्यगुण शास्त्र के क्षेत्र में डल्हण का योगदान; ज्योतिरालोक प्रकाशन; १९८९।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

आयुर्वेदीय अनुसन्धान ग्रन्थमाला : दशम प्रसून

द्रव्यगुण-शास्त्र के क्षेत्र में डल्हण का योगदान

CONTRIBUTIONS OF DALHAṆA IN THE FIELD OF DRAVYA-GUṆA-ŚĀSTRA

डॉ० शिवकुमार व्यास

भिषगाचार्य धन्वन्तरि, बी० आई० एम० एस०; पी-एच० डी०, साहित्याचार्य
भूतपूर्व द्रव्यगुण विभागाध्यक्ष तथा कार्यवाहक प्राचार्य
आयुर्वेद एवं यूनानी तिब्बिया कालेज एवं
भूतपूर्व डीन : आयुर्वेद एवं यूनानी संकाय,
दिल्ली विश्वविद्यालय

प्राक्कथन
प्रो० ज्योतिर्मित्र आचार्य
बी० आई० एम० एस०, एम० ए०
(द्वय); पी-एच० डी० (आयुर्वेद),
पी-एच० डी० (दर्शन), एफ० आर०
ए० एस० (लन्दन); एफ० एन०
ए० आई० एम०, आचार्य (दर्शन,
साहित्य एवं पुराणेतिहास)
अध्यक्ष, मौलिक सिद्धान्त विभाग,
चिकित्सा विज्ञान संस्थान;
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

आमुख
प्रो० शिवचरण ध्यानी
बी० आई० एम० एस०; बी० ए०;
एच० पी० ए०, पी-एच० डी०
भूतपूर्व अध्यक्ष : द्रव्यगुण विभाग,
गुजरात आयुर्वेद विश्वविद्यालय
जामनगर एवं सम्प्रति प्राचार्य
श्री मोहता आयुर्वेद महाविद्यालय,
शार्दूलपुर (राजस्थान)

ज्योतिरालोक प्रकाशन, वाराणसी

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

* प्रकाशक :
ज्योतिरालोक प्रकाशन
बी० १३/१६६ ए, केदारघाट;
वाराणसी–२२१००१

* प्रथम संस्करण : सन् १९८९

* मूल्य : रु० २००.००

* © अनिल कुमार व्यास
सुनील कुमार व्यास

* वितरक :

१. चौखम्बा संस्कृत सीरीज
के० ३७/९९, गोपाल मन्दिर लेन;
पो० बॉ० ८, वाराणसी।

२. चौखम्बा ओरियण्टालिया
जवाहर नगर, बैंग्लो रोड, दिल्ली।

३. मोतीलाल बनारसीदास
चौक, वाराणसी।
एवं
जवाहर नगर, बैंग्लो रोड, दिल्ली।

४. शिवशक्ति सदन
टी० १०४, विष्णु गार्डेन, दिल्ली–१८।

* मुद्रक :
सन्तोष कुमार उपाध्याय
नया संसार प्रेस
भदैनी, वाराणसी–१

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

समर्पण

ॐ

उस परम पिता परम आत्मा को
जिसके सान्निध्य में ग्रन्थकार
की दिवंगत आत्मा विश्राम
कर रही है

अनिल
सुनील
(ग्रन्थकार के आत्मज)

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

सुभाषित

नदीषु शैलेषु सरःसु चापि पुण्येस्वरण्येषु तथाऽऽश्रमेषु ।
सर्वत्र सर्वाः परिमार्गितव्याः सर्वत्र भूमिर्हि वसूनि धत्ते ॥

(सुश्रुत, चि० ३४/४०)

अमीमांस्यान्यचिन्त्यानि प्रसिद्धानि स्वभावतः ।
आगमेनोपयोज्यानि भेषजानि विचक्षणैः ॥
प्रत्यक्षलक्षणफलाः प्रसिद्धाश्च स्वभावतः ।
नौषधीर्हेतुभिर्विद्वान् परीक्षेत कथञ्चन ॥

(सुश्रुत, सू० ४०/१९-२०)

धूमवर्षानिलक्लेदैः सर्वर्त्तुष्वनभिद्रुते ।
ग्राहयित्वा गृहे न्यसेद् विधिनौषधसंग्रहम् ॥

(सुश्रुत, सू० ३८/८१)

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

प्राक्कथन

आयुर्वेद के चूड़ान्त पाण्डित्य के लिए जहाँ चरक और सुश्रुत की संहितायें पठनीय हैं वहाँ तथ्यों के तलस्पर्शी एवं मर्मस्पर्शी ज्ञान के लिए इन पर लिखी गई टीकाओं का हृदयङ्गम एवं मनन करना भी अनिवार्य है। सुश्रुत-संहिता पर लिखी गई डल्लण की निबन्ध-संग्रह-व्याख्या भी एक ऐसी निधि है जिसमें उस काल की एवं उससे पूर्ववर्ती ग्रन्थों एवं आचार्यों के अद्यावधि अविज्ञात विचारों का क्रमबद्ध संग्रह है। आयुर्वेदीय टीकाकारों में डल्लण का एक मौलिक एवं अप्रतिम स्थान है। डल्लण की बहुमुखी प्रतिभा का दिग्दर्शन हमें पदे-पदे परिलक्षित होता है। यद्यपि सुश्रुत मुख्यतः शल्य प्रधान ग्रन्थ है और डल्लण में वह वैचक्षण्य अपेक्षित था किन्तु उसका द्रव्यगुण-विज्ञान का सैद्धान्तिक एव प्रायोगिक अथवा व्यावहारिक ज्ञान आयुर्वेदीय संहिताओं के सभी टीकाकारों से कहीं श्रेष्ठ है। वनस्पतियों के नामरूपपरक परिचय में पर्यटनशील होने के कारण उसकी शेमुषी मुखरित हो उठी है। चतुर्विध सूत्रान्तर्गत एकीय सूत्रपरक सामग्री के व्याख्यान में विविध आचार्यों के विचारों को लोक-मत एवं अपने वैमत्य के साथ प्रस्तुत करने में उसने सबको पछाड़ दिया है। स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम के लिए अध्येतव्य सामग्री स्नातकोत्तर अध्येताओं को अद्यावधि उपलब्ध नहीं हो सकी है और ऐसी सामग्री संहिताओं के टीकाओं में विस्तार से निहित है। यदि यह सामग्री विषयानुसार उपलब्ध करा दी जाय तो उपर्युक्त छात्रों के साथ उनके गुरुओं को भी अध्यापन में सौकर्य प्राप्त हो सकेगा। द्रव्यगुण-शास्त्र के क्षेत्र में डल्लण की टीका इसका एक ज्वलन्त उदाहरण है।

अपने देश के तीन प्रमुख स्नातकोत्तर आयुर्वेदीय संस्थानों (जामनगर, वाराणसी एवं जयपुर) में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय टीकाकारों के अध्ययन में अग्रणी रहा है। इस प्रकार के उपक्रम का श्रीगणेश १९७१ ई० में मौलिक सिद्धान्त विभाग द्वारा स्व० आचार्य दामोदर शर्मा जी गौड़ के निर्देशन एवं मेरे सह-निर्देशन से हुआ। इस श्रृंखला की प्रथम कड़ी डॉ० मदनलाल के स्नातकोत्तर शोध प्रबन्ध—चक्रपाणि एवं उनका मौलिक सिद्धान्त के क्षेत्र में योगदान—से प्रवर्तित हुई। यह कार्य अतिश्रम एवं मनोयोग से आरम्भ हुआ। चक्रपाणि की बहुमुखी प्रतिभा का पूण परिचय ससाक्ष्य देखने को मिला। इसक पश्चात् १९७७ ई० में डॉ० जयराम यादव ने 'मौलिक सिद्धान्त के क्षेत्र में डल्लण

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

का योगदान' विषय पर मेरे निर्देशन में स्नातकोत्तर शोध-प्रबन्ध लिखा, जो अभी इस वर्ष प्रकाशित हो गया है। गुरु एवं शिष्य दोनों को डल्लण की टीका का आद्योपान्त अध्ययन करने का अवसर मिला। इस अध्ययन में यह संकेत दिया गया था कि द्रव्यगुण के क्षेत्र में डल्लण का सर्वाधिक योगदान है; अतएव इस पर एक स्वतन्त्र शोध-कार्य अपेक्षित है। संयोगवश आयुर्वेद एवं यूनानी तिब्बिया कालेज, दिल्ली के द्रव्यगुण विभागाध्यक्ष एवं कार्यवाहक प्राचार्य (स्व०) डॉ० शिवकुमार व्यास मेरे सम्पर्क में आये और इन्हें सुयोग्य पात्र समझकर दरभंगा संस्कृत विश्वविद्यालय ने आयुर्वेद संकायान्तर्गत पी-एच० डी० (विद्यावारिधि) निमित्त "द्रव्यगुण शास्त्र के क्षेत्र में डल्लण का योगदान" विषय पर १९७९ ई० में पंजीकरण पश्चात् शोध-कार्य निर्देशन की स्वीकृति दे दी और आपने अति श्रम एवं मनोयोग से अगस्त १९८३ ई० में अपना शोध-ग्रन्थ पूर्णकर परीक्षणार्थ प्रस्तुत कर दिया और १९८४ ई० में आप पी-एच० डी० उपाधि से अलंकृत हुए। आपके परीक्षकों में अन्यतम परीक्षक वनस्पति-मर्मज्ञ एवं द्रव्य-गुण के निष्णात विद्वान् स्व० प्रो० डॉ० रामसुशील जी सिंह (विभागाध्यक्ष-रसशास्त्र; काशी हिन्दू विश्वविद्यालय) थे उन्होंने उक्त कार्य की भूरि-भूरि सराहना की थी और प्रकाशन के लिए अनुमोदन किया था। १९८६ ई० में मेरे सुझाव पर डॉ० शिवकुमार व्यास जी ने इण्डियन कौन्सिल ऑफ हिस्टोरिकल रिसर्च, नई दिल्ली को अपने शोध-प्रबन्ध के प्रकाशनार्थ आर्थिक अनुदान के लिए इसे वहाँ प्रस्तुत कर दिया। उनके देहावसान के एक पक्ष पूर्व उन्हें उक्त कार्य के प्रकाशनार्थ अनुदान की स्वीकृति मिल गई थी और उन्होंने तत्काल मुझे पत्र लिखा था। मैंने तुरन्त उन्हें पत्र का उत्तर और प्रकाशनार्थ कतिपय सुझाव भी दिये थे। यद्यपि वह पत्र डॉ० व्यास जी के यहाँ पहुंच गया था किन्तु वे इसे पढ़ न सके और ३१ जुलाई १९८७ ई० को उनका आकस्मिक निधन हो गया। स्व० व्यास जी के दोनों पुत्रों (इनमें ज्येष्ठ एम० फार्म० एवं कनिष्ठ बी० ए० एम० एस० उत्तीर्ण हैं) ने मुझसे विशेष आग्रह किया कि इस शोध-प्रबन्ध को प्रकाशित कर दिवंगत आत्मा की इच्छा पूर्ण की जाय और मैंने दिवंगत आत्मा को श्रद्धाञ्जलि प्रदानार्थ उक्त दायित्व को स्वीकार किया, जिसकी चरण परिणति उक्त पुस्तक है।

प्रस्तुत पुस्तक दो खण्डों में विभक्त है, जिनमें प्रथम खण्ड में पाँच अध्याय एवं द्वितीय खण्ड में उपसंहार सहित ग्यारह अध्याय—इस प्रकार समग्र रूप से सोलह अध्याय हैं। प्रथम खण्ड की सम्पूर्ण सामग्री डॉ० जयराम यादव के प्रकाशित "मौलिक सिद्धान्त के क्षेत्र में डल्लण का योगदान" नामक ग्रन्थ से ली गई है। यह सामग्री मैंने अपने दोनों शिष्यों को प्रसाद के रूप में दी है, अतः

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

भविष्य में कोई वैधानिक अड़चन दोनों को न पड़े, इसलिए यह घोषणा करनी पड़ी है। द्वितीय खण्डान्तर्गत षष्ठ अध्याय में शोध-कार्य की स्रोतोभूत सामग्री को मूल-पाठ के रूप में इसलिए प्रस्तुत कर दिया गया है ताकि पाठकों को स्थलसहित अन्यत्र टीका देखने की आवश्यकता न पड़े।

डल्हण ने अपना परिचय केवल दो स्थलों (सूत्र-स्थान के प्रथम अध्याय के प्रथम सूत्र एवं उत्तर-तन्त्र के छब्बीसवें अध्याय के अन्तिम श्लोक के व्याख्यान) में दिया है किन्तु उसके विपुल व्यक्तित्व एवं बहु-आयामिक मनीषा के अवबोधनार्थ अनेक मानदण्डों का सृजन करना पड़ा है और उसके आधार पर उसके व्यक्तित्व एवं कृतित्व का विशद अध्ययन किया जा सका। डल्हण मथुरा के निकट अंकोला नगर का निवासी था और वह भादानक (साम्प्रतीन राजस्थानान्तर्गत भरतपुर का बयाना स्थान) नृपति सहनपाल देव का अन्तरंग राजवैद्य था। आभ्यन्तर एवं बाह्य साक्ष्यों तथा अभिलेखों के आधार पर सहनपाल का समय ११९२ ई० स्थिर किया गया है; अतः डल्हण की स्थिति इस काल में (बारहवीं शताब्दी का अन्तिम या तेरहवीं शताब्दी का प्रथम चरण) माननी चाहिए।

डल्हण की टीका के अध्ययन से अद्यावधि अज्ञात अनेक निगूढ़ पक्षों पर प्रकाश पड़ा है—यथा सुश्रुत का प्रतिसंस्कर्त्ता नागार्जुन था—'प्रति संस्कर्त्तापीह नागार्जुन एव' (सुश्रुत सूत्र १/१-२ पॅर)। जेज्जट ने सुश्रुत पर भी टीका लिखी थी (तदेव)। डल्हण ने द्रव्यगुण शास्त्र के मौलिक सिद्धान्तों—रस, गुण, वीर्य, विपाक एवं प्रभाव की तथा गुरु आदि बीस गुणों की यथास्थल सोदाहरण व्याख्या की है। व्यवायी, विकासी एवं आशुकारी जैसे कार्मुक गुणों का पर्याप्त विशदीकरण कर उन्होंने वीर्य पद से मुख्यतः शक्त्यभिधायकत्व स्वीकार किया है। एक स्थल (चि० ३५/२५) पर उन्होंने वीर्य को प्रभाव कहकर भ्रम उत्पन्न कर दिया है क्योंकि सुश्रुत में प्रभाव का पृथग् रूप से वर्णन नहीं है। शताधिक कर्मवाचक पदों (अग्निसादन, संशमन, स्तम्भन् आदि) की वैज्ञानिक एवं सुबोध व्याख्या सोदाहरण प्रस्तुत की है। द्रव्यों के नामकरण में अनेक द्रव्यों के प्रचलित नामों के संस्कृत पर्यायों की अवतारणा भी डल्हण ने की है, यथा अतिमुक्तक को आवन्तक, ज्योतिष्मती को काकमर्दनिका प्रभृति। इतना ही नहीं अपितु कुछ द्रव्यों का संस्कृत भाषा में नवीन नाम भी दिया है जैसे बन्धु जीव के लिए मध्याह्नपुष्पक, त्रपुस को सुधावास, कालेयक को मलयाद्रि चन्दन आदि। उन्होने दो द्रव्यों के विभेदक स्वरूप को भी स्पष्ट किया है यथा—कुम्भी वृक्षा के लिए स्थल कुम्भी (उ० ३/१०; ५९/१७) और जल-

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

कुम्भी (चि० १७/२७); जटा को जटिला से पृथक करने हेतु जटा को जटामांसी (ड० ६२/३०); गन्धमांसी (उ० ६०/४७)। उन्होंने द्रव्यों के युग्मों के नवीन नाम दिये हैं, यथा—स्थल कुंभी एवं जलकुंभी के लिए कुम्भीद्वय; पिण्ड हरिद्रा एवं दारु हरिद्रा के लिए हरिद्राद्वय। इसके अतिरिक्त वनस्पतियों के अर्थ करने में वे बड़े सफल रहे हैं। अष्टम अध्याय में इसकी विशद सूची निहित है। वनस्पतियों के लोकगत नाम देने में वे अप्रतिम टीकाकार हैं क्योंकि राज-संरक्षण में रहने के कारण उन्हें देश के भिन्न-भिन्न स्थलों में पर्यटन की सुविधा प्राप्त हुई थी। इसका निदर्शन नवम अध्याय में हुआ है, यथा—अतसी (सू० ३९/७) को अलसी, इक्षुर (चि० ४/३२) को तालमखाना आदि। डल्लण ने लगभग १५० वनस्पतियों का आकृतिपरक तथा दशाधिक द्रव्यों का गुणकर्म ज्ञापक परिचय दिया है (द्रष्टव्य दशम अध्याय) यथा—उच्चटा (सू० २६/३५; चि० ३८/३४) शणघण्टाकारः स्वल्पविटपः, कतकफलं शशक पुरीष प्रतिमफलं (सूत्र ३८/४३, ४५/१७), सप्तपर्णः (सू० ३८/६) शातमलिस दशपर्णो गजमद गन्ध पुष्पः शरदि विकसनशोलः उच्चैर्वृक्षः प्रपौण्डरीकः (सू० ३८/५); यष्टीमधुद्रव्यादीषत्स्थूलं मधुरं रसं नेत्राश्च्योतनार्हः प्रभृति। सन्दिग्ध वनस्पतियों की समस्या द्रव्यगुण शास्त्र के क्षेत्र में एक दुरूह समस्या है जिसका समाधान किये बिना न तो आयुर्वेदीय भेषज-संहिता (फार्माकोपिया) का निर्माण सम्भव है और न ही भेषज-स्तर का निर्धारण। डल्लण ने इस दिशा में पर-मत एवं स्व-मत द्वारा इसके निराकरण का सफल प्रयास किया है, पर एकाध स्थल पर वे स्वतः स्खलित हो गए हैं, यथा—वयस्था (उ० २६/६; ३२/४; सू० २१/२९) को एक स्थल पर गुडूची तो दूसरे स्थल पर ब्राह्मी कहकर संशय उत्पन्न कर दिया है; यही स्थिति शिग्रु की रही है। वे दो स्थल (सू० ४६/२२१; उ० २१/६) पर उसे शोभाञ्जन के स्वमत के रूप में रखते हैं तो तीन स्थलों पर (चि० ९/१०; उ० ४२/९४; उ० ३९/२७४) इसे अन्य मत के रूप में प्रस्तुत करते हैं (द्रष्टव्य, एकादश अध्याय)। द्वादश अध्याय में जांगम द्रव्यों का स्व अर्थ एवं लोक-प्रचलित नाम दिया है तथा कतिपय प्राणियों का आकृति-परक परिचय भी दिया है। त्रयोदश अध्याय में पार्थिव द्रव्यों का डल्लणाभिमत स्वरूप प्रस्तुत है। कृतान्न-वर्ग के द्रव्यों के परिचय में वह अत्यन्त सफल रहा है। उसे सूदशास्त्रोक्त निर्माण विधि का अच्छा ज्ञान था। उत्तरापथ; पूर्व देश, दक्षिणापथ, पश्चिम देश, मध्य देश एवं द्वीपान्तर के आधार पर डल्लण ने वनस्पतियों के विशिष्ट उद्भव-स्थल का परिचय दिया है (द्रष्टव्य पञ्चदश अध्याय) जो उसके यायावरत्व एवं वनौषधि-पाटव को व्यक्त करने में सर्वथा सक्षम है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

ग्रन्थ के प्रथम खण्ड के पढ़ने से डल्हण के सार्वभौम ज्ञान एवं पाण्डित्य के दर्शन होते हैं। उसे तत्कालीन अनेक भाषाओं (संस्कृत; प्राकृत, अपभ्रंश; हिन्दी एवं बंग) का सम्यग्-ज्ञान था, यही कारण है कि उसकी टीका विद्वत्-जगत् में अतिप्रिय हो पाई।

डॉ० जयराम यादव द्वारा प्रवर्तित डल्हण के अध्ययन को (स्व०) डॉ० शिव-कुमार व्यास ने प्रस्तुत कार्य कर आगे बढ़ाया। मौलिक सिद्धान्त एवं द्रव्यगुण पक्ष पर अध्ययन हो जाने के अनन्तर राजकीय आयुर्वेद महाविद्यालय, लखनऊ के प्राध्यापक प्रो० पाराशरी ने डल्हण के शारीरशास्त्र-परक अध्ययन को सम्पन्न कर लखनऊ विश्वविद्यालय से १९८८ में पी-एच० डी० उपाधि प्राप्त की है। इसी प्रकार का एक कार्य डॉ० घनीराम आचार्य (भूतपूर्व प्राचार्य, राजकीय आयुर्वेद महाविद्यालय, पपरोला; कांगडा, हिमाचल प्रदेश) ने १९८४ ई० में दरभंगा संस्कृत विश्वविद्यालय से 'अरुणदत्त का मौलिक सिद्धान्त के क्षेत्र में योगदान' विषयक शोध-प्रबन्ध मेरे निर्देशन में लिखकर पूर्ण किया है। यह कार्य भी शीघ्र ही प्रकाश्यमान है। डॉ० भृगुपति पाण्डेय ने मेरे विभाग के एक सेवा-निवृत्त सहयोगी के निर्देशन में शार्ङ्गधर के टीकाकार आढमल्ल पर मौलिक सिद्धान्त के दृष्टिकोण से स्नातकोत्तर अध्ययन कर इसे प्रकाशित किया है। डच विद्वान तथा मेरे अनन्य मित्र प्रो० जी० जे० म्युलेन-बेल्ट का माधव-निदान के टीकाकारद्वय—विजयरक्षित एवं आतंकदर्पणकार वाचस्पति का अध्ययन लीडेन से प्रकाशित होकर आ चुका है। अब इन्दु एवं हेमाद्रि की टीकायें ही बची हैं जिन पर शीघ्र ही इस प्रकार का शोध-कार्य सम्पन्न होगा।

यह प्रसन्नता का विषय है कि स्व० डॉ० शिवकुमार व्यास ने उक्त शोध-ग्रन्थ लिखकर टीकाकारों के अध्ययन की शृंखला में डल्हण के अवदान को द्रव्यगुण शास्त्र की दृष्टि से अवदात कर एक चिरस्मरणीय एवं सराहनीय कार्य कर यशोऽमृतत्व को प्राप्त किया है। प्रस्तुत अध्ययन से मौलिक सिद्धान्त सहित द्रव्यगुण-शास्त्र के साथ आयुर्वेद का मध्यकालीन इतिहास भी समृद्धतर हुआ है। पुण्यश्लोक लेखक श्रद्धा एवं साधुवाद के पात्र हैं। यह अवसाद का विषय रहा है कि डॉ० व्यास जी अपनी प्रकाशित कृति को देख न सके। इस महत्वपूर्ण कार्य के लिए वे युग-युग तक स्मरण किये जाते रहेंगे।

इस ग्रन्थ पर प्राक्कथन लिखकर मैं दिवंगत आत्मा के प्रति अपनी श्रद्धा-ञ्जलि अर्पित करता हूँ और उनके दोनों सुयोग्य पुत्रों (अनिल कुमार व्यास,

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

एम० फार्म० तथा डॉ० सुनील कुमार व्यास, बी० ए० एम० एस०) को इस कार्य को प्रकाश में लाने में प्रयास के लिए हार्दिक आशीर्वाद देता हूँ ।

आषाढ़ी गुरुपूर्णिमा
वि० सं० २०४६,
१८ जुलाई; १९८९

ज्योतिर्मित्र आचार्य
प्रोफेसर एवं अध्यक्ष
मौलिक सिद्धान्त विभाग
तथा
सचिव
चिकित्साविज्ञान इतिहास-परिषद्
चिकित्सा विज्ञान संस्थान
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
वाराणसी

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

आमुख

रोग भी उतने ही पुराने हैं जितना स्वयं मनुष्य। स्वास्थ्यकर और रोगनुद द्रव्यों का आविष्कार भी उतना ही पुराना है। संहिता-काल तक ज्ञान एवं परीक्षित औषध द्रव्यों का यथास्थान वर्णन चरक-सुश्रुतादि संहिताओं में उपलब्ध है। इन द्रव्यों की संख्या अन्वेषणों के परिणामस्वरूप बढ़ती चली गयी और इन पर कई निघण्टु लिखे गये। द्रव्यगुण-शास्त्र ने एक स्वतन्त्र स्वरूप प्राप्त कर लिया। कालान्तर में कतिपय कारणों से इन औषध द्रव्यों के सम्बन्ध में मत-मतान्तर उत्पन्न हो गये। आचार्य डल्हण ने अपनी टीका में औषध द्रव्यों पर अपना मत व्यक्त किया है। स्थान-स्थान पर उन्होंने प्रयुक्त औषध द्रव्यों की पहिचान और प्रचलित नाम भी लिखे जो एक महत्वपूर्ण योगदान है। द्रव्यों पर आचार्य डल्हण द्वारा अभिमत वनस्पतियों का नाम और स्वरूप एक स्थान पर संग्रहीत करने की बड़ी आवश्यकता प्रतीत होती थी जो प्रस्तुत पुस्तक ने पूर्ण की है।

(स्व०) डॉ० शिवकुमार व्यास द्वारा विरचित 'द्रव्यगुण शास्त्र के क्षेत्र में डल्हण का योगदान' नामक इस मूल्यवान् पुस्तक में प्रत्येक विषय-वस्तु को कथ्य, तथ्य और सत्य के त्रितय पर प्रतिपादित किया गया है, किसी द्रव्य के सम्बन्ध में किसी से सुनी बात को परखना और निष्कर्ष निकालना बहुत जटिल कार्य है और जिसने कई द्रव्यों के सम्बन्ध में ऐसा कार्य किया हो उसका व्यक्तित्व निस्संदेह बहु-आयामीय और श्लाघ्य होगा। आचार्य डल्हण ऐसे ही व्यक्तित्व के धनी थे और इसीलिए उनका परिचय, व्यक्तित्व और काल-विनिश्चय स्वयं में एक महत्वपूर्ण प्रबन्ध बन जाता है, जो प्रस्तुत पुस्तक का सुरुचिपूर्ण ज्ञानवर्धक प्रथम अध्याय है। आचार्य डल्हण को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में समझना और समझाना गहन अध्ययन, मनन और चिन्तन का विषय है जो लेखक ने बड़ी सहजता, सरलता और सफलतापूर्वक प्रस्तुत किया है।

आचार्य डल्हण ने अपनी टीका में कई ग्रन्थों को उद्धृत किया है जो उनके विशाल अध्ययन और ज्ञान का परिचायक है। उन ग्रन्थों और उनकी टीकाओं के नाम रूप का संकलन प्रस्तुत पुस्तक में उपलब्ध है और डल्हण ने उन समस्त ग्रन्थों के निचोड़ से जो अमूल्य निष्कर्ष निकाले हैं उनको अपनी टीका में लिखा है। उन्होंने एकीय मतों को भी लिखा है जो इस बात का प्रतीक है कि डल्हण अपना मत लादना नहीं चाहते थे; वे मत-स्वातन्त्र्य के पक्षपाती थे।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

औषध द्रव्यों की उत्पत्ति देश के विभिन्न भागों में होती है। कुछ वनस्पतियाँ तो किसी विशिष्ट भू-भाग में ही पैदा होती हैं और भौगोलिक स्थिति का उन पर प्रभाव पड़ता है। जिसने उन्हें उनके प्राकृतिक परिवेश में देखा हो वही उनका सही वर्णन कर सकता है। आचार्य डल्लण ने देश का बहुत भ्रमण किया था और कई बातें कई स्थानों पर से सीखी थीं। इस प्रकार की बातों को इस पुस्तक में 'भौगोलिक सामग्री' के अन्तर्गत सोद्धरण प्रस्तुत किया गया है।

आचार्य डल्लण का बहुश्रुत वाक्य 'इति लोके' बहुत प्रचलित है। वे जहाँ गये वहाँ उस द्रव्य को क्या कहते हैं यह भी लिखा। बहुत प्रचलित व्यावहारिक नामों को लिखकर उन्होंने द्रव्य की पहिचान को सरल बनाया है। वनस्पतियों का आकृतिपरक परिचय भी डल्लण की टीका में यत्र-तत्र उपलब्ध है, जिसका सुन्दर संकलन प्रस्तुत पुस्तक में दिया गया है।

मैं ऐसी सुन्दर और उपयोगी पुस्तक लिखने और प्रकाशित करने के लिए लेखक और प्रकाशक दोनों को धन्यवाद देता हूं। आयुर्वेदीय साहित्यिक अन्वेषण में ऐसे कार्य स्तुत्य हैं। संकलन के पश्चात् ही संवर्धन सम्भव है और इस दिशा में यह कार्य प्रशंसनीय है।

२८-३-१९८९

शिवचरण ध्यानी
भूतपूर्व प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष
द्रव्यगुण विभाग,
गुजरात आयुर्वेद विश्वविद्यालय
जामनगर

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

प्रस्तावना

"द्रव्यगुण-शास्त्र के क्षेत्र में डल्हण का योगदान" नामक प्रस्तुत कार्य द्रव्यगुणवेत्ता टीकाकारों की श्रृंखला में किया गया एक चिरप्रतीक्षित प्रयास है।

डल्हण, सुश्रुत-संहिता के प्राचीनतम एवं लोकप्रिय टीकाकारों में अपना प्रमुख स्थान रखते हैं। इनकी 'निबन्ध-संग्रह' व्याख्या सुश्रुत को सर्वतोभावेन समझने के लिए एकमात्र परिपूर्ण कृति है। इन्होंने अपनी टीका का प्रणयन अपने से पूर्ववर्ती टीकाकारों—जेज्जट, सुधीर, माधव (नवम शतक), चन्द्रनन्दन, ब्रह्मदेव (दशम शतक), गयदास, भास्कर (भट्ट), चक्रपाणि, सुकीर, सुवीर, बंगदत्त, नन्दि, वराह, कार्तिककुण्ड (एकादश शतक) के विचारों के आधार पर किया है। इसके अतिरिक्त उन्होंने अपनी टीका में उपादेय सामग्री को लक्ष्मण टिप्पणक एवं गूढपद भग टिप्पणक जैसे लघुकाय सुश्रुत विवरणकों से भी संकलित किया है। डल्हण के काल में एवं अनन्तर उनके परवर्ती गदाधर, वाप्यचन्द्र, रामदेव एवं बकुलकर (द्वादश शतक) प्रभृति टीकाकारों ने सुश्रुत-संहिता के टीका-लेखन-क्रम को गतिमान् रखा। अन्तरंग-साक्ष्य के आधार पर डल्हण की 'निबन्ध-संग्रह' से ही उसके पूर्ववर्ती टीकाकारों के विषय में ज्ञान प्राप्त हुआ और उनके द्वारा उद्धृत सामग्री से अनेक अद्यावधि अज्ञात एवं निगूढ़ विचार प्रकाश में आये। इतना ही नहीं अपितु इनकी टीका से चरक के भट्टारक हरिचन्द्र (षष्ठ शतक) जैसे टीकाकारों के मौलिक उद्धरण भी दृष्टिगत हुए। सुश्रुत के सहपाठियों—औपधेनव, करवीर्य, गार्ग्य, गालव, गोपुररक्षित, पुष्कलावत, भोज एवं वैतरण—के सम्प्रति लुप्त एवं दुर्लभ तन्त्रों से भी प्रसंगानुकूल सामग्री को डल्हण ने अपनी टीका में प्रस्तुत किया है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि डल्हण के काल में उपर्युक्त आचार्यों के सभी तन्त्र अवश्यमेव उपलब्ध थे। सुश्रुत के प्रतिसंस्कर्त्ता के रूप में नागार्जुन का निर्देश डल्हण की मौलिक देन है। इसके अतिरिक्त उसने कल्प-स्थान के मूषिक-कल्पाध्याय में एक अन्य नागार्जुन के विषतन्त्र से सम्बद्ध श्लोक को भी उद्धृत किया है। आत्रेय सम्प्रदाय के सभी आचार्य कृष्णात्रेय, कांकायन, चरक, दृढ़बल, पराशर, भेल, हारीत, क्षारपाणि प्रभृति इसके द्वारा सश्लोक उद्धृत हैं। इनमें से खण्डित भेल-संहिता के सूत्रस्थान के त्रयोदश अध्याय की लुप्त सामग्री को डल्हण (सूत्र० ६/२७) ने सुरक्षित कर रखा है। वृद्ध-काश्यप एवं वृद्ध-सुश्रुत की संहितायें उसे सर्वथा उपलब्ध थीं। वृद्ध-वाग्भट एवं लघु-वाग्भट की दोनों कृतियों—अष्टांग-संग्रह एवं अष्टांग-हृदय से वह सम्यक्तया परिचित था।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

डल्हण द्वारा अपनी टीका का नाम 'निबन्ध-संग्रह' रखना भी साभिप्रायक रहा है। बारहवीं शताब्दी के संस्कृत के टीकाकारों में यह परम्परा आ गई थी जिसके आधार पर वे अपने को टीकाकार के बजाय निबन्धकार कहलाना अधिक पसन्द करते थे। कन्नौज के राजा गोविन्दचन्द्र के संरक्षण में विद्यमान 'कृत्यकल्पतरु' नामक धर्मशास्त्र विषयक निबन्ध के लेखक लक्ष्मीधर (११००-११३० ई०) अपने को निबन्धकार कहलाने में गर्व का अनुभव करते प्रतीत होते हैं। सम्भवतः पर्यावरण का ही प्रभाव था कि डल्हण ने भी अपनी टीका का नाम 'निबन्ध-संग्रह' रखा। प्राकृत, अपभ्रंश एवं संस्कृत के उद्भट, गुर्जर जैन विद्वान् हेमचन्द्र (११५० ई०) के व्यक्तित्व का भी इन पर अमिट प्रभाव प्रतीत होता है। यही कारण है कि वे स्थल-स्थल पर वनस्पतियों का परिचय भाषा, देशी भाषा, हिन्दी भाषा एवं बंग भाषा में करते हुए पाये जाते हैं। तन्त्र एवं ज्योतिष में भी डल्हण की अच्छी पैठ थी। इन्होंने शक्ति-संगम-तन्त्र को उद्धृत करने के अतिरिक्त अपने अति-समकालीन प्रसिद्ध भूगोलविद् ज्योतिषी भास्कराचार्य (१११४-११८३ ई०) के गोलकवेतृत्व को अहोरात्र के षड्-ऋतुत्व प्रसंग में अनाम स्मरण किया है। भास्कराचार्य के 'सिद्धान्त-शिरोमणि' का गोलकाध्याय अति महत्वपूर्ण है। डल्हण बयाना (राजस्थान) के जिस यदु-वंशी राजा (सहनपाल देव) के आश्रित था उसी के एक पूर्वतन शासक जैत्रदेव के संरक्षण में यह एवं उसका पुत्र लक्ष्मीधर था।

डल्हण ने चक्रपाणि को केवल एक बार उद्धृत कर भी उन्हें अपना उप-जीव्य नहीं माना जिसका एकमात्र कारण यही हो सकता है कि वे सुश्रुत-संहिता पर उनके द्वारा प्रणीत 'भानुमती' टीका को उतना विषयानुसार उपयोगी न मानते रहे हों।

डल्हण के काल के विषय में विद्वानों में मतैक्य नहीं है। प्रायः सभी पाश्चात्य एवं प्राच्य आयुर्वेद इतिहासविद् उन्हें १० से १२ शताब्दी के मध्य में रखे जाने का विचार प्रस्तुत करते हैं। मेरे प्राक्तन सतीर्थ्य डॉ० जयराम यादव (प्राध्यापक—शारीर, राजकीय आयुर्वेद महाविद्यालय, लखनऊ) ने डल्हण के भादानक जनपद से प्राचीन भरतपुर राज्य का, जिसमें बयाना, भरतपुर एवं मथुरा के जिले सम्मिलित थे; का ग्रहण किया है एवं अकोला ग्राम से आगरा जिले का साम्प्रतीन अकोला के साथ ऐक्य स्थापित किया है। ये शाकद्वीपीय ब्राह्मण थे और इनके सभी पूर्वज विद्वान्, चिकित्सक तथा राजाओं द्वारा सम्मा-नित थे और डल्हण स्वयं यदुवंशी राजा सहनपाल देव के अति प्रियपात्र थे। ये सर्वतोमुखी प्रतिभा के धनी थे तथा भारतीय वाङ्मय की सभी विधाओं से

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

अभिज्ञ थे। पर्यटनशीलता के कारण इनका भौगोलिक ज्ञान आयुर्वेद के सभी टीकाकारों से श्रेष्ठ प्रतीत होता है और यही कारण था कि ये द्रव्यगुण-शास्त्र के पारंगत विद्वान् बन सके। टीका के अतिरिक्त इनका कोई निघण्टु प्राप्त नहीं होता। अष्टांग-हृदय के टीकाकार हेमाद्रि (१२७१-१३०६ ई०) द्वारा उद्धृत होने के कारण तथा बयाना की यदु-वंशावली के आधार पर डल्हण का काल बारहवीं शताब्दी का अन्तिम दशक एवं तेरहवीं शताब्दी के प्रथम दशक के मध्य रखना सर्वथा युक्तियुक्त होगा। वह नाम साम्य के आधार पर कल्हण, विल्हण की तरह कश्मीरी नहीं था क्योंकि टीका के आरम्भ में उसके पूर्वजों के इस प्रकार के नाम नहीं मिलते और वे सभी अकोलावासी ही थे। सम्भवतः आज के युग की तरह लल्लन जैसे पुकारे जाने वाले प्रिय घरेलू नाम की तरह उसका भी नाम डल्लन हो। डल्लन एवं डल्हण दोनों नाम दृष्टिगत होते हैं।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के चिकित्सा-विज्ञान संस्थानान्तर्गत मौलिक सिद्धान्त विभाग में डॉ० ज्योतिर्मित्र आचार्य के निर्देशन में "आयुर्वेदीय मौलिक सिद्धान्त के क्षेत्र में डल्हण का योगदान तथा चक्रपाणि की भानुमती टीका से उसका तुलनात्मक अध्ययन" शीर्षक शोध-प्रबन्ध को श्री जयराम यादव ने एम० डी० आयुर्वेद उपाधि हेतु सन् १९७६ ई० में प्रस्तुत किया था। इस शोध-प्रबन्ध की प्रस्तावना में यह उद्गार व्यक्त किया गया है—

"इस शोध-कार्य के पूर्ण हो जाने पर अपनी यह मान्यता है कि अद्यावधि आयुर्वेदीय इतिहासकारों ने संहिताओं की टीकाओं के अध्ययन की उपेक्षा की है, जिसके कारण आयुवद का अज्ञात विपुल वाङ्मय आयुर्वेदाध्यायियों के समक्ष प्रस्तुत नहीं हो सका है। ......"अपने इस शोध-कार्य-काल में ऐसा अनुभव हुआ कि द्रव्यगुण के क्षेत्र में डल्हण का सर्वाधिक योगदान है, अतएव इस पर एक स्वतन्त्र शोध-प्रबन्ध अपेक्षित है।"

इसके आधार पर इस शोध-कार्य के निर्देशक आयुर्वेद-शास्त्र-पारंगत डॉ० ज्योतिर्मित्र आचाय से प्रेरणा प्राप्त हुई कि इस पर एक स्वतन्त्र शोध-कार्य हो। द्रव्यगुण-शास्त्र का विगत दो दशकों से अध्ययन-अध्यापन कराते रहने से आचार्य जी की प्रेरणा से भावना जागृत हुई कि इस क्षेत्र में ज्ञान-पिपासा-पूर्ति हेतु यह एक सुअवसर प्राप्त हो रहा है। यह भय अवश्य हुआ कि इतना गूढ़ शास्त्रीय समीक्षात्मक अध्ययन बहुत कठिन होगा, परन्तु डॉ० ज्योतिर्मित्र आचार्य, जिनकी शास्त्रावगाहनपटुता एवं बहुश्रुतता सर्वज्ञात है, का निर्देशन मिलने की सहमति होने से सम्बल मिला एवं इस भय का निवारण हुआ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

डॉ० यादव द्वारा प्रस्तुत प्राक्तन शोध-प्रबन्ध में आचार्य डल्हण के जीवन-परिचय से सम्बन्धित तथा उनके द्वारा उद्धृत ग्रन्थों एवं आयुर्वेद के मौलिक सिद्धान्तों पर पर्याप्त कार्य हुआ था। उसे आधार मानकर इस शोध-कार्य में उसे आनुपूर्वी सन्निविष्ट कर लिया गया और द्रव्यगुण के क्षेत्र में उनके निबन्ध संग्रहोक्त सामग्री का विस्तार से अध्ययन आरम्भ किया गया। आद्योपान्त सुश्रुत-संहिता में जो भी द्रव्य-विषयक, द्रव्यगत पञ्च पदार्थ-विषयक एवं कर्म-विषयक सैद्धान्तिक पक्ष उपस्थित हुआ उसे संगृहीत किया गया। सुश्रुत-संहिता में आए वानस्पतिक, जांगम एवं पार्थिव द्रव्यों पर जो भी व्याख्या प्रस्तुत हुई उसे भी संकलित किया गया तथा कृतान्न-विषयक परिभाषाओं को लिया गया। द्रव्यगुण-विषयक इस सार-संचय से ऐसा प्रतीत हुआ कि वास्तव में डल्हण ने इस क्षेत्र में बहुत महत्व का कार्य किया है। स्थान-स्थान पर द्रव्य, गुण, रस, वीर्य, विपाक, प्रभाव विषयक सिद्धान्तों पर मूल ग्रन्थ के विषय को स्पष्ट करने वाली व्याखया उन्होंने प्रस्तुत की है तथा कर्मवाचक पदों के सुन्दर लक्षण भी लिखे हैं। संहिता में उपन्यस्त वानस्पतिक द्रव्यों पर कहीं निश्चयात्मक एक अर्थ दिया तो कहीं स्वमत-विमत स्पष्ट करने हेतु अन्य मत, अपर मत एवं एकीय (केचित्) मत देकर एक ही द्रव्य के लिए एक से अधिक द्रव्यों की ओर संकेत किया है। विषय को और भी स्पष्ट करने हेतु कितने ही द्रव्यों के लोक-प्रचलित नाम दिये जो द्रव्य की पहिचान के लिए बहुत ही महत्व रखते हैं। आचार्य ने कितने ही द्रव्यों का आकृतिपरक परिचय इतना सुन्दर दिया है जो वनस्पतिवेत्ताओं एवं जीव-वैज्ञानिकों का पथ-प्रदर्शक हो सकता है और उस आधार पर कितना ही शोध-कार्य किया जा सकता है। न केवल इतना अपितु डल्हण के बृहत् क्षेत्रीय सर्वेक्षण का यह लाभ रहा कि द्रव्यों के परिचय हेतु उन्होंने भौगोलिक स्थिति की विस्तृत जानकारी दी और किस-किस प्रदेश में कौन-कौन द्रव्य होते हैं उनका भी निर्देश किया। इस प्रकार का वर्णन कोई साधारण कार्य नहीं और इस प्रकार का कार्य केवल डल्हणाचार्य के समान विविधशास्त्रविद्, लौकिक ज्ञान पटु, पर्यटनशील, वनस्पति एवं जीव-विशेषज्ञ बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न विद्वान द्वारा ही सम्भव था।

सन्दिग्ध वनस्पतियों की समस्या द्रव्यगुण-शास्त्र के क्षेत्र में एक विकट समस्या है जिसका समाधान किए बिना आयुर्वेदीय भेषज-संहिता (फार्माकोपिया) का निर्माण सम्भव नहीं और न ही भेषज-स्तर का निर्धारण सम्भव है जो चिकित्सा-शास्त्र की आधारभित्ति है। यह समस्या आज की नहीं, प्राचीन-काल से विद्यमान है। कारण यह है कि हमारी मूल-संहिताओं में द्रव्यों का वर्णन गुणकर्मात्मक किया गया तथा रूप-ज्ञान पर कोई ध्यान नहीं दिया गया।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

यही परम्परा संहिताओं के अनन्तर निघण्टु-ग्रन्थों में भी अपनाई गई है। प्राचीन काल में द्रव्यों का परिचय न देने का एक कारण यह भी प्रतीत होता है कि उस समय जिन ऋषि-मुनियों का आयुर्वेद से सम्बन्ध था, उनके लिए द्रव्यों की पहिचान कोई समस्या नहीं थी। वे प्रकृति की गोद में जन्म से ही द्रव्यों का बोध करते थे और उन्हें व्यक्तिगत सम्पर्क से द्रव्य-विषयक पूर्ण परिचय हो जाता था। पिता से पुत्र को और गुरु से शिष्य को इस तरह ज्ञान होता रहा। जब मानव प्रकृति से दूर हटता गया और वन कटते-कटते बड़े-बड़े नगरों में बदलते गये तो स्थिति यह आ गई कि द्रव्यों का ज्ञान केवल नाम एवं गुण-कर्मात्मक शास्त्रीय ज्ञान तक ही सीमित रह गया और यह ज्ञान न रहा कि उस नाम से किस द्रव्य को ग्रहण किया जाय। एक समय था जब वैद्य (भिषक्) स्वयं जंगलों में जाकर द्रव्यों को संगृहीत कर औषध-निर्माण करते थे। समय प्रभाव से व्यापारियों से द्रव्य खरीद कर औषध-निर्माण किया जाने लगा। चरक-संहिता (सूत्रस्थान, अध्याय १५) में 'क्रय' एवं 'आक्रय' शब्दों का वर्णन हुआ है। 'क्रय' का अर्थ देश के भीतर द्रव्य की खरीद और 'आक्रय' का अर्थ बाहर से द्रव्यों का आयात है। इस तरह व्यापारियों के हाथ में द्रव्यों की उपलब्धि रह गई।

शास्त्रों में एक-एक द्रव्य का गुणकर्मात्मक वर्णन हुआ परन्तु भारत जैसे विशाल देश में प्रत्येक के लिए उस द्रव्य को प्राप्त करना सम्भव नहीं था, क्योंकि किसी द्रव्य की उत्पत्ति पूर्व में; तो किसी की पश्चिम में, कोई उत्तर में तो अन्य दक्षिण में पैदा होने वाला है। प्राचीन समय से ही यह समस्या सामने थी और इसका सरल समाधान यह किया गया था कि यदि मूल द्रव्य उपलब्ध न हो तो उसी के समान गुण-कर्म वाले क्षेत्रीय द्रव्य को प्रतिनिधि रूप में ग्रहण कर लिया जाय। इस प्रतिनिधि परम्परा का काल-क्रम से यह प्रभाव हुआ कि बाद में उन प्रतिनिधि द्रव्यों को ही लोग मूल द्रव्य मानने लगे और एक स्थिति यह उत्पन्न हो गई कि यह कह पाना कठिन हो गया कि शास्त्रोक्त द्रव्य का वह मूल है या वह उसका प्रतिनिधि द्रव्य है। आलस्य एवं लोभ के वशीभूत इसका लाभ भी उठाया गया और सुलभ द्रव्यों को ही शास्त्रोक्त द्रव्य के रूप में ग्रहण किया जाने लगा। भौगोलिक विविधता के कारण एक ही शास्त्रोक्त द्रव्य के लिए एक क्षेत्र में किसी एक वनस्पति को तो दूसरे क्षेत्र में किसी दूसरी वनस्पति को ग्रहण किया जाने लगा और वास्तविक कौन है—यह निर्णय कठिन हो गया।

इस समस्या के समाधान में द्रव्य-निर्धारण हेतु जो कार्य हुआ और होना है उसमें संहिताओं के व्याख्याकारों द्वारा द्रव्यों के परिचयात्मक विवरण महत्व

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

के हैं। आचार्य डल्हण ने अपनी व्याख्या में जो कार्य किया वह इस दिशा में महत्वपूर्ण है। उनके जीवन-परिचय से यह बात स्पष्ट है कि वे राज-चिकित्सक और राजा के मित्र थे, वैद्य परिवार के थे एवं चमत्कारिक प्रतिभा-सम्पन्न विद्वान् थे तथा उन्हें सभी सुविधाएँ प्राप्त थीं। उन्होंने देशाटन एवं क्षेत्रीय सर्वेक्षण के आधार पर द्रव्यों का ज्ञान प्राप्त किया था तथा तदनुसार द्रव्यों की व्याख्या की थी, तो भी सन्दिग्धता की इस उलझी हुई समस्या में कितने ही स्थलों पर वे स्वयं उलझ कर रह गये और कहीं-कहीं उनकी व्याख्या विषय को स्पष्ट करने वाली न होकर भ्रमोत्पादक हो गई। ऐसे द्रव्यों के प्रकरण में यद्यपि उन्होंने बहुत ईमानदारी से काम किया और अपना मत देने के साथ-साथ अन्य मत, एकीय मत एवं अपर मत देकर वर्णन दिया तो भी कितने ही द्रव्यों के विषय में आचार्य ने एक स्थान पर जिस द्रव्य को ग्रहण किया दूसरे स्थान पर अन्य को ग्रहण कर लिया। ऐसा भी हुआ कि किसी द्रव्य के विषय में पहले जो अपना मत बताया और अन्य मत में दूसरे किसी द्रव्य को ग्रहण करने का निर्देश दिया तो दूसरे सन्दर्भ में अन्य मत को अपना मत बता दिया तथा अपने मत को अन्य मत में लिख दिया। इस तरह के विवरण से भ्रम उत्पन्न हुआ; न कि स्पष्टीकरण।

इस दोष के रहने पर भी इतना कहना पड़ेगा कि डल्हण ने द्रव्यों के परिचय में बहुत योगदान किया है। द्रव्यों के परिचयात्मक स्वरूप का वर्णन हमने पृथक् विस्तार से लिखा है तथा भौगोलिक दृष्टि से उनकी उपलब्धि का वर्णन तथा लौकिक नाम देकर उन्होंने द्रव्यों का परिचायक मार्ग प्रशस्त कर दिया है।

इस शोध-कार्य में सन्दिग्ध द्रव्य की परिभाषा में हमने उन द्रव्यों को लिया है, जिनके विषय में डल्हण ने एक से अधिक मत दिये हैं। जिन द्रव्यों का निश्चित एक मत दिया है, उनको पीछे अलग प्रकरण में प्रस्तुत किया गया है। इनमें यह निश्चय करने की आवश्यकता है कि किस-किस शास्त्रोक्त द्रव्य के लिए कौन-कौन द्रव्य ग्रहण किया जाए।

आधुनिक युग में ऐसे सन्दिग्ध द्रव्यों के परिचय एवं द्रव्य-निर्धारण हेतु इस शतक के आरम्भ से ही कार्य आरम्भ हुए और श्री रूपलाल जी वैश्य एवं भागीरथ जी स्वामी के आरम्भिक प्रयत्न सराहनीय हैं। वनस्पतिवेत्ता ठा० बलवन्त सिंह का कार्य वैद्य समाज के लिए उल्लेखनीय है। वर्तमान विद्वानों में वयोवृद्ध एवं ज्ञानवृद्ध वैद्य श्री बापालाल जी, आचार्य श्री विश्वनाथ जी द्विवेदी; आचार्य श्री प्रियव्रत जी शर्मा एवं डॉ० राम सुशील सिंह जी का कार्य

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

महत्वपूर्ण है जिन्होंने द्रव्यों की सन्दिग्धता के निवारण का अथक प्रयास किया है।

यद्यपि शोध-कार्य का उद्देश्य डल्लण का इस क्षेत्र में योगदान की समीक्षा है तो भी इन विद्वानों का सन्दिग्ध द्रव्यों के विषय में क्या मत है यह अध्ययन कर डल्लण द्वारा प्रदत्त स्वमत एवं विमत के आधार पर क्या माना है इसका समीक्षात्मक अध्ययन हमने प्रस्तुत किया है जिनमें बहुत स्थानों पर इन विद्वानों के मत डल्लण के मत से मिलते हैं और कितने ही द्रव्यों के विषय में डल्लण के मत को इन लोगों ने भ्रामक बताया है।

इस शोध-कार्य का उद्देश्य इस विषय को पूर्णतः प्रकाश में लाना है और आगे कार्य करने वालों को सामग्री देना है ताकि वे डल्लण द्वारा प्रतिपादित मतों पर गुणकर्मात्मक तथा परिचयात्मक दृष्टि से निर्णय करें कि किस द्रव्य से कौन अर्थ ग्रहण किया जाय।

ऐसे सन्दिग्ध द्रव्यों पर डल्लणोक्त स्वमत तथा विमतों का विवरण तथा उन पर अब तक हुए शोध-कार्य का समीक्षात्मक अध्ययन शोध-प्रबन्ध के द्वितीय खण्ड में प्रस्तुत किया गया है।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध दो खण्डों में विभक्त है। इनमें से प्रथम खण्ड में पाँच अध्याय हैं और द्वितीय खण्ड में उपसंहार सहित ग्यारह अध्याय हैं। प्रथम खण्डान्तर्गत प्रथम अध्याय डल्लण के परिचय, व्यक्तित्व एवं बहुमुखी प्रतिभा पर प्रकाश डालता है। अनेक अन्तः एवं बाह्य-साक्ष्यों के आधार पर डल्लण का काल द्वादश शताब्दी का अन्तिम दशक एवं त्रयोदश शताब्दी के प्रथम दशक के मध्य का स्थिर किया गया है। द्वितीय अध्याय में डल्लण द्वारा उद्धृत ग्रन्थ एवं टीकाओं का सकर्तृक परिचय सन्दर्भ सहित दिया गया है। तृतीय अध्याय में संग्रह ग्रन्थों में उद्धृत डल्लण के वचनों का संग्रह है। चतुर्थ अध्यायान्तर्गत चतुर्विध सूत्रों में परिगणित एकीय सूत्र के स्वरूप में डल्लण ने लगभग तीन सहस्र एकीय मतों को उद्धृत कर अपनी सर्वतोमुखी प्रतिभा का उदात्त परिचय दिया है। पञ्चम अध्याय में वनस्पति-परिचय के प्रसंग में उपात्त भौगोलिक सामग्री का निरूपण है जिसके अन्तर्गत विभिन्न देशों, जनपदों, पर्वतों, नदियों, समुद्रों एवं नगर का सचित्र परिचय दिया गया है ताकि ओषधि-परिचय में सरलता हो सके।

द्वितीय खण्डान्तर्गत षष्ठ अध्याय में शोध-ग्रन्थ की स्रोतोभूत सामग्री का मूल पाठ प्रस्तुत किया गया है। सप्तम अध्याय में डल्लण द्वारा द्रव्यगुण-शास्त्र

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

के सिद्धान्त पक्ष की विवेचना की गई है जिसमें द्रव्य, रस, गुण, वीर्य, विपाक, प्रभाव एवं कर्म का टीकाकार द्वारा मौलिक विवेचन निहित है। अष्टम अध्याय में संहितोक्त वनस्पतियों के डल्लणाभिमत अर्थ की मीमांसा की गई है। नवम अध्याय में डल्लण द्वारा निर्दिष्ट एवं उसके काल में लोक-प्रचलित पर्यायभूत नामों का उल्लेख है। दशम अध्याय में डल्लण प्रदत्त कतिपय वनस्पतियों का आकृतिपरक परिचय प्रस्तुत किया गया है। एकादश अध्याय में उन वनस्पतियों को सम्मिलित किया गया है जिसे डल्लण स्वतः सन्दिग्ध मानते थे। द्वादश अध्याय में जांगम-द्रव्यों का अति-कुशलता से डल्लण द्वारा प्रस्तुत परिचय एवं विवेचना को निबद्ध किया गया है। त्रयोदश अध्याय में पार्थिव (लोह, धातु-उपधातु एवं लवण) द्रव्यों का डल्लण-मुख से परिचय प्रस्तुत किया गया है। चतुर्दश अध्याय में कृतान्न-वर्ग की विशद विवेचना है और इसमें डल्लण ने अपने काल में प्रचलित अनेक मिष्ठान्नों एवं पकवानों का सजीव चित्रण किया है। पञ्चदश अध्याय में देशानुसार कतिपय द्रव्यों का परिचय दिया गया है जिससे यह ज्ञात हो सके कि अमुक वस्तु वहाँ उस समय बाहुल्येन उपलब्ध होती थी। अन्तिम षोडश अध्याय में दोनों खण्डों के अन्तर्गत अध्यायों में सन्निविष्ट सामग्री का उपसंहार किया गया है। अन्त में सन्दर्भ ग्रन्थावली दी गई है।

इस शोध-कार्य की अवधि में दो पुस्तकें प्रकाश में आईं, जिनमें आचार्य प्रियव्रत शर्मा की पुस्तक "डल्लण ऐण्ड हिज कमेण्ट्स ऑन ड्रग्स" (१९८६) है जिसमें उन्होंने डल्लण द्वारा व्याख्यात द्रव्यगुण-विषयक सामग्री का संग्रह किया है। हमने प्रथम चरण में ही सुश्रुत से आद्योपान्त सम्बद्ध सामग्री का संग्रह कर लिया था। दूसरी पुस्तक वैद्य बापालाल जी की "सम कण्ट्रोवर्सियल ड्रग्स इन इण्डियन मेडिसिन" (१९८६) प्रकाश में आयी जिसमें अनेक सन्दिग्ध वनस्पतियों पर प्रकाश डाला गया है। आचार्य प्रियव्रत शर्मा का द्रव्यगुण विज्ञान, पञ्चम खण्ड १९८१ में प्रकाशित हुआ था जिसमें बृहत्त्रयी एवं निघण्टुओं के द्रव्यों पर प्रकाश डाला गया है। शोध-कार्य की पूर्ति के काल में इन पुस्तकों का भी अवलोकन एवं अध्ययन किया गया तथा जहाँ आवश्यक हुआ इनके सन्दर्भ से समीक्षा भी प्रस्तुत की गई।

डल्लण ने द्रव्यों की व्याख्या करने में जहाँ स्वमत, विमत तथा अन्य मत दिये वहाँ बहुत ही ईमानदारी से काम लिया है। आचार्य जेज्जट, आचार्य गयदास एवं श्री ब्रह्मदेव को स्थान-स्थान पर इन्होंने उद्धृत किया है। 'वृद्ध वैद्यास्तु' कहकर उनको लिखा तथा लौकिक एवं देशपरक नाम दिए एवं

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

आकृतिपरक परिचय दिया और फिर भी कुछ स्पष्ट न हुआ तो आचार्य ने लिख दिया—"लोकादवगन्तव्यः" कि लोक से ज्ञात करना चाहिए। इससे अधिक उदारता और उनकी क्या हो सकती थी।

अन्त में कृतज्ञता-ज्ञापन करना अपना परम पुनीत कर्तव्य समझता हूँ और इस शृंखला में शोध-कार्य की प्रेरणा और उसकी पूर्णाहुति का समग्र श्रेय इस शोध-प्रबन्ध के पर्यवेक्षक एवं पथप्रदर्शक विद्यामार्तण्ड डॉ० ज्योतिर्मित्र आचार्य (उपाचार्य, मौलिक सिद्धान्त विभाग, आयुर्वेद संकाय; चिकित्सा विज्ञान संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय) को है जो उद्भट विद्वान्; भारतीय वाङ्मय के कुशल समालोचक, विविध भाषाविद्, आयुर्वेदशास्त्र एवं संहिताओं के मर्मज्ञ एवं तलस्पर्शी विद्वान् हैं। वैदुष्य के अतिरिक्त उनमें शालीनता, सरलता, सहृदयता एवं उदारता का पारावार आप्यायित है। आपका मार्ग-दर्शन कभी वाराणसी में और कभी दिल्ली में विभिन्न व्याजवश उपलब्ध होता रहा। दस-दस घण्टों के सतत उपवेशन से अनेक दुरूह गुत्थियों को बड़ी तन्मयता से सुलझाने में आपने परम स्नेह का परिचय दिया है। यह आपकी ही प्रेरणा, उद्बोधन एवं कृपा थी जो इस प्रकार का दुरूह कार्य मुझ जैसे व्यक्ति से सम्पन्न हो सका। आपके प्रति कृतज्ञता-ज्ञापन के लिये मेरे पास शब्द नहीं हैं। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के प्रोफेसर डॉ० एल० वी० गुरु की प्रेरणा भी बराबर मुझे कार्य में प्रगति हेतु उत्साहित करती रही; एतदर्थ उनके प्रति आभार प्रदर्शित करना मैं भूल नहीं सकता।

इसके अतिरिक्त मैं उन सभी विद्वद्वर्ग का ऋणी हूँ जिनसे मुझे प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से इस शोध-कार्य की पूर्ति में समय-समय पर विचार-विमर्श मिला।

५ अगस्त, १९८३ शिवकुमार व्यास

कृतज्ञता-ज्ञापन

इस शोध-ग्रन्थ के यशस्वी लेखक पूज्य पितृश्री डॉ० शिवकुमार व्यास का आकस्मिक निधन ३० जुलाई १९८७ को हो गया। निधन से कुछ दिन पूर्व ही उन्हें भारतीय इतिहास अनुसन्धान परिषद् से प्रकाशन-साहाय्य के स्वीकृत अनुदान की आधिकारिक सूचना मिली थी और इसे उन्होंने अपने शोध-प्रबन्ध के निर्देशक प्रो० ज्योतिर्मित्र जी आचार्य, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय को सूचित

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

कर दिया था। इस पत्र के उत्तर में उन्होंने प्रसन्नता व्यक्त की थी और प्रकाशन सम्बन्धी अनेक सुझाव दिये थे किन्तु प्रोफेसर साहब के पत्र को वे पढ़ न सके। अकाल में ही नियति ने उन्हें हम लोगों से छीन लिया। उनके ऊर्ध्वदैहिक संस्कार के अनन्तर वह पत्र जब हमें हस्तगत हुआ तो हम लोगों की यह प्रबल इच्छा हुई कि दिवंगत आत्मा की इस कामना को श्रद्धाञ्जलि एवं ऋण मान कर पूर्ण किया जाय। अतएव हम लोगों ने प्रोफेसर साहब से प्रार्थना की कि इस पुस्तक को प्रकाशित करने का समस्त दायित्व वहन करें। पूज्य पिता जी के अन्तरङ्ग मित्र एवं शोध-कार्य निर्देशक होने के कारण उन्होंने हम लोगों को कार्य पूर्ति के लिए आश्वासन दिया और परम पिता परमात्मा की असीम अनुकम्पा से यह कार्य पूज्य पिता जी के द्वितीय वार्षिकी के अवसर पर पूर्ण हो सका है। इसका समस्त श्रेय हमारे पितृव्य-कल्प प्रो० ज्योतिर्मित्र जी आचार्य को है। आपको धन्यवाद देने के लिए हमारे पास शब्द नहीं हैं। पिता जी की मैत्री का अविस्मरणीय परिचय आपने दिया है। ग्रंथ-लेखन से लेकर प्रकाशन एवं प्राक्कथन लेखन तक के गुरुतर भार को वहन कर आपने हम लोगों को परम उपकृत किया है। इस ग्रन्थ के प्रकाशन से स्व० पिता जी के यश के अमृतत्व का विस्तार हुआ है। आपकी ही कृपा से आयुर्वेद-जगत् के लब्धप्रतिष्ठ विद्वान् प्रो० शिवचरण जी ध्यानी भूतपूर्व प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष—द्रव्यगुण विज्ञान, गुजरात आयुर्वेद विश्वविद्यालय, जामनगर ने वैदुष्य एवं तथ्यपरक आमुख लिखकर ग्रन्थ की महत्ता को द्विगुणित कर दिया है अतएव हम आपके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करना अपना धर्म समझते हैं।

भारतीय इतिहास अनुसन्धान परिषद्, नई दिल्ली ने आर्थिक साहाय्य का अनुदान स्वीकृत कर इसके प्रकाशन में जो सौकर्य उपस्थित किया है उसके लिए हम दिवंगत लेखक के आत्मज होने के कारण धन्यवाद ज्ञापन करते हैं। अन्त में ज्योतिरालोक प्रकाशन को तथा नया संसार प्रेस, भदैनी, वाराणसी के संचालक श्री सन्तोष कुमार उपाध्याय के प्रति हम लोग आभारी हैं जिन्होंने पुस्तक के प्रकाशन एवं मुद्रण के गुरुतर उत्तरदायित्व का संवहन कर इसे यथा समय पूर्ण किया है।

२० जुलाई, १९८९

अनिल कुमार व्यास
सुनील कुमार व्यास

टी० १०४, विष्णु गार्डेन,
नई दिल्ली–१८

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

संकेत-सूची

अथ०	— अथर्ववेद
अनु०	— अनुशासन पर्व
अ० को०	— अमरकोष
अ० सं०	— अष्टांग संग्रह
अ० हृ०	— अष्टांग हृदय
आदि०	— आदिपर्व
आ० वे० इ०	— आयुर्वेद का वैज्ञानिक इतिहास
आई० सी०	— इण्डियन कल्चर
आई० एच० क्यू०	— इण्डियन हिस्टॉरिकल क्वार्टर्ली
इ०	— इन्द्रियस्थान
उ०	— उत्तरतन्त्र
उ० प०	— उत्तरपर्व
एच० आई० एम०	— हिस्ट्री ऑफ इण्डियन मेडिसिन
ए० बी० ओ० आर० आई०	— एनल्स ऑफ भण्डारकर ओरिएण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट
क०	— कल्पस्थान
कै० सं० मैनु० कै०	— कैटलॉग ऑफ संस्कृत मैन्युस्क्रिप्ट्स कैम्ब्रिज
कै० सं० मैनु०, बी० ओ० आर० आई०	— कैटलॉग ऑफ संस्कृत मैन्युस्क्रिप्ट्स, भण्डारकर ओरिएण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट
गोडे० स्ट० इ० लि० हि	— गोडेज स्टडीज इन इण्डियन लिटरेरी हिस्ट्री
चक्र०	— चक्रपाणि
च०	— चरक-संहिता
चि० क०	— चिकित्सा-कलिका
चि०	— चिकित्सा-स्थान
जे० आर० ए० एस०	— जर्नल ऑफ रायल एशियाटिक सोसायटी

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

जेड० डी० एम० जी०	— जीत शिफ्ट डेट ड्वायशेन मार्गेन-लाण्डिशेन गेशेलशाफ्ट
ड०	— डह्लण
ता० सा०	— तान्त्रिक साहित्य
द० स्ट० फा० इ०	— द स्ट्रगल फार इम्पायर
नि०	— निदान-स्थान
पा० अ०	— पाणिनीय अष्टाध्यायी
पा० श० शा०	— परिषाद्यं शब्दार्थं शारीरम्
व्या० कु०	— व्याख्या कुसुमावली
वृ० मा०	— वृन्दमाधव
भा० ज्यो०	— भारतीय ज्योतिष
म० भा०	— महाभारत
मा० नि०	— माधव निदान
मे० को०	— मेदिनी कोश
रा० त०	— राजतरंगिणी
ल्यू० इ० मे०	— ल्युमिनरीज ऑफ इण्डियन मेडिसिन
वा० पु०	— वायुपुराण
शा०	— शारीर-स्थान
एस० डी० आई० एम०	— सम कण्ट्रोवर्सियल ड्रग्स इन इण्डियन मेडिसिन
सु०	— सुश्रुत-संहिता
सू०	— सूत्रस्थान
हि० सा० इ०	— हिन्दी साहित्य का इतिहास
हि० आ० इ० फार्मा०	— श्रीवास्तवाज हिस्ट्री ऑफ इण्डियन फार्मेसी

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

विषय-सूची

प्राक्कथन	vii – xii
आमुख	xiii – xiv
प्रस्तावना	xv – xxiii
कृतज्ञता-ज्ञापन	xxiii – xxiv
संकेत-सूची	xxv – xxvi

प्रथम खण्ड

अध्याय | पृष्ठ

प्रथम : डल्लण का परिचय, व्यक्तित्व एवं काल-निर्णय | १–२२

परिचय १; डल्लण के गुरु ६, व्यक्तित्व ७, वैदिक-ज्ञान ८, दार्शनिक ज्ञान १०; वैयाकरणिक ज्ञान ११, ज्योतिष-विषयक ज्ञान ११, धार्मिक ज्ञान १३, शल्यकर्माभिज्ञता १३, काय-चिकित्सकता १७, लौकिक ज्ञान-पटुता १८; पर्यटनशीलता १८, काल-निर्णय १९, बयाना के यादव-राजाओं का वंशवृक्ष २१।

द्वितीय : उद्धृत ग्रन्थ एवं टीकाओं का सकर्तृक परिचय | २३–५२

आयुर्वेदीय ग्रन्थ एवं आचार्य—अमितप्रभ २४, आलम्बायन २४, उशनस् २४, औपधेनव २४, करवीर २५; कार्त्तिककुण्ड २५, काश्यप २६, काश्यपवृद्ध २८, कृष्णात्रेय २८, कांकायन २८, गयदास २८, गयदासाचार्य ३०, गयी ३०, गार्ग्य ३१, गालव ३१, गोपुररक्षित ३२; चक्रपाणिदत्त ३२, चरक ३३, जेज्जट ३४, दृढबल ३६, नन्दि ३६, नागार्जुन ३७, निमि ३७, पराशर ३७, पुष्कलावत ३८, बंगदत्त ३८; ब्रह्मदेव ३९, विश्वामित्र ३९, भट्टार हरिचन्द्र ४०, भद्रशौनक ४१; भालुकि ४१, भेड ४१, भोज ४२, माधव ४३; मुनि ४४, लक्ष्मण टिप्पणकार ४४, वशिष्ठ ४४; वाग्भट ४४, वृद्ध वाग्भट ४४, वाग्भट ४४; लघु वाग्भट ४५, वाराह ४६, विदेह ४६, वैतरण ४६; सात्यकि ४६, सुकीर ४६, सुधीर ४६, सुवीर ४७, सुश्रुत

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

अध्याय पृष्ठ

४७, हारीत ४८, क्षारपाणि ४८, आयुर्वेदेतर ग्रन्थ एवं आचार्य—अमरकोष ४६; मेदिनीकोष ४६, कुमारतन्त्र ५०, शक्तिसंगम तन्त्र ५०, रतिरहस्य ५१, वात्स्यायन कामसूत्र ५१; व्यासभट्टारक ५१, पतञ्जलि ५२, श्रीपति ५२ ।

तृतीय : संग्रह ग्रन्थों की टीकाओं में उद्धृत डल्लण के वचन ५३–५६

हेमाद्रि की आयुर्वेद रसायन टीका ५४, व्याख्या-कुसुमावली में उद्धृत डल्लण मत ५४, शिवदास सेन की तत्व-चन्द्रिका व्याख्या में उद्धृत डल्लण मत ५६ ।

चतुर्थं : एकीय मतों का संग्रह एवं उनकी समीक्षा ५७–७१

अन्ये ५८, अपरे ६३, इतरे ६४, एके ६४, कश्चिद् ६५, केचित् ६५, केषाञ्चित् ६६, लोके ६६, स्थानानुसार एकीय मतों का परिसंख्यान ७०, एकीय मतों की समीक्षा ७० ।

पञ्चम : भौगोलिक सामग्री का अध्ययन ७२–८७

भारत का पारम्परिक विभाग ७३; पूर्वदेश या पूर्वापथ ७४, पूर्वदेश में आने वाले स्थानों का परिचय (कामरूप, गौडदेश, तीरभुक्ति, पौण्ड्र, बड़तर, मगध, वाराणसी) ७५; पश्चिम देश (अवन्ति, इन्द्रप्रस्थ, उत्तरकुरु, कर्णाट, कान्य-कुब्ज, काम्बोज, गुर्जर राष्ट्र, तुरुष्क देश, पल्लव, पाञ्चाल, मरुदेश, मालवा, लाट, बाह्लीक, शाकम्भरी) ७७, उत्तरापथ (कश्मीर, कार्तिकपुर, चीन, नेपाल) ८०; दक्षिणापथ ८२, मध्यदेश (जेजीभुक्ति) ८३, डल्लण द्वारा निर्दिष्ट नदियाँ (गंगा, चर्मण्वती, तापी, नर्मदा, शोण, सरयू, सिन्धु, वर्णसा) ८३; डल्लण द्वारा निर्दिष्ट समुद्र (दक्षिण, पश्चिम, पूर्व, क्षीर) ८५, डल्लण द्वारा निर्दिष्ट पर्वत (केदार, पारियात्र, विदूर, मलय, सह्याद्रि, हिमालय, विन्ध्य) ८५ ।

द्वितीय खण्ड

षष्ठ : स्रोतोभूत सामग्री का संग्रह ९१–१७७

सूत्रस्थान—अध्याय प्रथम ९१, अध्याय षष्ठ ९२,

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

अध्याय पृष्ठ

अध्याय एकादश से षोडश ९३-९४, अध्याय अष्टादश से द्वाविंश ९४-९७, अध्याय पञ्चविंश से सप्तविंश ९७, अध्याय एकोनत्रिंश से त्रिंश ९७-९८, अध्याय द्वात्रिंश से त्रयस्त्रिंश ९८, अध्याय षट्त्रिंश से षट्चत्वारिंश ९८-१३३।

चिकित्सास्थान—अध्याय प्रथम से त्रिंश १३३-१४७, अध्याय द्वात्रिंश से त्रयस्त्रिंश १४७-१४८, अध्याय सप्तत्रिंश से अष्टत्रिंश १४८-१४९, अध्याय चत्वारिंश १४९।

कल्प-स्थान—अध्याय प्रथम से अष्टम १४९-१५४।

उत्तरतन्त्र—अध्याय षष्ठ १५४, अध्याय नवम से पञ्चदश १५४-१५६; अध्याय सप्तदश से अष्टादश १५६-१५७, अध्याय एकविंश से चतुर्विंश १५७-१५८; अध्याय षड्विंश १५८-१५९, अध्याय अष्टाविंश से अध्याय षट्त्रिंश १५९-१६१, अध्याय अष्टात्रिंश से अध्याय त्रिषष्टि १६१-१७८।

सप्तम : डल्हण द्वारा व्याख्यात सिद्धान्तविषयक विवेचना १७९-२०३

द्रव्य १७९-१८३, रस १८३-१८५, गुण १८५-१८८; वीर्य १८८-१९०; विपाक १९०, प्रभाव १९०-१९१, कर्म १९२-२०३।

अष्टम : संहितोक्त वनस्पतियों का डल्हणाभिमत अर्थ २०४-२३४

नवम : संहितोक्त वनस्पतियों के डल्हण द्वारा संकेतित लोक-प्रचलित नाम २३५-२४०

दशम : वनस्पतियों का डल्हण द्वारा आकृतिपरक परिचय २४१-२५२

एकादश : डल्हण द्वारा प्रतिपादित सन्दिग्ध वनस्पतियाँ २५३-२७१

द्वादश : जाङ्गम द्रव्यों का डल्हणाभिमत विभावन २७२-२८९

जाङ्गम द्रव्य २७२; जाङ्गमों का डल्हणोक्त अर्थ २७५, जाङ्गमों के डल्हणोक्त लोक-प्रचलित नाम २८१; कतिपय जाङ्गमों का डल्हणोक्त परिचायक विवरण २८३; जाङ्गम सृष्टि से प्राप्त द्रव्यों का डल्हणोक्त अर्थ—क्षीरज द्रव्य २८७-२८८, अन्य द्रव्य २८९।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

अध्याय	पृष्ठ
त्रयोदश : पार्थिव द्रव्यों का डल्लणाभिमत विभावन	२६०–२६७
पार्थिव द्रव्य २६०; धातु २६०, लोह २६१, सुश्रुतोक्त पार्थिव द्रव्यों का डल्लणोक्त अर्थ २६२; कतिपय पार्थिव द्रव्यों पर डल्लणोक्त विशेष व्याख्या २६५ ।	
चतुर्दश : डल्लण द्वारा व्याख्यात कृतान्न-वर्ग	२६८–३०७
कृतान्न वर्ग २६८; भोज्य २६८, भक्ष्य २६६, फेनक २६६ ।	
पञ्चदश : देशानुसार कतिपय द्रव्यों का परिचय	३०८–३१३
उत्तरापथगत द्रव्य ३०६-३१०; पूर्वदेशगत द्रव्य ३१०-३११; दक्षिणापथगत द्रव्य ३११-३१२; पश्चिमदेशगत द्रव्य ३१२-३१३; मध्यदेशगत द्रव्य ३१३; द्वीपान्तर द्रव्य ३१३ ।	
षोडश : उपसंहार	३१४–३१८
सन्दर्भ ग्रन्थ सूची	३१६–३२२
शब्दानुक्रमाणिका	३२३–३६८

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

प्रथम खण्ड

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

प्रथम अध्याय

डल्लण का परिचय, व्यक्तित्व एवं काल-निर्णय

परिचय

सुश्रुत-संहिता के प्राचीन टीकाकरों में डल्लण ही एकमात्र व्यक्ति हैं, जिनकी 'निबन्ध-संग्रह' व्याख्या अद्यावधि उपलब्ध है। इसके पूर्ववर्ती सभी टीकाकारों की टीकायें कराल-काल के गाल में कवलित हो गईं। इनके अस्तित्व का परिचय स्वयं डल्लण ने ससम्मान वैशिष्ट्य एवं वैमत्य पुरस्सर उद्धरणों के माध्यम से प्रस्तुत किया है। यदि डल्लण की निबन्ध-संग्रह टीका आज हमें उपलब्ध न होती तो सुश्रुत पर लिखी गई इतनी टीकाओं का ज्ञान भी न हो पाता।

किसी व्यक्ति के परिचय का ज्ञान दो तथ्यों पर आधारित है और वे हैं आभ्यन्तर एवं बाह्य साक्ष्य। इनमें से प्रथम तथ्य के आधार पर ही हमें डल्लण का स्वल्प परिचय मिल पाता है। किसी अन्य ग्रन्थ या टीका में इनके जीवन-वृत्त का कोई संकेत नहीं मिलता। डल्लण ने अपना परिचय सुश्रुत की निबन्ध-संग्रह व्याख्या में दो स्थलों पर दिया है। इनमें से सूत्र-स्थान के प्रथम अध्याय के प्रथम श्लोक के व्याख्यान के अवसर पर ही इन्होंने अपने वर्ण, वंश एवं राजाश्रय का परिचय दिया है।

ये तत्कालीन समस्त जनपदों में अतिचर्चित 'श्री भादालक देश' में प्रसिद्ध मथुरा नगरी के निकट 'अंकोला' नामक स्थान के निवासी थे। यह स्थान सौर-वंशज ब्राह्मणों से अधिष्ठित था। इस नगर में रहने वाले सभी वैद्य राजाओं द्वारा सम्मानित एवं अश्विनी-कुमारों के समान चिकित्सा-कौशल में अतिपूर्ण थे और जिनकी यशः-प्रशस्ति पार्वण चन्द्रमा की धवल-कान्ति के समान दिग्दिगन्त में व्याप्त थी। इन्हीं वैद्यों के वंश में 'गोविन्द' नाम का कोई चिकित्सक शिरोमणि था जिसका पुत्र 'जयपाल' हुआ जो कि भिषक्-समाज में शिर के मुकुटमणि के समान सम्मानित था। समस्त शास्त्रों के अर्थ तत्व के मर्म को समझने वाला उसका 'भरतपाल' नामक पुत्र हुआ। इसी से डल्लण (डल्लन) का जन्म हुआ जो अपने वंशरूपी आकाश में चन्द्रमा के समान (अभिनन्दनीय) एवं बुद्धि में बृहस्पति के समान (अर्चनीय) था। सम्भवतः इन्हीं गुणों के कारण वह अपने आश्रयदाता राजा सहनपालदेव का अतिप्रिय मित्र हुआ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

इनका द्वितीय परिचय, उत्तरतन्त्र के छब्बीसवें अध्याय के अन्तिम श्लोक के व्याख्यान के अन्त में उपलब्ध होता है—

सद्बुद्धेः प्रसवः पदं सुयशसः सद्वैद्यवन्द्यः श्रिया-
मावासः सुकृती क्रियासु निपुणः श्री डल्हणाख्यो भिषक् ।
श्री भादानकनाथसाहलनृपस्यातीव यो वल्लभः
शास्त्रं तस्य निबन्धसंग्रह इति ख्यातं धरित्रीतले ॥

इस उपर्युक्त श्लोक से उनके विशाल व्यक्तित्व, क्रिया (चिकित्सा या शल्यकर्म)-नैपुण्य, यशः प्राशस्त्य, सद्वैद्यवन्द्यता, धनाढ्यता एवं नृपति-वल्लभता का परिज्ञान होता है। इस श्लोक से न तो उसके पूर्वजों का ज्ञान हो पाता है और न ही अपने आश्रयदाता साहल या सहनपालदेव के वंश का।

बाह्य साक्ष्य इनका परिचय प्रदान करने में सर्वथा मौन हैं। आधुनिक काल के चिकित्सा-इतिहास के लेखकों ने नामान्त पद के अनुसार इन्हें मथुरा के निकट अंकोला नामक स्थान से पृथक् मानने के विचार को प्रस्तुत किया है। पर इनके विचार किसी साहित्यिक स्रोत पर आधारित न होकर कल्पना से प्रसूत हैं। हार्नले, 'ही हैड हिज होम इन द नार्थ-वेस्ट' (जे० आर० ए० एस०, १९०६, पृ० २९०) ने डल्हण को भारत के उत्तर-पश्चिम प्रदेश का निवासी माना है जब कि फिलियोजा (इन रिनाउ एट फिलिऔजा, ले इण्डे क्लैसिक २, पृ० १५९) इसे नामान्त पद के आधार पर कल्हण एवं विल्हण के नाम के समान कश्मीरी मानने को तैयार हैं। इनके तर्क का निरास डल्हण द्वारा उपन्यस्त भौगोलिक सामग्री के आधार पर सरलता से हो जाता है। कश्मीर का उल्लेख इन्होंने कई बार किया है पर वहाँ कहीं भी ऐसा निर्देश नहीं किया है जिससे उस भू-भाग के प्रति इनकी आसक्ति एवं चिरस्नेह प्रगट होता हो। यदि ये कश्मीरी होते तो इनके पूर्वजों (पिता सहित) का नाम पालान्त न होता अपितु अणन्त होता। जहाँ तक इनके मूल स्थान के उत्तर-पश्चिम होने का प्रश्न है उसका भी यही उत्तर है। यद्यपि मथुरा की गणना पश्चिम प्रदेश में होती है पर उत्तर-पश्चिम प्रदेश से तात्पर्य कश्मीर या अफगानिस्तान से ही प्रतीत होता है। जो युक्तियाँ कश्मीर के निरास के विषय में दी गयी हैं वे ही यहाँ भी समझनी चाहिए।

अद्यावधि जितने भी चिकित्सा-विज्ञान के इतिहास के लेखक हुए हैं उनमें से किसी ने भी इस विषय पर प्रकाश नहीं डाला है।

डल्हण द्वारा उल्लिखित भादानक देश का आधुनिक परिचय पा लेना आवश्यक है। इन्होंने अपने परिचय के अतिरिक्त एक अन्य स्थल (उत्तर० ५५/३२) पर भी भादानक का नाम लिया है। यह वह स्थल है जहाँ अपथ्यज

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

उदावर्त में सुश्रुत ने पीलु का प्रयोग बताया है। इसी पीलु का परिचय देते हुए डल्लण ने उसे इस प्रदेश में उष्ट्रप्रिय एवं उसी नाम से प्रसिद्ध माना है। यतः पीलु ऊँटों को अति प्रिय है और वह भी उसके आवास प्रदेश में। राजस्थान की सैकत-भूमि में ऊँटों का प्राचुर्य देखा जाता है। मथुरा से भरतपुर का सीधा मार्ग है और यह भरतपुर राजस्थान में होने के कारण सिकता-बहुल प्रदेश आज भी है। मथुरा से भरतपुर की दूरी लगभग ३४ किलोमीटर है। भरतपुर राजस्थान की एक स्वतन्त्र 'स्टेट' रही है और इसका कोई प्राचीन नाम नहीं मिलता। यदि इसे भादानक मान लिया जाय तो बाह्य एवं अन्तः दोनों साक्ष्यों के आधार पर यह आधुनिक भरतपुर का ही प्रखण्ड प्रतीत होता है। डल्लण ने इसे देश कहा है और इसके विशेषण के रूप में इसे समस्त जनपदों का तिलक तुल्य माना है। अतः जनपद होने के कारण इसका ऐक्य या विभावन भरतपुर के साथ किया जा सकता है। भारतीय 'पोस्ट-आफिस' की 'गाइड' के अवलोकन से भी यह स्पष्ट हो जाता है कि भादानक या भदान नामक कोई भी स्थान मथुरा या भरतपुर के निकट नहीं है। हाँ एक 'भरतिया (पृ० १०१; अप्रैल १९६६ संस्करण) नामक स्थान अवश्य मथुरा जिले में आता है जो किसी भी प्रकार से भादानक या भादालक का विकृत रूप या अपभ्रष्ट प्रयोग प्रतीत नहीं होता। इसी डाइरेक्ट्री (पृ० ९३) में भदावरा नामक स्थान मथुरा जिले में आता है जिसके साथ भी कुछ लोग भादानक का ऐक्य स्थापित करना चाहते हैं, पर वह विचार भी इसलिए निरस्त हो जाता है कि यह एक छोटा स्थान है और यह जनपद की श्रेणी में नहीं आ पाता। प्राचीन काल की भौगोलिक परिधि आज से सर्वथा भिन्न थी। आचार्य प्रियव्रत शर्मा ने 'डल्लण ऐण्ड हिज कमेण्ट्स ऑन ड्रग्स' नामक कृति (पृ० २) में प्रसिद्ध इतिहासविद् प्रोफेसर रमेशचन्द्र मजूमदार (हिस्ट्री एण्ड कल्चर ऑफ दि इण्डियन पीपूल, खण्ड ५; पृ० १०७) के भादानक के विभावनपरक मत को प्रस्तुत करते हुए कहा है कि कतिपय विद्वानों के अनुसार यह भादानक राज्य साम्प्रतीन रेवाड़ी तहसील, भिवानी और उसके निकटवर्ती ग्राम तथा प्राचीन अलवर राज्य का सम्मिलित रूप था किन्तु यह विचार अपने द्वारा प्रस्तुत तथ्यों के भौगोलिक साक्ष्य के आधार पर पूर्णतया निरस्त हो जाता है और आधुनिक बयाना को ही डल्लण का भादानक मानना युक्ति-युक्त प्रतीत होता है। आचार्य शर्मा जी ने इसी मत के प्रति अपनी अभिरुचि प्रदर्शित की है।

डल्लण ने अपने आश्रयदाता राजा सहनपालदेव का कोई परिचय नहीं दिया है। यद्यपि इनके वंश पर किसी भी प्राच्य या पाश्चात्य आयुर्वेद इतिहास-

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

कार ने प्रकाश नहीं डाला है। यदि इनका परिचय पा लिया जाय तो भादानक को भरतपुर मानने की विचारधारा की और भी पुष्टि हो जाती है।

राजस्थान में ही स्थित बयाना भरतपुर से ४३ किलोमीटर की दूरी पर दक्षिण की ओर सीधे मार्ग पर स्थित है। ग्यारहवीं शताब्दी के आरम्भ में बयाना में यदुवंशी राजाओं की एक शाखा राज्य करती थी। प्रोफेसर रमेश-चन्द्र मजूमदार के अनुसार यह बयाना, जिसका प्राचीन नाम 'श्रीपथ' था, भरतपुर राज्य के अन्तर्गत था। 'पोस्टल' विभाग की 'डाइरेक्टरी' के अनुसार आज भी बयाना भरतपुर जिले का नगर माना जाता है। इस वंश की वंशावली भाटों के द्वारा ही प्राप्त हुई है जिनमें से कतिपय राजाओं के अस्तित्व की पुष्टि वहाँ के प्राप्त अभिलेखों के आधार पर हुई है। इन अभिलेखों से यह प्रमाणित हो जाता है कि इस वंश का राज्य प्राचीन भरतपुर राज्य एवं मथुरा जिले तक था 'दीज रिकार्ड्स प्रूव दैट द किंग्डम ऑफ दिस डाइनेस्टी कम्प्राइज्ड दि ओल्ड भरतपुर स्टेट ऐण्ड दि मथुरा डिस्ट्रिक्ट' (दि स्ट्रगल फॉर इम्पायर, पृ० ५५)। इसमें से इस वंश के आद्य राजा 'जैतपाल' का समय ग्यारहवीं शताब्दी के आदि में रखा जा सकता है। इसके उत्तराधिकारी विजयपाल का बयाना इंस्क्रिप्शन में वर्णित राजविजय (१०४४ ई०) के साथ ऐक्य स्थापित किया जा सकता है। इसके उत्तराधिकारी ताहनपाल ने बयाना से १४ मील दक्षिण तहनगढ़ नामक स्थान पर एक दुर्ग का निर्माण कराया था। ताहनपाल के उत्तराधिकारी क्रमशः धर्मपाल; कुँवरपाल एवं अजयपाल हुए। मथुरा के निकट प्राप्त महावन प्रशस्ति के अनुसार महाराज अजयपाल ११५० ई० में राज्य कर रहे थे। अजयपाल का पुत्र हरिपाल था जिसके विषय में ११७० ई० का एक अभिलेख महावन में पाया गया है। इसी हरपाल का ही पुत्र सोहपाल था। इसी का उल्लेख सहनपालदेव नाम से एक प्रतिमा अभिलेख (११९२ ई० की), जो भरतपुर राज्य के उदयपुर नामक स्थान पर उपलब्ध हुआ; में मिलता है। इसी का उत्तराधिकारी अनंगपाल हुआ पर कतिपय मुस्लिम ग्रन्थों के आधार पर कुंवरपाल को सहनपालदेव का उत्तराधिकारी मानना पड़ता है। लाजउल-म-आसिर का कथन है कि मुहम्मद गोरी ने थानगढ़ के राय कुंवरपाल को ११९६ ई० में पराजित किया और उसे अपना दुर्ग वहाउद्दीन तुगरिल को सौंप देना पड़ा। इस प्रकार अनंगपाल कुंवरपाल का उत्तराधिकारी हुआ। इसके उत्तराधिकारी क्रमशः पृथ्वीपाल, राजपाल एवं त्रिलोकपाल हुए। अन्तिम राजा त्रिलोकपाल से यह वंश समाप्त हो गया और यह समय तेरहवीं शताब्दी का अन्तिम चरण माना जाता है (मजूमदार, रमेशचन्द्र, स्ट्रगल फॉर इम्पायर, पृ० ५५-५६)।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

इस वर्णन से दो महत्वपूर्ण तथ्य प्रकाश में आते हैं। प्रथम यह है कि सहनपालदेव ११९२ ई० में राज्य करते थे और वे एक यदुवंशी राजा थे। डल्लण का आश्रयदाता राजा यही था। डल्लण चक्रपाणि (१०६० ई०) के पश्चात् हुए, क्योंकि स्वयं डल्लण ने चक्रपाणि के मत को एक स्थल पर नामतः उद्धृत किया है—"पंचमूली महतीति चन्द्रिकाकारः स्वल्पेति चक्रपाणिः" (सु० उ० ४६/१३ पर)। अतएव समय या काल के अनुकूल पड़ने से भी डल्लण का समय बारहवीं शताब्दी का अन्तिम भाग या तेरहवीं शती का प्रथम दशक प्रतीत होता है। जो समय सहनपाल का है, वही इनका भी है। इस विषय पर विशेष विचार काल-निर्णय के प्रसंग में किया जायेगा। द्वितीय तथ्य यह है कि इस यदुवंश का प्राचीन राज्य भरतपुर राज्य एवं मथुरा जिले तक सीमित था। इन सभी तर्कणाओं के आधार पर भादानक या भादालक जनपद से भरतपुर का ही ग्रहण करना युक्ति-युक्त प्रतीत होता है।

भादालक जनपद की सीमा का निर्धारण कर लेने के पश्चात् डल्लण की जन्मभूमि अंकोला के विषय में भी कुछ विचार कर लेना आवश्यक है। डल्लण ने अंकोला की स्थिति मथुरा नगरी के समीप बतलाई है। 'पोस्टल विभाग' की 'डाइरेक्टरी' में अंकोला नामक स्थान का कोई उल्लेख नहीं है पर अकोला नाम के १४ स्थान दृष्टिगत होते हैं। इनमें से एक अकोला आगरा जिले में है तथा दूसरा मध्य प्रदेश के भिण्ड जिले में। आगरा जिले वाला अकोला ही डल्लण का आवास-स्थान या जन्म-भूमि प्रतीत होता है, क्योंकि यह आगरा एवं मथुरा के मध्य में स्थित है। यह अकोला नामक ग्राम अंकोला शब्द का विकृत रूप है।

डल्लण ने अपने को सौरवंशज ब्राह्मण कहा है, जिससे यह प्रतीत होता है कि यह शाकद्वीपीय ब्राह्मण थे। ये ब्राह्मण अपने को सूर्य की सन्तति के रूप में मानते हैं और ये मुख्यतः सूर्य के पूजक रहे हैं। कोणार्क आदि में सूर्य मन्दिर के भग्नावशेष आज भी विद्यमान हैं। प्रारम्भिक मंगलाचरण के पद्य में डल्लण ने सूर्य (सहस्राक्ष), गणेश, गुरु, सरस्वती, माता और पिता की वन्दना की है। यद्यपि सहस्राक्ष से इन्द्र का अर्थ ग्रहण किया जाना चाहिए था पर आचार्य प्रियव्रत शर्मा ने सहस्राक्ष का सूर्य अर्थ (आ० वै० इ०, पृ० २१२) किया है 'सहस्रमक्षीणि नेत्राणि यस्यासौ सहस्राक्षः सहस्रकिरणः' यह व्युत्पत्ति कर इसका अर्थ सूर्य किया जा सकता है। कतिपय पाण्डुलिपियों में सहस्रार पाठ भी मिलता है जो कि इस अर्थ की पुष्टि करता है। शाकद्वीपीय ब्राह्मणों में पौरोहित्य एवं चिकित्सा का कौशल प्राचीन काल से चला आ रहा है। ज्योतिष

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

एवं तन्त्र के क्षेत्र में भी इनकी अभिज्ञता प्रसिद्ध है। डल्हण की टीका में पौरोहित्य-पाटव के अनेक उदाहरण मिलते हैं—

(अ) शिष्योपनयनीय अध्याय (सूत्र २/३ पर) में दार्वीहौमिकविधि का विवरण।

(आ) पुंसवन प्रसंग (श० २/२६-२७ पर) में काम्या इष्टिनिर्वपन का विधान।

(इ) रसायन अध्याय (चि० २७/६ पर) में प्रतिपादित सहस्रसम्पात अभिहुति का विधान।

चिकित्सा-चातुरी का परिचय उनके व्यक्तित्व के अवसर पर दिया जायगा। ज्योतिष-शास्त्रपरक अनेक स्थलों की उन्होंने पाण्डित्यपूर्ण व्याख्या प्रस्तुत की है। एतन्निमित्त निम्नलिखित स्थलों का व्याख्यान द्रष्टव्य है—

सू० ५/४; ६/४, १६; १८, ३२/२, ४५/१८; शा० १/१२, ४/३६। अर्थतान्त्रिक प्रक्रिया के अन्तर्गत उन्होंने कृत्या 'कुपितमन्त्रिणोऽभिचार कर्मजनिता राक्षसी कृत्या' (सू० ५/१४) आदि पदों की सुन्दर व्याख्या की है। उसने शक्तिसंगमतन्त्र का उदाहरण भी दिया है (सू० १३/१२ पर)। यथा—

काम्बोजाद्दक्षभागे तु इन्द्रप्रस्थाच्च पश्चिमे।
पाण्ड्यदेशो महेशानि! महाशूरत्वकारकः॥
(श० सं० तं०; सप्तम पटल)

डल्हण के गुरु

आचार्य प्रियव्रत शर्मा ने अपनी उपर्युक्त कृति (पृ० ३ एवं ४) में डल्हण द्वारा मंगलाचरण श्लोक में पञ्जिकाकार गयदास के साथ उद्धृत भास्कर को डल्हण का गुरु सिद्ध करने का प्रयास किया है। वह साक्षात् अन्तः-साक्ष्य के अभाव में युक्ति-युक्त एवं उचित प्रतीत नहीं होता। डल्हण ने अनेक स्थलों (उत्तर० ३९/३२४; ४०/१८२; ४४/१२४; सू० ४५/४६) में नाम-विहीन अपने गुरु का उल्लेख किया है। शर्मा जी का कथन है कि गुरु का नाम लेना भारतीय परम्परा के विरुद्ध है। अतएव उन्होंने एक ही बार नाम लेकर अन्य स्थलों में गुरुमात्र ही कहा है। यदि भास्कर डल्हण का गुरु होता तो वह मंगलाचरण में पञ्जिकाकार गयदास के साथ भास्कर के पहले गुरुपाद या गुरुचरण ऐसा विशेषण अवश्य देता। चक्रपाणि ने मंगलाचरण में आदर के साथ अपने गुरु (नरदत्त) का नाम चरक की टीका में लिया है। आचार्य शर्मा जी ने अपना मन्तव्य प्रस्तुत करते हुए कहा है कि उनकी सम्मति में देवगिरि के यादववंश में भिल्लम पंचम के राजवैद्य भास्कर ही हैं जो शोढल निघण्टुकार

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

शोढल के पिता तथा संगीत रत्नाकर शाङ्‌र्गदेव के पितामह थे और इन्होंने बोपदेव के पिता केशव को भी पढ़ाया था। जैसा कि केशव के 'सिद्धमन्त्र' के श्लोक से स्पष्ट है—

लेभे जन्म महादेवादायुर्वेदं च भास्करात्।
सम्मानं सिंहराजाच्च केशवः कारकोऽस्य सः॥

अतएव भास्कर को केशव एवं नागार्जुन का समकालीन मानकर डल्हण का गुरु सिद्ध करना सर्वथा अनुपयुक्त प्रतीत होता है क्योंकि उसने मंगलाचरण मात्र में उपन्यस्त भास्कर को गुरु के अनुरूप कोई विशेषण प्रदान नहीं किया।

व्यक्तित्व

किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व का मूल्यांकन उसकी कृतियों पर आधारित होता है। कृतियाँ उसके बहुश्रुतता, वितत अनुभव, कर्माभ्यास, देशाटनशीलता आदि गुणों पर प्रकाश डालती हैं। प्राचीन काल के टीकाकारों के व्यक्तित्व निर्माण में राज्याश्रय का परम महत्व रहा है, क्योंकि जो सुविधा और साधन राजा के संरक्षण में उपलब्ध हो सकते हैं वे अन्यत्र नहीं।

डल्हण के व्यक्तित्व का सृजन उनकी एकमात्र कृति निबन्ध-संग्रह की व्याख्या के आधार पर ही हो सकता है। इनके समकालीन एवं परवर्ती टीकाकारों ने जो भी उद्धरण इनकी टीका से दिए हैं इनसे केवल इनके एकपक्षीय व्यक्तित्व का निर्माण हो पाता है। उनके मौलिक व्यक्तित्व का परिचय उन्हीं के द्वारा प्रस्तुत श्लोक (उत्तरतन्त्र २६वें अध्याय के व्याख्यान के अन्त में) से प्राप्त किया जा सकता है :

सद्बुद्धेः प्रसवः, पदं सुयशः, सद्‌वैद्यवन्द्यः श्रियामावासः
सुकृतिः क्रियासु निपुणः श्री डल्हणाख्यो भिषक्।
श्री भादानकनाथसाहलनृपस्यातीव यो वल्लभः
शास्त्रं तस्य निबन्ध-संग्रह इति ख्यातं धरित्रीतले॥

यहाँ पर उन्होंने अपने को सद्बुद्धि से सम्पन्न, परम-यशस्वी, वैद्यवृन्दारक से सम्मानित, धन-धान्य से सम्पन्न, समस्त शास्त्रों का ज्ञाता एवं कृतिकार, क्रिया-निपुण चिकित्सक एवं भादानक राज्याधिपति श्री साहल राजा का अति-प्रियपात्र बतलाया है। ये इतने संक्षिप्त गुण हैं जो कि उनके विशाल व्यक्तित्व के परिचय में एक प्रकाश-स्तम्भ का कार्य करते हैं। उनकी टीका के अध्ययन से उनके व्यक्तित्व का यथोचित मूल्यांकन किया जा सकता है। प्राचीन काल की यह परिपाटी थी कि आयुर्वेदाध्यायी को पहले से ही व्याकरण, साहित्य,

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

दर्शन, ज्योतिष आदि का ज्ञान कर लेना आवश्यक था; क्योंकि ये आधारभूत विषय आयुर्वेद के रहस्य-भेदन में परम सहायक होते थे। वेद, स्मृति एवं पुराणेतिहास में भी उनका कार्यकारी ज्ञान होता था। देशाटनशील चिकित्सक के लिए तो भूगोल का ज्ञान परम आवश्यक था, जिसके आधार पर वह विविध रोगों एवं वनस्पतियों का परिश्रमपूर्वक ज्ञान प्राप्त करता था और उस अनुभव को अपनी कृतियों में संकलित करता था।

उनके व्यक्तित्व का मूल्यांकन निम्नलिखित मापदण्डों के आधार पर यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है, और वे हैं—

१. वैदिक ज्ञान, २. दार्शनिक ज्ञान, ३. वैयाकरणिक ज्ञान; ४. ज्योतिष-विषयक ज्ञान, ५. धार्मिक ज्ञान, ६. शल्यकर्माभिज्ञता; ७. काय-चिकित्सकता; ८. पर्यटनशीलता एवं ९. भौगोलिक ज्ञान।

ये सभी निर्धारित मानदण्ड डल्हण की बहुश्रुतता एवं उसके विशाल व्यक्तित्व के निर्माण के लिए अति सहायक हैं। इन्हीं शीर्षकों के अन्तर्गत यह सभी सम्बद्ध सामग्री क्रमशः प्रस्तुत की जा रही है।

वैदिक ज्ञान

सुश्रुत ने आयुर्वेदाध्यायी के लिए शिष्योपनयन-दीक्षा का विधान किया है (सु० अ० २)। डल्हण का यह कथन है कि यद्यपि ब्राह्मण आदि का उपनयन संस्कार पहले ही हो जाता है किन्तु आयुर्वेद के अध्ययन के प्रारम्भ में पुनः उपनयन कराना आवश्यक है। इसको स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा है कि जिस प्रकार ऋक्, यजुष् एवं साम (वेद) का अध्ययन करके अथर्ववेद अध्ययन के लिए पुनः व्रत का पालन करना होता है उसी प्रकार धनुर्वेदारम्भवत् आयुर्वेद अध्ययन के लिए यह संस्कार अति आवश्यक है। उसने एकीयमत के आधार पर उपनयन का विशिष्ट अर्थ किया है—"उपनयनमात्मवत्तया अर्थीकरणम्"।

इसी शिष्योपनयन प्रसंग में दार्वी-हौमिक विधि के अनुसार क्षीरि-वृक्षों की समिधाओं से आज्याहुति देने का विधान मूल पाठ में है। डल्हण का कथन है कि यह दार्वी हौमिक विधि वैदिक ब्राह्मणों में प्रसिद्ध है जिसे उन्हीं से जान लेना चाहिए। डल्हण ने महाव्याहृति से "ॐ भूः स्वाहा, भुवः स्वाहा, स्वः स्वाहा; ॐ भूर्भुवः स्वाहा" तात्पर्य लिया है। यह स्वाहा विधान देवता एवं ऋषि के प्रति किया गया है। डल्हण ने देवताओं के अन्तर्गत ब्रह्मा, प्रजापति, अश्विनीकुमार एवं इन्द्र का तथा ऋषियों में धन्वन्तरि, भरद्वाज एवं आत्रेय की गणना की है (सु० सू० २/३ पर)।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

पुंसवन संस्कार में पुत्रीयविधान की चर्चा सुश्रुत ने की है (शा० २/२६, २६)। डल्हण ने पुत्रकाम्येष्टि के विधान को आचार्य गयी के माध्यम से प्रस्तुत किया है—

गयी तु "तत्राचार्यो ब्राह्मणप्रयुक्तोऽनुपहतश्वेतवस्त्रेण संवीतश्चार्षभे चर्मण्युपविष्टो, राजन्यप्रयुक्तो वैयाघ्रे आनडुहे वा, वैश्यप्रयुक्तो रौरवे, शूद्रप्रयुक्तो बास्ते वा, चतुर्हस्तं स्थण्डिलमुपलिप्योल्लिख्य दर्भैरास्तीर्य वेणुयूपं दक्षिणेन ब्रह्माणं व्यवस्थाप्य शुक्लकुसुमगन्धबलिभिरभ्यर्च्याग्निं प्रणीय संस्कृत्य पालाशीभिः समिद्भिरग्निमुपसमाधाय मन्त्रोदकपूर्णपात्रमग्नेरग्रे स्थापयित्वा पुत्रजन्माशास्याज्यं जुहुयान्महाव्याहृतिभिः; योषिच्च पुत्रार्थिनी सह भर्त्रा पश्चिमतोऽग्नेः ऋत्विजो दक्षिणतः समुपविशेत्, ततोऽस्या ब्राह्मणः प्रजापतिमुद्दिश्य यथाभिलषितसम्पादनाय मनसा योनौ काम्यामिष्टिं निर्वपेत्; अनयोर्विष्णुर्योनिं कल्पयतु त्वष्टा रूपाणि निविशत्विति, ततः स्थालीपाकमभिघार्य त्रिर्जुहुयात्, यथाम्नायं चोपमन्त्रितमुदपात्रमस्मै दद्यात्, सर्वानुदकार्थान् कुरुष्वेति, ततः समाप्ते कर्मणि पूर्वं दक्षिणं पादमभिहनन्ती प्रदक्षिणमग्निमुपक्रमेत्, ततः परिक्रम्य ब्राह्मणान् स्वस्ति वाचयित्वा सह भर्त्रा आज्यशेषं प्राश्नीयात्, पूर्वं पुमान्, जघन्यं स्त्री, न चोच्छिष्टमवमेषयेदिति पुत्रीयविधानम् ।"

सर्वौषधातशमनीय रसायन (चि० २७) अध्याय में विडंगतण्डुल चूर्ण रसायन का प्रयोग सहस्रसम्पाताभिहुति करके ही प्रतिपादित है (चि० २७/६)। डल्हण का कथन है कि यह सहस्र सम्पात अध्याय ऋग्वेद का एक अध्याय है जिसके मन्त्रों से सहस्र बार आहुति देकर ही रसायन सेवन का विधान है। इसी सम्पात खण्ड की व्याख्या में उन्होंने अपने पूर्ववर्ती टीकाकारों—जेज्जट एवं गयी को सविचार उद्धृत किया है—

'जेज्जटस्तु, सम्पातशब्देन याज्ञिकानां स्रवणं, तथा ह्याहार्यं संस्कृत्य द्रव्याणि हूयन्ते, हुत्वा हुत्वा च पानीयादिपूर्णपात्रे संस्राव्यन्ते। एतदुक्तं भवति सहस्रसम्पतनं यस्मिन्नभिहुते तत् तथा, तत्कृत्वोपयुञ्जीतेत्यर्थः।'

'गयी तु अथर्वविद्भिः सम्पातक्रमेणौषधधिकारिणा मन्त्रेण त्रिपदा गायत्र्या वा प्राक्तनकर्मक्षयार्थं विघ्नशान्त्यर्थमभिमताशीः प्राप्त्यर्थं वा सहस्राभिहुतं कृत्वा प्रयुज्यन्ते' (सु० चि० २६/६-८ पर)।

मेधायुष्कामीय (चि० २८) अध्याय में सुश्रुत प्रतिपादित श्रीसूक्त के द्वारा पुष्य-नक्षत्र में सहस्राहुति देने के अनन्तर बिल्वचूर्ण-प्राशन प्रसंग में डल्हण अपनी टीका में श्रीसूक्त का सम्यक् परिचय देते हैं—

"श्रीसूक्तमथर्ववेदोक्तां हिरण्यवर्णां हरिणीं सुवर्णरजतस्रजाम्"

(चि० २८/१०)

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

चिकित्सा चतुष्पाद के प्रसंग में वैद्य के बिना शेष तीन पाद उसी प्रकार निरर्थक हैं जिस प्रकार यज्ञ में अध्वर्यु के बिना उद्गाता, होता एवं ब्रह्मा—

"वैद्यहीनास्त्रयः पादा गुणवन्तोऽप्यपार्थकाः।
उद्गातृहोतृब्रह्माणो यथाध्वर्युं विना ध्वरे॥"

(सू० ३४/१६)

यहाँ पर डल्लण ने उद्गाता से सामवित्, होता से ऋग्वेदविद्, ब्रह्मा से त्रयीविद् एवं अध्वर्यु से यजुर्वेदविद् उपाध्याय का अर्थ ग्रहण किया है (सू० ३४/१ पर)।

ये उपर्युक्त स्थल डल्लण के वेदविषयक ज्ञान की ज्ञापता निर्देश करने के पर्याप्त उदाहरण हैं।

दार्शनिक ज्ञान

डल्लण ने दो स्थलों पर भारतीय आस्तिक दर्शनों का नाम लिया है। जिनमें से प्रथम निर्देश अध्ययन प्रभाषणीयाध्याय (सू० ४) में है जहाँ चिकित्सक को अनेक शास्त्रज्ञ एवं बहुश्रुत होना बताया गया है—

"एकशास्त्रमधीयानो न जानीयाच्छास्त्रनिश्चयम्।
तस्माद् बहुश्रुतः शास्त्रं जानीयाच्चिकित्सकः॥"

(सु० सू० ४/६)

अन्य शास्त्रों के व्याख्यान में डल्लण ने अन्य शास्त्रों के साथ सांख्य एवं वैशेषिक का नाम लिया है (सू० ४/६ पर)। द्वितीय निर्देश में उन्होंने 'परतन्त्र' शब्द की व्याख्या के अवसर पर उससे न्याय, वैशेषिक एवं व्याकरण का अभिप्राय ग्रहण किया है। ये प्रसंग सुश्रुत के मेघाकरगण में उपात्त हैं—

"सतताध्ययनं वादः परतन्त्रावलोकनम्।
तद्विद्याचार्यसेवा च बुद्धिमेधाकरो गणः॥"

(सु० चि० २८/२२)

यद्यपि डल्लण ने योग का नाम साक्षात् नहीं लिया है पर योगविषयक सामग्री के अन्तर्गत अष्टविध ऐश्वर्य का उल्लेख कर उसकी प्राप्ति सोम रसायन के सेवन से भी बताई है।

"अष्टविधैश्वर्य यथा······
अणिमा लघिमा प्राप्तिः प्राकाम्यं महिमा तथा
ईशित्वं च वशित्वं च तथा कामावसायिता॥
एतदष्टगुणमैश्वर्यं योगलभ्यमपि सोमरसायनाल्लभ्यते।"

(सु० चि० २९/८, ९)

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

न्याय की परिधि में उन्होंने प्रत्यक्षादि प्रमाणों की सुष्ठु व्याख्या की है (सु० सू० १/१३ पर)। जिसका विशद विवरण सप्तम अध्याय में निहित है। वैशेषिक के अन्तर्गत द्रव्य एवं गुण के निरूपण में उनकी एतद्विषयिणी प्रतिभा देखी जा सकती है (द्रष्टव्य सु० सू० ४० वें अध्याय का व्याख्यान)। द्रव्यों के अन्तर्गत उन्होंने काल की व्याख्या में अपनी दर्शनाभिज्ञता को और भी मुखरित किया है (द्रष्टव्य सू० ६/२ पर काल की विविध निरुक्तियाँ)। डल्हण ईश्वरकृष्ण की सांख्यकारिका से सम्यक् परिचित थे जिसका प्रसंगानुरूप उपयोग उन्होंने शारीरस्थान के प्रथम अध्याय में किया है (प्रकृति एवं पुरुष के साधर्म्य एवं वैधर्म्य के अवसर पर 'तस्मात् तु विपर्यासात्, ; सांख्यकारिका)। यह कारिका डल्हण ने उद्धृत की है 'स्वभावमीश्वरं कालं, (शा० १/१२) की व्याख्या में जो उन्होंने प्रकृति के पर्यायभूत स्वभावादि का निरूपण किया है, वह सर्वथा अप्रतिम है।

वैयाकरणिक ज्ञान

डल्हण ने व्याकरण पद का नाम दो स्थलों पर लिया है—

(अ) सू० ४/५ पर एवं (आ) चि० २८/१९-२२ पर। शब्दों की व्युत्पत्ति एवं निष्पत्ति करने के अवसर पर उनका एतद्विषयक कौशल परखा जा सकता है :

(अ) कालस्य निरुक्तिं कुर्वन्नाह कालः सः सूक्ष्मामपि कलां भागं न लीयते गतिमत्वात् श्लिष्टो न भवति। संकलयति संहरणादेकराशीकरोति भूतानीति वा कालः कालयति संक्षिपतीति वा कालः, अथवा कालयति मृत्युसमीपं नयतीति वा कालः (सु० ६/२ पर)।

(इ) रोगान् शास्तीति, उपवेदोऽपि शास्त्रमुच्यते, आयुरारोग्यदानधर्मार्थकामादीनां शासनात् मरणात् त्रायत इति वा शास्त्रम् (सू० ४/७ पर)।

(ई) अन्ये तु षड् धातुरत्र चतुर्षु अर्थेषुपाठे अथ ज्ञाने कर्मदर्शने आम्नाये वा (सू० १/३० पर)।

१. कसधातुर्गत्यर्थोऽपि विपूर्वो हिंसार्थः (क० २/१५ पर)।

२. केचितु निरशब्दमीषदर्थे व्याख्यानयन्ति (क० ४/३ पर)।

३. केचित् बलीयते बलीयान्, गच्छति इति व्याख्यानयन्ति, ईयते इति, ई धातोर्दिवादिकस्य कर्त्तरिप्रयोगात् (उ० ३९/१५५ पर)।

ज्योतिष-विषयक ज्ञान

शाकद्वीपीय ब्राह्मण होने के कारण यह ज्योतिष-विषयक ज्ञान उन्हें परम्परा

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

से ही प्राप्त था। यही कारण है कि उन्होंने आयुर्वेद के प्रसंग में समुपात्त ज्योतिष-विषयक सामग्री के व्याख्यान में अपने एतद्विषयक पाण्डित्य का परिचय दिया है।

जहाँ तक वैद्य के अन्य शास्त्रज्ञ होने का प्रश्न है वहाँ उन्होंने दर्शन एवं व्याकरण के साथ उसको ज्योतिष-शास्त्र का ज्ञाता होना आवश्यक बतलाया है (सु० सू० ४/५ पर)। तिथि, करण, मुहूर्त एवं नक्षत्रों की उत्तम व्याख्या पर वह उनके प्रशस्तत्व के ज्ञान को ज्योतिषशास्त्रियों से समझ लेने का निर्देश करते हैं (सू० ५/४ पर)। काल के निमेष आदि एक एवं घटकों के प्रसंग में वह ज्योतिष-शास्त्र विषयिणी एक प्रामाणिक सूचना देते हैं :

१. अहोरात्र में षड्विध ऋतु लक्षणता के प्रतिप्राप्ति के अवसर पर वह गोलक गणितविद् ज्योतिर्विद् के दृष्टिकोण को प्रस्तुत करता है।

२. ऋतु-व्यापत् के अतिरिक्त व्याध्युत्पत्ति में अन्य हेतुओं के अन्तर्गत ग्रह एवं नक्षत्रों के संचार की भी गणना सुश्रुत ने की है, और

३. इसकी व्याख्या में डल्हण ने शनैश्चर आदि ग्रहों का निन्दित स्थान में संचालित होना उदाहरण बताया है। एतद्विषयक तथ्यों की पुष्टि अधोलिखित प्रमाणों से की जा सकती है—

(क) "ननु लध्वक्षरोच्चारणादिना निमेषादयो विभज्यन्ते तत् कथं भगवान् आदित्यो गतिविशेषेण निमेषादीनां विभागं करोतीत्युक्तम् ? नैष दोषः यतो ज्योतिषिका निमेषादिप्रविभागेण शंकुच्छायामागमोक्तामर्कगत्यापि प्रमाणयन्ति" (सु० सू० ६/४ पर)।

(ख) तत्रेति अहोरात्रे। शारदमर्धरात्र इति भूगोलार्धः स्थितसूर्यत्वादर्धरात्रे शारदं लिंगमातपाभावेऽपि गोलकं गणितविदो मन्यन्ते, भिषजस्तु कालस्वभावादाहारवशाच्च इति (सु० सू० ६/१६ पर)।

(ग) शनैश्चरादीनां गर्हितस्थानस्थितानां प्रचारो ग्रहचरितम्।······ (सु० सू० ६/१८)।

अश्विनी आदि नक्षत्रों में यदि उल्कापात हो जाए तो जन्म के नक्षत्र का अभिहनन हो जाता है। डल्हण ने उसी गगनाम्बु को सेव्य माना है जिसका संग्रह अगस्त्य नक्षत्र के उदय पर किया गया है (सू० ४५/१८ पर)। प्रकृति के पर्यायभूत काल की विवेचना में उन्होंने दशम शताब्दी के प्रसिद्ध ज्योतिर्विद् श्रीपति को उनके ज्योतिष रत्नमाला के कालस्तुतिपरक एक श्लोक के साथ उद्धृत किया है "प्रभवविरतिमध्यज्ञानवन्ध्या नितान्तं विदितपरमतत्वा यत्र ते योगिनोऽपि। तमहमिह निमित्तं विश्वजन्मात्ययानामनुमितमितमभिवन्दे प्रग्रहैः

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

कालमीशम्" (सू० सू० 1/12 पर)। काल के घटकों में उन्होंने मुहूर्त्त से दो घड़ी अर्थ लिया है (शा० 4/36 पर)। स्वभावव्याधिप्रतिषेधीय (चि० 29) अध्याय में सोम का उपयोग प्रशस्त तिथि, करण, मुहूर्त एवं नक्षत्र में करने का विधान है। डल्हण ने इन सबकी प्रशस्तता का उदाहरण दिया है—

"प्रशस्ता: तिथयो नन्दादयो रिक्तावर्ज्या करणानि: खादीनि, मुहूर्ता: शिवादय:, नक्षत्राणि पुष्यहस्ताविनीश्रवणादीनि" (सु० चि० 29/5 पर)।

धार्मिक ज्ञान

जहाँ तक डल्हण के वैयक्तिक धर्म का प्रश्न है वह सूर्य उपासक वैदिक मतानुयायी ब्राह्मण था और साथ ही वह गणेश एवं सरस्वती का भी आराधक था, ऐसा उसके मंगलाचरण के श्लोक से प्रतीत होता है—

"सहस्राक्षं गणाधीशं स्वगुरुं च सरस्वतीम्।
जनकं जनयित्रीं च शास्त्रादौ प्रणमाम्यहम्॥"

उसके काल में उस क्षेत्र में शैव एवं पाशुपत मतावलम्बी भी थे (सु० सू० 29/5 पर)। बौद्ध धर्म क्षीणावस्था में था। अन्धपूतना के प्रतिबन्ध के लिए जीर्ण भिक्षुसंघाटी के धूपन का विधान सुश्रुत (उ० 33/1-2) में आया है और डल्हण ने भिक्षु से शाक्यभिक्षु अर्थ लिया है जो बौद्धधर्माभिषिक्त भिक्षु का परिचायक है।

शल्यकर्माभिज्ञता

प्राय: वैद्य समाज में यह प्रवाद प्रचलित है कि सुश्रुत जैसे शल्यप्रधान ग्रन्थ के टीकाकार डल्हण में शल्यकर्माभिज्ञता का लवमात्र भी सन्निवेश नहीं है पर यह धारणा सर्वथा त्याज्य है; क्योंकि एतद्विषयिणी कर्म-प्रज्ञा उसकी टीका में पदे-पदे प्रतिबिम्बित होती दृष्टिगत होती है।

शल्य-ज्ञान का आधार शारीर-शास्त्र होता है। जब तक शल्यकर्मविद् को शारीर-शास्त्र का सम्यक् ज्ञान न हो तब तक वह शरीर के किसी अंग पर शल्य कर्म नहीं कर सकता। डल्हण की शारीर-विषयक अभिज्ञता का परिचय सप्तम अध्याय में पाया जा सकता है, जहाँ पर उन्होंने अनेक विवादग्रस्त अंगों और अवयवों के परिचय में अपनी तज्ज्ञता प्रदर्शित की है। अतएव उसका उल्लेख यहाँ करना पिष्टपेषण होगा।

सुश्रुत ने मूढगर्भ, उदर, अर्श, अश्मरी, भगन्दर और मुख रोगों में बिना भोजन के ही शस्त्रकर्म का विधान किया है। इसके औचित्य का पर्यवेक्षण

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

डल्हण ने इस प्रकार किया है—मूढगर्भादि ५ रोगों में यदि कोष्ठ आहार से परिपूर्ण रहे तो रोगों को यन्त्र-प्रणिधान से कष्ट हो सकता है और ऐसी भी सम्भावना है कि मृत्यु भी हो जाए। इतना ही नहीं; अपितु वायु का प्रकोप भी हो जाता है। ठीक इसी प्रकार मुख रोग आदि में अंगुल्यादि के पीडन से आहार बाहर निकल कर शस्त्रकर्म करने में बाधा पहुंचा सकता है (सू०५/१२ पर)। शस्त्रावचारण के अनन्तर जब व्रण को कषाय से प्रक्षालित करके उस पर औषधयुक्त वर्ति प्रणिहित की जाती है और तब उसके पश्चात् उस पर एक घनी कवलिका देकर वस्त्रपट्ट से बांधने का विधान है। इस स्थल पर डल्हण ने अपने इस ज्ञान को अनेक प्रकार से प्रदर्शित किया है। उनका कथन है कि सद्योव्रण विहित विधि से कषाय द्वारा प्रक्षालन सात दिन तक करना चाहिए और उसके अनन्तर स्व-स्व दोषहर औषध सिद्ध कषायों के द्वारा। डल्हण ने कवलिका शब्द का अर्थ—"व्रणकल्कौषधाच्छादनद्रव्यम्" स चौषधस्वरसानां निस्सरण निवारणार्थं भग्नोक्तपलाशोदुम्बरादीनां त्वक्पत्रादिकृता"—इस प्रकार किया है और एकीय मत के माध्यम से इस कवलिका को द्विगुण और चतुर्गुण मृदु कपड़े से विरचित माना है। आधुनिक भाषा में यह कवलिका 'गॉज़' है जो कि व्रण-शोधन के अनन्तर औषधि से आर्द्रकर उस पर रखी जाती है (सू० ५/१३ पर)।

शल्यकर्म करने वाले चिकित्सक को यन्त्र और शस्त्र का अच्छा परिचय होना चाहिए। सुश्रुत ने शल्याहरण में प्रयुक्त होने वाले यन्त्र छः प्रकार के बताए हैं, उनमें से २४ भेदों वाला स्वस्तिक यन्त्र भी है। उसने इस यन्त्र की रचना पर विशेष प्रकाश डाला है—"स्वस्तिकं चतुरङ्गुलं पिष्टघटितं; तदाकृतीनि चतुरवयवानि स्वस्तिकयन्त्राण्युच्यन्ते।" सुश्रुत ने यन्त्रों का निर्माण दृढ़ता के दृष्टिकोण से लौह से बताया है और उसके न प्राप्त होने पर उसी के प्रतिरूप वाले अन्य किसी धातु से निर्मित ग्रहण करने का विधान किया है। डल्हण ने 'तदलाभे' अर्थात् उसके प्राप्त न होने पर इस पद के व्याख्यान में लौह के अभाव में दन्त, शृंग एवं काष्ठ (दारु) के द्वारा यन्त्रों का निर्माण कर लेने को कहा है। इतना ही नहीं अपितु लौह, वेणु, वृक्ष, सूत्र, शृंग, वल्कल, तृण, स्नायुप्रतान एवं पत्थर इनसे भी यन्त्रों के निर्माण का विधान बतलाया है (सू० ७/४ पर)। स्रोतोगत शल्यों के उद्धरणार्थ अनेक प्रकार के एवं अनेक प्रयोजन वाले एकतोमुख तथा उभयतोमुख वाले नाड़ी यन्त्रों के प्रयोग का विधान डल्हण ने किया है। ये नाड़ी-यन्त्र रोगदर्शन, आचूषण एवं क्रिया-सौकर्यार्थ भी प्रयुक्त होते थे। डल्हण ने आचूषणार्थ इनके प्रयोग का एक अनुभवपरक उदाहरण दिया है—"लाक्षाशल्ये कण्ठासक्ते मुखे

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

नाडीं दत्वा तप्तया लोहशलाकया आकर्षयेदित्यादिकम्" (सु० ७/६ पर)। शलाकायन्त्र के अन्तर्गत गण्डूपद मुख वाले यन्त्रों के एषण, व्यूहन एवं चालन कर्म बतलाए गए हैं। इनमें से डल्लण ने एषण और व्यूहन की उत्तम शल्य-परक व्याख्या की है—"एषणं गम्भीरपाकादौ, व्यूहनम् ऊर्ध्वीकरणं छित्वा उत्तुण्डितस्य उद्धरणार्थम्"। एकीय मत के अनुसार व्यूहन का अर्थ वारंग या 'हैण्डिल' द्वारा व्रण के पथ का अनुसरण करना है (सू० ८/१० पर)। ये दोनों कर्म क्रमशः 'प्रोबिंग' एवं 'एक्सीजन' के परिचायक हैं। मूलपाठ में जो भी कर्म बतलाए गए हैं उनकी व्याख्या डल्लण और चक्रपाणि (भानु० में) दोनों ने की है—

निर्घातन—निर्घातनं इतश्चेतश्च विचाल्यनिर्हरणं इतश्चेतश्च घट्टनमित्येके (डल्लण)। पूर्ववत् (चक्रपाणि)।

पूरण—पूरणं बस्तिनेत्रप्रभृतिभिस्तैलादिना (डल्लण)। पूर्ववत् (चक्रपाणि)।

वर्तन—वर्तनं विवृत्तस्य वर्तुलीकरणम् (डल्लण)। पूर्ववत् (चक्रपाणि)।

चालन—चालनं स्थानात् स्थान्तरनयनम् (अन्ये शल्यकम्पनमाहुः) डल्लण।

विवर्तन—कर्णवायोर्निष्कासयितुमिष्टस्य कर्णलग्नस्य पुनर्निवर्तनम्। अन्ये यन्त्रस्य भ्रामणमन्तरे वा (डल्लण)। निवर्तनं कर्णलग्नावयवमोक्षार्थं पार्श्वान्तिर-नयनम् (चक्रपाणि)।

विवरण—विवरणं प्रकाशनम्, मांसच्छेदात्रकाशदानेन विवरणमित्येके, विवरणं प्रसारणं लक्ष्मणटिप्पणीकारेणोक्तम् (डल्लण)। विवरणं प्रकाशनं, विवरणमितिपाठपक्षे शल्यापहरणे क्रियमाणेऽस्थ्यादेः प्रकृतिभूतस्य निर्गच्छतः प्रतिबन्धो विवरणम् (चक्रपाणि)।

पीडन—पीडनं व्रणस्य पूयादिनिर्गमनार्थमङ्गुल्यादिना (डल्लण)। पूर्ववत् (चक्रपाणि)।

मार्गविशोधन—मार्गविशोधनं पुरीषसङ्गे (डल्लण)। मार्गशोधनं मूत्रादिसङ्गे शलाकाप्रणयनादिना ज्ञेयम् (चक्रपाणि)।

विकर्षणम्—विगृह्य कर्षणम्, अन्ये मांसादिप्रतिबद्धशल्यस्य मोचनमाहुः (डल्लण)। पूर्ववत् (चक्रपाणि)।

आहरण—आनयनम् (डल्लण)। अनवबद्धस्य अग्रेनयनम् (चक्रपाणि)।

आञ्छन—आञ्छनमीषदमुखानयनम् ईषन्मुखे आनयनमित्यर्थ (डल्लण)। कुञ्चितस्याङ्गुल्यादेरायामनम् (चक्रपाणि)।

उन्नामन—उन्नामनम् अधः स्थितस्य शिरः कर्णादेरुद्ध्र्वनयनम् (डल्लण)। उन्नमनं ऊर्ध्वनयनम् (चक्रपाणि)।

विनमन—निम्नीकरणम् (डल्लण)। पूर्ववत् (चक्रपाणि)।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

भञ्जन—भञ्जनं शिरः कर्णादेरामर्दनम् समन्ततो मर्दनमिमत्यन्ये (डल्लण)। शल्यकर्मादेः मर्दनम् (चक्रपाणि)।

उन्मथन—उन्मथनं प्रनष्टस्य शल्यस्य मार्गे शलाकादिभिरालोडनम् (डल्लण)। पूर्ववत् (चक्रपाणि)।

आचूषण—आचूषणं विषदुष्टस्तन्यरुधिरेषु शृङ्गालावुभ्यां मुखेन वा (डल्लण)। पूर्ववत् (चक्रपाणि)।

एषण—गण्डूपदमुखेन गतिव्रणोत्संगशल्यादीनाम् (डल्लण)। पूर्ववत् (चक्रपाणि)।

दारण—दारणं शिरः कर्णाद्विधाकरणम् (डल्लण)। पूर्ववत् (चकपाणि)।

ऋजूकरण—ऋजूकरणं कुटिलस्य (डल्लण)। चक्रपाणि ने भानुमती में इस पद को मूलपाठ में स्वीकार नहीं किया है।

प्रधमन—प्रधमनं श्लेष्मशल्यसङ्गे नासिकायां नाड्या चूर्णक्षेपनम् (डल्लण)। पूर्ववत् (चक्रपाणि)।

प्रमार्जन—प्रमार्जनं प्रोञ्छनम् वालाङ्गुलिवस्त्रैरक्षिरजः शल्यादिषु (डल्लण)।

डल्लण ने शल्यकर्म में प्रयुक्त होने वाले २० प्रकार के शस्त्रों के विषय में भोजतन्त्र के उद्धरणों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया है जिनसे उनके आकार-प्रकार पर विशेष प्रकाश पड़ता है। चक्रपाणि ने भानुमती में इस स्थल पर भोज के अतिरिक्त भालुकितन्त्र से सम्बद्ध सन्दर्भों को भी उद्धृत किया है। पायना के विषय में डल्लण ने कुछ विशेष प्रकाश डाला है। यह एक प्रकार की 'टेम्परिंग' है जो कि शस्त्र को तपाकर क्षार, उदक और तैल में विविध प्रकार के शल्यों के छेदन, भेदन, पाटन और शिरावेधन के लिए प्रयुक्त होती थी। डल्लण का कथन है कि यह पायना विधि 'पातुं प्रयोजना' लोहारों में अति प्रसिद्ध है और इनके द्वारा निर्दिष्ट एकीय मतानुसार कुछ लोग इस क्षार-तैल पायना को अनार्ष मानते हैं।

क्षारपाक विधि (सू० ११) वाले अध्याय में इन्होंने 'क्षणनात् क्षणनाद् वा क्षारः' इस सुश्रुतोक्त व्युत्पति की विशद् व्याख्या की है। क्षरणात् दुष्ट-त्वङ्मांसादिपातनात् शातनादित्यर्थ. अन्ये तु क्षरणात् दोषाणां चा नात क्षणनात त्वङ्मांसादिहिसनात् क्षरणादित्यत्र क्षपणादिति केचित् पठन्ति। क्षपणं शोध-नभिप्रेतम' (सू० ११/१-२ पर)।

इसी प्रसंग में डल्हण का एकीय मत के माध्यम से कथन है कि शुद्ध व्रण का स्वयं रोहण होता है। शुद्ध व्रण में शिरादि के क्षणन के भय से क्षार के अवचारणा की आवश्यकता नहीं पड़ती। अतः क्षार परम्परया रोपण ही है

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

(सूत्र ११/३ पर)। अग्निदग्ध होने पर उष्णोपचार के औचित्य (सू० १२/१५ पर) का समर्थन युक्तियों से करता हुआ डल्हण पुनः कहता है कि शीतोपचार से दग्ध स्थान का शोणित अत्यन्त स्कन्दित हो जाता है और रक्त के स्त्यान हो जाने से मार्ग अवरुद्ध हो जाता है जिसके कारण ऊष्मा के न मिलने पर प्लुष्ट स्थान में शूल, शोफ एवं लालिमा के साथ वेदना हो जाती है अतएव शीत-क्रिया सुखकारी नहीं होती। ऊष्ण क्रिया रक्त को विलयन करने वाली होती है और ऊष्मा के निस्सरण से वातानुलोमन हो जाने पर अत्यन्त सुख मिलता है (सू० १२/१५ पर)। इसके अतिरिक्त अश्मरी (चि० ७) एवं भगन्दर (चि० ८) के शल्यकर्म में भी इन्होंने अपने शल्यकर्म-पाटव को अभिव्यक्त किया है।

काय-चिकित्सकता

षड्विध रोग परीक्षण (सू० १०/५) में पंचविध श्रोत्रादि इन्द्रियों एवं प्रश्न का समावेश होता है। ज्ञानेन्द्रियों से परीक्ष्य विषयों के उदाहरण को अति विस्तृत रूप से देकर डल्हण ने अपने रोग-विषयक ज्ञान को प्रदर्शित किया है—

"व्रणे सशब्दफेनरक्तानिलादिनिर्गमनं श्रवणेन्द्रियग्राह्यं, पारुष्यरौक्ष्यादिकं त्वगिन्द्रियग्राह्यं, भस्मकपोतास्थिसवर्णत्वं दर्शनेन्द्रियग्राह्यं, कटुगन्धलाजगन्धादित्वं घ्राणेन्द्रियग्राह्यं, कषायरसादित्वं रसनेन्द्रियग्राह्यं, तोदनभेदनादिविशेषाः प्रश्नग्राह्याः, पित्तसदृशेषु विज्ञानाभ्युपायेषु व्रणादीनामौष्ण्यं त्वगिन्द्रियग्राह्यम्, नीलपीतवर्णत्वं दर्शनेन्द्रियग्राह्यं, कट्वम्लरसत्वं रसनेन्द्रियग्राह्यं, तीक्ष्णातसीगन्धत्वं घ्राणेन्द्रियग्राह्यम्, ओषचोषपरिदाहादिकाः वेदनाविशेषाः प्रश्नग्राह्याः। श्लेष्मसदृशेषु विज्ञानाभ्युपायेषु स्निग्धपैच्छिल्यादिकं त्वगिन्द्रियग्राह्यं, श्वेतत्वं चक्षुरिन्द्रियग्राह्यं, माधुर्यादि रसनेन्द्रियग्राह्यं, विस्रगन्धादित्वं घ्राणेन्द्रियग्राह्यम्, कण्डूगुरुत्वादिवेदना विशेषाः प्रश्नग्राह्या इति।" (सू० १०/४ पर)

आर्तव-क्षय की चिकित्सा में सुश्रुत ने संशोधन का विधान किया है पर संशोधन से क्या ग्रहण किया जाए—इसका समाधान डल्हण ने एक उत्तम चिकित्सक होने के नाते दिया है। उनका कथन है कि यद्यपि वमन एवं विरेचन दोनों इसके अन्तर्गत आते हैं पर यहाँ पर वमन कराना ही उचित होगा न कि विरेचन, क्योंकि विरेचन के द्वारा पित्त-क्षय हो जाने से आर्तव का क्षय हो जायगा किन्तु वमन से सौम्य धातु के निर्हरण हो जाने से आग्नेय धातु की वृद्धि होगी और उससे आर्तव का आप्यायन होगा (सू० १५/१२ पर)। चिकित्सा का एक पक्ष औषध-निर्माण भी है और उसने यह चातुरी अपतानक चिकित्सा (चि० ५/२५) के प्रसंग में प्रदर्शित की है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

लौकिक ज्ञानपटुता

डल्हण ने साहित्य का भी अच्छा ज्ञान प्राप्त किया था। 'हास' की आयुर्वेदिक व्याख्या—"हसनं हासो विकृताङ्गवचः कृत्यजातस्य" कर वह हास्य रस के स्थायी भाव—अंग, कपोल, नासा, ओष्ठ आदि के स्पन्दन को व्यक्त करता है (सू० २६/६ पर)। उनका कामशास्त्र विषयक ज्ञान भी प्रौढ़ था। शूकदोष के निदान में भी उन्होंने कामतन्त्राचार्य के मत को उपस्थित किया है (नि० १४/३ पर)। रक्तवह (आर्तव) स्रोतस् के व्याख्यान में उन्होंने स्मरातपत्र (निम्फी) का उल्लेख किया है (शा० ५/६ पर) और उनका यह शब्द 'रतिरहस्य' के श्लोक पर आधारित है, जिसको उन्होंने स्वयं उद्धृत किया है। आतुरोपक्रमणीय अध्याय (सूत्र ३५) में उन्होंने प्रत्यंग-प्रमापन के प्रसंग में सुश्रुत द्वारा निर्दिष्ट द्वादशाङ्गुल भग के परिणाह को कामशास्त्रोक्त हस्तिनी जाति की स्त्रियों के लिए बतलाया है (सूत्र ३५/८ पर)। वह बंग (सू० २३/६), अपभ्रंश (सू० २५/८), हिन्दी एवं देशीय भाषा (सू० ३६/१२) का अच्छा ज्ञाता था।

पर्यटनशीलता

शोध-प्रबन्ध के पंचम अध्यायान्तर्गत भौगोलिक सामग्री के आधार पर डल्हण को आयुर्वेद के सभी टीकाकारों में अति पर्यटनपटु के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है।

वह यद्यपि मध्य प्रदेश के निवासी थे पर ओषधियों के परिचय में उन्होंने भ्रमणार्थ अपनी सारी शक्ति लगा दी थी। पूर्व में उन्हें आसाम (कामरूप) तक (सू० ४६/१४२) तथा पश्चिम में उन्हें अफगानिस्तान (काम्बोज सू० १३/१५ पर) किं वा टर्की (तुरुष—१३/१५ पर) तक भ्रमण करने का अवसर मिला था। पूर्वापथ या पूर्वदिश में होने वाले विभिन्न ओषधियों एवं प्राणियों का उन्होंने सर्वाधिक परिचय दिया है। पूर्वी बंगाल (गौड़देश), दक्षिणी, उत्तरी एवं पूर्वी बिहार प्रान्त (पौण्ड्र, मगध) से वह सम्यक् परिचित थे। वाराणसी के निकट बड़ागांव (बड़तर) को वह अच्छी तरह जानता था। पश्चिमी प्रदेश के अन्तर्गत वह मालवा, गुजरात, मरुभूमि, रुहेलखण्ड (पांचाल) एवं पंजाब से परिचित था। उत्तरापथ का पर्यटन उसने अनेक बार किया था तो वह कश्मीर, उत्तर कुरु आदि का नाम लेता है। नेपाल एवं चीन देश से आने वाली औषध-धातु मनःशिला एवं कौषेय वस्त्र का उसे ज्ञान था। दक्षिणापथ के पाण्ड्य एवं पल्लव प्रदेशों का भ्रमण उसके द्वारा हुआ था। चम्बल (चर्मण्वती) नदी के तट पर उसे अनेकों बार घूमने का अवसर मिला था क्योंकि यह नदी उसके

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

आश्रयदाता के राज्य में बहती थी। वह नर्मदा, शोण एवं ताप्ती के उद्गम को जानता था। सरयू एवं सिन्धु नदी के तट पर मिलने वाली ओषधियाँ उसे ज्ञात थीं। चम्बल में मिलने वाली बनास (पर्णाश) नदी को भी वह जानता था। हिमालय, विन्ध्य, मलय आदि सभी पर्वत उसे ज्ञात थे तथा भारत के तीनों समुद्रों के तट का उसने भ्रमण भी किया था।

ऐसा विशाल व्यक्तित्व वाला विद्वान् एवं कुशल चिकित्सक डल्हण किस प्रतिभा का मानव था—यह पूर्णतया स्पष्ट हो जाता है।

काल-निर्णय

डल्हण का काल-निर्णय पूर्णतया अन्तः-साक्ष्यों पर आधारित है। बाह्य साक्ष्यों के रूप में असाक्षात् रूप से बयाना के यादवों की वंशावली, जिसका उल्लेख इसी अध्याय में डल्हण के परिचय प्रसंग में दिया जा चुका है; सहायक है। डल्हण की टीका में उद्धृत सभी स्रोत को आयुर्वेदीय एवं अनायुर्वेदीय या इतर इन दो रूपों में विभक्त कर सकते हैं क्योंकि जो भी उद्धृत ग्रन्थ या व्यक्ति होंगे उसके पश्चात् ही डल्हण की स्थिति मानी जाएगी। उसके अतिरिक्त यह जिसके द्वारा उद्धृत हैं उसके आधार पर भी काल-निर्णय में सहायता मिलेगी। उसने जिन-जिन प्रान्तीय भाषाओं—बंग, हिन्दी भाषा, देशी भाषा आदि का नाम लिया है वे भी इस निमित्त परम उपयोगी सिद्ध होंगे।

आयुर्वेदीय स्रोत के अन्तर्गत डल्हण ने नामतः सांख्यकारिका (चौथी शताब्दी); अमरकोष (छठीं शताब्दी), वात्स्यायन कामसूत्र (छठीं शताब्दी); रतिरहस्य (नवीं शताब्दी), श्रीपति की ज्योतिष-रत्नमाला (दसवीं शताब्दी), शक्तिसंगम तन्त्र (ग्यारहवीं शताब्दी) एवं मेदिनीकोष (ग्यारहवीं शताब्दी) को उद्धृत किया है।

आयुर्वेदीय स्रोत के आभ्यन्तर ग्रन्थों की एक बृहत् सूची है जो स्थान-स्थान पर डल्हण द्वारा विशेष स्पष्टीकरणार्थ समुद्धृत है। डल्हण ने अपने से पूर्ववर्ती जेज्जट, सुधीर, अमितप्रभ और माधव को उद्धृत किया है। ये सभी सुश्रुत के टीकाकार हैं जो कि नवम शतक में हुए। इनमें से वह जेज्जट को अति सम्मानित टीकाकार के रूप में मानता है और कहता है कि उपर्युक्त टीका कुशाग्रधी पाठकों के द्वारा ही अधिगम्य थी। अतएव अत्यल्पमेधस् जनों के लिए इस टीका पर मेरी टीका आधारित है। इसी जेज्जट ने बृहत् एवं लघुपंजिका दोनों लिखी हैं (स० ४५/१४०)। इसी प्रसंग में उसने माधव को टिप्पणकार माना है जो कि सुश्रुत-श्लोक-वार्तिक का रचयिता था। दशम शताब्दी के चिकित्सा-कलिका के टीकाकार एवं तीसट के पुत्र चन्द्रट ने सुवीर का उल्लेख

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

किया है। निश्चलकर ने अमितप्रभ को चक्रपाणि (१०६० ई०) से पूर्व का माना है। डल्हण ने माधव के साथ ब्रह्मदेव को टिप्पणकार के रूप में स्वीकार किया है। चन्द्रट ने जेज्जट की टीका के आधार पर सुश्रुत की पाठशुद्धि की है ऐसा उनका कथन है। डल्हण ने चन्द्रिका टीका का उल्लेख चक्रपाणि के नाम के साथ किया है (उ० ४६/१३) जो कि चन्द्रनन्दन की पर्यार्थचन्द्रिका प्रतीत होती है। अतः जो समय चक्रपाणि का है वही या इससे कुछ पूर्व इनका है और ये तीनों व्यक्ति दशम शताब्दी के हैं।

गयदास एवं भास्कर को डल्हण ने पंजिकाकार के रूप में व्याख्या के आरम्भ में ही स्मरण किया है। गयदास महीपाल प्रथम का राजवैद्य (अन्तरंग) था। सुश्रुत पर इसकी न्याय-चन्द्रिका-पंजिका टीका थी जो कि सम्प्रति निदान-स्थान तक ही उपलब्ध है। भास्करभट्ट का भी समय ग्यारहवीं शताब्दी है। चक्रपाणि (उत्तर० ४६/१३ पर) डल्हण द्वारा एक बार उद्धृत हैं और उनका समय १०६० ई० सुनिर्णीत है। इस प्रकार सुकीर, सुवीर, सुधीर, नन्दि आदि टीकाकार स्वतः डल्हण द्वारा अभिहित (कल्प० ८/३, उ० ५०/२६ पर) हैं और ये सभी ११वीं शताब्दी के माने गये हैं। कार्तिक कुण्ड भी इसी शताब्दी के हैं, जो डल्हण द्वारा एकाध स्थल पर उद्धृत हैं। 'लक्ष्मण टिप्पणक' एवं 'गूढपदभंग टिप्पण' भी इसी काल की कृतियाँ हैं जिन्हें डल्हण ने यथास्थान उद्धृत किया है।

जहाँ एक ओर डल्हण ग्यारहवीं शताब्दी के टीकाकारों को उद्धृत करता है वहाँ वह दूसरी ओर हेमाद्रि के द्वारा एक बार उद्धृत (अ० हृ० सू० ७/४० पर) है। यह हेमाद्रि कामदेव के पुत्र और देवगिरि के राजा महादेव (१२६०-१२७१ ई०) तथा रामचन्द्र (१२७१ से १३०६ ई०) के श्री करणाधिप और प्रधानामात्य थे। अतः इनका काल तेरहवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध और चौदहवीं शताब्दी का आरम्भ है। इस प्रकार ग्यारहवीं शताब्दी के टीकाकारों को अपनी टीका में उद्धृत करने एवं स्वयं तेरहवीं शताब्दी के टीकाकार हेमाद्रि द्वारा उद्धृत होने के कारण डल्हण बारहवीं शताब्दी के व्यक्ति सिद्ध होते हैं। अनायुर्वेदीय साहित्य के अन्तर्गत दशम शताब्दी के ज्योतिर्विद श्रीपति ग्यारहवीं के मेदिनीकोष एवं शक्ति संगमतन्त्र को उद्धृत करने के कारण ये ठीक इसके परवर्ती प्रतीत होते हैं और इन्हें बड़ी सरलता से बारहवीं शताब्दी में रखा जा सकता है।

डल्हण के काल को और भी ऐतिहासिक साक्ष्य के आधार पर स्थिर किया

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

जा सकता है और वह है बयाना के यादवों की वंशावली; जिसकी चर्चा प्रारम्भ में की जा चुकी है। इसकी वंशावली इस प्रकार है :

बयाना (श्री पथ) के यादव राजाओं का वंशवृक्ष

जेतपाल (११ वीं शताब्दी का मध्य)
|
विजयपाल (१०४४ ई०)
|
तहनपाल
|
धर्मपाल
|
कुँवरपाल
|
अजयपाल (११५० ई०)
|
हरिपाल (११७० ई०)
|
सोहनपाल या सहनपालदेव (११६२ ई०)
|
अनंगपाल
|
पृथ्वीपाल
|
राजपाल
|
त्रिलोकपाल

इस वंशावली में अभिलेखों के आधार पर सहनपालदेव का समय ११६२ ई० बताया गया है और इनके पिता हरिपाल का समय ११७० ई० है। इसी सहनपाल देव राजा के आश्रित होने के कारण और उसके समय सुनिश्चित होने से डल्लण भी उनके समकालीन प्रतोत होते हैं। इस प्रकार उनका समय बारहवीं शताब्दी का अन्तिम चरण या तेरहवीं शताब्दी का प्रथम दशक प्रतीत होता है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

डल्लण ने अपनी टीका में बंग भाषा के साथ-साथ हिन्दी एवं देशी भाषा का भी नाम लिया है। चन्दबरदाई के पृथ्वीराज रासो को हिन्दी का आद्यकाव्य माना जाता है। चन्दबरदाई पृथ्वीराज तृतीय के आश्रित होने के कारण बारहवीं शताब्दी के कवि हैं। भाषा शब्द का प्रयोग अपभ्रंश भाषा के लिए आया है जो कि हिन्दी का पूर्वतन रूप है। हेमचन्द्र (१००० ई०) अपभ्रंश भाषा के कवि हुए हैं और उन्होंने 'देशी भाषा कोष' भी लिखा है। अतः टीका में देशी भाषा (सू० ३६/१२) शब्द के प्रयोग से भी इसका समय १०वीं एवं ११वीं तथा १२वीं के पश्चात् या समकालिक मानना पड़ता है।

आधुनिक लेखकों में महामहोपाध्याय कविराज गणनाथ सेन (उपोद्घात: प्रत्यक्ष शारीर एवं भानुमती टीका) एवं डॉ० ओ० पी० जग्गी (हि० सा० टे० इ०) डल्लण को १० वीं शताब्दी का मानते हैं और डॉ० श्री कण्ठमूर्ति (न्यू० ई० मे०) ने ११ वीं शताब्दी का माना है। डॉ० जग्गी ने बिना किसी विचारणा के डल्लण को चक्रपाणि से पूर्व का मान लिया है। सम्भवतः इन्हें डल्लण की टीका में उपन्यस्त चक्रपाणि के नाम का सन्दर्भ दृष्टिगत न हुआ हो। इन सभी मतों की विचारणा पूर्वोक्त सामग्री के आधार पर खण्डित हो जाती है जिसका निदर्शन कालक्रमानुसार पहले प्रस्तुत किया जा चुका है। अतः निष्कर्ष के रूप में यह सप्रमाण उद्घोषित किया जा सकता है कि डल्लण १२ वीं शताब्दी के अन्त में हुए।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

द्वितीय अध्याय

उद्धृत ग्रन्थ एवं टीकाओं का संकर्तृक परिचय

आयुर्वेदीय ग्रन्थ एवं आचार्य

प्राचीन टीकायें अपने से पूर्ववर्ती अनेक आचार्यों एवं उनकी कृतियों का ससन्दर्भ निर्देश करती हैं। डल्लण की निबन्ध-संग्रह-व्याख्या ने इस परम्परा का अक्षुण्ण निर्वाह किया है। डल्लण की इस व्याख्या में आयुर्वेद एवं तदितर वाङ्मय के अनेक ग्रन्थों के नामाभिधानपूर्वक सन्दर्भ दृष्टिगत होते हैं।

आयुर्वेदीय संहिताओं के अन्तर्गत डल्लण ने चरक, वृद्ध-सुश्रुत, भेल, काश्यप, हारीत, पुष्कलावत, अष्टाङ्ग-संग्रह एवं अष्टाङ्ग-हृदय आदि सभी संहिताओं का तत्तद्विषय-निरूपण के प्रसंग में चर्चा की है। आयुर्वेदेतर साहित्य की परिधि में वैदिक वाङमय सहित कोषग्रन्थ (अमर एवं मेदिनी कोष), ज्योतिष-ग्रन्थ (ज्योतिष-रत्नमाला), तन्त्रग्रन्थ (शक्तिसंगमतन्त्र), कामशास्त्रीय ग्रन्थ (रतिरहस्य प्रभृति) तथा सूदशास्त्र आदि का भी निर्देश टीका में हुआ है। इतना ही नहीं अपितु न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग एवं महाभारत का भी यत्र-तत्र उल्लेख हुआ है।

आयुर्वेद में संहिता ग्रन्थों की प्रसिद्धि प्रणेताओं एवं उपदेष्टाओं के नाम से ही रही है। अतएव उसी प्रसंग में उनके परिचय से ही संहिताओं का परिचय आपाततः हो जाता है। टीकाकारों के परिचय एवं उनके अवदानों से अनेक निगूढ़ तथ्य प्रकाश में आये हैं और उनके अनेक विचारों से परिचिति हुई है। संकेतित एवं उल्लिखित पूर्ववर्ती टीकाकारों ने डल्लण के लिये उपजीव्य का कार्य किया है। इन्हीं टीकाकारों द्वारा उद्धृत अनेक ग्रन्थांशों से आयुर्वेद वाङमय की विपुलता का जहाँ एक ओर ज्ञान होता है वहाँ दूसरी ओर काल-निर्णय के लिए भी सामग्री उपलब्ध हो जाती है। टीकाकारों की मान्यता तत्तत्काल में क्रिया-कलापों से प्रतिबिम्बित होती है और उनके विचारों के संग्रह में डल्लण की 'निबन्ध-संग्रह' टीका एक कोषागार का कार्य करती है जहाँ डल्लण के व्यक्तित्व, पाण्डित्य, चिकित्सा-कौशल, देशाटनपाटव एवं वनस्पत्यभिज्ञता का परिचय उपलब्ध होता है। भौगोलिक सामग्री के सन्निवेश से विषयवस्तु का प्रतिपादन सजीव हो उठा है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

प्रस्तुत अध्याय आयुर्वेदीय ग्रन्थों, उनके लेखकों तथा टीकाकारों का ससन्दर्भ परिचय प्रस्तुत करता है। इतना ही नहीं अपितु डल्हण-टीका में उपन्यस्त आयुर्वेदेतर साहित्य के ग्रन्थों एवं उनके प्रणेताओं का भी यह अध्याय विशद निरूपण करता है। यह सभी सामग्री अकारादिक्रम से यहाँ प्रस्तुत की जा रही है :

अमितप्रभ

इनके विषय में कोई विशद उल्लेख कहीं भी दृष्टिगत नहीं होता। निश्चलकर ने चक्रदत्त की टीका में इन्हें उद्धृत किया है। इतना ही नहीं, अपितु चन्द्रट भी चिकित्सा कलिका में इनके उद्धरण देते हैं। चरक-संहिता पर अमितप्रभ ने न्यास लिखा है। निबन्ध-संग्रह व्याख्या में डल्हण ने केवल एक स्थान (चि० २४/५५-६०) पर इन्हें उद्धृत किया है।

आलम्बायन

टीकाकारों के उद्धरणों से ऐसा प्रतीत होता है कि यह अगद-तन्त्र की किसी कृति के प्रणेता थे। डॉ० गिरीन्द्रनाथ मुखोपाध्याय ने इन उद्धरणों का संग्रह अपने ग्रन्थ में किया है (हिस्ट्री ऑफ इण्डियन मेडिसिन, भाग ३, पृ० ७६६)। डल्हण ने इन्हें तीन स्थलों में उद्धृत किया है—सु० क० ७/२, सु० क० ८/४४, क० ८/६०-६२।

उशनस्

डल्हण ने विष प्रकरण (क० १/३३-३५ पर) में उशनस् के मत का उल्लेख किया है। कौटिल्य ने भी अपने अर्थशास्त्र में विषादि प्रतिकार के सन्दर्भ में इनके मत को उद्धृत किया है। अतएव यह अगद तंत्र के अति प्राचीन आचार्य प्रतीत होते हैं। इनका समय कम से कम ईसा से चार सौ वर्ष पूर्व का माना जा सकता है, क्योंकि कौटिल्य का समय ३२० ई० पू० है।

औपधेनव

यह सुश्रुत का सहपाठी था, जिसका उल्लेख सुश्रुत के मूलपाठ (सू० १/३, ४/८) में भी आया है। डल्हण ने अन्य शल्य तन्त्रकारों के साथ इनका एवं इनकी कृति का नाम लिया है। महामहोपाध्याय कविराज गणनाथ सेन ने 'प्रत्यक्ष शारीरम्' की भूमिका (पृ० २४) में डल्हण द्वारा सुश्रुत (उ० ३६/३०) के व्याख्यान में उक्त तन्त्र के उल्लेख का निर्देश किया है, किन्तु उसमें भोज, भालुकि एवं पुष्कलावत का ही उल्लेख है न कि औपधेनव या उनके तन्त्र का। इसका वही समय है जो सुश्रुत का।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

करवीर

यह दिवोदास धन्वन्तरि के सात शिष्यों में अन्यतम व्यक्ति था, जिसे कहीं-कहीं करवीर्य (सु० सू० १/२) भी कहा गया है। अन्य शिष्यों की तरह इन्होंने भी शल्य-तन्त्र पर कोई ग्रन्थ अवश्यमेव लिखा था। माधव निदान के अतिसार निदान प्रकरण में विजयरक्षित ने मधुकोष व्याख्या के अन्तर्गत करवीर्याचार्य के द्वारा निर्दिष्ट अतिसार के असाध्य का लक्षण उद्धृत किया है (मा०नि० अति० १९)। आतंक दर्पण टीका में भी यह उद्धृत है (न्यू० कैट० कैट० ३, पृ० १७७)। निश्चलकर ने भी इसे उद्धृत किया है (भट्टाचार्य, आइ०एच० क्यू०, २३, १९४७, पृ० १३९)। डल्हण ने (सु० सू० ४/८ पर की टीका में) इसका, दो बार, केवल नाम उद्धृत किया है।

कार्तिककुण्ड

कार्तिककुण्ड को यत्र-तत्र कार्तिक भी कहा गया है। यह भी सुश्रुत का एक प्रख्यात व्याख्याकार था। चक्रदत्त ने सुश्रुत की भानुमती टीका में (भट्टाचार्य, आई० एच० क्यू०, २३, १९४७, पृ० १४०) कार्तिककुण्ड को उद्धृत किया है, ऐसा माधव निदान के नवीनतम अध्ययनकर्ता जी० जे० म्यूलेन-वेल्ड ने भट्टाचार्य के आधार पर लिखा है, किन्तु सु० सूत्रस्थान की भानुमती टीका में कहीं भी कार्तिककुण्ड का कोई उद्धरण इस शोधकार्य के लेखक को दृष्टिगत नहीं हुआ। डल्हण ने अपनी टीका में इसे ससंदर्भ एवं सोद्धरण उद्धृत किया है।

निश्चलकर और डल्हण के अनुसार कार्तिककुण्ड विजयरक्षित, श्रीकण्ठदत्त एवं वृन्दकुण्ड (सिद्धयोग के लेखक) से पूर्व हुए। किन्तु इस मत का निराकरण हार्नले (जे० आर० एस०, १९०६, पृ० २८७) ने अपर्याप्त तर्कों के आधार पर किया है। भट्टाचार्य का विचार है कि कार्तिककुण्ड और वृन्द-कुण्ड दोनों बंगाल के वैद्य-परिवार के ही वंशज थे। यह तथ्य ध्यान में रखने योग्य है कि डल्हण ने कार्तिककुण्ड को बहुत ही कम स्थलों पर उद्धृत किया है और वह भी केवल उत्तर तन्त्र में। डल्हण के उद्धरणों और विचारों से ऐसा प्रतीत होता है कि कार्तिककुण्ड एक उदार मस्तिष्क एवं स्वतन्त्र विचार का व्यक्ति था, वृन्द के सिद्धयोग टीकाकार श्री कण्ठदत्त (१२/२२-२४; ५९/३०) के उद्धरणों से यह स्पष्ट है कि कार्तिककुण्ड ने यत्र-तत्र काश्यप और अन्य प्राचीन चिकित्सा के लेखकों के विचारों को स्वीकार किया है। हार्नले ने (जे० आर० ए० एस० १९०६; पृ० २८६-२८८ में) यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि कार्तिककुण्ड और भास्कर एक ही हैं, जिनका उल्लेख डल्हण ने सु० सूत्रस्थान

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

प्रथम अध्याय के आरम्भ में पंजिकाकार के रूप में किया है। हार्नले का ऐसा चिन्तन सम्भवत: ठीक ही है, क्योंकि कार्तिककुण्ड डल्लण के द्वारा उस प्रसंग में उद्धृत नहीं हैं और न ही भास्कर का उद्धरण डल्लण ने टीका में प्रस्तुत किया है। तथ्य तो यह है कि हार्नले का यह कथन सर्वथा तथ्यविहीन हो जाता है जबकि डल्लण यह कह देता है कि गयदास और भास्कर सुश्रुत के पंजिकाकार हैं और यह तो तथ्य स्पष्ट ही है कि भास्कर को डल्लण ने कहीं उद्धृत नहीं किया है, अपितु इसके विपरीत डल्लण स्वयं पंजिकाकारों के रूप में दोनों को उद्धृत करता है और कभी-कभी तो बृहद् और लघु पंजिकाकार स्वतन्त्र या समस्त रूप में भी दीख पड़ते हैं।

जहाँ तक कार्तिककुण्ड के काल का प्रश्न है, यह स्पष्ट कहा जा सकता है कि यह माधवकर और वृन्द कुण्ड के मध्य में विद्यमान था। यदि श्रीकण्ठदत्त के सिद्धयोग (१२/२२-२४) के उद्धरण के तथ्य को सत्य मानें तो यह स्पष्ट हो जाता है कि यह व्यक्ति विजयरक्षित से पूर्व हुआ। प्रो० पी० के० गोडे (आइ० सी० १३, १९४७, पृ० १९९-२०८) ने इस विषय पर एक लेख के द्वारा विशद प्रकाश डाला है। निबन्ध-संग्रह में निम्न संदर्भों के व्याख्यान में कार्तिककुण्ड का नाम आया है—सु० उ० ३९/८५; उ० ३९/८७; उ० ३९/११८; उ० ४२/३; उ० ४४/२२-२४; उ० ४५/१६-१७; उ० ४५/२७; उ० ४७/२०-२३; उ० ४८/१९; उ० ४८/२५; उ० ४८/३३-३४; उ० ४९/३; उ० ४९/१५ में तीन बार; उ० ५०/१५; उ० ५१/२; उ० ५६/१५; उ० ५६/१६; उ० ५७/८; उ० ५८/१४; उ० ५८/२३; २४, २५; उ० ५८/२६-२९; उ० ५९/३; उ० ५९/७-९; उ० ६०/१८; उ० ६०/३१, उ० ६३/२; उ० ६४/८-९, उ० ६४/१३; उ० ६४/१८, उ० ६४/२४ और उ० ६५/३७-३८।

काश्यप

काश्यप-संहिता का दूसरा नाम वृद्धजीवकीयतन्त्र भी है, जिसकी रचना का श्रेय वृद्ध जीवक को दिया जाता है, जिन्होंने काश्यप की उक्तियों का संग्रह किया। यह ग्रन्थ हरिप्रसाद शास्त्री द्वारा काठमाण्डू में १८९८ ई० में अन्वेषित एकमात्र ताड़पत्र की पाण्डुलिपि पर आधारित है। कार्डियर (ले-व्यूसेन, एन० एस० ४, १९०३; पृ० ३२२-३२३) ने हरिप्रसाद शास्त्री के इस पाण्डुलिपि के प्रतिवेदन के विचारों में कुछ वास्तविकता को प्रस्तुत किया है। इस ग्रन्थ का एक अंश चीनी भाषा में अनूदित सुरक्षित है (द्रष्टव्य, पी० सी० वागची, १, सी० ९, पृ० ६४)। पं० हेमराज शर्मा ने इस पुस्तक पर एक बृहद् उपोद्घात लिख कर इसकी महत्ता को विद्वज्जगत् के समक्ष प्रस्तुत किया है। वात्स्य ने

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

कल्पस्थान का संस्कार किया है। काश्यप के अनेक उद्धरण अनेक प्राचीन टीकाओं में प्राप्त होते हैं। कहीं-कहीं टीकाकारों द्वारा यह वृद्ध काश्यप के नाम से भी उद्धृत हैं।

मधुकोष, कुसुमावली, निबन्ध-संग्रह-टीकाओं में उपन्यस्त सन्दर्भों का मुखोपाध्याय (एच० आई० एम०, १; पृ० १८२) ने संग्रह किया है। इनके (टी० एल० सी०; पृ० १८६-१८७) अनुसार बर्नेल ने काश्यप-संहिता की हस्तलिखित प्रति (इन, ए क्लैसीफाइड इण्डेक्स टू द संस्कृत—मैनुस्क्रिप्ट इन द पैलेस ऐट तंजौर, लंदन, १८७६-१८८०; पृ० ७०, नं० ४१) का उल्लेख किया है। वस्तुतः यह उनका भ्रमपूर्ण विनिश्चय है। उनके द्वारा सन्निविष्ट एवं उल्लिखित काश्यप-संहिता इस वर्तमान काश्यप-संहिता से सर्वथा भिन्न है और यह तान्त्रिक प्रक्रियाओं का निरूपण करने वाली एक संहिता है। एस० कुप्पूस्वामी शास्त्री (कैट० सं० मै० मद्रास, भाग २६, सन० आर० १३११२) ने काश्यपीय रोग-निदान नामक पाण्डुलिपि का उल्लेख किया है। वह भी इससे भिन्न है और यह विवेच्य काश्यप-संहिता तो मुख्यतः कौमार-भृत्य के विषय का प्रतिपादन करने वाली एकमात्र संहिता है। यह एक ध्यान देने योग्य तथ्य भी है कि विभिन्न टीकाओं में मिलने वाले भालुकि-तंत्र के उद्धरण पर्याप्त सीमा तक काश्यप-संहिता में प्राप्त उद्धरणों के साथ साम्य रखते हैं।

इधर काश्यप-संहिता की एक पाण्डुलिपि नेवारी लिपि में लिखित सरस्वती भवन, संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी में विद्यमान है और इसी प्रकार की २-३ पाण्डुलिपियाँ दक्षिण भारत के पुस्तकालयों में भी उपलब्ध हैं। इस प्रकार इस पाण्डुलिपि का सम्पादन केन्द्रीय चिकित्सानुसन्धान परिषद् के तत्वावधान में संस्कृत विश्वविद्यालय के वाङ्मय अनुसन्धान केन्द्र में हुआ। यह भी पाण्डुलिपि मुख्यतः निदान और चिकित्सा का प्रतिपादन करती है। रसौषधियों के प्रचुर निर्देश के कारण यह ग्रन्थ बारहवीं-तेरहवीं शताब्दी से अधिक प्राचीन नहीं प्रतीत होता (वी० एन० द्विवेदी एट आल : ए रिपोर्ट ऑन न्यु काश्यप-संहिता ऑफ वाराणसी, सचित्र आयुर्वेद, जुलाई १९७२)।

काश्यप का उल्लेख विष-चिकित्सा के रूप में महाभारत में आया है जो मंत्रवेत्ता ब्राह्मण के रूप में सर्पदंश से पीड़ित परीक्षित के प्राण बचाने के लिए हस्तिनापुर आ रहा था (म० भा० आदि० ४२/३३-४३; ५०/१९, २७)।

चक्रपाणि ने सुश्रुत की भानुमती टीका (सू० ६/१०, १२/७ एवं चरक की आयुर्वेद दीपिका (वि० ८/१२५) में काश्यप के मत को उद्धृत किया है।

डल्हण ने अपने निबन्ध-संग्रह की व्याख्या में काश्यप को दो स्थलों (सू०

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

१२/४, शा० २/४०-४२) में उद्धृत किया है। एक तीसरे स्थल (उ० २७/३) में केवल नामतः काश्यप का निर्देश है।

काश्यपवृद्ध

काश्यप और वृद्ध काश्यप नाम से दो पृथक् आचार्यों की गणना इनके विभिन्न उद्धरणों के विवेचन से दृष्टिगत होती है। डल्हण ने वृद्धकाश्यप का एक बार ससन्दर्भ (शा० १/५१ पर) तथा एक बार केवल नामतः (उ० ५८/२३ पर) उल्लेख किया है।

कृष्णात्रेय

कृष्णात्रेय का नाम महाभारत (शा० २१०/२१) में चिकित्सा-शास्त्र के आदि आचार्य के रूप में आता है। भेल (सू० १६, शा० ३) ने कृष्णात्रेय और पुनर्वसु आत्रेय को एक ही व्यक्ति माना है और इसका समर्थन चक्रपाणि ने भी किया है। दृढ़बल (च० चि० १५/१२६-१३१) ने ग्रहणी चिकित्सा में नागराद्यचूर्ण कृष्णात्रेय के द्वारा सम्मानित माना है और चक्रपाणि ने 'कृष्णात्रेयः पुनर्वसुरेवेति वृद्धाः' ऐसा कह कर कृष्णात्रेय को पुनर्वसु से अभिन्न माना है। शिवदास सेन ने भी चक्रदत्त की टीका में कृष्णात्रेय को पुनर्वसु से भिन्न माना है।

डल्हण ने निबन्ध संग्रह (चि० ४०) में धूमपान नस्य कवल के मात्रा के विनिर्धारण प्रसंग में कृष्णात्रेय के मत को उद्धृत किया है।

कांकायन

यह बाह्लीक का भिषक् था—ऐसा चरक-संहिता के मूलपाठ में पांच बार उल्लेख है। ये भी पुनर्वसु आत्रेय के समकालीन हैं, क्योंकि अनेक वादगोष्ठियों में ये उनके साथ विचार-विमर्श करते हुए दिखायी देते हैं। डल्हण ने इन्हें सुश्रुत का सहपाठी मान लिया है, जो सु० सू० १/२ में प्रभृति शब्द की व्याख्या से स्पष्ट है "प्रभृति ग्रहणात् निमि-कांकायन-गार्ग्य-गालवा इति" (सु० सू० १/२ पर डल्हण)। मारीचि काश्यप ने भी नामपूर्वक इनके मत का उल्लेख किया है।

गयदास

डल्हण ने अपनी टीका में गयदास को गयी के नाम से १८५ बार उद्धृत किया है। इनके द्वारा प्रणीत टीका का नाम न्याय-पंजिका है जो कि सम्प्रति निदान-स्थान मात्र पर ही उपलब्ध और प्रकाशित है। हार्नले (जे० आर०

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

एस० १९०६, पृ० २९३) ने अनेक उद्धरणों के आधार पर यह सिद्ध कर दिया है कि इनकी टीका सम्पूर्ण सुश्रुत पर थी। शारीर-स्थान पर लिखी गयी इनकी सम्पूर्ण टीका आज भी 'कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी लाइब्रेरी' में है।

कुछ विद्वानों का यह विचार है कि गयदास ने चरक पर कोई टीका लिखी थी किन्तु सम्प्रति उपलब्ध नहीं है। इसकी पुष्टि मधुकोष व्याख्या में उद्धृत २/१८-२३ के उद्धरण से होती है। एक दूसरे सन्दर्भ (२/११) के अनुसार यह सुश्रुत के टीकाकार सिद्ध होते हैं। डल्लण ने गयदास को एक प्रामाणिक टीकाकार मानते हुए उन्हें बहुशः उद्धृत किया है और उन्होंने न्यायचन्द्रिका का केवल एक ही बार (सु० सू० २७/१२ पर) नाम लिया है। अपनी टीका के आरम्भ में डल्लण ने गयदास और भास्कर को पंजिकाकार माना है और यह बृहत् पंजिका, लघु पंजिका और महापंजिका नाम से इनका नामोल्लेख करता है। अब यह कहना कठिन है कि कौन सी पंजिका गयदास की थी। उत्तरतन्त्र (४९/१९) में उद्धृत चन्द्रिकाकार के नाम से डल्लण द्वारा उद्धृत और निश्चलकर द्वारा बहुधा उद्धृत चन्द्रिका टीका गयदास की ही थी, जो कि सुश्रुत पर लिखी गयी थी। निश्चलकर के द्वारा प्रदत्त एक कथन से यह सिद्ध होता है कि गयदास बंगाल के किसी राजा का चिकित्सक था।

गयदास की तिथि के निर्णय में बहुत प्राचीन काल से विवाद चला आ रहा है। 'जॉली' ने डल्लण से इनको पूर्ववर्ती माना है और हार्नले का यह कहना है कि यह ग्यारहवीं शताब्दी के बाद के तो हो नहीं सकते और कभी तो ऐसा प्रतीत होता है कि गयदास और चक्रपाणि कहीं समकालीन न हों। गयदास ने जेज्जट को उद्धृत किया है, अतएव यह इससे पूर्ववर्ती नहीं हो सकते और चक्रपाणि द्वारा उद्धृत होने के कारण पश्चात् के नहीं हो सकते। अतः भट्टाचार्य का विचार है कि इनका समय दशम शताब्दी रखा जा सकता है और इन्हें बंगाल के राजा महीपाल प्रथम (९२८-१०३८ ई०) का समकालीन मानना चाहिए। विजयरक्षित ने गयदास को उद्धृत किया है और विजयरक्षित डल्लण के पूर्ववर्ती हैं। अतएव प्रोफे० जी० जे० म्यूलेन वेल्ड के अनुसार गयदास की तिथि को जेज्जट और गयदास के बीच में रखना अधिक युक्तियुक्त होगा।

डल्लण ने निबन्ध-संग्रह व्याख्या में गयदास को गयदासाचार्य एवं गयी नाम से निम्नलिखित स्थलों पर उद्धृत किया है जो नाम पुरस्कर निर्दिष्ट हैं—

गयदास—

सूत्रस्थान : १/१, ६/५, १०; १४/१४; १६/२४, १८/३०, १९/२९, २७/५, २९/१३ (२ बार), ३७/२९, ४५/१४, ४६/५४३।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

निदानस्थान : २/१२, ६/३० ।
शारीरस्थान : ४/७४, ६/४१, १०/५४-५७ ।
चिकित्सास्थान : १/२२, ३८; ३६, ६४, ३/४०, ५/४०, ४४, ६/१२, १५, ६/१७, २१, ३६, ३८; ३१/६-८; ३२।११, ३४/१३, ३६/५, १६ (२ बार), ३७/१६, २५, ४४, ३८/६ (२ बार), ३६/१६; ४०/४ ।
कल्पस्थान : ३/११, ४/३; ५/११-१२; ६/२-३; ७/३; ४, ७; ८/३, ६; ३४; ३७, ३८, ४४; ६०-६२; ६६; ६६ ।
उत्तरतन्त्र : ३/१६; १७/१४, २७/५, ५०/७, ८, ११ ।

गयदासाचार्य—

सूत्रस्थान : १७/१४; १८/१३; १६/२६; ३६; ३१-३३ (२ बार), २०/१५ १६; २२ ।
निदानस्थान : १/४; ६, ७, १८, ४५, ४६-४७, ५१, २/१७, ४/३, ५/८, १२; ६/३०; ७/१७ (२ बार), १०/६; ११, ११/११; १३/२, ६-१४; १५-१६, २०-३०, ३१-३६, १४/२, ३, ११-१५, १५/८ (३ बार), १६/४८ ।
चिकित्सास्थान : ३४/४-५, ३८/४४-४६ ।
कल्पस्थान : ६/६, ७/८, ६/२ ।
उत्तरतन्त्र : १७/१४; ३६/३७ ।

गयी—

सूत्रस्थान : १/१ (२ बार), ४३/४, ४४/२, ४५/११३, ४६/११-१२, १६८, ३२१, ३४५, ५३५, ५२३, ५३६, ५४८, ५४६ ।
शारीरस्थान : १/१, २, ६-१० ११, १२, १३, १८; १६-२०, २/१७-१८ (तीन बार), २६; ३१; ३७, ४०-४२, ३/१४, ४/१६, १७; २६; ५१, ५७, ५/१३, ३७ (३ बार), ४५, ६/३६, ५६, ८१, ८२, ८६, ७/२२ (२ बार), २३, २४, २५; २६-२६ (३ बार), ३१, ८/२, ३५, ३६-५१; ६/१० १०/११; १७; ३८-४०, ४५, ५३, ६० ।
चिकित्सास्थान : १/४५, ६०, ७०, ८४ (२ बार), ६३, १.०, २/२६-२७; २८, २६, ४०, ४७-४८, ५७, ६३, ३/३, १५, १६, २३; २५, ३०; ३३, ४३-४४; ४५; ४,४, १८, २२, २३; ५/३३, ३६, ६/१२, १४, ७/४; ६, १५-१६; ८/५, ६, ६/५, ३३,

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

३४-३५; ३६-३८, १०/२; ३-५; ६; १३ (२ बार), ११/ ८-११, १२/१० (२ बार); १६/३-६, ११, १७/६-११; १२, २१; २४-२६, १८/२-३, १८, १६/१६; २२; २०/१-५; २४/८-११; २५/६-१४, २७/६-८, १०-११; २८/७-८, ३०/ ४, ५-६, ३१/१८ (२ बार), ३३/२१-२२, ३४/१०, १३; २०, ३५/१०-११; ३६/६, ३७/२०-२२; ३८/१०, २७; २८; ३६-३८; ३६, ३६/६-७; ३५, ४०/१६, २२, २६।

कल्पस्थान— १/५ (२ बार), १०, १६; १६, २७; २/२, ४-११ (३ बार), १५, २५; ४/४, ६/६ (२ बार); ७/८।

उत्तरतन्त्र— १/२, १०/५६, १७/३, २५; २८, १८/५, २३, ३४, ४४, १६/१४, १६/३, ७, ११, २५/८, १३-१४, १५, ३२/४-५; ३४/२, ३५/२।

गार्ग्य

डल्लण ने सुश्रुत के सहाध्यायी के रूप में प्रभृति पद (सू० १/२) से इनका भी नाम समाविष्ट कर लिया है और इनके किसी भी मत का टीका में उल्लेख नहीं किया है।

चरक-संहिता (सू० १) में ऋषिगोष्ठी में इनके मत की चर्चा आयी है। महाभारत में इन्हें विश्वामित्र के ब्रह्मवादी पुत्र के रूप में प्रस्तुत किया गया है (म०भा०, अनु०, ४/५५)। इसके साथ-साथ यह भी मत स्मरणीय है कि महाभारत ने सुश्रुत को भी विश्वामित्र का एक ब्रह्मवादी पुत्र माना है (अनु० ४/५५)।

गालव

डल्लण ने गालव का नाम भी पूर्वोक्त रीति से सुश्रुत के सहाध्यायी के रूप में प्रस्तुत किया है। इनका भी कोई उद्धरण निबन्ध-संग्रह में प्राप्त नहीं होता।

महाभारत के अवलोकन से यह सिद्ध हो जाता है कि ये दिवोदास के काल में थे, क्योंकि अपने गुरु विश्वामित्र की ८०० श्यामकर्ण अश्व की गुरु-दक्षिणा के लिए विभिन्न राजाओं के यहाँ घूमे थे और गरुड के साथ धन संग्रहार्थ ययाति के पास पहुँचे थे, जिन्होंने अपनी कन्या माधवी को इन्हें सौंप दिया था। माधवी को लेकर यह सर्वप्रथम अयोध्या नरेश हर्यश्व से एक पुत्र उत्पन्न करा कर तथा २०० घोड़े ग्रहण कर माधवी के साथ दिवोदास के पास पहुँचे। दिवोदास ने इनके अनुरोध पर २०० घोड़े शुल्क के रूप में देकर माधवी से प्रतर्दन नामक पुत्र की उत्पत्ति करायी। इसी प्रकार यह उशीनर के

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

पास भी माधवी को लेकर पहुंचे और उन्होंने भी एक पुत्र उत्पन्न कर २०० अश्व दिये। इस प्रकार ६०० श्यामकर्ण अश्व और माधवी को लेकर इन्होंने विश्वामित्र को गुरुदक्षिणा भेंट कर दी। फिर: स्वत: माधवी से एक पुत्र उत्पन्न कर माधवी को राजा ययाति को लौटा दिया। इनकी गणना विश्वामित्र के ब्रह्मवादी पुत्रों (म०भा०उ०; १०६/२५, १०७/३१५, १११/५१८, ११४/६, ११५/१८; ११६/२२; ११७/७, ११८/३-८, १४, २४ और १५२/४) में है।

गोपुररक्षित

यह सुश्रुत के सहाध्यायियों में अन्यतम था और इसने गोपुररक्षित नामक प्रधान शल्यतंत्र की रचना भी की थी। डल्हण ने किसी के नाम विरहित मत को उद्धृत करते हुए कहा है कि गोपुर और रक्षित ये दो नाम पृथक्-पृथक् उन आचार्यों द्वारा अभिमत हैं पर डल्हण ने इन्हें एक ही व्यक्ति माना है। यद्यपि गोपुर रक्षित का ग्रन्थ अनुपलब्ध है, पर उसके उद्धरण यत्र-यत्र टीका में उद्धृत हैं। शिवदास सेन ने सुश्रुत उत्तरतन्त्र की टीका (तत्वदीपिका) में इनके एक सन्दर्भ का उल्लेख किया है (सू० १/२; ४/८)। डल्हण ने दो बार इनको उद्धृत किया है (सु० सू० १/२, सू० ४/८)।

चक्रपाणिदत्त

चक्र या चक्रपाणि पद से चक्रपाणिदत्त का बोध होता है और ये अनेक ग्रन्थों के रचयिता तथा चरक एवं सुश्रुत के प्रसिद्ध टीकाकार थे। इनके द्वारा चरक पर लिखी गयी टीका आयुर्वेद दीपिका या चरक तात्पर्या टीका नाम से विख्यात और प्रकाशित है; किन्तु सुश्रुत के सूत्रस्थान पर ही इनकी टीका भानुमती उपलब्ध है। कार्डीयर (ले क्यूस्यान, एन० एस० ४,१.०३; पृ० ३३२) का कथन है कि चक्रपाणि की सुश्रुत पर भानुमती टीका उनके काल में वाराणसी के किसी विद्वान् के निजी संग्रहालय में थी। निश्चलकर की रत्न-प्रभा टीका एवं डल्हण (सु० उ० ३९/३) की टीका के अनुसार उनके समय भानुमती सुश्रुत पर पूर्णतया उपलब्ध थी। इनकी कृतियों में चिकित्सा संग्रह या चक्रदत्त ग्रन्थ चिकित्सा का एक प्रामाणिक एवं उपादेय ग्रन्थ माना जाता है, जिस पर निश्चलकर एवं शिवदास सेन ने टीकायें लिखी हैं, जिनमें से प्रथम तो हस्तलिखित प्रति में सुरक्षित है तथा दूसरी प्रकाशित है। इनकी एक और कृति 'द्रव्यगुणसंग्रह' नाम से है, जिस पर इन्हीं दो उपर्युक्त टीकाकारों ने टीका लिखी है। शब्द चन्द्रिका नामक एक ग्रन्थ, जो कि पाण्डुलिपि के रूप में भारत के दस प्राचीन ग्रन्थागारों और ऑक्सफोर्ड के पुस्तकालयों में संग्रहीत है, जॉली

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

के अनुसार यह ग्रन्थ रसशास्त्र एवं द्रव्यगुण के पारिभाषिक शब्दों की व्याख्या प्रस्तुत करता है। जॉली ने 'सर्वसारसंग्रह' नामक एक आयुर्वेदीय पुस्तक के रचयिता के श्रेय की सूचना चक्रपाणि के नाम से ही दी है किन्तु एस० एन० दासगुप्त के अनुसार (आई० सी० ३, पृ० १५६-१५७), यह कृति किसी उत्तरकालीन चक्रपाणिदत्त नाम वाले व्यक्ति द्वारा प्रणीत लगती है।

व्यग्र-दरिद्र-शुभंकर को निश्चलकर ने अपनी टीका में उद्धृत किया है और भट्टाचार्य के अनुसार इसका निर्देश गोपालदास के चिकित्सामृत मुक्तावली में है (यू० कैट० कैट० ६, पृ० २८४) और यह भी कोई चिकित्सा का कोष प्रतीत होता है।

चक्रपाणि ने अपना परिचय चिकित्सा-संग्रह एवं आयुर्वेद दीपिका की व्याख्या के अन्त मे दिया है, जिसके अनुसार उनके पिता नारायण गौड़ देश (बंगाल) के राजा के मंत्री तथा रसवती (Royal Kitchen)के अधिकारी थे। इसका अग्रज भानुदत्त राजचिकित्सक (अन्तरंग) था। चक्रदत्त का जन्म बंगाल के प्रतिष्ठित आठ आभिजातिक लोध्रवलि नामक वैद्य-वंश में हुआ था। ऐसी सूचना भरतमल्लिक ने अपनी चन्द्रप्रभा में दी है (पृ० ८, एकार्डिंग टू भट्टाचार्य, आई० एच० क्यू० २३, १९४७, पृ० १२८, पाद-टिप्पणी ६)। कुछ लोगों का विचार है कि निश्चलकर चक्रदत्त का साक्षात् शिष्य था। चक्रपाणि ने चरक की टीका में मगलाचरण में अपने गुरु नरदत्त का नाम लिया है और यह टीका उनके गुरुजी के व्याख्यान पर आधारित है। चक्रपाणि की चक्रदत्त या चिकित्सा-संग्रह ग्रन्थ का मूल स्रोत वृन्द का सिद्धयोग है।

चरक

अग्निवेश-तन्त्र के संस्कर्ता थे और इनके संस्कार के पश्चात् अग्निवेश-तन्त्र चरक-संहिता नाम से परिणत हो गया। इनके द्वारा अग्निवेश-तन्त्र का संस्कार कितने अंश पर हुआ यह कहना कठिन है, तथापि यह कहा जा सकता है कि उसने दृढ़बल वाले अंश को छोड़कर शेष सभी आत्रेय के उपदेशों में युगानुरूप परिवर्धन किया। चरक कौन था और कब हुआ इस विषय में पर्याप्त मतभेद हैं, जिसमें से मान्य तीन मत हैं—

१. चरक कृष्ण-यजुर्वेद की एक शाखा थी, जिस शाखा के विद्वानों ने मिलकर एक तन्त्र का निर्माण किया, जो चरक-संहिता कहलायी।

२. चरक का उल्लेख कठ-शाखा के साथ पाणिनीय अष्टाध्यायी में आता है। चक्रपाणिदत्त ने चरक और पतंजलि को एक माना है और इनके अनुसार चरक का समय ईसा से २०० वर्ष पूर्व लगभग सिद्ध होता है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

३. सिल्वालेवी चीनी संस्करण के त्रिपिटक में चरक के आ जाने से इसका काल कनिष्क का काल मानते हैं और इनके अनुसार यह समय प्रथम शताब्दी का है। डल्हण ने निबन्ध-संग्रह में ३९ बार (सू० २१/४३; २२/५; ३०/२; ४३/५; ४६/६४; ४६/१४४; ४६/२७५; ४६/३४५; ४६/३६८; ४६/३७६, नि० ५/३; ५/८; ५/१३; ११/१०, शा० १/३; २/४३; ३/३ में २ बार; ३/१४; ४/३१; ४/३४; ९/२; १०/४८, १०/५०, चि० ५/८; ६/१४; १४/७; १४/२२; १८/३४-३६; २८/८; ३१/११; ३१/१६; ३३/१४; ३६/१९; ३७/२; ३७/२४; ४०/१७, उ० ४९/१६; ६६/६) नामोल्लेखपूर्वक एवं कई स्थलों पर तंत्रान्तरे या एकीयमत के रूप में इन्हें उद्धृत किया है।

जेज्जट

जेज्जट के नाम में ध्वनि-परिवर्तन के साथ विभिन्न नाम, विभिन्न स्थलों में देखने को मिलते हैं, यथा—जेज्जट (चरक की टीका के सुरक्षित भाग की पुस्तिका में), जर्जट (त्रिचुर द्वारा सम्पादित अष्टाङ्ग-संग्रह तथा भट्टाचार्य ए० बी० ओ० आर०, २८, १९४७, पृ० ११२, पा०टि० १), जेज्जट (माधव-निदान, आतंक-दर्पण टीका, गयदास की सुश्रुत पर सूत्र और निदान-स्थान की टीका; चरक की चक्रपाणि टीका, प्रायशः डल्हण एवं अष्टाङ्ग-संग्रह पर हेमाद्रि टीका), जज्झट (कभी-कभी डल्हण टीका), जेज्जड (चक्रदत्त की प्राचीन पाण्डुलिपि पर निश्चलकर की रत्नप्रभा टीका, द्रष्टव्य—भट्टा०; आई० एच० क्यू०, १९४५, पृ० १४२), जैज्जट (जीवानन्द विद्यासागर द्वारा १८८९ में सम्पादित सुश्रुत की डल्हण टीका में; हार्नले, जे० आर० एस०, १९०६, पृ० २८५); जॉली (जेड० डी० एम० जी ६०; १९०६, पृ० ४१४); जैज्झट (जॉली, जेड० डी० एम० जी०, ५८; १९०४, पृ० ११४) और जय्यट (दासगुप्ता, एच० आई० पी० एच०, २, पृ० ४२७)। गयदास की सूत्र और शारीर-स्थान पर लिखित टीका की पाण्डुलिपि में 'जड' जो कि जेज्जट का ही रूप प्रतीत होता है, पाँच बार प्रयुक्त हुआ है।

जेज्जट ने चरक और सुश्रुत पर टीकायें लिखी थीं। गयदास इन्हें किसी ग्रन्थ का प्रणेता भी मानता है (हार्नले, जे० आर० ए० एस०, १९०६; पृ० ३०१)। जेज्जट द्वारा प्रणीत सुश्रुत पर लिखी गई टीका अवश्यमेव प्राचीन होनी चाहिए। दुर्भाग्य का विषय है कि यह सर्वथा लुप्त है, इसके उद्धरण यत्र-तत्र प्राप्त हैं। चन्द्रट ने सुश्रुत की पाठ शुद्धि करने से पूर्व जेज्जट की टीका को अवश्यमेव देखा था। क्योंकि इस तथ्य को चन्द्रट ने स्वयं टीका के

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

अन्त में स्वीकार किया है। जेज्जट की टीका विजयरक्षित एवं डल्हण के अतिरिक्त हेमाद्रि के काल तक भी सुरक्षित रही।

हरिदत्त शास्त्री ने चरक पर अंशतः प्राप्त जेज्जट की टीका को चक्रपाणि की टीका के साथ लाहौर से १९४० में प्रकाशित किया। जेज्जट की टीका का नाम 'निरन्तर पदव्याख्या' है। चरक के विभिन्न स्थानों की टीकाओं के अवलोकन से ऐसा प्रतीत होता है कि उनसे भी पूर्ववर्ती अनेक टीकाकार हो चुके थे। जेज्जट ने चरक की टीका में अपने को वाग्भट का शिष्य कहा है। हरिदत्त शास्त्री ने इसका समय छठीं शताब्दी, 'गुलाब कुवरबा सोसाइटी' द्वारा सम्पादित चरक ने नवीं शताब्दी और भट्टा० (आई० एच० क्यू०, २३, १९४७, पृ० १५३) ने लगभग ८७५ से ९०० ई० के बीच माना है। केवल हार्नले (जे० आर० ए० एस०, १९०६, पृ० २९२) ने यह सूचना दी है कि चरक पर लिखी जेज्जट की टीका वृन्दकुण्ड को ज्ञात थी (सी० ओ०, ३९/३३–चरके प्राह जेज्जटः)। अतः जो काल वाग्भट का है वही काल उसके शिष्य जेज्जट का होना चाहिए और इस आधार पर इसका काल छठी ई० के लगभग स्वीकार करना चाहिए। जेज्जट ने दृढ़बल और भट्टा० हरिचन्द्र को उद्धृत किया है। इतना ही नहीं यह माधवकर के पूर्ववर्ती वाप्यचन्द्र से भी प्राचीनतर हैं। अतएव इनका समय यही लगभग छठी-सातवीं शताब्दी के बीच नियत करना अधिक युक्तियुक्त होगा।

डल्हण ने जेज्जट को निबन्ध-संग्रह व्याख्या में १७५ बार नामतः विविध मत प्रदर्शन के अवसर पर उद्धृत किया है—

सूत्रस्थान : १३/३; १६/२४; २०/१९; २१/२६; ४४/२; ४५/२०; ४५/४४; ४५/८१; ४५/११२, ४५/१४१; ४५/१६५; ४६/५, ११–१२; ५८; १३४; १४४; २७३; २९१; ३४५; ३७६; ४०६–४१२; ४७३; ५१३।

निदानस्थान : १/५१, ५८; २/१२; ५/८, १२; ७/१७ (२ बार); ८/११; ८/१२; ११/७; १३/२; १६/४८।

शारीरस्थान : १/१२–१३; २/४८; ५/१०।

चिकित्सास्थान : १/२२, ३८–३९, ४५; ४८; ६४, ७०, ७६, ८७; २/२६–२७, ६३; ३/३, १६, २५, ३० (२ बार); ३३, ४३–४४, ४५; ४/१८, २३; ५/७, २४–२५, २६-२७, ४४; ६/१२; ७/४; ९/२१, ३०–३१, ३६-३८; १०/६, ९; ११/८–११; १२/७; १४/९; १८–१९ (२ बार); १६/७-१०; १७/५, ७, १२, २१; २४-२९; १८/१६–१७; ४०; १९/८–१३; २३/१३–१४; २४/८६–८९; २७/६–८; १०-११; २८/४; २९/५-७; ३१/११, १८; ३२/४;

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

३३/२; ११-१२; ३४/१३ (२ बार); २०; ३५/४-५; १२; ३६/२-६; ३७/२४; ३८/२६-३०, ३२-३४, ३६, ४४ (२ बार); ३६/६, १६-१७।

कल्पस्थान : १/३०; ३/१२; ४/१२; ५/११-१२, १५; ६/२-३, ६; ६; ७/३ (२ बार); ८/३, ६, ५२-५६।

उत्तरतन्त्र : १/४; ३/२, १६; ४/३; ५/५; ६/१५; ६/२ (२ बार); १२/१२, १ -२२, २३; १७/२०-२१; १८/५, ४३, ४५; १६/८; २०/१४; २१/१६-२०; २४/१२, १३-१४; २६/२; ३०/२; ३२/४-५; ३३/२; ३६/२, १६-२१; ३७, ५८, ७३-७४, ८५, १०१, ११२, ११३; ४०/१४ (२ बार) ५४, ६४; ४१/१२; ४२/४४; ४५/१६-१७; ४८/३३-३४; ५०/८, ११, १२; ५१/२, १५-१७; ५८/२५, २६; ६२/२, ६, ८।

दृढ़बल

दृढ़बल ने चरक-संहिता के चिकित्सा-स्थान के अंतिम १७ अध्याय, कल्प और सिद्धि के १२-१२ अध्यायों को जोड़कर उसका प्रतिसंस्कार किया है। यह कपिलबल (च० चि० ३०/२६०) का पुत्र और पञ्चनदपुर का निवासी था। इसके पिता के द्वारा प्रणीत काय-चिकित्सा के ग्रन्थ को चक्रपाणि (च० सू० ७/४५-५०) ने उद्धृत किया है। यह पंचनदपुर कल्हण की राज-तरंगिणी के अनुसार वितस्ता और सिन्धु नदियों के संगम पर स्थित था। एम० ए० स्टीन महोदय ने इसे पंजिनौर स्थान बताया है; अतएव इसके कश्मीरी होने में कोई सन्देह नहीं है।

डल्लण ने दृढ़बल को दो बार (चि० ४०/१८, उ० २५/६-१०) उद्धृत किया है। यतः माधवनिदान ने चरक के दृढ़बल वाले अंशों को अपने ग्रन्थ में सम्मिलित किया है और साथ ही साथ वाग्भट ने भी दृढ़बल को नामतः स्मरण किया है। इस प्रकार इसका समय छठी शताब्दी से पूर्व, पाँचवीं शताब्दी या पूर्व स्थिर किया जा सकता है। चतुर्थ शताब्दी के नावनीतक में भी दृढ़बल का नाम नहीं आता है, अतएव ये जेज्जट और आषाढ़ वर्मा के पूर्व होने के कारण पाँचवीं शताब्दी में आविर्भूत हुए।

नन्दि

डल्लण ने अपनी निबन्ध-संग्रह व्याख्या में इनके सन्दर्भों (क० ८-३, नि० १३/२ पर) को उद्धृत किया है। इनके सम्बन्ध में और कुछ नहीं ज्ञात हो सका है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

नागार्जुन

डल्हण ने सूत्र-स्थान प्रथम अध्याय की टीका के आरम्भ में ही चतुर्विध सूत्रों के अन्तर्गत प्रतिसंस्कृत सूत्र के उदाहरण में नागार्जुन को सुश्रुत का प्रतिसंस्कर्त्ता माना है। इसके अतिरिक्त मूषिककल्प (क० ७/३) में भी नागार्जुन का एक उद्धरण मिलता है। शारीर ४/७२ पर भी इनका मत द्रष्टव्य है।

नागार्जुन के नाम से अनेक आयुर्वेद के ग्रन्थों का निर्देश यत्र-तत्र दीख पड़ता है (द्रष्टव्य—कैट० कैट० १, पृ० २८३, १०२, तृतीय, पृ० ६१)। जिस प्रकार डल्हण ने सुश्रुत के प्रतिसंस्कार की चर्चा की है उसी प्रकार चक्रपाणि ने भी अपनी भानुमती टीका में बिना नाम निर्देश के प्रतिसंस्कार की सूचना दी है। प्रो० फिलियोजा के अनुसार योगशतक का कर्त्ता—जिसे इत्सिग ने चिकित्सा का ग्रन्थ माना था—नागार्जुन ही है।

वस्तुतः कई नागार्जुन हुए हैं जिनमें से एक प्रसिद्ध रसाचार्य, नालन्दा का प्रसिद्ध नागार्जुन था। अरबी यात्री अल्बेरूनी का समय ग्यारहवीं सदी है। इससे लगभग १०० वर्ष पूर्व सोमनाथ के निकट दैहक का यह निवासी था, जो कि रसायनाचार्य नागार्जुन प्रतीत होता है। यदि इस तथ्य को सत्य मान लें तो विजयरक्षित द्वारा उल्लिखित नागार्जुन के उद्धरण उसको दसवीं शताब्दी में ले जाते हैं। निश्चलकर ने नागार्जुन के दो ग्रन्थों—चिकित्सामंजरी और वार्त्तामाला का वर्णन किया है, पर सुश्रुत-संहिता का प्रतिसंस्कर्त्ता द्वितीय नागार्जुन प्रतीत होता है जो कनिष्क के राजदरबार से सम्बन्धित एक बौद्ध था तभी तो उसने बालरोग में भिक्षु संघाटी के धूपन का निर्देश किया है।

निमि

यह मिथिला (सम्प्रति बिहार का तिरहुत-खण्ड) के राजा थे, जिन्होंने अपने नाम से शालाक्य प्रधान ग्रन्थ की रचना की। महाभारत (आदि०, १/२३४) के अनुसार भी इनके विदेहाधिपत्व की पुष्टि होती है। वस्तुतः निमि विदेह राज्य के संस्थापक थे। रामायण (बाल०, ६७/३), वायुपुराण (८६/३) एवं ब्रह्मपुराण (३/६४) के अनुसार इनका पुत्र मिथि और उसका पुत्र जनक था। जनक के पश्चात् इस वंश के सभी राजाओं की उपाधि जनक हो गई और इसी वंश में कराल जनक भी हुए। डल्हण ने निमि के निम्न उद्धरण दिये हैं—सू० चि० ४०/३ पर, १६-१७ पर तथा उ० १/२ पर।

पराशर

यह पुनर्वसु आत्रेय के छः शिष्यों में अन्यतम थे। इन्होंने काय-चिकित्सा पर एक स्वतन्त्र ग्रन्थ लिखा था (च० सू०, १/३०-३३)। कार्डियर के मतानुसार

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

पराशर की कृति के कुछ अंश नेपाल में पाये गये हैं। इनकी कृति को वृद्ध वाग्भट (अ० सं० सू०, १७/१६-२०) ने उद्धृत किया है। डल्हण ने इनके दो उद्धरणों (सू० चि० ३८/३-५, ४४-४६) को उद्धृत किया है।

कुछ लोग वृक्षायुर्वेद और तक्रकल्प का लेखक होने का भी श्रेय इन्हें देते हैं। कृषि पर भी इनकी एक कृति है (कैट० सं० मैनु०, कैम्ब्रिज, एन० आर० आर० १५, ८७)।

पुष्कलावत

यह भी सुश्रुत का सहाध्यायी था, जिसने शल्य-तन्त्र पर कोई कृति लिखी थी। डल्हण ने (सु० उ० ३९/३० पर) इसका मत उद्धृत किया है। चक्रपाणि ने (च० चि० २०/२४ में) इसका एक श्लोक उद्धृत किया है जिसे डल्हण ने अपनी टीका में बिना नाम के बार-बार दर्शाया है। यथा—

"न शोधयति यद् दोषान् समानान्नोदीरयत्यपि।
समीकरोति च क्रुद्धान् तत् संशमनमुच्यते इति॥"

बंगदत्त

'चिकित्सा-संग्रह' या 'चिकित्सा-महार्णव' अथवा 'चिकित्सातत्वसंग्रह' (कैट० सं० मैन्यु वी० ओ० आर० आई०; वाल्यूम-१६, पृ० १; एन० आर० ८२, पृ० ९९-१००) का प्रणेता बंगदत्त (बंगसेन) था। माधवनिदान की तरह ही इसकी अधिक प्रसिद्धि बंगसेन, बंगसेन संग्रह अथवा बंगदत्त के नाम से है। आफ्रेक्ट (कैट० कैट० २, पृ० १३०) का विचार है कि बंगसेन का चिकित्सा महार्णव चिकित्सा-सार संग्रह से कुछ भिन्न है। बंगसेन ने माधवकर के निदान के क्रम से ही चिकित्सा का उल्लेख किया है। अतएव यह तो सिद्ध ही हो जाता है कि यह माधव के बाद हुआ। बंगसेन ने माधवकर के प्रति इतनी अधिक आस्था दिखाई है जितनी वृन्द ने भी नहीं।

बंगसेन गदाधर का पुत्र था जो कि दक्षिणी भारत के कांजिका या कांचीपुर स्थान से कहीं अन्यत्र स्थानान्तरित हो गये थे (बंगसेन १/४)। यह गदाधर सुश्रुत के प्रसिद्ध टीकाकार गदाधर ही हैं। एन० एन० दासगुप्ता का बिना किसी प्रमाण के यह विचार है कि बंगसेन के पिता का मूल स्थान राड (पश्चिम बंगाल) में स्थित कांजीवल्ली स्थान में था और कांजीवल्ली ही कांजिका है। सेन उपाधि युक्त होने के कारण इनकी स्थिति बंगाल में होनी सर्वथा उचित है।

बंगसेन के जन्म से पूर्व चरक सूत्र १/६२-६३ की व्याख्या में चक्रपाणि द्वारा उद्धृत अगस्त्य नामक विद्वान् प्रणीत अगस्त्य-संहिता का संशोधित रूप ही

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

चिकित्सा-सार-संग्रह है, ऐसा स्वयं बंगसेन ने ग्रन्थ के अन्त में स्वीकार किया है। वैसे दक्षिण भारत में अगस्त्य के नाम पर २०० चिकित्सा ग्रन्थों का उल्लेख हैं (रीनाऊ एट फिलियोजा १, इण्डे क्लेसिक २; पृ० १६२-१६३), आफ्रेक्ट (कैट० कैट० १, पृ० ५४८) ने बैद्यनाथ द्वारा प्रणीत बंगसेन पर की गई टीका का उल्लेख किया है। डल्हण ने बंगसेन को एक ही स्थान (चि० ३/४५) पर उद्धृत किया है।

बंगसेन की तिथि के विषय में 'जॉली' का विचार है कि वह बंगाल के सेन वंश का समकालीन था। एस० एन० दासगुप्ता (आई० सी० ३, पृ०१५६) इसे तेरहवीं शताब्दी का एवं गोडे (एस० टी० आई० एल० एच०१; पृ० ३२५) बारहवीं शताब्दी का मानते हैं। भट्टाचार्य के अनुसन्धान के आधार पर यह स्पष्ट है कि निश्चलकर ने भी बंगसेन को उद्धृत किया है, अतएव इसकी तिथि वृन्द और निश्चलकर के मध्य में होनी चाहिए। १२७६ ई० की लिखित बंगसेन की एक पाण्डुलिपि कैम्ब्रिज युनिवर्सिटी लाइब्रेरी (कैट० सं० मैन्यु०, १०, ५, पृ० ६५२) एवं १३२० में लिखित एक पाण्डुलिपि भण्डारकर ओरिएण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पूना (कैट सं० मैन्यु०; वी० ओ० आर० आई०, वाल्यूम १६; भाग १, एन० आर० ७८; पृ० ६४-६५) में भी है।

ब्रह्मदेव

डल्हण ने अपनी टीका के आरम्भ में ब्रह्मदेव का टिप्पणकार के रूप में उल्लेख किया है और इनके निम्न उद्धरण निबन्ध-संग्रह व्याख्या में उद्धृत हैं—

सूत्रस्थान — १८/३०, २०/१५, ४६/११-१२, २०४; २७३, २६८।
निदानस्थान — १/५१; ८/११; १३/२।
चिकित्सास्थान — १०/८७, ६६, ११४; ३८/२६-३०।
उत्तरतन्त्र — ३१/२, ३६/६; ११३, ४०/४५; ५४, ४७/२६; ५६/७।

विश्वामित्र

विश्वामित्र नाम से अनेक व्यक्तियों का बोध होता है; जिनमें से एक वैदिक मन्त्रों के द्रष्टा हैं, दूसरे विश्वामित्र राम के समकालीन तथा तीसरे एक आयुर्वेदिक चिकित्सक भी हैं, जिनके अनेक उद्धरण चक्रपाणि ने चरक और सुश्रुत की टीकाओं में दिये हैं। डल्हण ने भी इनको निम्न स्थलों में उद्धृत किया है—

सू० ११/६, नि० ५/१२; ७/२; १०/६०; शा० १०/६०; उ० १८/२; ५४/१७-१८; ५८/२४ एवं ६६/२।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

भट्टार हरिश्चन्द्र

इनका नाम हरिचन्द्र एवं भट्टार इस प्रकार संयुक्त और पृथक् दोनों रूप से टीकाओं में उपलब्ध होता है। जेज्जट ने इनको चरक का एक अच्छा टीका-कार माना है। इन्दु (अ० सं० टीका) में एक ऐसा श्लोक आता है—

"हरिश्चन्द्रकृतां व्याख्यां विना चरकसम्मतम्।
यस्तनोत्यकृतप्रज्ञः पातुमिच्छति सोऽम्बुधिम् ॥"

जिसके अनुसार इनकी प्रतिष्ठा का ज्ञान होता है। ठीक इसी प्रकार का एक विचार चन्द्रट ने भी चिकित्साकलिका में दिया है—

"व्याखयातरि हरिचन्द्रे श्रीजेज्जटनाम्नि सति सुधीरे च।
अन्यस्यायुर्वेदे व्याख्या धार्ष्ट्यं समावहति ॥"

चन्द्रट चि० क० व्या०

चक्रपाणिदत्त (च० सू० ७/४६) का कहना है कि वाग्भट हरिचन्द्र के विचारों का कुछ स्थलों पर अनुसरण करते हैं। यह बाणभट्ट (हर्षचरित) उल्लिखित गद्य लेखक से भिन्न व्यक्ति हैं। ग्यारहवीं शताब्दी में लिखित महेश्वर के विश्व-प्रकाश-कोष में भी इनका नाम आया है। इन दो हरिचन्द्र के अतिरिक्त एक तीसरा हरिचन्द्र भी हुआ है जो कि आर्द्रदेव एवं राधा का पुत्र दिगम्बर जैन मतानुयायी कवि था, जिसकी देवगिरि के भेल्लम तृतीय के राजदरबार में १२०५ ई० में स्थिति रही।

इनकी चरक पर चरकन्यास व्याख्या सूत्रस्थान के तृतीय स्थान तक तथा पंचम अध्याय सहित उपलब्ध है। इस टीका की एकमात्र पाण्डुलिपि मद्रास के राजकीय पुस्तकालय में है। भट्टाचार्य (आई० एच० क्यू०; १९४७; वाल्यूम २३, पृ० १४९-१५०) के अनुसार हरिचन्द्र ने खरनाद संहिता का प्रतिसंस्कार भी किया था, ऐसा अष्टांग-संग्रह टीकाकार 'इन्दु' के कथन से प्रतीत होता है। भट्टाचार्य का यह भी मत है कि हरिचन्द्र ने अपने नाम से एक संहिता लिखी थी जिसको निश्चलकर ने उद्धृत किया है, पर इसका ऐक्य खरनाद संहिता के साथ कदापि स्थिर नहीं किया जा सकता, अपितु इसके विपरीत रत्नप्रभा टीका स्वतः स्पष्ट कर देती है कि हरिचन्द्र स्वयं खरनाद संहिता से उद्धरणों को प्रस्तुत करते हैं।

महेश्वर के अनुसार यह साहसांक राजा के वैद्य थे। यादव जी ने साहसांक का विभावन चन्द्रगुप्त द्वितीय के साथ किया है किन्तु साहसांक से यशोधर्मन् का ग्रहण करना अधिक उचित प्रतीत होता है और इस प्रकार यह दृढ़बल के

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

अनन्तर वाग्भट के समकालीन छठीं शताब्दी में आविर्भूत हुए प्रतीत होते हैं। दृढ़बल द्वारा संस्कृत अंश (च० सि० १२/४२) की टीका में चक्रपाणि ने भट्टार हरिचन्द्र द्वारा अभिमत ४० तन्त्रयुक्तियों का वर्णन किया है। अतएव इनका समय दृढ़बल के पश्चात् और वाग्भट के पूर्व पाँचवीं शताब्दी निश्चित हो जाता है। डल्हण ने इन्हें तीन बार (सू० ६/१४, २१/४३ और ४६/१४४) उद्धृत किया है।

भद्रशौनक

डल्हण ने अपनी टीका में भद्रशौनक का अग्निकर्मविधि प्रकरण (सू० १२/४) में एक उद्धरण दिया है। श्रीकण्ठदत्त ने भी व्याख्या कुसुमावली (७५/२) में इन्हें उद्धृत किया है। इन सन्दर्भों से ऐसा ज्ञात होता है कि यह काय-चिकित्सक था जिसने सम्भवत: अपने नाम से कोई तन्त्र लिखा था। गणनाथ सेन एवं हरिदत्त शास्त्री पराड़कर इसे शालाक्य-तन्त्र का आचार्य मानते हैं।

भालुकि

शल्य-तन्त्र पर कोई पुस्तक इनके द्वारा लिखी गई थी। जेज्जट ने इनको अनेक बार उद्धृत किया है, पर इनकी कोई कृति उपलब्ध नहीं है। अनेक टीकाओं में इनके प्रचुर उद्धरण मिलते हैं। इतना तो अवश्य कहा जा सकता है कि श्री कण्ठदत्त के समय में इनकी कृति अवश्यमेव सुलभ रही होगी (सि० यो० १/५१)। चक्रपाणि ने भानुमती टीका में दो बार (सु० ६/५ एवं ८/६) तथा डल्हण ने चार बार (सू० १३/७, चि० ३७/४४ एवं उ० ३९/१८, ३९/३०) उद्धृत किया है।

भेड

यह अग्निवेश का सतीर्थ्य था। इसके द्वारा प्रणीत भेल-संहिता सम्प्रति अपूर्ण प्राप्त है। इसका प्रथम संस्करण कलकत्ता युनिवर्सिटी से १९२१ में 'जर्नल ऑफ दि लेटर्स डिपार्टमेण्ट' के वाल्यूम ६ में मूल-पाठ के साथ प्रकाशित हुआ था, तथा द्वितीय संस्करण चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी से श्री गिरिजा-दयाल शुक्ल द्वारा सम्पादित हुआ है। सम्प्रति सी० सी० आर० आई० एम० एच० के तत्वावधान में तंजौर के सरस्वती महल पुस्तकालय के अनुसन्धान एकक से सुसम्पादित हो प्रकाशित हो गया है। इस संस्करण में पाठों को सम्यक् शुद्ध कर दिया गया है। इसकी एकमात्र पाण्डुलिपि सरस्वती महल पुस्तकालय, तंजौर में सुरक्षित है। इसकी सूचना बर्नेल (कैट०, पृ० ६३, नं०

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

२,१०७७३) ने दी है। इस सरस्वती महल पुस्तकालय में सुरक्षित पाण्डुलिपि तेलगु लिपि में लिपिकारों के प्रमाद से युक्त अवस्थित है। इसके अतिरिक्त भेल-संहिता का कुछ अंश पूर्वी तुर्किस्तान के 'तुयोग' नामक स्थान में 'बानले काक' द्वारा पाया गया जिसका अध्ययन ल्यूडर्स (मेडिजी निस्के सं० टेक्स्ट ऑफ तुर्किस्तान, इन : आस इन डीन्स कुल्डर, फेस्टक्रिप्ट फार आर० गार्वे, १९२७; पृ० १४८-१६२; एच० ल्यूडर्स, फिलोजिका इण्डिका, गार्टिजन, १९४०, पृ० ५७९) प्रस्तुत किया था। इस अंश का काल सम्भवतः नवीं शताब्दी स्थिर किया गया है।

यह भेल-संहिता चरक की अपेक्षा कहीं अधिक संक्षिप्त तथा अनेक विसदृश्यताओं से युक्त है। फिलियोजा का यह विचार है कि भेल-संहिता साम्प्रतीन चरक की अपेक्षा प्राचीनतर है। बरुआ (आई० सी० ३, पृ० १९०-१९४) इन्हें आरम्भिक बौद्ध युग में रखने का प्रयास करते हैं। बर्नेल का यह विचार है कि यह गान्धार के निवासी थे। इनका भी वही समय मानना चाहिए जो अग्निवेश का है। भानुमती में चक्रपाणि ने भेड़ को दो बार तथा डल्लण ने निबन्ध-संग्रह व्याख्या में एक ही बार उद्धृत किया है (सूत्र ३३/१७ पर डल्लण)।

भेल-संहिता में अपाणिनीय शब्दों के प्रयोग का अध्ययन प्रो० ज्योतिर्मित्र (इण्डोलॉजिकल स्टडीज, जर्नल ऑफ दि डिपार्टमेण्ट ऑफ संस्कृत, युनिवर्सिटी ऑफ देहली, वाल्यूम २, नं० १; दिसम्बर १९७२) ने प्रस्तुत किया है।

भोज

डल्लण के अनुसार सुश्रुत में प्रभृति शिष्यों में पठित प्रभृति पद से भोज का भी ग्रहण करना चाहिए। इस प्रकार यह भी सुश्रुत का अन्यतम शिष्य प्रतीत होता है। इसकी पुष्टि डल्लण द्वारा विभिन्न स्थलों में उद्धृत सन्दर्भों के द्वारा होती है और इसी के अन्तर्गत वृद्ध भोज के नाम से भी दो उद्धरण निबन्ध-संग्रह व्याख्या (उ० ५७/२ एवं १८/२१) में आये हैं। इसके अतिरिक्त भोज के नाम से निम्न उद्धरण भी मिलते हैं—

सूत्र १/२; ८/३ (३ बार), ११/६, ९, १९/२९; २७/४-६; नि० ११/२; १०, १३/२०-३०; शा० १/१७, ३/९; १४, १७, ५/१६, २१, ४५-४६ (२ बार); ६/३६; चि० १८/१८ (२ बार), ३३/५; २५, ३८/६, ३९/१०-११; ४०/१६-१७; १८; २३, २५; उ० ३९/३०; ४१/२३।

भानुमती टीका में भी भोज के २० उद्धरण चक्रपाणि द्वारा दिये गये हैं। भोज, भोजदेव या भोजराज के नाम से अनेक आयुर्वेदीय ग्रन्थकारों का

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

पता लगता है। डल्हण ने भोज और वृद्धभोज के पार्थक्य को उद्धरण द्वारा स्पष्ट किया है। भोज को अनेक कृतियों—आयुर्वेद सर्वस्व, चारुचर्या, राजमार्तण्ड, राजमृगांक एवं विश्रान्ति विद्याविनोद (कैट० कैट० १; पृ० ४१ और २, पृ० ६५, कार्डियर, जे ए टी २८, १६०१, पृ० १८०) के प्रणेता होने का श्रेय दिया जाता है। वैद्य वापालाल जी ने (इण्ट्रोडक्शन टु निघण्टु आदर्श, पृ० १३) भोजराज निघण्टु को इनके द्वारा प्रणीत माना है। प्रो० फिलियोजा (इन : रिनाव एट फिलियोजा, १; इण्डे क्लेसिक २; पृ० १५६) का कथन है कि भोज ने सुश्रुत पर कोई टीका लिखी थी। हार्नले (जे० आर० ए० एस० १६०६, पृ० २८६) ने सुश्रुत की टीका में उद्धृत डल्हण; गयदास और भानुमती टीका में उद्धृत चक्रपाणि के द्वारा उद्धृत सन्दर्भों के संकेतों की चर्चा की है। इन उद्धरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि भोज को टीकाकार की अपेक्षा एक स्वतन्त्र शल्यतन्त्र का निर्माता कहना अधिक उचित है।

जहाँ तक भोज के काल का सम्बन्ध है, यदि वह सुश्रुत का सतीर्थ्य मान लिया जाय तो इसका भी वही काल सिद्ध होता है। हार्नले के अनुसार धारा का भोजराज (१०१८-१०६३) ही भोज था, किन्तु कार्डियर ने (जे ए टी २८; १६०१, पृ० १८०) इस तथ्य को अतथ्यपूर्ण ठहराया और जॉली (जे० डी० एम० जी० ५८, १६०४, पृ० ११६) के अनुसार धारा-नृपति भोजराज आयुर्वेद के लेखक से सर्वथा भिन्न हैं, क्योंकि एक प्रसिद्ध चिकित्सक के रूप में भोज का उल्लेख बौद्ध ग्रन्थ में भी आता है। भट्टाचार्य (आई० एच० क्यू० २३, १६४७, पृ० १४५-१४६) के अनुसार अद्यावधि भोजराज नाम से आयुर्वेद के तीन लेखकों का ज्ञान होता है, जिनमें से एक तो सुश्रुत का सतीर्थ्य है। इसी को यत्र-तत्र (चि० क० टीका में चन्द्रट) वृद्धभोज के नाम से कहा गया है और यह राजा भोज जो कि जेज्जट के द्वारा उद्धृत और चन्द्रट द्वारा उद्धृत भोज निश्चित रूप से इन दोनों से प्राचीनतर है। द्वितीय राजा भोज वस्तुतः चित्तौड़ के परमार राजा भोज हैं जिनका राज्यकाल ६६५ ई० के लगभग था। इसके अतिरिक्त तृतीय भोज राजमार्तण्ड के लेखक हैं।

माधव

डल्हण ने माधव का एक ही उद्धरण दिया है (सू० १५/१६-४० पर) जो दोषादिविज्ञानीय अध्याय में स्वस्थ की परिभाषा के प्रसंग में है। प्रो० जे० म्यूलेन वेल्ड के अनुसार माधव नाम से आयुर्वेद में सात व्यक्ति हुए हैं, जिनमें डल्हण की टीका से पूर्ववर्ती एक माधवकर हैं—रोग विनिश्चयकर के कर्ता तथा दूसरे माधव चिकित्सा के प्रणेता, तृतीय हैं पर्यायरत्नमाला के लेखक। शेष चार

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

माधव डल्लण के परवर्ती हैं। अतएव प्रस्तुत सन्दर्भ माधव-चिकित्सा से गृहीत प्रतीत होता है। कुछ लोगों का यह विचार है कि माधव ने निदान के साथ-साथ चिकित्सा भी लिखी थी, इसलिए दोनों एक ही हैं। अतएव वही समय उनका भी मानना चाहिए और माधव का समय अनेक प्रमाणों से सातवीं शताब्दी निश्चित है (आर० मित्रा, बीकानेर कैट० एन० आर० १४१३, पृ० ६४७-६४८)।

मुनि

डल्लण ने मुनि के नाम से 'नाभिस्तनान्तरं जन्तोरामाशय इति स्मृतः' ऐसा सन्दर्भ (सू० २१/६ पर) दिया है। शान्तरक्षित ने अपनी तत्व-संग्रह की १६९३ वीं कारिका में युक्ति प्रमाण को चरक मुनि द्वारा उपदिष्ट बतलाया है। इसके साथ ही साथ डल्लण द्वारा उद्धृत उपर्युक्त श्लोकार्थ चरक-संहिता (वि० २/१६) में पाया जाता है। अतएव यह स्पष्ट हो जाता है कि मुनि से चरक का ही ग्रहण करना उचित है।

लक्ष्मण टिप्पणकार

आचार्य प्रियव्रत शर्मा ने इनका काल ११वीं शताब्दी माना है। सुश्रुत पर इनका टिप्पण है, जिसे डल्लण ने (सू० १६/१७) एवं वृन्दमाधव (७०/४८-४९) में उद्धृत किया है।

वशिष्ठ

जेज्जट के साथ वशिष्ठ का भी नाम डल्लण ने लिया है और यह सन्दर्भ केवल एक बार आया है (सु० चि० १/७०)। अतएव जेज्जट के साहचर्य से यह प्रतीत होता है कि यह भी किसी संहिता का टीकाकार था।

वाग्भट

डल्लण ने अपनी टीका में वृद्ध वाग्भट, वाग्भट एवं लघु वाग्भट नाम से तीन वाग्भटों का उल्लेख किया है। इनमें से वृद्ध वाग्भट के तीस, वाग्भट के अट्ठारह एवं लघु वाग्भट के दो उद्धरण निबन्ध-संग्रह व्याख्या में उपन्यस्त हैं जो निम्न प्रकार से हैं—

वृद्धवाग्भट—शा० २/३६, ४/४-६, १६-१७, २१-२३, ५/३७, ६/५७, ८/३९-५१, १०/१२, १३-१४, १६। चि०, २/३०, ३९, ५/२६-२७, ९/२१, २४/८६-८९ (२ बार), ३१/१८ (२ बार), ३३/५, ३८/३१, ३९/१२, ४०/२०, २१-२२, ३४-३७। क० १/३०, ३/३, ४/७, ५/११-१२, ८/४४।

वाग्भट—शा० ५/७, ८/३९, ५१, १०/४९, ५४-५७। चि० १४/२२,

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

१७/५, ११/१८, २४/१५-२१, २६/३, ३५/१३, १४, ३७/२५, ४१, ४४, ४०/७। क० १/१६, उ० ४६/१३ (२ बार)।

लघुवाग्भट—चि० १४/७, १४/८६-८६।

इन सन्दर्भों को अष्टांग-संग्रह और अष्टांग-हृदय के तत्तत् स्थलों से तुलना करने पर यह स्पष्ट हो गया है कि वृद्धवाग्भट से तात्पर्य डल्लण का अष्टांग-संग्रह-कार एवं लघुवाग्भट और वाग्भट से अष्टांगहृदयकार का रहा है।

काल—माधव-निदान में वाग्भट के अनेक श्लोक संगृहीत हैं और इस निदान-ग्रन्थ का अनुवाद अरबी भाषा में आठवीं शताब्दी में होने के कारण माधवनिदान का समय कम से कम सातवीं शताब्दी स्थिर हो जाता है। माधव निदान से पूर्ववर्ती होने के कारण वाग्भट को छठीं शताब्दी में रखना युक्तियुक्त प्रतीत होता है, क्योंकि चरक के दृढ़बल वाले अंश को वाग्भट ने अपने ग्रन्थ में तत्तद् स्थलों में दिया है और दृढ़बल का समय पाँचवीं शताब्दी स्थिर ही है। इस प्रकार इनका समय दृढ़बल और माधवकर के मध्य में रखना युक्तिसंगत है। अष्टांग-संग्रहकार और अष्टांग-हृदयकार एक ही या दो थे इस विषय में मतभेद है। अधिकांश लोगों का मत है कि अष्टांग-संग्रह की रचना पहले हुई तदनन्तर अष्टांग-हृदय की, क्योंकि अष्टांग-संग्रह में विषय का विस्तार है तथा वह अधिकांशत: गद्यमय है और इसी को सुगम तथा संक्षेप करने के लिए श्लोक में अष्टांग-हृदय का प्रणयन किया गया है। यद्यपि प्रो० जे० स्यूलेन वेल्ड ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि अष्टांग-हृदय अष्टांग-संग्रह से प्राचीनतर है, किन्तु वृद्धपद के सन्निवेश से यह स्पष्ट हो जाता है कि अष्टांग-संग्रह की रचना निश्चित रूप से अष्टांग-हृदय से पूर्ववर्ती है।

शिवदास सेन ने अष्टांग-हृदय की तत्वबोध टीका में एक मध्य-वाग्भट के सन्दर्भ का निर्देश किया है। कार्डियर ने मध्य-वाग्भट को वाग्भट नाम से अंशत: मुद्रण की चर्चा की है (जे० ए० टी०, १८, १६०१, पृ० १५०-१५१; कलकत्ता)।

यह वाग्भट सिंहगुप्त का पुत्र था जिसका संकेत अष्टांग-संग्रह (उ० ५०/१३२-१३३) से मिलता है। यह सिंहगुप्त स्वयं एक प्रसिद्ध चिकित्सक तथा वाग्भट का पुत्र था जिसके गुरु का नाम अवलोकित था, जिसने सिंध देश में जन्म लिया था। यदि अष्टांग-हृदय के लेखक वाग्भट का जेज्जट के गुरु के साथ ऐक्य बैठावें तो उसकी जन्मभूमि के बारे में कुछ अधिक विवरण प्राप्त हो सकता है। जेज्जट ने अपने गुरु को वाहट नाम से सम्बोधित किया है और यही स्थिति इन्दु के साथ भी है। जेज्जट द्वारा निर्दिष्ट महाजट्टुपति विशेषण के मिलने से ऐसा प्रतीत होता है कि यह सिन्धु देश के किसी छोटे जनपद का शासक

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

था। भट्टाचार्य और वोगल ने सम्प्रति पाकिस्तान के सिन्ध प्रान्त के हैदराबाद से ५० मील उत्तर कराची जिले के मझन्द नामक स्थान से इसका ऐक्य स्थापित किया है।

वाराह

डल्हण ने अपने से पूर्ववर्ती किं वा गयदास एवं जेज्जट से भी पूर्ववर्ती सुश्रुत के व्याख्याता के रूप में सुवीर और नन्दि के साथ वाराह का नाम स्मरण किया है, पर कहीं भी इनके द्वारा उद्धृत किसी भी अंश का उल्लेख नहीं किया है।

विदेह

विदेह से तात्पर्य निमि या नेमि से ही है और यह विदेह (बिहार का तिरहुत खण्ड) के राजा थे, जिन्हें शालाक्य-तन्त्र का प्रणेता (उ० १/५) होने का श्रेय प्राप्त है। डल्हण ने विदेह और निमि को एक-सा माना है। निश्चलकर ने रत्नप्रभा टीका में एक बार वृद्ध विदेह का भी उल्लेख किया है। डल्हण ने निम्न स्थलों पर विदेह का उल्लेख किया है—

नि० १३/२०–३०। शा० ३/७–९। चि० ३८/६, ४०/३, ४, ७, २४ (२ बार), २७, ३०, ३१, ३४–३७। उ० २/३; ३/३, १२, १६, ४/३, १३, ५/३; ५, १५; ७/२१, ९/२, १७/३; १८/५, २२; १९/२; १३, २०/६, १०; ११; २१/४२, २५/२ एवं २६/१९।

वैतरण

यह भी सुश्रुत का सहपाठी था और अपने नाम से वैतरण-तन्त्र की पृथक् रचना की थी। डल्हण ने इसको दो स्थलों (चि० ७/१४) में उद्धृत किया है।

सात्यकि

इसकी कृति का एकमात्र सन्दर्भ सु० उ० ७/१२ की टीका में आया है। इनके सन्दर्भ में विशद् विवरण अप्राप्त है।

सुकीर

इनका नाम डल्हण ने टीकाकार (उ० ५८/२९-३०) के रूप में लिया है। प्रो० म्यूलेन वेल्ड को निर्णय सागर द्वारा प्रकाशित निबन्ध-संग्रह व्याख्या में सुकीर का नाम नहीं मिला है। इतिहासकारों के अनुसार इनका समय दसवीं शताब्दी है।

सुधीर

सुश्रुत के टीकाकारों में सुधीर का भी नाम आता है। इनका काल दसवीं

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

शताब्दी ही है। डल्हण ने तीन स्थलों (चि० १/३८-३६, ७०-७४, उ० ५८/२६-३०) में इन्हें उद्धृत किया है। हरिदत्त शास्त्री के अनुसार (लाहौर से प्रकाशित जेज्जट टीका की भूमिका, पृ० २२) यह चरक के भी टीकाकार थे।

सुबोर

उपर्युक्त दोनों टीकाकारों की तरह एवं उनके समकालीन ये भी सुश्रुत के टीकाकार थे। डल्हण द्वारा (क० ८/३ एवं नि० १३/२) ये दो बार उद्धृत हुए हैं।

सुश्रुत

काशिराज दिवोदास धन्वन्तरि के प्रधानतम शिष्य के रूप में सुश्रुत की गणना होती है। सुश्रुत की पुरातनता ऐतिहासिक दृष्टि से सर्वथा अक्षुण्ण है। यह संहिता संस्कार, प्रतिसंस्कार, उपसंहार एवं पाठशुद्धि से पूर्व निश्चित रूप में विद्यमान थी और यही कारण है कि सुश्रुत के वचनों का उल्लेख टीकाकारों ने किया है। इनमें से कुछ तो वर्तमान सुश्रुत के पाठ सदृश हैं पर कुछ ऐसे भी हैं जो सम्प्रति उपलब्ध सुश्रुत के मूलपाठ में अप्राप्त हैं। चतुर्थ शताब्दी लिखित बावर मैनुस्क्रिप्ट में प्राचीन आचार्यों के साथ सुश्रुत का नाम आता है। पी० सी० रे के अनुसार (हिस्ट्री ऑफ हिन्दू केमिस्ट्री, पृ० ६१) बौद्ध जातकों में वर्णित बुद्धकालीन काशी विश्वविद्यालय के अध्यापक थे। प्रो० जी० पी० श्रीवास्तव (हिस्ट्री ऑफ इण्डियन फार्मा०, पृ० ५७) ने इनको १००० से ६०० ई० पूर्व का माना है। इनका यह तर्क है कि चतुर्थ शताब्दी के वार्तिककार कात्यायन ने सुश्रुत का उल्लेख किया है। मुखोपाध्याय ने सुश्रुत की अन्तिम सीमा ६०० ई० पूर्व स्थिर की है।

इनके काल निर्धारण के लिए सर्वोत्तम ढंग यह है कि यास्क का समय सब लोग ८०० ई० पूर्व मानते हैं और यास्क के निरुक्त में कौषीतकी उपनिषद् का वह अंश उद्धृत है, जिसमें प्रतर्दन का दिवोदास के पुत्र के रूप में उल्लेख है और हरिवंश पुराण के अनुसार प्रतर्दन दिवोदास का पुत्र था जिसकी उत्पत्ति पुत्रेष्टि यज्ञ के आधार पर हुई है। यदि यास्क का काल ८०० ई० पूर्व है तो निश्चित रूप से इसमें उल्लिखित प्रतर्दन का काल कम से कम १०० वर्ष पूर्व होना चाहिए और उसके पिता की भी स्थिति १०० वर्ष पूर्व मान लेने पर दिवोदास का काल १००० वर्ष ई० पू० सुनिश्चित सा हो जाता है। सुश्रुत दिवोदास का साक्षात् शिष्य था, अतः गुरु-शिष्य का काल एक होने के कारण सुश्रुत का भी काल १००० ई० पू० मान लेना चाहिए।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

माना है, पर निबन्ध-संग्रह व्याख्या में इस कोष का नाम कक्षा के पर्याय (सू० ५/१०) के अवसर पर आने से इसका अस्तित्व डल्लण से पूर्ववर्ती प्रतीत होता है। यदि कथंचित डल्लण को बारहवीं शताब्दी के अन्त में रक्खें तो भी इसका समय बारहवीं शताब्दी के मध्य का प्रतीत होता है। क्योंकि इसका स्रोत विश्वप्रकाश भी इससे पूर्व का होना चाहिए। इसके बाद भी अनेक कोष लिखे गये जिनकी शैली को मेदिनीकार ने नहीं अपनाया।

कुमारतन्त्र

डल्लण ने गर्भ के अष्टम मास में उत्पन्न होने पर उसके जीवन-रक्षा के प्रसंग में नैर्ऋत्य दिशा में बलि और मांसौदन देने से पित्त का समर्थन करते हुए कुमारतन्त्र के (नैर्ऋताय भागश्च वालेषु रुद्रणदत्तः) श्लोकांश को उद्धृत किया है (शा० ३/१६) और यह बतलाया है कि नैर्ऋत्य दिशा में राक्षसों के अंश वर्तमान रहते हैं। अतएव नैर्ऋत्य बलि का विधान समुचित है। आचार्य प्रियव्रत शर्मा ने इस कुमारतन्त्र, जो कि रावणकृत कहा जाता है, में विजया और कर्पूर के योग का संकेत किया है और साथ ही साथ अनेक तान्त्रिक मन्त्रों के सन्निवेश के आधार पर इसको मध्यकालीन माना है (आयुर्वेद का वैज्ञानिक इतिहास, पृ० ५११)। अतएव यह समय डल्लण से पूर्व लगभग ९वीं–१०वीं शताब्दी का प्रतीत होता है। चक्रपाणि ने भी बाल-रोग चिकित्सा के प्रसंग में रावण-कृत कुमारतन्त्र को पूरा का पूरा अपने बाल-रोग चिकित्साधिकार में संग्रह कर लिया है। अतएव इस आधार पर भी इस तन्त्र का काल १० वीं शताब्दी स्थिर हो जाता है।

शक्तिसंगमतंत्र

जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, यह एक तन्त्र ग्रन्थ है। यह अक्षोभ्य–महोग्र-तारा (शिव–पार्वती, संवाद रूप है) जिसके चार खण्ड हैं—१. कालीखण्ड, २. ताराखण्ड, ३. सुन्दरीखण्ड और ४. छिन्नमस्ताखण्ड। पूर्णतन्त्र में छः हजार श्लोक हैं। इनमें से प्रथम और तृतीय खण्ड में २०–२० पटल, चतुर्थ खण्ड में ११ पटल और द्वितीय ताराखण्ड में ६५ पटल हैं। समस्त ग्रन्थ के पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध भेद से दो भाग भी हैं। इनमें से पूर्वार्द्ध का नाम कादि और उत्तरार्द्ध का नाम आदि है।

डल्लण ने इस तन्त्र के सातवें पटल का एक श्लोक—

"काम्बोजाद्दक्षभागे तु इन्द्रप्रस्थाच्च पश्चिमे।
पाण्ड्यदेशो महेशानि ! महाशूरत्वकारकः॥"

(सू० १३/१२ पर)

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

उद्धृत किया है। यह श्लोक उक्त तन्त्र के ताराखण्ड का है, जिसमें ६५ पटल हैं। यह पटल भूगोल के वर्णन के लिए प्रसिद्ध है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल (हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० १०, संस्करण १७वाँ, पुनर्मुद्रण) ने शक्ति-संगमतन्त्र को गोरक्षनाथ सम्प्रदाय का ग्रन्थ माना है। डॉ० गोपीनाथ कविराज ने इसे मौलिक शक्ति सम्प्रदाय का मौलिक ग्रन्थ माना है (तान्त्रिक साहित्य, पृ० ६१२; हिन्दी समिति, प्रथम संस्करण, १९७२)। प्रो० डी० सी० सरकार (द ज्योग्राफी ऑफ ऐन्शिएण्ट एण्ड मेडिवल इण्डिया; पृ० ६९) शक्तिसंगम-तन्त्र का रचनाकाल १७४४ ई० से पहले का मानते हैं, पर उनका यह विचार डल्लण के निबन्ध-संग्रह में उक्त ग्रन्थ के उद्धृत होने के कारण उचित नहीं है। राहुल सांकृत्यायन ने गोरक्षनाथ का समय वज्रयानी सिद्धों की परम्परा के मध्य ११वीं शताब्दी रखा है और उसी के आस-पास इस तन्त्र की रचना होनी चाहिए।

रतिरहस्य

इसका प्रणेता काश्मीरी आचार्य कोको है, जिसका विकृत रूप कोक है और कोकशास्त्र नाम इसी आधार पर पड़ा। इसका प्रणयन ९वीं शताब्दी में हुआ, ऐसा इतिहासकार मानते हैं। डल्लण ने यद्यपि इस ग्रन्थ का नाम नहीं लिया है किन्तु स्त्रियों के अधोगत-रक्तवह-स्रोतस् (शा० ५/९) पद की व्याख्या में स्मरातपत्र का परिचय रतिरहस्य के शब्दों के माध्यम से दिया है—

"विपुलपिप्पलपत्रसमाकृतेरवयवस्य शिरस्तलमाश्रितम्।
सकलकामसिरामुखचुम्बितं निगदितं मदनातपवारणम्॥"

वात्स्यायन कामसूत्र

गुप्तकाल के स्वर्ण काल में लिखा गया यह वात्स्यायन कामसूत्र सम्भवतः कामशास्त्र पर लिखा गया प्रथम ग्रन्थ है। इसका समय चौथी या पाँचवीं शताब्दी माना गया है। डल्लण ने भगविस्तार का परिणाह १२ अंगुल का वात्स्यायन कामशास्त्रोक्त हस्तिनी जाति की स्त्री का माना है (सू० ३५/८ पर)। शुक्रदोष निदान (१४/२) में लिंगवृद्धि योग के सन्दर्भ में वात्स्यायन का नाम डल्लण ने लिया है।

व्यास भट्टारक

डल्लण ने व्यास और व्यास भट्टारक नाम से काल और अकाल मृत्यु के प्रसंग (सू० ३४/५) में अनेकों वचनों सहित इन्हें उद्धृत किया है और यह समग्र वर्णन महाभारत का ही है। व्यास से इसके मूल रचयिता कृष्णद्वैपायन या

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

बादरायण व्यास का बोध होता है। व्यास एक प्राचीन वैदिक ऋषि हैं किन्तु उनकी कृति महाभारत ६०० ई० पू० लिपिबद्ध हुई प्रतीत होती है। महाभारत का आदिम नाम जय काव्य था, जो केवल कौरव-पाण्डव युद्ध का निरूपक था और वही कालान्तर में अनेक उपाख्यानों से युक्त होने पर भारत कहलाया। इसी में जब समस्त ज्ञान-विज्ञान की सामग्री मिलाकर विश्व-कोशीय रूप दिया गया तब इसका नाम महाभारत पड़ा। आयुर्वेद के बहुत सारे सिद्धान्त महाभारत में उल्लिखित हैं; जिनमें से काल और अकालमृत्यु विषयक चर्चा तो महत्वपूर्ण ही है।

पतंजलि

डल्हण की टीका में प्राप्त मत के विमर्श से स्पष्ट है कि पतंजलि, प्रसिद्ध वैयाकरणिक जिन्होंने पाणिनि की अष्टाध्यायी पर महाभाष्य लिखा; से भिन्न कोई व्यक्ति नहीं है। इनका समय १८० ई० पूर्व है। शारीर १/६ में डल्हण ने इनका मत उद्धृत किया है। यह पतंजलि लौहशास्त्र के रचयिता पतंजलि से सर्वथा भिन्न हैं, जिनको शिवदास सेन ने चक्रदत्त की टीका में लौहमारण प्रकरण (रसायनाधिकार ५२-५३; ५५-५६, ६१-६४, ७२, ७६; ८१; ८३) में सश्लोक उद्धृत किया है।

श्रीपति

यह दशवीं शताब्दी के प्रथम ज्योतिर्विद विद्वान् हैं, जिनके 'सिद्धान्तशेखर' और 'धीकोटादिप्रकरण' नाम से दो ज्योतिष-गणित ग्रन्थ, 'रत्नमाला' नामक मुहूर्त ग्रन्थ और 'जातकपद्धति' नामक जातक ग्रन्थ हैं। प्रसिद्ध ज्योतिषी भास्कराचार्य ने इनके प्रथम ग्रन्थ का अपने ग्रन्थ में निर्देश किया है।

डल्हण की निबन्ध-संग्रह व्याख्या में निहित काल को भगवान् के रूप में मंगलाचरण के प्रसंग में श्रीपति के रत्नमाला ग्रन्थ का यह आदिम श्लोक है (शंकर बालकृष्ण दीक्षित कृत भारतीय ज्योतिष, पृष्ठ ३२६-३३०)।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

तृतीय अध्याय

संग्रह ग्रन्थों की टीकाओं में उद्धृत डल्हण के वचन

द्वितीय अध्याय में डल्हण की टीका में उद्धृत अनेक संहिताओं, संग्रह-ग्रन्थों, टीका-टिप्पणियों एवं उद्धृत आचार्यों के निर्देश का उल्लेख किया जा चुका है। प्रस्तुत अध्याय डल्हण को उद्धृत करने वाले संग्रह-ग्रन्थों और टीकाओं का ससंकेत परिचय देता है। किसी भी टीका को किसी के द्वारा उद्धृत किया जाना उस टीका की महत्ता, उपादेयता और लोकप्रियता का परिचायक होता है। टीकाओं के वचन इस दृष्टिकोण से भी उद्धृत किये जाते हैं कि उनमें उनके अपने चिकित्सकीय अनुभव, शास्त्र-पाण्डित्य और पूर्वतन ज्ञान का समावेश होता है। डल्हण ने चक्रपाणि दत्त की तरह टीका के अतिरिक्त अन्य किसी स्वतन्त्र ग्रन्थ का निर्माण नहीं किया था अन्यथा वे अवश्यमेव तदुत्तरकालीन टीकाकारों द्वारा उद्धृत किये जाते। इतना ही नहीं अपितु जिन-जिन टीकाओं में डल्हण के वचन आये हैं, वहाँ पर भी उनके साथ के स्वतन्त्र रूप से उन ग्रन्थों का भी नामाभिधान होता है।

यथाशक्ति पूर्ण प्रयास करने पर इन पंक्तियों के लेखक को केवल तीन ही व्यक्तियों की टीकाओं में डल्हण के वचनों को प्राप्त करने का सुयोग मिला है, और वे हैं—प्रथम अष्टांग-हृदय के टीकाकार हेमाद्रि जिनकी आयुर्वेद रसायन व्याख्या में केवल एक ही स्थान (सू० ७/४०) पर डल्हण का वचन उद्धृत मिला है। हेमाद्रि का समय १२७१ से १३०० ई० के मध्य का माना जाता है। इसके अनन्तर नवम शताब्दी के वृन्दमाधव के सिद्धयोग पर श्रीकण्ठ द्वारा लिखी गई व्याख्या कुसुमावली टीका में ७८ बार डल्हण के वचन विभिन्न स्थलों पर उद्धृत हैं। श्रीकण्ठदत्त का समय इतिहासकारों ने १२वीं शताब्दी स्थिर किया है क्योंकि ये मधुकोषकार विजयरक्षित जी के शिष्य थे, जिन्होंने अपने गुरु द्वारा अपूर्ण मधुकोष व्याख्या को पूर्ण किया। ११वीं शताब्दी के बकुलकर आदि टीकाकारों को उद्धृत करने के कारण इनका काल १२०० ई० मानना पड़ता है। वृन्दमाधव पर लिखी गई श्रीकण्ठ की टीका कितनी थी यह कहना इसलिए कठिन हो जाता है कि व्याख्या कुसुमावली के अन्त में तीन श्लोक ऐसे आ गये हैं जो इस रहस्य का उद्घाटन कर देते हैं कि श्रीकण्ठदत्त की टीका का उपबृंहण भाभल्यसुत नारायण नामक किसी नागरवंशीय वैद्य ने डल्हण के व्याख्यानों का अवलोकन करने के अनन्तर किया था—

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

श्रीकण्ठदत्तभिषजा ग्रन्थविस्तरभीरुणा।
टीकायां कुसुमावल्यां व्याख्या मुक्ता क्वचित् क्वचित् ॥
रत्नं नागरवंशस्य भिषग्भाभल्लनन्दनः ।
नारायणो द्विजवरो भिषजां हितकाम्यया ॥
भाष्याणि डल्लणादीनि बहुशो वीक्ष्य यत्नतः ।
टीकापूर्ति व्यधात् सम्यक् तेन नन्दन्तु साधवः ॥

(वृ० मा० आनन्दाश्रम संस्करण, खिस्ताव्द १९५३, पृ० ६६५)

व्याख्या-कुसुमावली में हेमाद्रि (१३वीं शताब्दी) का उल्लेख होने से नारायण का काल १४वीं शताब्दी स्थिर हो जाता है। कुछ भी हो, यह तो मानना ही पड़ता है कि १३वीं शताब्दी के अनन्तर १४वीं शताब्दी में भी डल्हण की प्रसिद्धि पर्याप्त रही और इसका पर्यवसान शिवदाससेन (१३७४–१४५७ ई०) की चक्रदत्त पर लिखी गई तत्व-चन्द्रिका टीका में हो जाता है। शिवदाससेन ने डल्हण को नौ बार विभिन्न रोगों के प्रसंग में उनकी माननीय सम्मति को रखने की दृष्टि से उद्धृत किया है।

इस प्रकार इन तीनों टीकाओं में डल्हण के वचनों को सविस्तार तत्तद-टीकाकारों ने दिया है। प्रस्तुत अध्याय में मैंने इन सभी स्थलों का संकेत मात्र कर दिया है, क्योंकि यदि उनके द्वारा उद्धृत सभी उद्धरण यहाँ प्रस्तुत किये जाते तो पिष्टपेषण मात्र ही होता। अब क्रमशः इन तीनों टीकाओं में निहित डल्हण सम्मत स्थलों का संकेत सन्दर्भानुसार किया जा रहा है :

१. हेमाद्रि की आयुर्वेद रसायन टीका[1] (अष्टांग-हृदय पर)

पैष्टीगुडासव मधुभिः पैष्टीमध्वासव गुडैर्वा त्रियोनिः मैरेयः इति डल्हणः।

२. व्याख्याकुसुमावली में उद्धृत डह्लणमत-स्थल

१. ज्वराधिकार	१/७	८. अतिसाराधिकार	३/३६–३७
२. ,,	१/३२	९. ,,	३/४३
३. ,,	१/४०	१०. ,,	३/४९-५१
४. ,,	१/५७	११. ,,	३/६९
५. ,,	१/९०	१२. ,,	४/३७
६. ,,	१/१०७	१३. ,,	४/३९
७. अतिसाराधिकार	३/२३	१४. ,,	७/८

१. अष्टांग-हृदय सू० ७/४० पर आयुर्वेद-रसायन व्याख्या।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

१५.	रक्तपित्ताधिकार	९/१०
१६.	,,	९/३१
१७.	छर्द्यधिकार	१४/१०
१८.	तृष्णाधिकार	१६/७
१९.	दाहाधिकार	१९/१
२०.	वाताधिकार	२२/१८
२१.	उदावर्ताधिकार	२८/२३
२२.	आनाहाधिकार	२९/७
२३.	हृद्रोगाधिकार	३०/६०
२४.	अश्मरीअधिकार	३४/१
२५.	,,	३४/७
२६.	,,	३४/८
२७.	,,	३४/२१
२८.	प्रमेहाधिकार	३५/४८
२९.	वृष्याधिकार	४०/५
३०.	गलगण्डाधिकार	४१/३१
३१.	,,	४१/३६
३२.	,,	४१/३८
३३.	,,	४१/४९
३४.	,,	४१/५०
३५.	व्रणशोथाधिकार	४४/७
३६.	,,	४४/२६
३७.	कुष्ठाधिकार	५१/१०८
३८.	विसर्पाधिकार	५४/५
३९.	मुखरोगाधिकार	५८/३१
४०.	,,	५८/४३
४१.	,,	५८/४६
४२.	,,	५८/५०
४३.	,,	५८/६०
४४.	कर्णरोगाधिकार	५९/४४
४५.	,,	५९/४५
४६.	नेत्ररोगाधिकार	६१/२३
४७.	नेत्ररोगाधिकार	६१/३७
४८.	,,	६१/२३०
४९.	बालरोगाधिकार	६६/१३
५०.	वाजीकरण	७०/१
५१.	स्नेहाधिकार	७१/३
५२.	,,	७१/१०
५३.	,,	७१/१३
५४.	वमनाधिकार	७३/१५
५५.	,,	७३/१६
५६.	विरेचनाधिकार	७४/२२
५७.	,,	७४/३३
५८.	वस्तिविधि अधिकार	७५/९
५९.	,,	७५/१६
६०.	,,	७५/२१
६१.	,,	७५/२७
६२.	,,	७५/३१
६३.	,,	७५/३३
६४.	,,	७५/३४
६५.	निरूहाधिकार	७६/२०
६६.	पिच्छावस्तिविधिकार	७७/१-२
६७.	योगज–अयोगज	७७/१४
६८.	कवलाधिकार	७९/३
६९.	अरिष्टाधिकार	८०/२
७०.	,,	८०/४
७१.	,,	८०/१४
७२.	,,	८०/२६
७३.	,,	८०/२८
७४.	,,	८०/३१
७५.	मिश्रकाधिकार	८२/४
७६.	,,	८२/८
७७.	,,	८२/११
७८.	,,	८२/१३

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

३. शिवदाससेन की तत्वचन्द्रिका व्याख्या (चक्रदत्त पर) में उद्धृत डह्लणमत-स्थल[१]

१. ज्वरचिकित्सा		श्लोक	२१०	६. गुल्म	चिकि०	श्लो०	११
२. विसूचिका	चिकि०	श्लो०	८७	७. हृद्रोग	,,	,,	५
३. कामला	,,	,,	२८	८. मूत्राघात	,,	,,	२,३
४. छर्दि	,,	,,	२	९. स्त्रीरोग	,,	,,	७
५. तृष्णा	,,	,,	२;३,७,१० (दो बार)				

१. चक्रदत्त चिकित्सा संग्रह, टीका शिवदाससेन (तत्वचन्द्रिका) सम्पादक आशुबोध विद्याभूषण, नित्यबोध विद्यारत्न, वाचस्पति प्रेस, कलकत्ता, पंचम संस्करण, १९३३ ई० ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

चतुर्थ अध्याय

एकीयमतों का संग्रह एवं उसकी समीक्षा

डल्हण ने अपनी निबन्ध-संग्रह व्याख्या में सुश्रुत की विषय सामग्री को चतुर्विध सूत्रों के अन्तर्गत विभक्त कर दिया है। ये चतुर्विध सूत्र हैं—(१) प्रतिसंस्कर्तृ सूत्र, (२) एकीय सूत्र, (३) शिष्य सूत्र एवं (४) गुरु सूत्र।

चक्रपाणि ने सुश्रुत की भानुमती टीका में यद्यपि चार प्रकार के सूत्रों को स्वीकार किया है, किन्तु प्रतिसंस्कर्तृ सूत्र के प्रति अपनी अनभिमति प्रदर्शित की है। वे इसके स्थान पर ग्रन्थकर्तृ सूत्र की सत्ता मानते हैं। डल्हण एवं चक्रपाणि दोनों ने गुरु सूत्र, शिष्य सूत्र, एकीय सूत्र एवं प्रतिसंस्कर्तृ या ग्रन्थ-कर्तृ सूत्र के उदाहरणों को पृथकशः प्रस्तुत किया है। यथा—(एकीयसूत्रं—तत्र लोहितकपिलपाण्डुपीतनीलशुक्लेष्ववनिप्रदेशेषु मधुराम्ललवणकटुतिक्त-कषायाणि यथासंख्यमुदकानि भवन्ति। शिष्यसूत्रं—वायोः प्रकृतिभूतस्य व्यापन्नस्य च लक्षणम्। स्थानं कर्म च रोगांश्च वदस्व वदतां वरः॥ गुरुसूत्रं—देहे विचरतस्य लक्षणानि निबोध मे। प्रतिसंस्कर्तृसूत्रं—यथोवाच भगवान् धन्वन्त-रिति; इदं प्रतिसंस्कर्तृसूत्रम्। सु० सू० १/१ पर डल्हण। प्रतिरसं काकः इत्याद्येकीयसूत्रम्। 'वायोः प्रकृतिभूतस्य व्यापन्नस्य च कोपनैः' इत्यादि शिष्य-सूत्रम्। 'अहं हि धन्वन्तरि' इत्यादि गुरुसूत्रम्। 'सुश्रुतप्रभृतय ऊचुः' इत्यादि प्रतिसंस्कर्तृसूत्रम्। सु० सू० १/१ पर चक्रपाणि की भानुमती टीका)। अन्य संहिताओं की भांति इस संहिता का उपदेश दिवोदास धन्वन्तरि द्वारा सुश्रुत को हुआ। कालान्तर में इस संहिता का संस्कार, प्रतिसंस्कार एवं उपबृंहण हुआ। इसी काल में विविध सामग्रियों का मूल संहिता में सन्निवेश कर देने के कारण संहिता की शैली में एक विशेष प्रकार का पुट आ गया। गुरूपदेश को शिष्य सुश्रुत ने कहीं तो उसी रूप में ले लिया और कहीं पर अपनी जिज्ञासा के माध्यम से उसको प्रस्तुत किया और उस काल में प्रचलित अनेक आचार्यों के विचारों को भी एकीयमत के रूप में ग्रहण कर मिला दिया। चरक की अपेक्षा सुश्रुत के मूल पाठ में एकीयमतों की भरमार है। इनकी संख्या लगभग १०० से अधिक है। जब मूल पाठ में इतने एकीयमत हों तो यह नितान्त स्वाभाविक है कि टीकाकार भी क्यों न सहस्र मत प्रस्तुत करते।

एकीयमत का प्रतिपादन टीकाकारों ने नव प्रकार के शब्द रूपों में किया

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

है और वे उदाहरण के रूप में अन्ये, अपरे, इतरे; एके, क्वचित्; कश्चित्; केषांचित् एवं लोके इन पदों के रूप में उल्लिखित हैं। टीकाकार यदा कदा संकोचवश अपने से पूर्ववर्ती आचार्यों का नाम किसी विषय के प्रतिपादन के प्रसंग में नहीं लेना चाहते। कभी-कभी किसी मत के प्रति अपनी अभिरुचि को प्रदर्शित करने और न करने के लिए भी उसे इन पदों का सहारा लेना पड़ता था। प्रस्तुत अध्याय में डल्लण के द्वारा एकत्रित एकीयमत की विचार-धाराओं को अनुसन्धान की दृष्टि से प्रस्तुत किया जा रहा है :

अन्ये :

सूत्रस्थान : १/१ (४ बार), २ (४ बार); ३ (४ बार); ५, ९, १०; १४ (२ बार), १७ (२ बार), १८ (२ बार), १९, २० (४ बार), २१, २२ (३ बार), २३, २४ (२ बार), २५, २७, २८, ३० (२ बार)। २/१, २ (५ बार), ३ (३ बार), ६ (४ बार)।

३/१७, १९ (२ बार), २२।

४/३, ४, ५; ८ (२ बार)।

५/२, ५ (३ बार); ६ (२ बार), ७; ९; १३, १५ (२ बार); १७ (२ बार), १९।

६/१; २ (२ बार), ३, ४, ५ (२ बार), ६, १०; ११ (२ बार), १२; १७ (२ बार), १८ (४ बार); १९, २३, २५, २८ (२ बार)।

७/२; ५, ६ (२ बार); ७, ८, ९, १०; ११ (२ बार), १३ (४ बार), १५; १८ (२ बार)।

८/२ (२ बार); ५; ६, ८ (२ बार), ९; १०, ११ (२ बार); १३; १४।

९/२ (२ बार)।

१०/२ (३ बार); ४, ७ (२ बार)।

११/२ (२ बार), ४; ६ (३ बार); ७ (२ बार), ८ (२ बार), ९ (३ बार); १० (३ बार), ११ (२ बार), १२; १६ (३ बार), १७।

१२/२ (४ बार), ६; १३ (२ बार), १४, १६; १७, १८ (२ बार), २१।

१३/७ (२ बार); ९, १०, १८ (३ बार), २०।

१४/२ (४ बार), ७, ८, १०; १२; १६, १८, २०; २१, २४, २५, ३०, ३३।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

१५/१, ३, ४, ५, ६; ७; ८, १० (२ बार), १२; १४, १५-१६ (३ बार); १८, १६, २० (२ बार); २२; २३ (२ बार); २६; ३२; ३३, ३६-४० (२ बार)।

१६/२-३; ६-७, ८; १० (२ बार), १५-१७ (३ बार), १८, २२ (२ बार); २३।

१७/२ (३ बार), ३, ४, ८, १२, १६ (२ बार), २०।

१८/३-४ (३ बार), ५-८, १० (६ बार); १३ (३ बार), १४-१५ (२ बार), २०।

१६/२-३ (२ बार), १४, २० (४ बार), २६ (२ बार); २६।

२०/७ (२ बार), १२; १३, १६, १७, १८, १६, २०; २२-२५ (२ बार)।

२१/२; ८, १५, १८; १६, २५ (३ बार), २७, ३१, ४३ (२ बार)।

२२/३, ४, ५ (५ बार), ६, ७, ८, ६ (२ बार)।

२३/४-५, ६, १२-१४ (२ बार), १६ (४ बार), १७; १८।

२४/६-१०; ११, १२।

२५/२, १०-११ (२ बार), १६।

२६/३ (२ बार); ४, ५ (२ बार), ६ (२ बार, ११, १६।

२७/२, ४, ६ (२ बार); ७ (२ बार)।

२८/३।

२६/८-६, १० (७ बार), ११-१२; १५; १६।

३०/२ (४ बार), ३; ७।

३१/५-६ (२ बार), १६-२१, २६, ३०-३१।

३२/२ (३ बार)।

३३/३-४ (२ बार) ७-१०, ११-१२, १४, २३-२४।

३४/१-३, ५, ७-८ (२ बार); १८।

३५/३ (५ बार), ४, ७ (३ बार), ८ (३ बार); ६, १३-१४, १७-१८, २५, २६, ३० (२ बार), ३३-३४ (२ बार); ३६।

३७/१, ५ (२ बार), ६; १२-१३, १४-१६ (३ बार), १८, १६-२२ (३ बार), २६।

३८/२ (४ बार); ३ (४ बार); ४, ५ (२ बार), ६, ८ (३ बार), ६ (६ बार), १०; ११, १२ (४ बार), १४, १५-१७ (२ बार), १८ (२ बार), १६, २०; २२ (३ बार), २७, ३५, ३६ (२ बार)।

३६/२, ३ (२ बार), ५, ६ (४ बार), ७, ८ (२ बार), ६।

४०/१; ३ (२ बार); ५ (३ बार); ६ (२ बार), १०, १८।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

४१/५, ६ (२ बार), ७, ८। ४२/२, १५, १७। ४३/४, ५ (४ बार)।
४४/३, ४-५ (४ बार), ८, ९, १०-१३, २१, २५-२८, ५३-५४, ५९-६०।
४५/१-२ (२ बार), ४,५ (३ बार), १२, १६-१७ (२ बार); १८, २१, ४५ (३ बार), ४९, ५१, ५३, ५८-६०, ७० (३ बार), ७४-७६; ७७, ८१; ८५; ९९; १०६, ११०; ११३; ११४, ११९ (३ बार); १३०-१३१, १३२, १४०-१४१; १४२-१४७, १४८-१४९ (२ बार), १६१-१६५ (३ बार); १७६-१७७ (२ बार), १७८-१८० (२ बार); १८१-१८४, १८५-१९२ (२ बार)।

४६/५ (३ बार); १२-१८, १९ (२ बार), ३८-३९ (३ बार), ४०, ४१; ४२-४४, ४५-४७ (३ बार); ५३, ५८ (३ बार), ६४; ६५-६९, ७२-७३; ७४-७५ (२ बार), ७६ (२ बार), ८४-८५, ९२-९३, ९४ (२ बार); १०५-१०९ (६ बार); ११०-१११; ११९-१२८, १३४-१३९; १४० (२ बार), १४२, १५१-१६५, १९२-२०३ (३ बार), २१९-२२५, २२६-२३०; २३१ (४ बार), २३३-२४१, २५१-२५३, २५९ (४ बार); २६६-२७२ (२ बार), २७३ (४ बार), २९०; २९१-२९७ (३ बार); ३००-३११, ३१२-३२०; ३२१-३२५, ३२७-३२९, ३४२-३४३, ३४५, ३४६-३५३; ३६७ (२ बार), ३७०-३७१; ३८४-३८९ (३ बार); ३९७-४०१ (३ बार), ४१७-४२२ (२ बार), ४३५-४४१; ४४२; ४५५-४५९, ४७२-४८३, ४८९-४९२; ५०४ (६ बार); ५०७-५१०, ५१८; ५२३-५२४, ५२५-५२७, ५२८-५२९, ५३८, ५३९-५४२; ५४३-५४४ (२ बार), ५४८ (४ बार); ५४९-५५०।

निदानस्थान : १/४-५; ६; १०-११; ४५, ५८ (३ बार), ६०; ६१, ६४, ७५।
२/८, १३, १५, १७। ३/१-२; १२। ४/३ (२ बार), ५-६।
५/७ (३ बार), १२ (३ बार), १३, २०-२१ (२ बार)।
६/३ (२ बार), १७। ८/७-८, ११। ९/१-२।
१०/१-२ (३ बार), ५, ७; ८, ११-१४। ११/७, १०, १२, १६।
१२/१-३, १८-२०। १३/१-२; १५-१९, ३१-३९, ४०-४५।
१४/१-२ (२ बार), ३-१० (२ बार); ११-१५।
१५/८। १६/१-३; ४८-६०।

शारीरस्थान : १/२ (२ बार), ७-८, १२-१३, २२। २/२५; ३२; ४०-४२।
३/४-५; ७-९, १६। ४/७२। ५/२; २८। ६/२२, ८१। ९/१०।
१०/१-२, ७-१०; ५० (२ बार), ६० (२ बार)।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

चिकित्सास्थान : १/२ ; ३५-३६, ३८-३९, ४७, ४८, ६०-६२, ६३, ८४-८६ (३ बार), १०१।

२/१८; १९, २१-२२, २८; २९ (४ बार), ३० (२ बार); ४७-४८; ६४, ६५-६६ (३ बार)।

३/४, ५, ९१-१, २६; २७, ३३, ३४; ३७ ४०; ४५।

४/१-३, ४, १५, १६, २०, २१, २३, २६, २७।

५/६, ८ (३ बार), ९, २४-२५, ३१-३२, ४४।

६/३-४ (२ बार), ९-११ (२ बार), १३, १४, १८-२०।

७/१-३ (४ बार); ६, ७-८ (२ बार), १२, १३ (३ बार), १७-१८।

८/५।

९/३-४ (२ बार), ५-८ (२ बार), १०-१२ (४ बार), १३, १६ (२ बार); १८-२०, २४; २७-२८, ३१-३३।

१०/३-५, ६, १४, १५-१६। ११/५; ८-११ (५ बार)।

१२/३-६, ८, ११, १२। १३/६-७।

१४/१-२, ९-१०, १३-१६, १७। १५/७-१२, १६।

१६/३-६ (२ बार), १७-२०।

१७/६ (२ बार), १२, १४, २१ (२ बार); २२-२३।

१८/४ (२ बार), ५-६, ७, १२-१५ (२ बार), १६-१७, १८, २०-२१; २७, ३२-३३, ४०।

१९/६-७; १९-२०; २२-२४, २५-२६।

२०/८-९; १२-१५।

२२/१-३; १८-२१ (२ बार), ४३-४४। २३/१-२, १५-१७।

२४/१-२, २५, २८-३९, ६१-६५ (२ बार); ७३।

२५/१५-१७, १८, १९। २६/३-४, ९-१९।

२७/६-८; ९, १०-११। ३१/४-८; १९ (२ बार); २०-२३।

३३/१-२; ५-६ (२ बार), १४, २४। ३४/७; ११-१२; १३, २२।

३५/७-८, १५; १६ (२ बार)। ३७/१-२; १३, १८-१९; २६।

३८/३६-३८ (२ बार)। ३९/१-३। ४०/१-२, १६-१७।

कल्पस्थान : १/२, ३, ५, ७, १२ (२ बार), १३, २१, २३।

२/२; २६ (३ बार), २८ (२ बार)।

३/४ (३ बार), १२। ४/२५। ५/५, ६, २४ (३ बार); २५, ३१।

६/५। ७/३, ४, ८ (३ बार); १५, ३७-३८, ५०-५१, ६०-६२।

उत्तरतन्त्र : १/१०; ११। ५/५। ६/८, १६।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

७/१२, १५ (३ बार)। ९/२, ३-४ (२ बार)।
१०/४ (२ बार), ५-६। ११/२-४ (२ बार), १०।
१२/५, १२, १८-२२, ३२ (२ बार)। १३/६। १४/६। १५/११-१२।
१७/६; ७; १०; १८, २०-२१ (२ बार), २२ (२ बार), २५ (३ बार), २६; २७ (२ बार), ३० (२ बार); ३१ (२ बार); ४५।
१८/६ (२ बार), १६, २३ (२ बार), ३०; ४२, ४४, ४५ (२ बार), ४६ (३ बार); ४७ (२ बार)।
१९/२ (२ बार), ८; ९; १४। २२/३ (२ बार), ४, १४।
२१/३-४, ८, १३; १९-२०, ३१-३५ (२ बार)।
२२/३, ६। २३/३, ५। २४/३, १३, २४।
२६/१-२, ३-५; ७, १०, १२, १३-१४ (२ बार); १६-१७।
२७/५। २९/१-२ (४ बार)। ३०/२ (३ बार)।
३१/२ (६ बार)। ३२/२-३, ६ (४ बार)। ३३/१-२। ३४/२।
३५/१-२ (४ बार)। ३६/२ (३ बार)। ३७/२ (३ बार); ३।
३८/६, ७, ८, १० (२ बार), १६।
३९/१; २ (४ बार); ४, ६-७, ९, ११ (३ बार), १३ (२ बार), १४-१५; १६, १९-२१, २४, २५; २६-२८, २९ (२ बार); ३०, ३६, ३८, ४१, ४२, ४५; ४८, ५०; ५६; ६०-६१, ६५-६६, ८८, ९०, १०४; ११०; १३२-१३३ (२ बार), १३४, १३८, १५०, १५२।
४०/९, १२-१३, १६ (२ बार), १७, २० (२ बार), २१-२९, ३४ (५ बार), ३७-३८, ३९ (२ बार); ४४, ४८-४९, ५२; ६३; ६६ (२ बार); ६८, ७३ (२ बार), ७९, ८७,८९ (७ बार); ९३, १०४, १०५ (२ बार), १०७। ४१/३, ४, ७ (२ बार), ९, १९, ३०।
४२/३, ९-१०, १६; २२ (२ बार); २३, २४-२५, २७, २८, ३६ (२ बार); ३७-३८, ४४, ४९-५०, ५६-५७; ५९-६०। ४३/२, १०।
४४/२, ८-९, १४ (३ बार), १७, १८।
४५/६, १०, १८-१९, २३-२४, २५-२६।
४६/१-३ (२ बार); ४ (२ बार), ९-१०; १३।
४७/२७-२८ (३ बार), २९, ३४, ३५ (२ बार), ३७ (१२ बार), ३९-४०, ४१, ४५-४६ (३ बार) ४८।
४८/१४-१५ (२ बार), २४ (३ बार), २६-२८।
४९/९ (२ बार); ११-१२, १७ (३ बार)। ५०/१०, १२, १६।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

५१/१६-१७, १६, २३, २५। ५२/६, १५-१६; १६, २१-२२ (२ बार); २६। ५३/२। ५४/१-२, १४, १५, १६ (२ बार)।

५५/१, २, १८, ३३, ३६-३७। ५६/६ (३ बार)।

५७/३-४, ७, १२, १३।

५८/४, २४, २८, २६-३० (३ बार)। ५६/१, १३; १७।

६०/१, २, ३, ४ (२ बार), ६; ११, १३ (२ बार), १४, १६, १७ (२ बार), १८, २२, २४ (२ बार), २६-२७; २६ (३ बार)।

६१/२, ११ (२ बार), १२-१३, १५, १६, १८, २०, २१-२२ (२ बार), २३। ६२/२, ५, ८, १० (२ बार), ११-१३, १४ (५ बार)।

६३/३। ६४/५-६ (२ बार), १३, २३। ६५/२। ६६/२, ६।

अपरै :

सूत्रस्थान : १/२०, २६। ३/१६। ५/२, ६, १३।

१०/२ (२ बार), १० (४ बार)। ११/१७। १२/१-३ (२ बार)।

१५/६, १२, १८, २०। १६/१५-१७, २२।

१८/१० (२ बार), १३ (२ बार)। १६/२६ (२ बार)।

२०/४; १२। २१/६, १०-११, ४३। २३/६, १६। २६/१-२।

२७/६। ३०/३०। ३१/१६-२१, ३७ (३ बार)। ३३/२२।

३४/५ (२ बार)। ३५/३; ८, १३-१४, ४२।

३७/१२-१३; १६-२२, २३-२६। ३८/३ (२ बार), ५, ६ (३ बार), १४ (२ बार), २२ (३ बार), २७, ३५।

३६/३ (४ बार), ४, ६, ८। ४२/२०। ४३/१-३।

४४/२१, २२, ५५-५८। ४५/१-२, २१।

४६/४८-५२ (२ बार), ५३, ५८, ७६, ६४, १४२, १८७-१६१, २२६-२३०; २३१ (३ बार), २५६ (२ बार), २६४, २७३, ३५०, ४४०; ४४५, ५२८, ५४८ (२ बार)।

निदानस्थान : १/७५। २/११। ३/१३। ५/१३, १५-१६।

६/३। १०/३।

शारीरस्थान : १/२। ३/१६। ८/५५। ६/१०। १०/५३ (२ बार)।

चिकित्सास्थान : १/२५, ३५-३६, ४८। २/२८, ३६-४१, ६५-६६।

३/४०। ४/२६ (२ बार)। ६/३-४ (२ बार)।

८/१७-१८ (२ बार)। ६/५-८, १८-२० (२ बार)। १०/१४।

११/५; ८। १२/६। १४/६-१०। १५/१७। १६/७-१०।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

१७/३; २२-२३। १८/४, १२-१५, २४-२६। २३/१-३।
२४/१२-१३; ४४-५०; ६६। २६/९-१९। २७/६-८।
२८/१९-२२। ३३/५-६। ३८/३-५, २९-३०, ४७। ४०/१६-१७।
कल्पस्थान : १/१२। ४/२५। ५/२४। ६/२-३, ६ (३ बार)।
७/६। ८/५२-५९।

उत्तरतन्त्र : १/२। १८/२३, ३०। १९/८। २१/३६। २२/६।
२४/२०। २६/१३-१४ १६-१७। २८/६। ३३/१-२।
३९/१, २, ३८; ८८, १३०-१३१; १३४ (२ बार); १३५ (२ बार), १३७; १५५। ४०/१७; ३७-३८।
४२/२८, ३५, ४४, ५२; ५७, ६४-६५।
४४/१ (२ बार), २, ८-९, १०-११ (२ बार); १४, १७।
४५/१४-१५ २७। ४६/१-३, ४। ४७/१६, २७, ३७।
४८/१९, २४। ५१/२८। ५२/१७-१८ (२ बार), २३।
५४/१-२, ४। ५५/३२, ३३। ५६/७।
५७/३-४; १२, १३। ५८/३, १४। ५९/१, १७।
६०/२२, २९। ६१/११; २३। ६२/१४। ६३/३। ६४/२-३।
६५/५, १९। ६६/२।

इतरै :

सूत्रस्थान : १/१।

एकै :

सूत्रस्थान : १/१ (२ बार), २६, २७। २/२ (२ बार), ३। ३/१९।
४/४। ५/३। ७/४ (७ बार), ११, १३ (२ बार)।
११/९। १२/१३। १३/१९।
१४/१०, ३०। १५/६, ३९-४०। १६/८।
१८/१०। २१/२ (२ बार)। २२/५; ७; ९।
२९/५-६। ३३/७-१०। ३५/३३-३४, ४२।
३७/५, १२-१३। ३८/२ (२ बार), ५ (२ बार), ९, १४ (२ बार), १५-१७। ३९/८। ४०/५।
४२/३-४, १५, १६। ४३/१-३। ४४/१९, ५५-५८।
४५/१-२ (२ बार), ७-९, ४५, ५१, १३०-१३१, २०३।
४६/१५-१८, ४८-५२ (२ बार), १६६-१६७, २२६-२३०, २३३-२४१ (२ बार), २५९, २६६-२७२, २९१-२९७, ३२७-३२९, ३६८-३६९,

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

३७६-३८०, ३८४-३८६, ४१२-४१६, ४१७-४२२ (२ बार), ४५५-४५६, ५४६-५५० ।

निदानस्थान : १/७५ । २/७, १३ । ३/८ । ५/७, १५-१६ । ६/१०२ । १३/३-५ । १५/१-२ ।

शारीरस्थान : ८/३६-५१ (२ बार) । १०/६० ।

चिकित्सास्थान : १/४६, ६०-६२ । २/१८, ६४ । ४/१६, २६ ।
५/८, १२, २४-२५ । ७/६ । ६/१०-१२, ३०-३१ ।
१०/१-२, ६ (२ बार) । ११/५ (२ बार), ८-११ । १२/६ ।
१३/६-७ । १५/१६, १७ । १८/१२-१५, ३४-३६ ।
२४/१-२, १२-१३ । ३८/३-५ ।

कल्पस्थान : ३/४, १२ । ४/२५ ।

उत्तरतन्त्र : ७/१५ । ६/२ । १८/३२ । ३३/१-२ ।
४०/६३ । ४६/४ । ६६/६-८ ।

क्वचिद् :

सूत्रस्थान : ४३/८ । ४६/२५१-२५३, २६०, ३२१-३२५, ३६७, ४४२ ।

शारीरस्थान : १०/२४, ४८ ।

चिकित्सास्थान : ५/८ । २०/६-७ । २३/१५ (२ बार) । ३८/१० ।

कल्पस्थान : ८/५८-५६, ६६ ।

उत्तरतन्त्र : ३/१२ । २७/६ । ६०/२२ ।

कश्चिद् :

निदानस्थान : १/४०-४१ ।

केचिद् :

सूत्रस्थान : १/२, ४ (२ बार), ६, १२, १४, १६, २२, २३ (२ बार) ।
२/३, ५, ६ । ३/३, १४, २० । ४/५ ।
५/३; ४; ६, ७, ११, १३, १५; १८ । ६/२ ।
८/५. १०, १३ । ६/४-५ । १०/८ ।
११/२ (२ बार), ४, ६ (६ बार), ७, ११ (४ बार), १२, १४ ।
१२/४, ५, ६, १०, ११, १८, १६, २३ (३ बार) ।
१३/३ (२ बार), ४, ७, १२, १७, १८ । १४/२ (२ बार), १४, १५, १६, २१ । १५/५, ७ (३ बार), ८, ६ (२ बार), १०; १२, १३ (२ बार)

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

१७, १८, १९; २३ (२ बार), २८, २९-३१ (३ बार), ३९-४० (३ बार)।

१६/२-३, ४-५, ९; १५-१७ (२ बार), १८-२१ (२ बार), २२ (२ बार)।

१७/१९। १८/२, ३-४; २०; २१-३०।

१९/८-१३; १६-१७; २७, २८, २९, ३१-३३। २०/३, ७, १२; २१ (२-बार)। २१/४, ६, १०-११, १५ (२ बार), २२ (३ बार), ३६ (२ बार), ३८, ४०। २२/५।

२३/२, ३ (२ बार); १०, १८। २४/३, ५, ७ (२ बार), ११।

२५/२, ९, १२-१३, २०, २१-२५।

२६/१-२, ३ (२ बार), ७, ९; १०, १३-१५।

२७/३, ४ (२ बार), ५, ६ (२ बार), ८ (२ बार), १२।

२८/८, ९, १०-१३। २९/८-९; १०, १३, १४ (२ बार), १५ (२ बार), १६। ३०/८। ३१/३-४; ५-९।

३२/२ (४ बार)। ३३/२ (२ बार); ३-४; ५-६, ११-१२, १५-१७, २२।

३४/५, ६, २१। ३५/२, ५; ६; ८ (२ बार), १२, २१, २५, २६, ३३-३४, ४२। ३६/२, ६-८, १३-१४। ३७/६; १८; २३-२६ (२ बार)।

३८/२ (२ बार), ६ (२ बार) १२, ३१, ३२, ३७; ३८-४० (२ बार)।

३९/६, ७, १० (२ बार)। ४०/९ (४ बार)।

४२/२२। ४३/१-३, ४, ६। ४४/३, ४-५; १५-१६, ३३।

४५/१-२, ३, ११, १२; ८२, ८५; ९९; ११४, ११५; १३२, १६१-१६५; १७६। ४६/२०, ४०, ४२-४४, ५८-६३ (२ बार), ६४; ६५-६९, १६८-१७० (३ बार), १९२-२०३, २१८, २३१ (३ बार), २३३, २५१-२५३, २७३, २९०; २९१-२९७, ३१२-३२०; ३२७-३२९, ३४२-३४३, ३४६-३५३, ३५४-३६६, ३७०; ३७६-३८०, ३८१, ३९७-४०१ (२ बार); ४०२-४०५; ४३५-४४१; ४७५-४८३, ५०४, ५१०, ५३९-५४२, ५४३-५४४ (२ बार); ५४८ (३ बार)।

निदानस्थान : १/२ (२ बार); ३ (२ बार), ८; ९, १५, १८-२३. ३९, ४४, ५६-५७; ५९, ६०, ७२; ७६। २/८, १६, १८।

३/९, १२ (२ बार), १५। ४/७। ५/९-१०, १५-१९ (२ बार)।

६/२९। ८/१-३. ४, ११। ९/१६-१७, २५-२६। ११/१३-१४। १२/७।

१३/२०-३०। १४/३-१०। १६/६८-७२।

शारीरस्थान : १/७-८। ३/१६। ४/२६-३९; ६५-६८।

६/२७-२९, ५७-५८। ८/३९-५१ (२ बार)। १०/१८; ३८-४०; ६०।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

चिकित्सास्थान : १/२. २२, २५, २६-२८, ६४-६५ (२ बार), ६८-६६, ६८ (२ बार), १०४, ११५-११७। २/१७, २८, ३०, ४२-४६।
३/४ (२ बार), ६, ३७, ४०, ४६। ४/१-३; ८, १५, १६, २३, २६ (२ बार), २७। ५/१६-२० (२ बार), ३१-३२ (२ बार)।
६/६-११ (२ बार), १५। ७/५। ८/७, १४-१६।
६/३, ४, ५-८, १७, ३४-३५। १०/६। ११/१-२, ५, ८-११। १२/८।
१४/१-२, ६-१० (२ बार), १३-१६, १७ (२ बार), १८-१६।
१५/१ ३ (२ बार), १५। १६/११, २१। १७/१४। १८/४, ८, १८।
१६/६-७, १८। २०/१०-११। २२/४३-४४। २३/४-६, १५-१७।
२४/१-२, १५-२१, २५-२६, २८-२६, ६६। २५/३०।
३१/६-१०, ११, १२-१४, १६ (२ बार), २०-२३। ३२/१०-११।
३३/७, १०, ११-१२ (४ बार); १३, १८ (३ बार); १६, २१-२२, २८, ३०-३१। ३५/१३। ३६/१६। ३७/२ (२ बार); ३-४, १३ (२ बार), २०-२२, ४२-४३।
३८/१-२ (४ बार), ३-५, ६, १५, २६-३०, ४०-४३, ४७। ३६/१।
४०/४, १५।

कल्पस्थान : १/११, २६। २/१५-१६, १६-२० (२ बार)।
३/४, १२ (२ बार), २०। ४/३, ३१-३३ (२ बार)। ५/१८, २७, २६।
६/४, ६ (२ बार); ६। ७/३, ४ (२ बार), ६, ७ (२ बार)।
८/४, १०, ११, १५, ४२, ४४, ६४ (२ बार), ६५ (२ बार)।

उत्तरतन्त्र : १/२ (२ बार), ३, ४, ५; ६, १० (२ बार); १२, १४, २०। ३/१३, १५, १८, १६। ४/७। ५/५।
६/२, ४, ७। ७/६, १२, १६, २१। ६/२ (३ बार)।
१०/५-६ (२ बार), ७। ११/२-४ (२ बार), ५ (३ बार), ६-७।
१२/४ (२ बार), ८, ११, १७, १८-२२ (३ बार), २३, २६ (२ बार), ३२। १३/४। १४/२। १५/४, ७, ८, ११-१२ (४ बार)।
१६/१. २, ४। १७/३ (२ बार), ५, ७ (२ बार), ८, २०, २२-२३ (३ बार), २६, २७ (३ बार), २८ (२ बार), २६।
१८/१०, ११, १३, १६-२१ (२ बार), २३ (२ बार), २४-२५, २६, ३३, ३४ (२ बार), ३५ (२ बार), ३६, ४५ (६ बार); ४६, ४७, ५०, ५१। १६/५-६, १४ (३ बार)। २०/१२-१३।
२१/२, १३, २५, २८, ४२। २२/२, ३, ८।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

२३/३ (२ बार), ५। २४/२, ६, १०-११; १२, १३ (२ बार), १६-१८, २०। २५/२ (४ बार), ४-५, ८, ६-१०, १२।

२६/१३-१४ (२ बार), १५, १६-१७। २७/६, ११, १३।

२६/१.२। ३१/२। ३२/६-७। ३३/१-२। ३६/२। ३८/६, ७, १६।

३६/३, ८, १२, १६, (२ बार), १७,२५, ३०, ३२ (२ बार), ३७ (२ बार), ३८, ५४-५५, ५६, ५६, ६०-६१, ६४ (२ बार), ६८, ७३-७४, ८८, ८६ (२ बार), ६६, १०३, १०४, १०६; १०७, १११, १३०-१३१, १३२-१३३, १३४ (३ बार), १३५, १५४, १५५, १५६।

४०/२, ३, ६, १०, ११ (२ बार), १२-१३, १४, १६, ३०; ३६; ५३।

४१/१३ (२ बार), १७; २२, २३, २४, २८।

४२/२ (२ बार), ३, ७, ८, ६-१० (५ बार), ११, २२, २६-३०, ३४, ३६, ३८, ४३, ५६-६०; ६२। ४३/६-७ (२ बार), १२।

४४/२ (२ बार), ८-६, १२; १४, १८; २६, ३३।

४५/२, ६, ११, १४-१५, १८-१६ (४ बार), २३-२४, २८।

४६/१०३; ६-१० (२ बार), १३।

४७/७, १७; २०, २३ (२ बार), २७, ३४; ३६, ४१, ४२।

४८/४, ६ (२ बार); ८; १० (२ बार), १४-१५; १६, २०-२३, २४, २६, २८। ४६/२ (२ बार), ३, ४, ५, ११-१२; १४, १५, १८।

५०/५, १३ (२ बार); १६। ५१/१५, १६-१७, २२, २५ (२ बार), २६-२७, २८ (२ बार), ३०, ३१-३२, ३३-३४।

५२/३; ४, ५; ६; १५-१६ (२ बार); १७-१८ (२ बार), २६-२८ (२ बार); ३१-३२ (२ बार)। ५३/३-४ (२ बार), ५-६,'७-६ (२ बार), ११; १४।

५४/१-२, ३-४, १३, १६, १७-१८ (२ बार)।

५५/२; ७, १०, ११-१२, १४-१७, २४-२७ (२ बार), ३१ (२ बार), ३२, ३३, ३८। ५६/३ (२ बार); ६, १० (२ बार), ११ (५ बार), १३, १४ (४ बार), १५, १६।

५७/२ (२ बार); ५-६, ८, १०-११; १२ (२ बार), १३ (३ बार), १४-१६, १७ (२ बार)।

५८/३, ७, ८; ६, १४, १५, २१, २४, २५, २७, २६-३० (२ बार)।

५६/१-२। ६०/१८, २६, ३०, ३१। ६१/३, १५; १६।

६२/५, ११-१३। ६४/१, २-३ (२ बार); ७, १०, ११ (२ बार); १२, २०। ६५/४, २१, ३७-३८।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

केषाञ्चित् :

सूत्रस्थान : ४०/५ ।

लोके :

सूत्रस्थान : १/२३ । ६/२७ । ७/६; ११ । ८/१ । ९/३ । ११/१५ । १३/१३ । १४/१८, २८ । १८/१० (२ बार) । २०/५ (५ बार) । २१/२३, २७ । २२/८ । २३/४-५ । २४/९ । ३५/८; २६ ।
३६/१-२ । ३७/५, ७-८, ९, १०-११ (२ बार), १२-१३, १४-१६, १७, १८ (२ बार), १९-२२ ।
३८/२ (६ बार), ३ (७ बार), ४ (४ बार); ५ (६ बार), ६ (३ बार), ७ (३ बार), ८ (२ बार), ९ (५ बार), १० (२ बार), ११, १२ (४ बार), १४ (३ बार), १५-१७ (३ बार), १८, २१, २२ (२ बार), २३ (३ बार), ३०, ३२ (२ बार), ३३ ।
३९/२ (२ बार); ३, ४, ५ (४ बार); ६; ७ (३ बार), ८ (२ बार) ।
४२/१५ (२ बार), २० । ४४/१-२ (२ बार), १०; १७-१८; २५-२८ ।
४५/३ (२ बार), ९९, १०६, ११२; ११९, १४२-१४७ (३ बार), १६१-१६५ ।
४६/५ (२ बार); १९ (५ बार); २५-२६, ३३-३५, ५३ (४ बार); ५८ (५ बार), ६४ (१० बार), ७०-७१ (४ बार), ७२-७३ (३ बार), ७४-७५ (२ बार), ७६ (३ बार), ८४-८५, ९४ (२ बार), १०५-१०९ (८ बार); ११०-१११ (२ बार), ११२ (२ बार), ११३-११८, ११९-१२८ (२ बार), १४२ (२ बार), १४४-१५०, १६६-१७० (४ बार), १८१-१८६, १९१-२०९ (२ बार), २०४-२१७ (२ बार), २१९-२२५, २२६-२३० (२ बार), २३१ (३ बार), २५९ (३ बार), २६४-२६५, २६६-२७२ (४ बार), २७३ (५ बार), २७५-२८९ (२ बार), २९१-२९७; २९८, २९९, ३५४-३६६ (३ बार), ३७०-३७१ (३ बार), ४३५-४४१ (२ बार), ४४३-४४९, ४६०-४६६, ५००-५०३ ।

निदानस्थान : १/१८-२३, ५९ । २/२-३, १०-११ । ५/७ । ९/१६-१७ । १३/२०-३० (२ बार), ३१-३९ ।

शारीरस्थान : २/३२ । ४/१६-१७, ६५-६८ । ५/३, २८-३० । ६/४५ । १०/६० ।

चिकित्सास्थान : १/५०-५१ (२ बार), ९०-९२, ९३-९५; ९९-१०० । ४/२०, २१, २२ । ५/१३-१४ । ६/६ । ७/७-८ । ९/५-८ (२ बार), १८-२० । ११/८-११ (२ बार) । १२/९ ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

१७/७ (३ बार), १४; २२-२३, २४-२९। १८/२४-२६।
१९/१७, २७, २८। २४/१५-२१, २८-३१, ४४-५०।
२५/१८; १९, २१। २६/९-१९। २७/६-८। ३०/१०-११।
३१/४-८ (४ बार), १९। ३४/५। ३७/४५-४६। ३८/९।
कल्पस्थान : १/१० (३ बार); १०-१५ (२ बार)। ३/४।
६/२-३, ६। ७/७।
उत्तरतन्त्र : ३/२३। ६/११। ९/३-४ (२ बार), २४/२०।
२६/१५। २८/४-५। ३२/२-३। ३५/१-२। ३९/६७, ११५, १३४।
४१/१८। ४४/१७। ५०/१५। ५१/१८, ३६। ५४/१-२, १५।
५८/२१। ६०/२९।

स्थानानुसार एकीयमतों का परिसंख्यान

एकीयमत	सूत्रस्थान	निदान-स्थान	शारीर-स्थान	चिकित्सा-स्थान	कल्प-स्थान	उत्तर-तन्त्र	योग
अन्ये	६५८	६६	२३	१८२	३६	३८४	१३४९
अपरे	९५	७	६	३९	९	७८	२३४
इतरे	१	—	—	—	—	—	१
एके	८३	९	३	२७	३	७	१३२
क्वचिद्	६	—	२	५	३	३	१९
कश्चिद्	—	१	—	—	—	—	१
केचिद्	२९२	३७	११	१२६	३५	३९८	८९९
केषाञ्चित्	१	—	—	—	—	—	१
लोके	२३९	१०	७	४४	९	२१	३३०
एकीयमतों का सम्पूर्ण योग							२,९६६

एकीयमतों की समीक्षा

गत पृष्ठों में विभिन्न शीर्षकों के अन्तर्गत प्रतिपादित एकीयमतों के विषयों के अवलोकन से यह स्पष्ट हो जाता है कि जहाँ तक डल्हण का अपना अर्जित ज्ञान सुश्रुत के विषय के स्पष्टीकरण के लिए पर्याप्त प्रतीत नहीं हुआ है वहाँ उन्होंने लोक में प्रचलित स्व-समकालीन अनेक विचारधाराओं को तत्तद्

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

वस्तुओं के स्पष्टीकरण के उद्देश्य से स्वीकार कर लिया है। विभिन्न देशों में विभिन्न प्रकार की वनस्पतियों एवं पशुओं के परिचय के अवलोकन से ऐसा प्रतीत होता है कि वह कुशल पर्यटक एवं स्व-विषय के सम्यग् वेत्ता थे। यदि डल्हण इन एकीयमतों के माध्यम से विभिन्न टीकाकरों के नामविहीन वचनों को उद्धृत न करते तो बहुत से विषय आयुर्वेद के अध्येताओं को ज्ञात न हो पाते। इसके अतिरिक्त सर्वाधिक विशेषता एकीयमतों की यह रही है कि अनेक आयुर्वेदीय आचार्यों की कृतियों का इसमें सन्निवेश हुआ है जिसके कारण विषय के विकास और वस्तुस्थिति को समझने में एक मार्ग प्रशस्त हो जाता है।

यदि इन एकीयमतों का विषयोपन्यास पूर्वक समीक्षात्मक अध्ययन किया जाय तो यह एक स्वतन्त्र शोध का विषय बन सकता है, जिसके लिए अधिक समय एवं श्रम अपेक्षित है।

प्रस्तुत अध्याय में २६६६ एकीयमतों को यदि अक्षरशः लिखा जाता तो शोध-प्रबन्ध के कलेवर में अति वृद्धि हो जाती। अतएव इस भय से केवल उनके संकेतों का निर्देश कर दिया गया है।

●

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

पञ्चम अध्याय

भौगोलिक सामग्री का अध्ययन

इतिहास और भूगोल, काल और देश से सम्बन्ध स्थिर करने के महत्वपूर्ण साधन हैं। भारतीय संस्कृति के प्राचीन ग्रन्थकर्ताओं और टीकाकारों ने अपना स्वल्प ही परिचय दिया है; जिससे उनके काल और देश के विषय में सम्यक् ज्ञान नहीं हो पाता। किसी भी व्यक्ति के स्थान का ज्ञान प्राप्त करने के लिये उसकी कृति में विद्यमान भौगोलिक सामग्री पर ही पर्यवेक्षक को आधारित रहना पड़ता है। इस भौगोलिक सामग्री के अध्ययन से जहाँ एक ओर कृतिकार का परिचय मिलता है, वहाँ दूसरी ओर तत्कालीन विद्यमान जनपदों एवं नगरों के अस्तित्व का भी परिचय हो जाता है। पर्वत और नदियों की स्थिति तो प्रायशः स्वाभाविक मानी गयी है, किन्तु कभी-कभी प्राचीन काल में विद्यमान उन नदियों एवं झीलों का सम्प्रति अस्तित्व देखने में नहीं आता। आयुर्वेदीय संहिताओं के टीकाकारों ने भी यत्र-तत्र प्रसंगवश अपनी भौगोलिक अभिज्ञता का परिचय अनेक माध्यमों से दिया है। विभिन्न जनपदों के निवासियों के भोजन; रोग तथा उस प्रदेश में उगने वाली वनस्पतियों का परिचय इसी के माध्यम से टीकाकार प्रस्तुत करते हैं।

सुश्रुत के प्राचीन टीकाकारों में अग्रगण्य आचार्य डल्हण का आविर्भाव चक्रपाणि (१०६०ई०) के अनन्तर बारहवीं शताब्दी में उत्तर प्रदेश के मथुरा नगरी के समीप अंकोला नामक स्थान में हुआ। यह स्थान तत्कालीन भादालक नामक जनपद के अन्तर्गत था। आगरा एवं मथुरा मार्ग में स्थित अकोला नामक स्थान आज भी उस अंकोला की स्मृति करता है। इतना स्वल्प परिचय डल्हण ने अपनी जन्मभूमि के विषय में सुश्रुत की निबन्ध-संग्रह-व्याख्या के आरम्भ में दिया है। यद्यपि अनेक विद्वानों ने इनके आवास या जन्म-स्थान को कल्हण इत्यादि नाम के साम्य के आधार पर कश्मीर माना है (री नाऊ ऐट फिलियोज़ा : ले इन द क्लासिक २; पृ० १५६), किन्तु अन्तःसाक्ष्य एवं अन्य कई ठोस प्रमाणों के आधार पर इन्हें कश्मीरी नहीं कहा जा सकता। क्योंकि नाम के अन्तिम पद के साम्य के कारण यदि इन्हें कश्मीरी माना जाय तो इनके पिता या पितामह का नाम भी णान्त होना चाहिए पर सभी नाम पालान्त हैं। अतएव इनका कश्मीरी होना सिद्ध नहीं होता। इसके अतिरिक्त समस्त टीका

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

के अवलोकन के अनन्तर ऐसा कोई संकेत नहीं मिलता जो डल्हण को कश्मीर के विषय में बहुलता से परिचय दे।

डल्हण ने अनेक विवादग्रस्त ओषधियों के परिचय के प्रसंग से पर्याप्त मात्रा में अपने भौगोलिक ज्ञान का परिचय दिया है। यह प्रतिभा आयुर्वेदीय संहिताओं के किसी भी टीकाकार में नहीं है। लोक में प्रचलित ओषधियों, पशुओं एवं विविध प्राणियों का भौगोलिक दृष्टि से परिचय देना डल्हण की अपनी मौलिक विशेषता है। जलौकाओं एवं सोम ओषधियों के प्राप्ति-स्थान के प्रसंग में उनकी इस प्रतिभा का विशद चित्रण हुआ है।

भारत का पारम्परिक विभाग

प्राचीन भारतीय साहित्य के ग्रन्थों तथा आयुर्वेदीय संहिताओं में पूर्वदेश या पूर्वापथ, पश्चिमदेश, उत्तरापथ, दक्षिणापथ एवं मध्यदेश के रूप में भारत

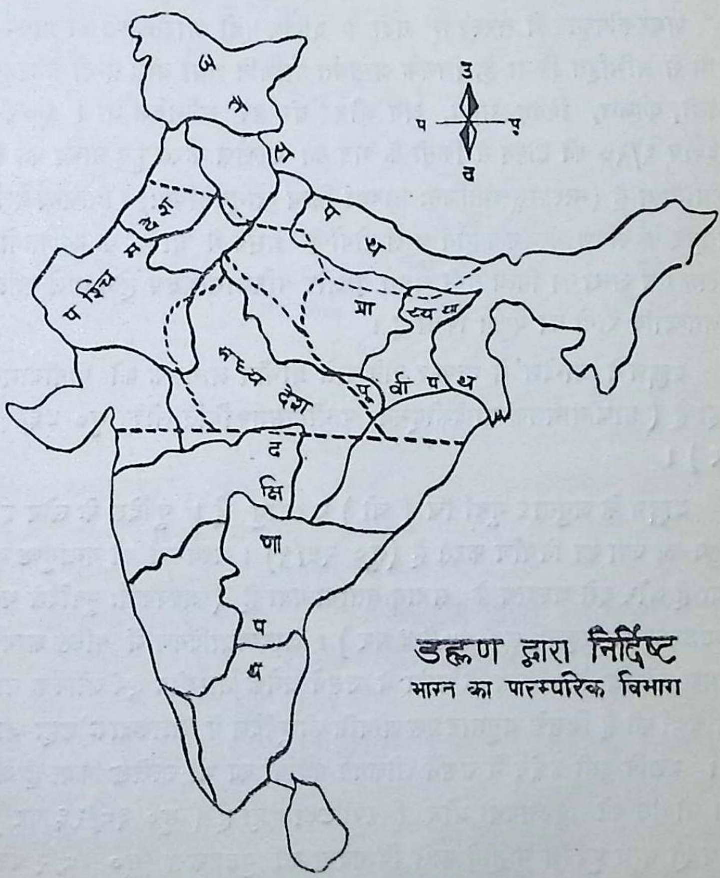

डल्हण द्वारा निर्दिष्ट
भारत का पारम्परिक विभाग

के पाँच परम्परागत विभागों का उल्लेख दृष्टिगत होता है। डल्हण ने एक

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

पश्चिम खण्ड के अतिरिक्त शेष चारों का प्रचुर सन्दर्भों के प्रसंग में उल्लेख किया है।

पूर्वदेश या पूर्वपथ

निबन्ध-संग्रह-व्याख्या में पूर्वदेश का २८ बार ओषधियों एवं प्राणियों के परिचय के माध्यम से उल्लेख हुआ है। 'पूर्वापथ' शब्द का एक बार ही प्रयोग किया है (अजाजी पूर्वापथे प्रसिद्धो जीरक विशेषः उ० ४७/२० की व्याख्या में)। प्राच्य जनपदों का उल्लेख पाणिनि की अष्टाध्यायी (४/१/१७८) में मिलता है और इसके व्याख्यान में अष्टम या नवम शताब्दी के जयादित्य 'वामन' ने काशिका में इसके अन्तर्गत पांचाल, विदेह एवं अंग का उल्लेख किया है। पुराणों ने इसमें मगध और कलिंग का भी समावेश कर दिया है। डल्हण ने इनमें से विदेह, मगध एवं पांचाल का नामतः उल्लेख किया है।

अमरकोषकार ने सरस्वती नदी के दक्षिण-पूर्वी भारतखण्ड को प्राच्य देश नाम से अभिहित किया है, जिसके अन्तर्गत पाणिनि तथा बौद्ध ग्रन्थों के अनुसार काशी, कोशल, विदेह, मगध, अंग और बंग का सन्निवेश था। सूत्रस्थान अध्याय ६/२७ की टीका में किसी के मत का उल्लेख करते हुए प्राच्य का नाम लिया गया है (मत्स्यामूलभोजिनः प्राच्या नित्यं चानूपसेविनः)। विभिन्न देशों में आहार के परिणामस्वरूप होने वाले रोगों के प्रसंग में 'प्राच्य' के व्यक्तियों को मत्स्य एवं अम्ल का नित्य सेवी माना है और परिणामस्वरूप होने वाले श्लीपद, गलगण्डादि रोगों का वर्णन किया है।

डल्हण ने 'प्राग्देश' में उत्पन्न होने वाले प्राचीन आमलक को पानीयामलक कहा है (प्राचीनामलकं प्राग्देशोद्भवं पानीयामलकमिति लोके, सू० ४६/१४२ पर)।

डल्हण के अनुसार मूर्वा चि (चो) र स्नायु है। पूर्वदेश के लोग इससे धनुष की ज्या का निर्माण करते हैं (सू० २५/१)। अश्वकर्ण को गन्धमुण्ड कहा गया है और इसे अश्वत्थ के समान बताया गया है (अश्वकर्णः पूर्वादेशे गन्धमुण्डोऽश्वत्थसदृशवृक्षः, सू० ३७/२४ पर)। आरग्वधादिगण में पठित शार्गेष्टा नामक ओषधि के परिचय के प्रसंग में उसने अनेक शास्त्रीय एवं लौकिक नामों की चर्चा की है जिसके अनुसार इस ओषधि को पूर्वदेश में 'झझरुदारु' कहा जाता है। यद्यपि इसी प्रसंग में उसने लोकगत पर्यायों का भी उल्लेख किया है और इस ओषधि को विकसवनी और चिरपोटिका कहा है (सू० ३८/२६ पर)। साथ ही साथ पूर्वदेश में होने वाले विश्वदेवा को गुडशर्करा (सू० ३८/२ पर); अग्निमंथ को अग्रनेथु (सू० ३८/४ पर), आर्तगल को कवहा (सू० ३८/४;

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

चि० ७/३ पर), अशन को बीजक (सू० ३८/६ पर), शाक को महाखरपत्र (सू० ३८/६), अग्निमन्थ को अग्निवधू (सू० ३६/६); अजकर्ण को सर्ज (क० १/३० पर) एवं पुन्नाग को तुंग कहा है (क० १/२७ पर)। इसी प्रदेश में कृकलाश को गिरगिट कहा जाता था (उ० ४१/१८ पर)। डह्लण ने निम्नलिखित स्थलों पर पूर्वदेश का उल्लेख किया है—

सू० ११/७; २५/११; ३९/२४; ३८/३,४ (२ बार), ६ (२ बार), ७, २७; ३६/६; ४६/१६६। चि० ७/३; ८/१२; ६/७–८, ६, १३; ११/८; १६/१७; २१/६; ३४/१७। क० १/३०; २/२७; ३/१२ (२ बार); ५/१५; ६/२–३; ६/६। उ० ४१/१८।

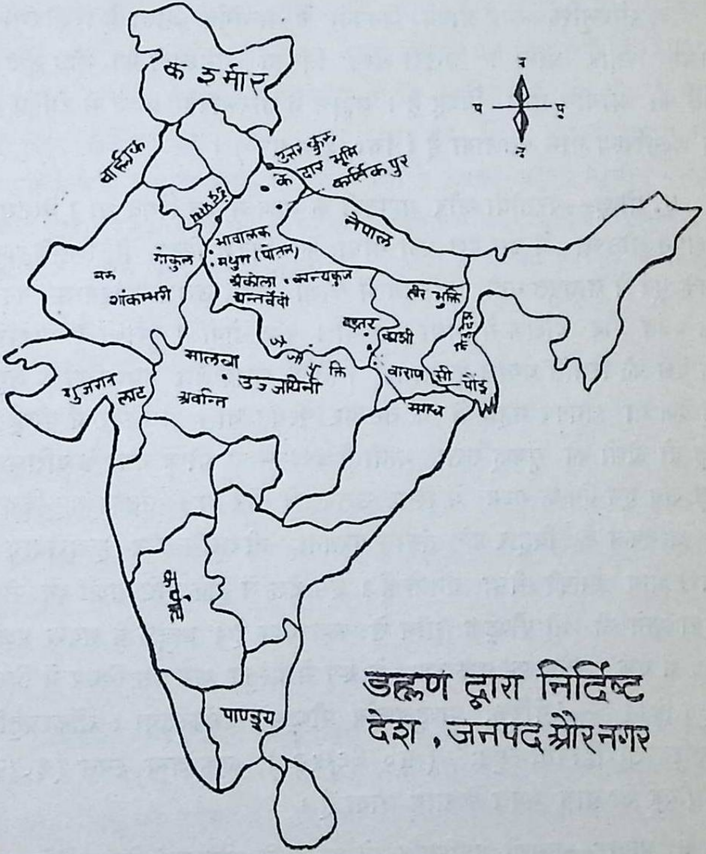

डह्लण द्वारा निर्दिष्ट देश, जनपद और नगर

पूर्वदेश (पूर्वापथ) में आने वाले स्थानों का परिचय

१. कामरूप—प्राच्य देशान्तर्गत सुश्रुत द्वारा फलवर्ग में पठित पारावत का परिचय डह्लण ने आकृति और रस के साथ दिया है। उनके अनुसार कामरूप

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

देश में यह फल मुख्यतः पाया जाता है (सु० ४६/१४ पर)। कामरूप से सामान्यतः आसाम का उत्तरी भाग गृहीत होता है। इसके उत्तर में भूटान; दक्षिण में ब्रह्मपुत्र और बंग तथा लाख्या नदी का संगम और साथ ही साथ बंगला देश के मैमन सिंह जिले के कुछ भाग इसके अन्तर्गत आते हैं।

२. **गौडदेश**—आज का समस्त पूर्वी बंगाल प्राचीन गौडदेश है जिसकी प्राचीन राजधानी बंगाल में मालदा के निकट थी। पाल, सेन और मुस्लिम शासकों ने इसे राजधानी बना रखा था। इसकी स्थिति ६४८ ई० से लेकर १२०४ ई० तक रही। अंगदेश के दक्षिण वाला भाग भी गौडदेश कहा गया है।

३. **तीरभुक्ति**—यह प्राच्य जनपदों के अन्तर्गत आता है। तीरभुक्ति से सम्प्रति बिहार प्रान्त के उत्तरी खण्ड तिरहुत कमिश्नरी का बोध होता है। इसी का प्राचीन नाम विदेह है। डल्हण ने तीरभुक्ति प्रदेश में रोहित मत्स्य का अल्यपिल्य नाम बतलाया है (चि० ५/८ पर)।

४. **पौण्ड्र**—परतोया और महानदी के मध्य में यह स्थित था। वेस्टमाकोट ने अपने शोधपत्र में इस देश की सीमा का निर्देश किया है, जिसके अनुसार इसके पूर्व में ब्रह्मपुत्र नदी, पश्चिम में कोशी नदी, उत्तर में हिमालय का हेमकूट पर्वत और दक्षिण में गंगा नदी थी। कुछ लोगों ने पुराणों के आधार पर इस देश की स्थिति बंगाल के मालदा जिले में बताई है। उन लोगों के अनुसार यह देश या जनपद महानदी के तट पर स्थित था। पार्जिटर ने पौण्ड्र और पुण्ड्र दो देशों की पृथक् सत्ता मानी है। इनमें से पौण्ड्र गंगा के दक्षिण और पुण्ड्र अंग एवं बंग के मध्य में स्थित उत्तर की ओर था। उनका यह विचार है कि आजकल के बिहार को संथाल परगना; वीरभूमि और हजारीबाग का उत्तरी भाग इसकी सीमा बनाते हैं। इस देश में होने वाले पक्षी को पौण्ड्रक अथवा गन्ने को भी पौण्ड्रक नाम से कहा गया है। डल्हण ने लवक पक्षी के प्रसंग में एक श्लोक को पाठान्तर के रूप में प्रस्तुत कर इस विषय में विवरण प्रस्तुत किया है—"गैरिकः पाण्डुलश्चैव पौण्ड्रको दर्भकस्तथा। लोकश्चतुर्विधः प्रोक्तस्तित्तिरिर्द्विविधः स्मृतः" (सू० ४६/५६), एक अन्य स्थल (१७/२०) पर पौण्ड्र का नाम मगध के साथ आया है।

५. **बड़तर**—इसकी अवस्थिति को डल्हण ने वाराणसी के साथ दिखलाया है और यह बतलाया है कि यहाँ की मिट्टी में क्षार अधिक पाया जाता है (सू० ३८/१८ पर)। वाराणसी से पश्चिम स्थित बड़ागाँव स्थान इसकी स्मृति कराता है, जहाँ आज भी इस प्रदेश की मृत्तिका में क्षार-बहुलता है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

६. मगध—साम्प्रतीन बिहार प्रान्त का दक्षिणी भाग प्राचीन काल का मगध है। इसकी पश्चिमी सीमा सोन नदी बनाती है। इसका सर्वप्रथम उल्लेख अथर्ववेद (५/२२/२४) में मिलता है। अजातशत्रु ने ही सर्वप्रथम राजगृह से इसकी राजधानी हटाकर पाटलिपुत्र कर दी थी। इसका उद्देश्य वैशाली के वृजवंशियों के गणराज्य को जीतना था। किसी समय में यह मगध देश वाराणसी से मुंगेर तक फैला हुआ था। आज भी पटना और गया जिलों को 'मगा' के नाम से कहा जाता है। यहाँ की पिप्पली प्रसिद्ध थी, जिसका एक पर्याय मागधी भी है। डल्हण ने निम्नलिखित स्थलों में इसका उल्लेख किया है— सू० ६/२७; १९/१०; ४६/५; ४६/१४२।

७. वाराणसी—यह वरुणा और अस्सी नदी के बीच में स्थित होने के कारण वाराणसी नाम धारण कर सकी। यह काशी जनपद की राजधानी थी। इसकी स्थापना का उल्लेख महाभारत में आता है। प्राचीन काल से ही यह नगरी शिक्षा और धर्म का केन्द्र रही। गंगा के तट पर स्थित होने के कारण और दिवोदास धन्वन्तरि द्वारा इसके प्रतिष्ठित होने से इसका महत्व प्राचीन काल से ही बना रहा। इसको आज भी विश्व का प्राचीनतम नगर होने का गौरव प्राप्त है। डल्हण ने सूत्र १/१ एवं ३८/१८ की व्याख्या में इसका उल्लेख किया है।

पश्चिम देश

यद्यपि पश्चिम दिशा का विस्तार से डल्हण ने उल्लेख नहीं किया है; तथापि भूगोलशास्त्र के अनुसार इस दिशा में आने वाले देशों, जनपदों और नगरों का उल्लेख निबन्ध-संग्रह में अनेकों बार हुआ है।

डल्हण ने अम्बष्ठादिगण में पठित अम्बष्ठा का परिचय देते हुए इसको पश्चिम देश में माचिका या संकुरण नाम से कहा है—"अम्बष्ठा माचिका साङ्कुरण इति पश्चिमे प्रसिद्धा" (सू० ३८/२२)। इसके अतिरिक्त पश्चिम का उल्लेख निबन्ध-संग्रह-व्याख्या में अन्यत्र कहीं नहीं है। इस दिशा में उल्लिखित स्थलों का अकारादि क्रम से परिचय यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है—

१. अवन्ति—डल्हण ने शकुनाहृत शालि का नाम अवन्ति नगरी में वक्र (सू० ४६/५ पर) नाम से बताया है। भौगोलिक दृष्टि से यह कोई नगरी नहीं थी, अपितु यह प्रदेश था जिसकी राजधानी उज्जयिनी थी। इसे सातवीं शताब्दी से मालवा भी कहा जाने लगा। ब्रह्मपुराण (अ० ४३) में अवन्ति को एक नगर माना गया है। सम्भवतः डल्हण ने इसी आधार पर इसे अवन्ति नगरी कहा है पर यह उज्जयिनी का ही पर्याय है।

२. इन्द्रप्रस्थ—शक्ति-संगम-तंत्र में सप्तम पटल में उद्धृत एक श्लोक के

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

अन्तर्गत डल्हण ने इन्द्रप्रस्थ का उल्लेख किया है (सू० १३/१२ पर)। भूगोलविदों ने इसका ऐक्य प्राचीन दिल्ली से किया है। इन्द्रप्रस्थ नगर यमुना नदी के तट पर आधुनिक फिरोजशाह कोटला और हुमायूं के मकबरे के मध्य में स्थित था।

३. **उत्तरकुरु**—गढ़वाल और हूण देश का उत्तरी भाग जहाँ मन्दाकिनी नदी बहती है तथा चैत्ररथ वन स्थित है, उसे ऐतरेय ब्राह्मण और महाभारत ने उत्तरकुरु देश बताया है। इस उत्तरकुरु में आजकल के देहरादून और बदरी केदार का दक्षिणी अंश आता है। चैत्ररथ वन की स्थिति इस खण्ड में नहीं मानी जा सकती क्योंकि भूगोलविदों ने इसका ऐक्य वर्तमान पाकिस्तान में स्थित अफगानिस्तान की सीमा से मिला हुआ चित्राल नामक स्थान माना है। डल्हण ने शकुनाहृत शालि की परिभाषा बताते हुए कहा है कि यह वह शालि है जो कि उत्तर कुरु देश से हंशों के द्वारा लाया गया माना जाता था (सू० ४६/५ पर)।

४. **कर्णाट**—डल्हण ने देशानुपातनी प्रकृति के प्रसंग (सू० ३०/२ पर) में लाट देश के साथ कर्णाट देश के व्यक्तियों के स्वभाव विशेष की चर्चा की है। इस कर्णाट से आजकल के कर्णाटक प्रदेश का ग्रहण करना चाहिए पर प्राचीन कर्णाटक प्रदेश कहाँ तक सीमित था यह प्राचीन भूगोल के ग्रन्थों से जाना जा सकता है। तारा-तंत्र के अनुसार यह सम्प्रति कर्णाटक प्रान्त के वामनाथ से श्रीरंगम् पर्यन्त फैला हुआ था और जिसकी राजधानी उस काल में द्वार समुद्र थी। विजयानगर के राज्य को भी कर्णाट कहा गया है। इम्पीरियल गजट में कनारा को ही कर्णाट देश माना गया है, जिसके अन्तर्गत मैसूर, कुरु और सीदड जिले के अंश सम्मिलित हैं।

५. **कान्यकुब्ज**—सुश्रुत ने स्वस्तिक यंत्र के मुख की रचना विभिन्न पशुओं एवं पक्षियों के आधार पर बतायी है। इनमें से एक भृंगराज नामक पक्षी है जिसका परिचय डल्हण ने कान्यकुब्ज के पेगी नामक पक्षी से की है (सु० ७/६)। यह कान्यकुब्ज आजकल के कन्नौज का परिचायक है (सू० ४२/११)।

६. **काम्बोज**—इन्द्रप्रस्थ के साथ ही उसी प्रसंग में डल्हण ने काम्बोज का नाम भी लिया है। यह काम्बोज आधुनिक अफगानिस्तान का पूर्वी भाग भूगोलविदों द्वारा माना जाता है (राजतरंगिणी; भाग १, पृ० १३६; डॉ० स्टीन द्वारा सम्पादित)।

७. **गुर्जर राष्ट्र**—डल्हण ने समुद्र से निकलने वाले लवण को सामुद्रक

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

माना है और गुर्जर देश में इसकी प्रचुर उपलब्धि का निर्देश किया है। इस गुर्जर देश से आजकल का गुजरात प्रान्त ग्रहण करना चाहिए; किन्तु प्राचीनों का गुर्जर देश गुजरात, मालवा और खान देश के वृहत्तर भाग से युक्त था। किसी समय में मारवाड़ जिले को गुर्जर कहा जाता था। डल्हण ने निम्न स्थल पर गुर्जर का निर्देश किया है—सू० ४२/१७।

८. **तुरुष्क देश**—डल्हण ने मूल में उद्धृत जलौका के उद्गम स्थल भूत यवन देश का तात्पर्य तुरुष्क किया है (सू० १३/१२ पर)। यद्यपि मूल में प्रयुक्त यवन शब्द आयोनिया या ग्रीस देश के लिए ही था। यदि हम डल्हण का अर्थ तुरुष्क लें तो इससे आधुनिक टर्की का बोध होता है।

९. **पल्लव**—विभिन्न देशवासियों के द्वारा विभिन्न प्रकार के भोजन सात्म्य के प्रसंग में डल्हण ने बाह्लीक और चीन देश के साथ पल्लव देश का नाम लिया है (सू० ३५/३३)। आधुनिक फारस इसी पल्लव देश का परिचायक है। इसका प्राचीन नाम पह्लवी भाषा में जिसमें कि जेन्दावेस्ता लिखा गया है; पार्थिया है। पल्लव का उच्चारण पल्लव के रूप में भी मिलता है। पर कुछ लोगों ने पह्लव को पल्लव से भिन्न माना है। रैप्सन नामक विद्वान् का विचार है कि पल्लव देश दक्षिण में कारो मण्डल तट से घिरा हुआ था किन्तु चीन और बाह्लीक के साथ पढ़े जाने के कारण इसको फारस ही मानना अधिक युक्तिसंगत है।

१०. **पाञ्चाल**—पाञ्चाल को वर्तमान काल के उत्तर प्रदेश का रुहेलखण्ड का मण्डल कहा जा सकता है। मूलतः यह प्रदेश दिल्ली से उत्तर और पश्चिम चम्बल नदी की सीमा से लेकर हिमालय की उपत्यका तक फैला हुआ था किन्तु कुछ समय के पश्चात् इसके उत्तर और पश्चिम दो भाग गंगा नदी की सीमा के आधार पर कर दिये गये थे, जिसमें से उत्तर पाञ्चाल की राजधानी अहिच्छत्रा (बरेली) और दक्षिण पाञ्चाल की राजधानी कपिला (कम्पिल्ल) थी जो कि फर्रुखाबाद जिले के अन्तर्गत है।

वस्तुतः हिमालय से उतर कर हरिद्वार से लेकर बरेली तक का प्रखण्ड इस पाञ्चाल के अन्तर्गत आता था।

डल्हण ने शालि के भेद सुगन्धक का परिचय देते हुए उसे पाञ्चाल देश में देवशालि नाम से प्रसिद्ध बताया है (सू० ४६/५ पर)। कुछ लोगों का विचार है कि इसी चावल को वासमती चावल भी कहा जा सकता है।

११. **मरु देश**—सौवीर को मरु देश में हरित एवं पक्व दोनों अवस्थाओं

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

में मधुर रस वाला एक बड़ा फल डल्लण ने माना है (सू० ४५/१४ पर)। मरु देश से आजकल के राजस्थान का ग्रहण करना युक्तियुक्त है।

१२. मालवा—मालवा का परिचय अवन्ति जैसा ही है। सू० ४६/५ एवं ४५/११६ पर इसका वर्णन आया है। पिंगला नामक मधुमक्खियों द्वारा संचित होने वाला मधु मालवा के वनों में होता था जिसे छात्र मधु कहा गया है। इसका नामकरण बड़े-बड़े छत्रों के निर्माण के आधार पर ही सम्भवत: हुआ है। अश्मरी चिकित्सा में पठित कच्चक नामक औषधि का परिचय देते हुए डल्लण ने उसे कहवक नाम से मालवक क्षेत्र में प्रसिद्ध बताया है (चि० ७/३ पर), जिसके पत्र के बीच में अनेकों रेखायें होती थीं एवं पत्र कोमल तथा जड़ कुछ गुलाबी लिए होती थी।

१३. लाट देश—डल्लण ने देशानुपातनी प्रकृति के निरूपण में कर्णाट देश के साथ लाट देश के व्यक्तियों के स्वभाव की चर्चा की है (सू० ३०/२)। यह लाट देश वस्तुत: दक्षिणी गुजरात है जिसके आभ्यन्तर खान देश भी सन्निविष्ट है। मही और तापी नदी के मध्य में स्थित लाट देश बताया जाता है। इसके अन्तर्गत सम्प्रति सूरत; भड़ौच, खेड़ा और बड़ौदा के भाग सम्मिलित माने जा सकते हैं। यद्यपि लाट देश के परिचय के विषय में अनेकों मत हैं तथापि इसको गुजरात के ही अन्तर्गत प्रतिष्ठित मानते हैं।

१४. वाह्लीक—वाह्लीक को आजकल वैक्ट्रिया कहा जाता है। यद्यपि इसको कुछ लोगों ने पंजाब की सतलज और व्यास नदी के बीच वाला भाग माना है किन्तु अधिकांश विद्वानों का यह विचार है कि यह हिन्दूकुश पर्वत से परे उत्तरी अफगानिस्तान में वलख के पास वाला जिला है।

डल्लण ने सू० ६/२७ की व्याख्या में इस देश का नाम उद्‌धृत किया है।

१५. शाकम्भरी देश—यह राजस्थान के साम्भर झील के आस-पास का स्थान था। इसी झील से रोमक नमक तैयार किया जाता था, जैसा कि डल्लण ने 'रोमकं शाकम्भरी देशोत्थम्' (सू० ४६/३४५) की व्याख्या में उल्लेख किया है।

उत्तरापथ

उत्तरापथ से सामान्यतया उत्तर दिशा में स्थित कश्मीर और अफगानिस्तान के काबुल का ग्रहण किया जाता है। इसके अतिरिक्त आजकल का हिमाचल प्रदेश तथा चमोली मण्डल का ग्रहण करना उपयुक्त है। डल्लण ने उत्तरापथ का निर्देश १५ बार अपनी निबन्ध-संग्रह-व्याख्या में किया है—सू० ३७/१४; ३८/१२; ३८/८; ४५/१०६; ४६/१४२,१६६, १६२ (२ बार);

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

२३१। नि० १/७५। चि० १७/७। उ० ४२/५३; ४७/२०, २७ और ५८/४। इसके अन्तर्गत चीन, नेपाल, कश्मीर आदि देश आते हैं जिनका परिचय नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है—

१. कश्मीर—निबन्ध-संग्रह-व्याख्या में डल्लण ने कश्मीर का दो स्थलों में नाम लिया है। इनमें से एक तो शरभ नामक पशु के परिचय के प्रसंग (सू० ४६/५३) में, जहाँ उसे ८ पाँव वाला ऊंट के समान लम्बा, बड़ी-बड़ी सींगों वाला तथा पृष्ठगत अंश में ४ पाँवों वाला बताया गया है। दूसरा प्रसंग टङ्क नामक फल के विषय में है जहाँ पर उसकी प्रसिद्धि उसी नाम से बताई गई है—'टङ्कं काश्मीरे स्व नाम प्रसिद्धं बहुप्रकारम्' (सू० ४६/१६२)। सम्भवतः इससे अभिप्राय वगूघोसा नामक फल से है जो कि कश्मीर में प्रचुर मात्रा में पाया जाता है।

डल्हण- निर्दिष्ट
भारतेतर देश

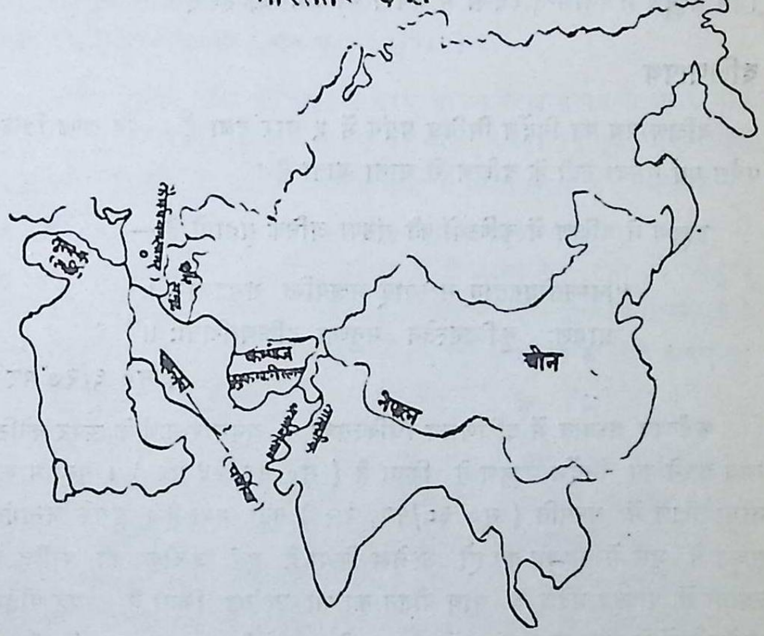

२. कार्तिकपुर—उत्तर प्रदेश के कुमायूं मण्डल के अल्मोड़ा नामक स्थान से लगभग ११० किलोमीटर बैजनाथ नामक ग्राम इस कार्तिकपुर का परिचायक है। इसका उल्लेख देवी पुराण में भी आया है और डॉ० फ्यूरर ने इसका उद्धरण दिया है (दे० पु० अ० ६ और डॉ० फ्यूरर्स मॉन्यूमेण्टल एण्टीक्विटीज

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

एण्ड इन्स्क्रिप्शन्स)। डल्हण ने सू० ४६/५३; ४६/१४२ की व्याख्या में इसका उल्लेख किया है।

३. चीन—चीन एक अत्यन्त प्राचीन देश है जिसका नामकरण तृतीय शताब्दी ई० पू० के वहाँ के चिन राजवंश के आधार पर हुआ। इसी साम्राज्य काल में चीनियों ने एक बहुत बड़ी दीवाल बनवाई। भारत का चीन से बड़ा पुरातन सांस्कृतिक सम्बन्ध रहा है। चीन देश के बने हुए चीन पट्ट जो कि रेशमी एवं अत्यन्त मृदु होते थे भारत में बराबर प्रयुक्त होते थे। सुश्रुत के अनुसार चीनपट्ट नामक एक बन्धन है जिसके लिए चीनांशुक से नेत्र का बन्धन किया जाता था। डल्हण ने इसका परिचय दिया है—'चीनपट्टं चीनदेशे एवोत्पद्यते', 'तद्देश जातास्तु चीनयुगपट्टमिति वदन्ति', 'स च पत्रोर्णस्येव भेदः' (सू० १७/१० पर)।

४. नेपाल—भारत से उत्तर स्थित यह एक राज्य है जहाँ मनःशिला की अत्यधिक उत्पत्ति बताई गई है। नेपालजा मनःशिला का एक पर्याय भी है जिसे डल्हण ने विभिन्न स्थलों में अपनी व्याख्या में कहा है।

दक्षिणापथ

दक्षिणापथ का निर्देश विविध प्रसंग में ५ बार हुआ है। यह खण्ड विन्ध्य पर्वत एवं नर्मदा नदी के दक्षिण से माना जाता है।

डल्हण ने दक्षिण में कुष्ठियों की संख्या अधिक बतायी है—

"निम्नतोयगतान् मत्स्यान् भक्षयन्ति समुद्रजान्।
प्रायशः कुष्ठिनस्तेन मनुष्या दक्षिणाश्रिताः॥"
(सू० ६/२७ पर)

कर्णव्यध अध्याय में दक्षिणात्य चिकित्सकों के अनुसार कर्ण के ऊपर कोटिव्यध करने का निर्देश डल्हण ने किया है (सू० १६/२४ पर)। पुन्नाग का नाम दक्षिण में सुरपति (सू० ३८/१२, २२) पढ़ा गया है। इसके अन्तर्गत सुश्रुत ने मूल में पाण्ड्य का ही उल्लेख किया है एवं जलौका की प्राप्ति के स्थानों में पाण्ड्य प्रदेश के साथ पोतन का भी उल्लेख किया है। यह पोतन भूगोलविदों के अनुसार अश्मक की राजधानी साम्प्रतीन महाराष्ट्रान्तर्गत पैठान नामक स्थान है पर डल्हण पोतन से मथुरा प्रदेश (सू० १३/२२ पर) ग्रहण करते हैं। इसी दक्षिणापथ में ही विन्ध्य, सह्य, मलय (श्रीशैल और महेन्द्र) जैसे पर्वत एवं दक्षिणाभिमुख नदियों का समावेश होता है, जिनका सुश्रुत ने स्वतः उल्लेख किया है। डल्हण ने पाण्ड्य का परिचय दक्षिण दिशा में स्थित

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

देश के रूप में किया है और शक्ति-संगम-तन्त्र सप्तम पटल का एक श्लोक उद्धृत किया है—

"काम्बोजाद् दक्षभागे तु इन्द्रप्रस्थाच्च पश्चिमे ।
पाण्ड्यदेशो महेशानि ! महाशूरत्वकारकः ॥"

(सू० १३/१२ पर)

सम्प्रति तमिलनाडु प्रान्त के तिरुनेलवेल्ली और मदुराई जिले इसके परिचायक हैं ।

मध्यदेश

मध्यदेश से उस भूखण्ड का बोध होता है जो कि कुरुक्षेत्र में सरस्वती नदी से पश्चिम की ओर से इलाहाबाद में संगम से उत्तर की ओर हिमालय और विन्ध्य के बीच में स्थित है । अथर्ववेद में मध्यदेश का निर्देश है । इस मध्यदेश में गरुड पुराण के अनुसार पाञ्चाल, कुरु, मल्ल, अवधेय, पटच्चर, कुन्ती और सूरसेन इसमें सम्मिलित थे (ग० पु०, ५५/१०) ।

आजकल इसकी सीमा पाञ्चाल से पूरब चम्बल के आसपास से लेकर सोन नदी के किनारे से होती हुई इलाहाबाद को स्पर्श करती हुई पुनः बरेली तक मानी जा सकती है । डल्लण के निबन्ध-संग्रह में निम्न स्थलों पर मध्यदेश का निर्देश हुआ है—सू० ४५/१४, १६२; ४६/५; चि० ७/३; २३/१० । डल्लण ने अन्तर्वेदी का नाम लिया है जो कि मध्यदेश में ही आता है । गंगा और यमुना नदी के मध्य भाग के दोआब को अन्तर्वेदी शब्द से अभिहित किया गया है । मनुस्मृति ने इस सीमा की पुष्टि की है । डल्लण ने शालि के भेद कलम का परिचय अन्तर्वेदी क्षेत्र में कलवि के नाम से दिया है (सू० ४५/५ पर) ।

जेजीभुक्ति—सुश्रुत द्वारा सुरसादिगण में पठित सुमुख नामक वनौषधि का परिचय देते हुए डल्लण ने उसे राजिका बताया है । पर एकीयमत के माध्यम से उन्होंने जेजीभुक्त प्रदेश में इसका नाम सउहा या वनपश्का बताया है (सू० ३८/६ पर) । प्राच्य भूगोलविद् जेजीभुक्ति से आधुनिक बुन्देलखण्ड का ग्रहण करते हैं ।

डल्लण द्वारा निर्दिष्ट नदियाँ

१. गंगा—नदी और नद के पार्थक्य में गंगा का उल्लेख डल्लण ने किया है । यह हिमालय के गंगोत्री से निकल कर काशी होती हुई बंगाल की खाड़ी में गिर जाती है । डल्लण निर्दिष्ट सोन और सरयू नदियाँ इसमें मिलती हैं ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

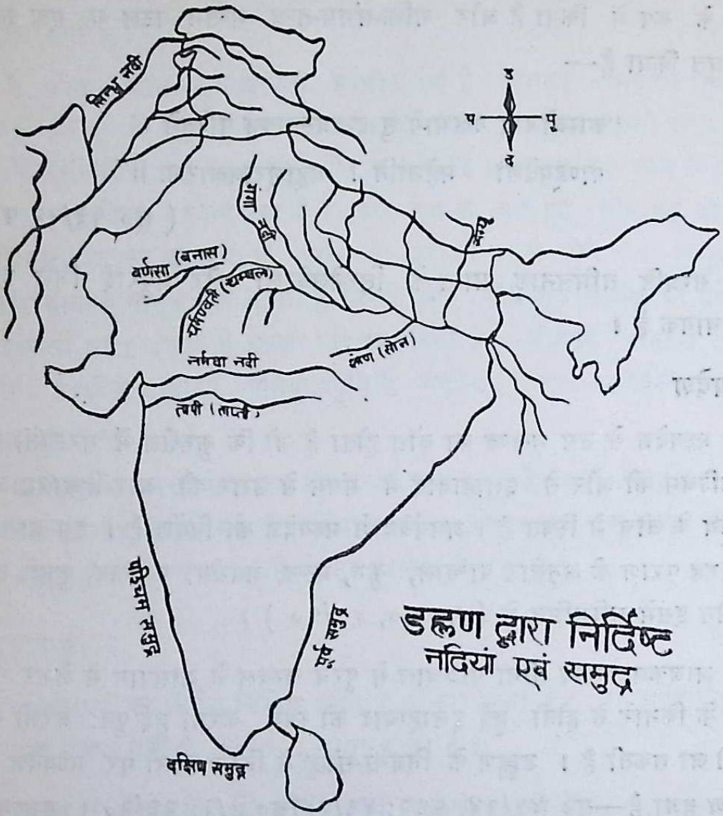

डल्हण द्वारा निर्दिष्ट नदियां एवं समुद्र

२. चर्मण्वती—इसका वर्तमान नाम चम्बल नदी है जो कि राजस्थान के अरावली के अति उन्नत शिखर से निकलती है। इसके उद्‌गम का पर्वतीय स्थान जनपावा है। यह नदी बाद में इटावा के आस-पास यमुना में मिल जाती है। महाभारत के अनुसार रन्तिदेव के यज्ञ में गौओं के वध से उत्पन्न रक्त के अंश से इसकी उत्पत्ति हुई थी। डल्हण ने गिलोड्य नामक कन्द का परिचय देते हुए इसे चम्बल नदी के तट पर होने वाला तत्कालीन गुलाहडक नामक कन्द बताया है (सू० ३८/५, १३; चि० ११/८)।

३. तापी नदी—यह वर्तमान ताप्ती नदी है जो कि विन्ध्य पर्वत के सतपुड़ा श्रृंखला के गोनन गिरि नामक स्थल से निकल कर सूरत होती हुई अरब सागर में गिरती है। डल्हण ने इसे माक्षिक का उत्पत्ति स्थान माना है और 'तापीज' से माक्षिक का ग्रहण किया है।

४. नर्मदा—यह अमरकण्टक से निकल कर कम्बात की खाड़ी में गिरती है। ताप्ती की तरह ही यह भी एक पश्चिमवाहिनी नदी है। डल्हण ने अपनी

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

निबन्ध-संग्रह-व्याख्या में इसका निम्न दो स्थलों में निर्देश किया है—सू० १३/१२ एवं ३८/५, १३।

५ शोण नदी—शोण बहुत बड़ा नद है जो कि गोण्डवाना खण्ड के विन्ध्याचल पर्वत-शृंखला के ऊपर अमरकण्टक नामक पर्वत-शृंखला से उद्भूत है। बिहार में बांकीपुर में गंगा में मिल जाता है। इसका प्राचीन नाम शोण है।

६. सरयू—यह आजकल की घाघरा या सरयू नदी है जो कि कुमायूँ की पहाड़ियों से निकल कर अयोध्या होती हुई बलिया से कुछ दूर जाकर गंगा में मिल जाती है। बाजीकरण में पठित उच्चटा नामक ओषधि का परिचय देते हुए डल्हण ने इसकी उत्पत्ति हिमालय पर जहाँ से सरयू निकलती है, वारिन्द्र नामक स्थान पर बताई है।

७. सिन्धु—यह वर्तमान सिन्धु नदी है जो कि मानसरोवर से निकल कर कश्मीर और पाकिस्तान होते हुए अरब सागर में जा गिरती है। डल्हण ने सू० ४५/३ में शोण के साथ इसका भी नाम लिया है।

८. वर्णसा—यह राजस्थान की वर्तमान बनास नदी है जो कि अरावली या आबू के पास से निकल कर चम्बल में मिल जाती है। स्रोतों अञ्जन की उत्पत्ति का स्थान डल्हण ने वनास और सिन्धु नदी का तट माना है (उ० ६०/२६)।

डल्हण द्वारा निर्दिष्ट समुद्र

१. दक्षिण समुद्र—डल्हण ने अपनी निबन्ध-संग्रह-व्याख्या में दक्षिण समुद्र का उल्लेख किया है। यह वर्तमान हिन्द महासागर है।

२. पश्चिम समुद्र—डल्हण ने पश्चिमार्णव, पश्चिमोदधि एवं पश्चिम समुद्र का विविध स्थलों पर निबन्ध-संग्रह-व्याख्या में उल्लेख किया है (पृ० ३५५, ४००, ४३१, ७५२, ७७६, ८६१)। पश्चिम समुद्र से आधुनिक अरब सागर का ग्रहण करना चाहिए।

३. पूर्व समुद्र—पूर्व समुद्र से तात्पर्य बंगाल की खाड़ी से है। डल्हण ने पश्चिम समुद्र के साथ (सू० ४५/१४) इसका भी उल्लेख किया है।

४. क्षीर समुद्र—यह वर्तमान कैस्पियन सागर है जो ईरान से उत्तर, तुर्कमीन से पश्चिम, टर्की से पूरब तथा रूस से दक्षिण दिशा में स्थित है। डल्हण ने चि० २६/६ में इसका नाम निर्देश किया है।

डल्हण द्वारा निर्दिष्ट पर्वत

१. केदार गिरि—यह हिमालय पर्वत का एक खण्ड है जो केदारनाथ

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

नामक स्थान के नाम से प्रसिद्ध है। डह्लण ने सू० ४६/४८८ की व्याख्या में इसका उल्लेख किया है।

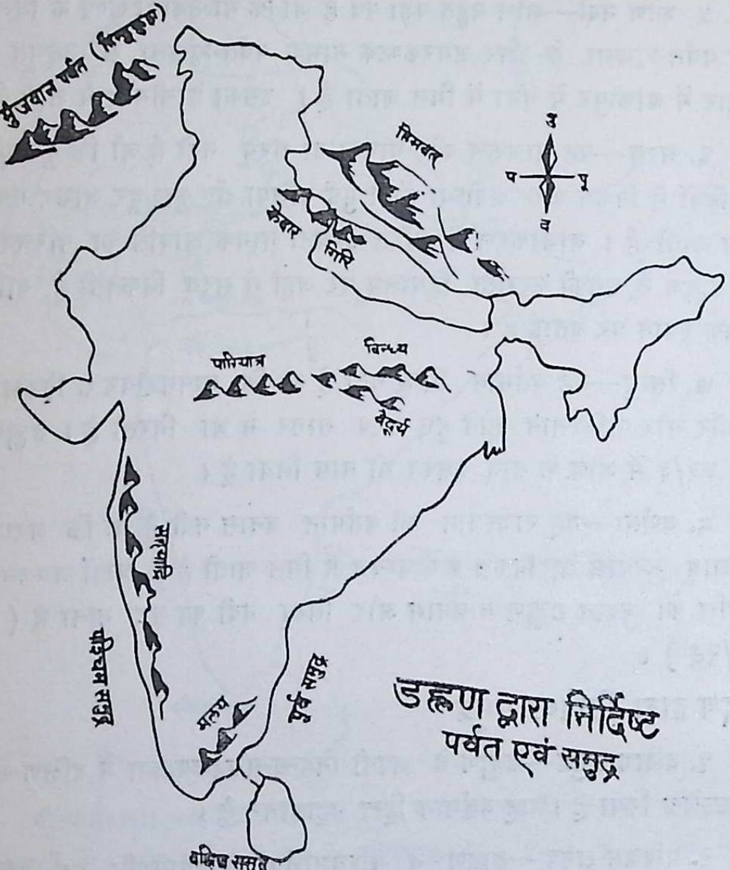

डह्लण द्वारा निर्दिष्ट
पर्वत एवं समुद्र

२. **पारियात्र**—विन्ध्य पर्वत शृंखला का पश्चिमी भाग जो चम्बल नदी के उद्‌गम से लेकर खम्बात की खाड़ी तक फैला हुआ है पारियात्र है। भण्डारकर के अनुसार यह विन्ध्य का वह भाग है जहाँ से चम्बल और वेतवा नदियाँ निकलती हैं। इसके अन्तर्गत राजस्थान की छोटी-मोटी पहाड़ियाँ और अरावली पर्वत सन्निविष्ट है।

३. **बिदूर पर्वत**—बिदूर या वैदूर्य विन्ध्य पर्वत की शृंखला है जो कि महाराष्ट्र और मध्य प्रदेश के मध्य में फैली हुई है। नर्मदा के समानान्तर भानर पर्वत शृंखला इस वैदूर्य पर्वत का स्मरण कराती है। जहाँ का वैदूर्य प्रसिद्ध है।

४. **मलय पर्वत**—दक्षिणी घाट एवं कावेरी नदी के दक्षिणी भाग का एला-

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

मले पर्वतमाला वाला अंश इसके अन्तर्गत आता है। इसकी शृंखला कोयम्बटूर से कन्याकुमारी तक फैली हुई है। यह मलय गिरि कहलाता है। इसका वर्तमान नाम अन्नमलई हिल है। डल्हण ने सूत्र ४५/१४ में इसका उल्लेख किया है।

५. सह्याद्रि पर्वत—यह पश्चिम घाट का उत्तरी भाग है जो कि कावेरी से कोयम्बटूर तक फैला हुआ है। दूसरे शब्दों में इसकी शृंखला कन्याकुमारी से ताप्ती नदी की घाटी तक है। गोदावरी, भीमा, कृष्णा, तुंगभद्रा और कावेरी नदियाँ इससे निकलती हैं।

६. हिमालय पर्वत—डल्हण ने हिमवत् या हिमालय पर्वत की अनेक स्थलों (सू० ४५/३१९, ४६/५३, क० २/४) पर अपनी निबन्ध-संग्रह-टीका में चर्चा की है। यह विश्व का सर्वोच्च पर्वत है जिसकी अनेक शृंखलाएँ हैं जो कि पश्चिम में सिन्धु नदी से पूर्व में ब्रह्मपुत्र नदी तक फैला हुआ है। पूरब से पश्चिम इस पर्वत की लम्बाई २२१४ किलोमीटर है। इसकी चौड़ाई उत्तर से दक्षिण १६० से २४१ किलोमीटर है। हिमालय को चोटियाँ सदैव हिमाच्छादित रहती हैं। भौगोलिक दृष्टि से इसके तीन मुख्य विभाग हैं— (१) वृहत्तर या आभ्यन्तर भाग, (२) मध्य हिमालय और (३) लघु या बाह्य भाग। प्रथम वर्ग के अन्तर्गत नन्दा देवी, त्रिशूल, केदारनाथ, बद्रीनाथ, गंगोत्री आदि की चोटियाँ आती हैं, जिनकी ऊँचाई २० हजार फीट से कहीं अधिक है। मध्य हिमालय के चोटियों की ऊँचाई १५ हजार से १२ हजार फीट तक है और इनकी पर्वतमालाएँ देहरादून के निकट शिवालिक पर्वत के समानान्तर फैली हैं। हिमालय की लघु पर्वतमालाओं की चोटियाँ बहुत हो कम ऊँची हैं। मध्य हिमालय की पर्वतमाला में हिन्दूकुश, कर्राकोरम और कैलाश की मालाएँ आती हैं। हिन्दूकुश पर्वतमाला भारत को अफगानिस्तान से पृथक् करती है। यही हिन्दूकुश सुश्रुत का मुजवान् पर्वत है जहाँ पर सोम प्रचुर मात्रा में कभी पाया जाता था।

७. विन्ध्य पर्वत—यह पर्वत भारत के मध्य भाग में पश्चिम से पूरब की ओर फैला हुआ है, जिससे नर्मदा, सोन और ताप्ती जैसी नदियाँ निकलती हैं।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

द्वितीय खण्ड

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

षष्ठ अध्याय

स्रोतोभूत सामग्री का संग्रह

इस प्रकरण में शोध-ग्रन्थ के स्रोतोभूत डल्हण व्याख्यान को मूलपाठ के रूप में इसलिए प्रस्तुत किया गया है जिससे एक स्थल पर ही डल्हण की द्रव्य-गुणशास्त्राभिज्ञता का दर्शन किया जा सके। मूलपाठ की प्रस्तुति से प्रतिज्ञात अध्यायों में प्रस्तुत की गई समीक्षा की प्रामाणिकता को सम्बल मिलता है।

हमने स्थानों के अध्यायानुसार गद्य-पद्य के सन्दर्भों के माध्यम से ही डल्हण के सम्बद्ध व्याख्यान को उसी रूप में संकलित किया है जिस रूप में डल्हण ने अपनी टीका में प्रस्तुत किया है। शोध-ग्रन्थ की प्रतिज्ञात मर्यादा के भीतर ही अभीष्ट व्याख्यापरक सामग्री का निदर्शन कराया गया है। इससे डल्हण की बहुश्रुतता एवं पर्यवदातशास्त्रता का परिचय बड़ी सरलता से मिल जाता हैं। सम्बद्ध क्षेत्र में उदात्त शोध के लिए यह प्रयास अत्युपादेय सिद्ध होगा।

सूत्रस्थानम्

अध्यायः १

तासामिति द्विविधानामोषधीनां मध्ये। के ते चत्वारः प्रकारा इत्याह—वनस्पतय इत्यादि। तानेव विवरितुमाह—तास्विति; तासु मध्ये। अपुष्पा इति अविद्यमानपुष्पाः, फलवन्त इति फलं येषामस्ति ते वनस्पतय इति; के पुनरीदृशाः? प्लक्षोदुम्बरादयः। पुष्पफलवन्तो वृक्षा इति उभययुक्ता वृक्षाः; के ते? आम्रजम्बू-प्रभृतयः। प्रतानवत्य इत्यादि प्रतानवत्यो विस्तारवत्यः वीरुधः, न केवलं प्रतान-वत्यो वीरुधः स्तम्बिन्यश्च गुल्मिन्यश्च, गुल्मः पुनः वर्तुललतासन्ततिविटपः, ताश्च विदारीकोलवल्लीशालपर्णीपृश्निपर्णीप्रभृतयः। केचित् 'स्तम्बिन्यश्च' इत्यत्र 'गुल्मिन्यश्च' इति पठन्ति, तत्रापि स एवार्थः। फलपाकनिष्ठा इति निष्ठा नाशः, फलपाकेन परिणतया नाशो यासां तास्तथोक्ताः; ते पुनर्गोधूमादयः। अन्ये तु निष्ठाशब्दं प्रत्येकं सम्बध्नन्ति, फलनिष्ठाः पाकनिष्ठा इति; तत्र फल-निष्ठाः शालितिलकुलत्थादयः, पाकनिष्ठाः कवकादयः; कवकश्छत्रक उच्यते ॥ २९ ॥

जङ्गमाः खल्वपीत्यादि।—खलुशब्दः शिष्यसंबोधने, हे सुश्रुत, जङ्गमा अपि चतुर्विधाः चतुष्प्रकाराः। तानाह—जरायुजेत्यादि। एतच्च पूर्वं व्याख्या-

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

तम्। जरायुजादिषु पूर्वोक्तसंस्वेदजादिक्रमत्यागो योनिसंकरं बोधयति; तेन पक्षिषु बलाका जरायुजा अण्डजा चेति, सर्पजातिषु अहिपताका जरायुजा, संस्वेदजेष्वपि काश्चित् पिपीलिका अण्डजा उद्भिज्जाश्च। व्यालादय इति व्याला हिंस्रपशुव्याघ्रादयः, अन्ये तु पशुग्रहणादेव हिंस्रपशूनामपि ग्रहणमिति व्यालशब्देन सर्पविशेषमाहुः। तदुक्तं 'सर्पजातिषु अहिपताका जरायुजा—' इति। आदिग्रहणाद् बलाकाजतुकादयः। इहोपकरणप्रस्तावे पशूनां प्राधान्यमिति प्राङ्निर्देशः; प्राग्भूतग्रामप्रसंङ्गेन पुरुषप्राधान्यख्यापनार्थम्, अत्र पुनर्जरायुजाण्डजेत्यादिपाठ ओषधित्वख्यापनायेति न पौनरुक्त्यम्। खगसर्पेत्यादि खगाः पक्षिणः; सर्पा मन्दगामिनोऽजगरप्रभृतयः, सरीसृपाः शीघ्रगामिनः कृष्णासर्पादयः, मीनमकरादयो वा; प्रभृतिग्रहणात् कूर्मनक्रादीनां ग्रहणं; केचित् प्रभृतिशब्दमपठित्वा लुप्तनिर्दिष्टेनादिशब्देन कूर्मादीन् गृह्णन्ति। कृमिकीटेत्यादि कृमयः कोष्ठपुरीषादिवाष्पसम्भवाः; कीटा वृश्चिकषड्बिन्दुप्रभृतयः, पिपीलिकाश्चिटिकाः, प्रभृतिग्रहणादेवंविधा अन्येऽपि दृश्यन्ते। इन्द्रगोप इत्यादि इन्द्रगोपाः प्रावृट्कालजा अतिरक्तकृमयः 'इन्द्रवधू' इति लोके। प्रभृतिग्रहणादीदृशा अन्येऽपि ॥ ३० ॥

स्थावरजङ्गमयोर्निर्दिष्टयोश्चिकित्सोपयोगिनोऽवयवविशेषान् दर्शयितुमाह—तत्र स्थावरेभ्य इत्यादि। स्वरसादय इत्यादिग्रहणात्तैलक्षार-भस्मकण्टकप्रभृतीनां ग्रहणम्। केचित् कन्दं सूत्रे न पठन्ति, आदिशब्दाच्च गृह्णन्ति। रोमरुधिरादय इत्यादिशब्दान्मांसवसाघृतास्थिखुरादयः ॥ ३१ ॥

रसाधिकारिकमौषधिवर्गं स्थावरजङ्गमं प्रतिपाद्य, परिशिष्टं प्रतिपादयितुमाह—पार्थिवा इत्यादि। पृथिव्या विकाराः पार्थिवाः, रजतं रौप्यं, मणिः स्फटिकादिः, मुक्ता मौक्तिकं, मृत् मृत्तिका, कपालं कर्परम्। सुवर्णस्येह पार्थिवत्वमेवाङ्गीक्रियते गुरुत्वकाठिन्यस्थैर्यादिहेतुभिः। सूत्रे आदिग्रहणाल्लोहमलसिकतासुधाहरितालवणगैरिकरसाञ्जनप्रभृतीनां ग्रहणम्। यद्यपि स्थितिशीलत्वात्तथा लोकद्वित्वसमाख्यानेऽपृथगुक्तत्वाच्च स्थावरशब्देनैव पार्थिवा उच्यन्ते, तथाऽप्यत्र प्रकरणाद्येष्वाहारोपयोगित्वं फलमूलाद्यवयवेषु रसप्रधानतया तत्रैव चतुर्विधे वनस्पत्यादिगणे स्थावरशब्दो वर्तते न तु पार्थिवेष्वपि, तेषामाहारेषु प्रायेणानुपयोगात्; अन्यदपि समाधानान्तरमस्ति, तच्च विस्तरभयान्न लिखितम् ॥ ३२ ॥

अध्यायः ६

…शक्रगोप इन्द्रवधूः, अन्ये ज्योतिरिङ्गणमाहुः। नीपो धूलीकदम्बः ॥
॥ ३१-३२ ॥

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

""बाण: सहचर:, सप्ताह्व:; सप्तपर्ण:, बन्धूक: बन्धुजीवक:, 'वादुली' इति लोके"" ॥ ३६ ॥

अध्यायः ११

""असितमुष्ककं कृष्णपुष्पमोक्षकं, न श्वेतादिपुष्पम्। ""सुधाशर्करा: सुधा-पाषाणा:। भस्मशर्कराश्चेति दह्यमानार्द्रकाष्ठरसाच्छर्करेवान्योन्यसंहतं भस्मजातं भस्मशर्करेत्युच्यते, तां च पृथग् गृह्णीयात्; पृथग्ग्रहणं भिन्नप्रयोजनार्थं:; तेन भस्मन: क्षारोदककरणं, भस्मशर्करा पुन: क्षारद्रव्यसमावापिनी। ""पलाश: किंशुक:; अश्वकर्ण: पूर्वदेशे गन्धमुण्ड: पिप्पलसदृश:; पारिभद्रको देवदारु:, अन्ये तु रक्तकुसुम: कण्टकीवृक्षविशेष: स्वनाम्ना प्रसिद्ध:; तिल्वक: स्वनामप्रसिद्ध:; इन्द्रवृक्ष: कुटज एव, द्विविधो हि कुटजो बृहत्फल: श्वेतपुष्प: स्निग्धपत्र: पुमान्, अणुफलवृन्ता श्यावारुणापुष्पा स्त्री; आस्फोता सारिवा; कोशातकी घोषक:; सा चतुर्विधा-बृहत्फला, अल्पफला, पीतपुष्पा, श्वेतपुष्पा, इति"" ॥ ११-१२ ॥

अध्याय: १२

""तुगाक्षीरी वंशरोचना, अन्ये तु वंशरोचनानुकारि पार्थिवं द्रव्यं, प्लक्ष: पर्कटी, चन्दनं रक्तचन्दनं, सामृतैरिति गुडूचीसहितै:"" ॥ २३-२४ ॥

अध्याय: १३

""पद्मोत्पलेत्यादि पद्ममीषच्छुक्लम्, उत्पलमीषन्नीलं, नलिनमीषद्रक्तं; कुमुदं 'कुइआ' इति लोके, सौगन्धिकं गर्दभपुष्पाभिधानमत्यन्तसुरभि चन्द्रोदय-विकाशि, कुवलयं रक्तोत्पलं, पुण्डरीकं अतिश्वेतपद्मं, शैवलं, शैवालं, कोथ-जाता इति एषां पूतिभावजाता:"" ॥ १४-१५ ॥

""वल्लूरं शुष्कमांसम्"" ॥ १७ ॥

अध्याय: १४

""पत्तङ्गं रक्तचन्दनं, सर्जरसो राला, शुक्तिर्जलशुक्ति:। साल: शङ्कु:, सर्ज: शालभेद:, अर्जुन: ककुभ:, अरिमेद: 'अरिमञ्ज' इति लोके प्रसिद्ध:; मेषश्रृङ्ग: कर्कटश्रृङ्ग:, धन्वन: 'धम्मण' इति प्रसिद्ध:।"" एण: कृष्णहरिण:, हरिणस्ताम्रवर्ण:"" ॥ ३६-३८ ॥

अध्याय: १५

""मेद्यान्नोपयोग इति स्निग्धान्नोपयोग:; 'मेध्याण्डोपयोग' इत्यन्ये पठन्ति, 'मेध्याण्डानि वृष्याण्डानि, बस्तमत्स्याण्डादीनि' इति च व्याख्यानयन्ति ॥ १२ ॥

""उद्दालकादीनामिति उद्दालक आरण्यकोद्रव:; आदिशब्दाद्गवेधुकादीनां

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

ग्रहणम् । विरूक्षणच्छेदनीयानामिति विरूक्षणं मेदोघ्नं, छेदनीयं स्रोतोविशोधनीयम् । विधिवदुपयोग इति पुरुषाग्निबलमात्राविधानवानुपयोग इत्यर्थः । लेखनबस्त्युपयोगश्च लेखनबस्तयश्चिकित्सितोक्ताः, "त्रिफलाक्वाथगोमूत्रक्षौद्रक्षारसमन्विताः । ऊषकादिप्रतीवापा बस्तयो लेखनाः स्मृताः" (चि० अ० ३८)"" ॥ ३२ ॥

""पयस्या अर्कपुष्पी, क्षीरकाकोलीत्यन्ये । विदारिगन्धा शालिपर्णी । मधुराणामित्यादि ऋद्धिवृद्धिजीवकादीनाम् । बृंहणबस्त्युपयोगश्चेति बृंहणबस्तिर्यथा"" ॥ ३३ ॥

अध्यायः १६

""गौरसर्षपजस्थाने 'राजसर्षपजं' इति केचित् पठन्ति, राजसर्षपाः श्वेतसर्षपाः । ""अलर्को मन्दारः, अनन्ता उत्पलसारिवा, विदारिगन्धा शालपर्णी, क्षीरशुक्ला क्षीरविदारी; जलशूको जलनीलिका, जलान्तर्वर्ती रोमयुक्तः सविषप्राणी वा; जलशूको जलसंस्थस्तृणसक्तो जन्तुविरचितः शूकसंघातवान् निवासोऽन्दुक इत्यन्ये, 'जलचारी कृष्णकीट' इति लक्ष्मणटीप्पणकेनोक्तं; मधुरवर्गः काकोल्यादिः, पयस्या विदारीभेदः, केचिदर्कपुष्पीत्याहुः; अन्ये मधुरवर्गं पयस्यां च न पठन्ति । तैलं वेति तिलतैलं वा पचेत्, एकैकं वा"" । १८-१६ ॥

""पयस्या अर्कपुष्पी"" ॥ २१ ॥

""पतङ्गं रक्तचन्दनम्, अञ्जनं रसाञ्जनम्"" ॥ २७-३१ ॥

अध्यायः १८

""क्षौमम् अतसीतन्तुभिर्व्यूतं, अन्ये वस्त्रान्तरमाहुः; कार्पासं कार्पासतन्तुरचितम्; आविकम् उरभ्ररोमव्यूतं; दुकूलं पट्टवस्त्रम्, अन्ये वल्कलमाहुः; कौशेयं कोशकारकृमिलालोद्भूतं, यत् 'त्रसर' इति लोके; पत्रोर्णो रल्लूकाख्यः कम्बलः, अन्ये तु 'यैर्हरितादीनि देवाङ्गान्युप्यन्ते ते पत्रोर्णाः', 'धौतकौशेयम्' इत्यपरे, 'मागधपौण्ड्रकादिदेशेषु नागवृक्षादयश्चत्वारो वृक्षास्तत्पत्रेभ्यो जातैर्हरिततन्तुभिरूर्णारूपैर्वयते यत्तत् पत्रोर्णम्' इत्येके; चीनपट्टं चीनदेश एवोत्पद्यते, तद्देशजनास्तु 'चीनयुगपट्टम्' इति वदन्ति, स च पत्रोर्णस्यैव भेदः, अन्ये नेत्रमाहुः; चर्म एणादीनाम्, अपरे चर्मवद्बन्धनद्रव्यम्, अथवा सुवर्णपिष्टिकालिप्पचर्मतन्तुभिस्तुरुष्कैर्यानि वयन्ते तानि चर्पशब्देनोच्यन्ते; बाह्यवल्कलमन्त्यं च त्यक्त्वा मध्यं यद्गृह्यते तदन्तर्वल्कलम्; अलाबूशकलं तुम्बीफलकर्परिका; लताविदलं श्यामलतादि पाटितार्धं; केचिद्विदलशब्दं चर्मादिभिः सह सम्बध्नन्ति, अन्ये तु विदलशब्देन वंशवेत्रादिकम्बिकामाहुः"" ॥ १६ ॥

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

अध्याय: १६

....कलायोऽत्र त्रिपुटकः, एतेन हरेणुसतीनकयोरप्रतिषेधः; निष्पापवशब्देनात्र राजशिम्बी; हरितकमिति "कुठेरशिग्रुसुरससुमुखासुरिभूस्तृणाः। मूलकं चुक्रिका चेति वर्गं हरितकं विदुः"—इति। ....वल्लूरं शुष्कमांसम्। अजाविकानूपौदकमांसवसेति अजाविके प्रसिद्धे; आनूपशब्दो द्विविधः—व्युत्पादितोऽव्युत्पादितश्च; तत्राव्युत्पादितः पञ्चसु कूलचरादिषु वर्तते, अत्र तु व्युत्पादित एव ग्राह्यः, तदेवाह,—अनुगता आपो यस्मिन् सोऽनूपो देशः, तच्चारिणस्त्वानूपाः; ते च कूलचराः प्लवाश्चेति। औदकशब्देन पुनरत्र कोशस्थाः पादिनो मत्स्याश्चोच्यन्ते। वसा शुद्धमांसस्नेहः। कृशरा तिलतण्डुलमाषैः कृता यवागूः। पायसं क्षीरसिद्धास्तण्डुलाः। अन्ये तु 'अजाङ्गलविकारानूपौदकमांसं' इति पठन्ति.... ॥ १६ ॥

....मैरेयं सुरासवयोरेकस्मिन् भाजने संधानम्। अरिष्टमभयारिष्टादि। आसवाः पलाशक्षारोदकासवादयो महाकुष्ठाद्यभिहिताः। सीधुः सस्यकः, सोऽपि नानाप्रकारः पक्वरसिकशीतरसिकादिभेदेन। सुरा लोहितवर्णा पिष्टकिण्वकल्केन किंचित् कलुषा। ....युक्तानि भवन्ति तानि सर्वाण्येव व्रणिभिर्न पातव्यानि.... ॥ १८ ॥

...छत्रातिच्छत्रे द्रोणपुष्पीद्वयं; लाङ्गूली कपिकच्छुः; जटिला मांसी; ब्रह्मचारिणी मुण्डितिका, पत्तङ्गकाष्ठमित्यपरे; लक्ष्मीः शमी, लक्ष्मणेत्यन्ये, विष्णुक्रान्तेत्यपरे; गुहातिगुहे शालपर्णीपृश्निपर्ण्यौ; शतवीर्या शतावरी, नीलदूर्वेत्यन्ये; सहस्रवीर्या श्वेतदूर्वा; सिद्धार्थकाः सर्षपाः ॥ २६ ॥

....जीवन्ती डोडिका, सुनिषण्णकः शिरिबालिका, चतुष्पर्णीत्यन्ये।....विलेपी स्वल्पद्रवा बहुसिक्था। कुल्माषा यवपिष्टमया उत्स्विन्नाः ॥ ३२-३४ ॥

अध्यायः २०

....रक्तशालिः स्वनाम्ना प्रसिद्धः। षष्टिको गौरषष्टिकः। कङ्गुको गौरकृष्णषष्टिकः। मुकुन्दकः कृष्णषष्टिकः। पाण्डुकः पाण्डुकशालिः, स च पाण्डुतुषयुक्तः। सुगन्धको देवशालिः। कलमः शालिविशेषः 'कलाविः' इति लोके प्रसिद्धः। एते षष्टिकादयः शूकधान्येषु। नीवारः प्रसादि (ति) काधान्यमध्ये रक्तशूको भवति, 'तुलजीधान्यम्' इति लोके प्रसिद्धः। उद्दालक आरण्यकोद्रवः। वैणवो वेणुयवः। नीवारादयस्तु कुधान्येषु। एणः कृष्णमृगः। हरिणस्ताम्रवर्णो मृगः। कुरङ्गः 'चतुरङ्ग' इति लोके प्रसिद्धः। मृगमातृका स्वल्पा पृथूदरा चतुरङ्गस्त्री। श्वदंष्ट्रा चतुर्दंष्ट्रोऽतिदुष्टः 'कर्कटक' इति लोके। करालः कस्तूरीमृगः। तित्तिरिः कृष्णातित्तिरिः। कपिञ्जलो गौरतित्तिरिः। वर्तीरः 'घर्घर' इति लोके; वर्तिका तद्भेदः। एणादयो जाङ्गलमृगमांसेषु। लावादयो जाङ्गल-

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

पक्षिषु। मङ्गल्या: पाण्डुवर्णा मसूरा:। हरेणु सतीनभेदो वर्तुलकलाय:। आढकी तुवरी। सतीनो वर्तुलक:। मुद्गादयो वैदलसूप्येषु। चिल्ली क्षेत्रवास्तुक:। वास्तुक: टङ्कवास्तुक:। सुनिषण्णक: शिरिवालिका, चतुष्पर्णीत्यपरे। जीवन्ती डोडिका। मण्डूकपर्णी ब्राह्मी'''' ॥ ५ ॥

''''वल्लीफलं कूष्माण्डादिवल्लीजम्; अन्ये शिम्ब्यादिमाहु:; कवकं छत्रकं, 'छत्रकभेदं सुखण्डकसंज्ञम्' इत्यन्ये; करीरो वंशाङ्कुर; अम्लफलानि आम्रातकादीनि; विरोहि विगतरोहंचणकादिकमङ्कुरितं च; पिष्टं तण्डुलपिष्टं; जाम्बवं जम्बूफलं; चिलिचिममत्स्य: शकली लोहिताक्ष: सर्वतो लोहितराजि: प्रायो भूमौ चरति स्थलमीनसंज्ञक:'''' ॥ ८ ॥

''''रोहिणीशाकं कटुकाशाकम्। जातुकशाकं पौष्करशाकम्। बलाकां वारुणी-कुल्माषाभ्यामिति बलाका बकभेद:; वारुणी मद्यापरपर्याय:, कुल्माष उत्स्विन्न-माषादि:। ''''नाडीभङ्गशाकं नाडीपल्लवशाकं, कुक्कुटस्ताम्रचूड:। ''''पित्तं कालखण्डलग्नम्। सुरा मद्यभेद:, कृशरा तिलतण्डुलमाषै: कृता यवागू:, पायसं क्षीरसिद्धास्तण्डुला:। ''''सौवीरकेणेति सौवीवीरकं काञ्जिकविशेषो विरेचनाधिकारे वक्ष्यते। ''''श्वावित् सेहिका'''' ॥ १३ ॥

''''भासो गृध्रविशेष: स्वल्पतुण्डो धूसरवर्ण:'''' ॥ १४ ॥

''''शमनलक्षणमुच्यते;—"न शोधयति यद्दोषान् समान्नोदीरयत्यपि। समीकरोति क्रुद्धांश्च तत् संशमनमुच्यते"—इति'''' ॥ २१ ॥

अध्याय: २१

''''वल्लूरं शुष्कमांसम्। वरक: वरटिका कुधान्यविशेष:। उद्दालक: अरण्य-कोद्रव:। नीवार: प्रसातिका, धान्यमध्ये रक्तशूको भवति; 'उलजीधान्यम्' इति लोके। आढकी तुवरी। हरेणु: वर्तुलकलाय:। कलाय: त्रिपुटक:। निष्पावक: राजशिम्बि:। अनशनम्'''' ॥ १९ ॥

''''विदाहीति यदम्लोद्गारदाहतृष्णाप्रभृतीनुदीर्य कृच्छ्रात् पाकमुपगच्छति तद्विदाहि। हरितकशाकमिति "कुटेरशिग्रुसुरससुमुखासुरिभूस्तृणा:। चुक्राकश्चुक्रिका चेति वर्गं हरितकं विदु:"—इति। दधि सस्नेहं गव्यं दधि। कूर्चिका विग्रथितं तक्रम्। मस्तु दधिमस्तु। सौवीरकं निस्तुषयवत्रिवृदादिकृतं संधानं धान्याम्लं वा। सुराविकारा: पैष्टिकादय:। अम्लफलानि आम्रातकादीनि। कट्वरमिति अस्नेहं दधि। अन्ये भाषन्ते,—"सौवीराम्लमथात्यम्लं काञ्जिकं कट्वरं विदु:। अन्ये तु तदधोभागं तक्रं चात्यम्लतांगतम् ॥ सस्नेहं दधिजं तक्र-माहुरन्ये तु कट्वरम्"—इति'''' ॥ २१ ॥

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

...अभिष्यन्दि दोषधातुमलस्रोतसामतिशयक्लेदप्राप्तिजननम्। हायनको घोटकपुच्छः, स च शालिविशेषः। यवकः शूकधान्यविशेषः, तस्य च यवाकारास्तण्डुलाः। नैषधः 'कोरक' इत्याख्यायते, स च धान्यविशेषः। इत्कटः खगली। पिष्टं तण्डुलपिष्टम्। कृशरा तिलतण्डुलमाषैः कृता यवागूः। पायसः क्षीरसिद्धास्तण्डुलाः। बिसं पद्ममूलं, 'बिसाण्ड' इति लोके। मृणालं पद्ममूलात् स्थूलः प्ररोहाङ्कुरः। शृङ्गाटकं जलमध्ये त्रिकण्टकम्। मधुरवल्लीफलमिति मधुरफलं तालनारिकेलादि; वल्लीफलम् अलाबूप्रभृति, अन्ये कूष्माण्डकादीनि ॥ २३ ॥

अध्यायः २२

...एर्वारुकरसः कर्कटिकारसः; काञ्जिकप्रसाद इति काञ्जिकस्योपर्यच्छः; आरुकमनेनैव नाम्ना प्रसिद्धम् ॥ ८ ॥

...पुलाकोदकं गवेधुकोदकं, गवेधुकस्तृणविशेषः, 'जलगोधूम' इति लोके; अन्ये तु पुलाकशब्देनाप्राप्तपाकं धान्यमाहुः। ...कलायोऽत्र त्रिपुटकः... ॥ ९-१० ॥

अध्यायः २५

...अश्मन्तकः अम्ललोटकसदृशो वृक्षः। क्षौममिति क्षुमा अतसी तस्या इदं क्षौमम्। ...मूर्वा चीरस्नायुः, या पूर्वदेशे गुणान् कुर्वन्ति धनुषाम्। अन्ये कोविदारसदृशयुग्मपत्रां लताविशेषां मूर्वामाचक्षते... ॥ २०-२६ ॥

...अञ्जनं सौवीराञ्जनम्। ....क्षौमध्यामेनेति अतसीभववस्त्रभस्मना... ॥२७-२८॥

अध्यायः २६

...रैतिकमिति रीतिः पित्तलभेदः, तन्मयं रैतिकम्। केचिदत्र 'रैतिकं' इति पदं विहाय 'कृष्णायस्त्रपुसीसकम्' इति पठन्ति ॥ २० ॥

...विषाणं शृङ्गं, दारु काष्ठम्, उपलः पाषाणः... ॥ २२ ॥

अध्यायः २७

...अयस्कान्तः पाषाणविशेषः, यद्यप्ययस्कान्त इति सामान्येनोपात्तस्तथाऽप्यत्राकर्षको ग्राह्यः; हर्षस्तुष्टिः ॥ ४ ॥

...कुशा वंशवेत्रादिकम्बी... ॥ १२ ॥

अध्यायः २९

...उपलः पाषाणः, भस्मेति दग्धकाष्ठादिक्षारः... ॥ ९-१४ ॥

....वृषो वृषभः। ...मोदका लड्डुकाः। हिरण्यं स्वर्णम्, अन्ये कपर्दकान्याहुः; अक्षता लाजाः, अन्ये क्षतानि यवधान्यान्याहुः। ...वाजी घोटकः। चाषः करटासः। शिखी मयूरः... ॥ २७-३१ ॥

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

...पारिभद्रको निम्बवृक्षः; कोविदारः काञ्चनारः। ....सुरा पिष्टमयी न तु मद्यं.... ।। ५४-६६ ।।

...चणकादिपिष्टकृता सतिला तैलभृष्टा शष्कुलीत्युच्यते... ।। ६८-७० ।।

...उरगः सर्पः... ।। ७५-८१ ।।

अध्यायः ३०

...श्वा कुक्कुरः; कङ्कः कङ्कमल्लः; तस्य लक्षणमाह,—"कङ्कः स्यात् कङ्कमल्लाख्यो बाणपक्षार्हपक्षकः। लोहपृष्ठो दीर्घपादः पक्षाधःपाण्डुवर्णभाक्—" इति... ।। १५-२३ ।।

अध्यायः ३२

...प्रवालो विद्रुमः, स च समुद्रजातोऽत्यन्तरक्तो वल्लीविशेषः.... ।। ४ ।।

अध्यायः ३३

...सिकता वालुका... ।। १२ ।।

अध्यायः ३६

...संशमनानीति यद्द्रव्यं न वामयति न विरेचयति व्याधिना सहैकीभूय तत्स्थमेव व्याधिमुपशमयति तत् संशमनमुच्यते ।। ६ ।।

अध्यायः ३७

...मातुलुङ्गी बीजपूरकः; अग्निमन्थः अरणी, भद्रदारु देवदारु, महौषधं शुण्ठी, अहिंस्रा बृहदहिंस्रा, रास्ना सुरभिः। ....अजगन्धा बोथयिका, लतौषधीत्येके, अन्ये यवानिकामाहुः, ...काला अहिंस्रा, सरला अरुणमूला त्रिवृत्, एकैषिका शुक्लमूला त्रिवृत् अजश्रृङ्गी, कर्कटश्रृङ्गी, अन्ये अजश्रृङ्गी छगलविषाणिका उत्तमारणी 'मेणिका' इति लोके। ....पथ्या हरीतकी, पिण्डीतको मदनः, अनन्ता दुरालभा.... ।। ३-७ ।।

....शिग्रुः शोभाञ्जनकः,.... अतसी 'अलसी' इति लोके प्रसिद्धा.... ।। ६ ।।

....चिरबिल्वो वृद्धकरञ्जः 'चिरिहिलि' इति लोके, अग्निकः कलिकारिका अन्ये भल्लातकमाहुः, दन्ती दन्तिनी, ...हयमारः करवीरः। ....कपोतो वनवासी पाण्डुकः, कङ्कः कङ्कमल्लः, न पुनः काकः गृध्रो मांसाशी पक्षिविशेषः.... ।।१०।।

....शङ्खिनी यवतिक्ताभेदः सुदुग्धा बृहत्पत्राः अङ्कोठः संग्राही चीरितस्वल्पपत्रः, 'अङ्कोल्ल' इति लोके सुमना जाती, करवीरः प्रसिद्धः सुवर्चला सूर्यावर्तः, सौञ्च (च) लीति लोके.... ।। १२ ।।

....गवाक्षी इन्द्रवारुणी, लाङ्गलाह्वया कलिकारिका, पूतीकः चिरबिल्वः 'कण्टकी विटपकरञ्ज' इत्येके, हरेणवो रेणुकाः, लवणानि सैन्धवसौवर्चल-

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

बिडगडसामुद्रिकाणि पञ्च; अन्ये गडस्थाने काललवणेन सह पञ्चसंख्यामाहुः, काललवणं तु निर्गन्धं सौवर्चलभेदः, सुराष्ट्रजा तुम्बुरुमृत् 'तूरी' इति लोके; अपरे सामान्येन कृष्णमृत्तिकामाहुः.... ॥ १३-१४ ॥

....अर्कः अर्कमूलम्, उत्तमा त्रिफला, अन्ये तु पुनरर्कोत्तममित्यभिन्नपदेन मन्दारकमाहुः, स्नुहीक्षीरं सेहुण्डदुग्धं, क्षारोत्तमानि क्षारश्रेष्ठद्रव्याणि मुष्कककुट-जपलाशाश्वकर्णादीनि जातीमूलं जात्या जटा; अन्ये 'जातुकन्द' इति पठन्ति तत्र जातुकन्दो गुग्गुलुक उत्तरापथे प्रसिद्धः.... ॥ १६ ॥

....मयूरकोऽपामार्गः, राजवृक्षः किरमालकः। कोशातकी घोषकः, 'घुसुण्डी' इति लोके.... ॥ १७-१८ ॥

....श्रीवेष्टकः सरलरसो नवनीतपिण्डप्रायः, 'गुग्गुली' इति लोके प्रसिद्धः, सर्जरसः 'राला' इति लोके प्रसिद्धः, सरलेः सरलवृक्षत्वचीत्यर्थः। सारेष्विति अनुक्तेषु सालसारादिसारेष्वित्यर्थः। ....जातुकन्दो गुग्गुलुः.... ॥ २१ ॥

....सोमः सोम एव, 'सोमवल्कल' इत्यन्ये, अपरे 'सोमा ब्राह्मी' इत्याहुः; अमृता गुडूची, क्षीरिप्ररोहा न्यग्रोधोदुम्बरादीनामङ्कुराः.... ॥ २२-२३ ॥

....पृथक्पर्णी पृश्निपर्णी, आत्मगुप्ता कपिकच्छूः, मालती जाती; सिता शर्करा, श्वेतदूर्वेत्यन्ये.... ॥ २५ ॥

....कालानुसार्यं तगरं, शैलजमिति केचित्.... ॥ २६ ॥

....कङ्गुकाः कङ्गवः, 'अन्नविशेषाः' इत्यपरे। श्रवणाह्वया मुण्डितिका। धवः शकटाख्यः, अनेनैव नाम्ना प्रसिद्धः, अश्वकर्णः पूर्वदेशे गन्धमुण्डोऽश्वत्थ-सदृशवृक्षः.... ॥ २७-२८ ॥

....अपामार्गस्य मूलं शीतलं गृह्यते, न तु फलं, तस्योष्णवीर्यत्वात्। तालपत्री मुशली। सुवर्चला सूर्यावर्तः, अस्या अपि मूलं न तु फलं, तस्योष्णवीर्यत्वात्। ....उत्सादनं मांसवर्धनं, लेपप्रयोगादुत्सादनं भवति... ॥ ३० ॥

....कुरुविन्दो लोहितरत्नं 'पद्मराग' इत्युच्यते। कुक्कुटाण्डकपालानि कुक्कुटाण्डकर्पराणि। सुमनोमुकुलानि चेति जातिकलिकेत्यर्थः.... ॥ ३१-३२ ॥

अध्यायः ३८

...विदारिगन्धा शालपर्णी, विदारी विपादिककन्दः कोहलाकारो लोहित-कुसुमः, स च द्विविधः—दीर्घकन्दो बहुक्षीरः, हस्तिपादकोऽल्पक्षीर इति। विश्वदेवा गाङ्गेरुकी प्रसिद्धा, 'गुडशर्करा (गुलशकरी)' इति पूर्वदेशे, अन्ये सितकुसुमां बलामाहुः। सहदेवी बलाभेदः पीतपुष्पा 'काङ्कसी' इति लोके, अन्ये बलां नीलपुष्पामाहुः। श्वदंष्ट्रा गोक्षुरकः। पृश्निपर्णी पृथक्पर्णी 'पीठवनी' इति

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

लोके। शतावरी सूक्ष्मपत्रा 'शताउरी' इति लोके। सारिवा जम्बूपत्रा दुग्धगर्भा वल्ली स्वनामप्रसिद्धा। कृष्णसारिवा छिन्नहेण्टापत्रसदृशच्छदा चन्दनगन्धा 'कालवेली' इति लोके, केचित् कृष्णसारिवां न पठन्ति। जीवकः कूर्चशीर्षकः स्वनामख्यातः। ऋषभको वृषभकः, अयमपि स्वनामख्यातः। महासहा माषपर्णी। क्षुद्रसहा मुद्गपर्णी। बृहत्यौ सूक्ष्मफला स्थूलफला च। पुनर्नवा वर्षाभूः 'साटडी' इति लोके। एरण्डः स्वनामप्रसिद्धः। हंसपादी मधुश्रवा हंसपदाकारपत्रा पीतपुष्पा जलयु (मु)क्तदेशजाता 'हंसपाई' इति लोके प्रसिद्धा। वृश्चिकाली कण्टकितमेषशृङ्गयुवाकारफला पाठापत्रा ईषद्रोमशा श्वेतपुष्पगुच्छा दक्षिणावर्तवल्ली मेषशृङ्गीभेदः, वृश्चियाशाकमन्ये। ऋषभी कपिकच्छुः'''' ॥ ४-५ ॥

''''आरग्वधः किरमालिकः, मदनः पिण्डीतकः, 'मयणफल' इति लोके, गोपघोण्टा कर्कोटी, बदरभेद इत्यन्ये, 'ग्रामकोलिका' इति प्रसिद्धा, पुगभेदमपरे, कण्टकी विकङ्कतः वृक्षकण्टकारिकेति प्रसिद्धा, 'कांकई' इति लोके, कुटज इन्द्रवृक्षः, पाठा अविद्धकरणी, 'पाढ' इति लोके, पाटला वसन्तदूती स्वनामप्रसिद्धाः मूर्वा धनुर्गुणोपयोग्या, 'दूधउ' इति लोके, अन्ये चोरस्नायुमाहुः, इन्द्रयवः कुटजफलं, सप्तपर्णः शाल्मलीसदृशपर्णो गजमदगन्धपुष्पः शरदि विकसनशील उच्चैर्वृक्षः 'सातवन' इति लोके, निम्बः प्रसिद्धः, कुरुण्टकः पीतपुष्पः, 'कण्टाशेलुआ' इति लोके, नीलपुष्पः स एव दासीकुरुण्टकः, गुडूची प्रसिद्धा, चित्रकः प्रसिद्धः, शार्ङ्ग(ङ्र्ग)ष्टा काकजङ्घा 'विकसवनी' इति लोके, काकमाचीत्यन्ये, अन्ये तु शाङ्र्गेष्टा काकतिक्ता गौरवर्तुलावगुण्ठितफला 'चिरपोटिका' इति प्रसिद्धा, 'भुरुदाका' इति पूर्वदेशे, काकादनीत्यपरे, सा च गुञ्जेति प्रसिद्धाः करञ्जद्वयमिति एकश्चिरबिल्वः, द्वितीयः कण्टकी विटपकरञ्जः, पटोलः कुलकः स्वनामख्यातः, किराततिक्तको भूनिम्बः, सुषवी कारवेल्लकः, अन्ये तु पानीयवल्लीमाहुः ॥ ६-७ ॥

''''सालः शङ्कुः, तस्य सारः सालसारः; अजकर्णः सर्जः सालभेद एव; खदिरो गायत्री स्वनामख्यातः; कदरः खदिराकारः श्वेतसारः; क्रमुकः पूगः, केचित् 'क्रमुग' इति पठन्ति, अत्रापि स एवार्थः, वृक्षरोध्र इत्यन्ये साराधिकारात्; भूर्जो मृदुत्वक् स्वनामख्यातः, केचित् भूर्जस्थाने 'स्फूर्जक' इति पठन्ति, तत्र स्फूर्जकः श्योनाकनाम्ना प्रसिद्धः (लकुचाकारपत्रकाण्डः); मेषशृङ्गः कर्कटशृङ्गः, स च पुत्रञ्जीवकसदृशस्तरुविशेषः; तिनिशः स्यन्दनः, 'सादण' इति लोके प्रसिद्धः; चन्दनं श्रीचन्दनं 'श्रीखण्ड' इति प्रसिद्धं; कुचन्दनं रक्तचन्दनं; शिंशपा कृष्णसारा 'सीसई' इति लोके; शिरीषो विषघाती; 'शिरस' इति लोके; असनो बीजकः पूर्वदेशे प्रसिद्धः; धवः शकटाख्यः स्वनामप्रसिद्धः; अर्जुनः

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

ककुभः; तालः स्वनामख्यातः; शाकः पूर्वदेशे प्रसिद्धो महाखरपत्रः; नक्तमालो बृहत्करञ्जः; पूतीकः चिरबिल्वः; अश्वकर्णो गन्धमुण्डोऽश्वत्थसदृशः पूर्वदेशे प्रसिद्धः; अगुरु स्वनामख्यातं; कालीयकं 'मलेन्द्रीचन्दनम्' इति प्रसिद्धम्। विनाशनहरणविशोषणानामर्थभेदमाहुः'''' ॥ ८-९ ॥

''''वरुणस्तिक्तसारः शाकद्रुमः 'वरुण' इति लोके; आर्तगलः ककुभः सुगन्धमूलः 'कवहा (कौहा)' इति नाम्ना पूर्वदेशे प्रसिद्धः; शिग्रुः शोभाञ्जनकः; मधुशिग्र रक्तशोभाञ्जनकः; तर्कारी अरणिका; मेषशृङ्गी कर्कटशृङ्गी, पूतीकश्चिरबिल्वः, नक्तमालो बृहत्करञ्जः; मोरटोङ्कोल्लपुष्पो 'मोइहर' इति लोके, हस्तिकर्णपलाश इत्यन्ये, अग्निमन्थस्तेजोवृक्षः पूर्वदेशे 'आगथ' इति प्रसिद्धः; सैरेयकद्वयं रक्तपुष्पनीलपुष्पकण्टशेलुआद्वयं, बिम्बी ओष्ठोपमफला 'तिण्डुरिका' इति प्रसिद्धा, चित्रकः प्रसिद्धः, शतावरी प्रसिद्धा, वसुको बुकः 'बकपुष्प' इति लोके, अन्ये तु वसुकोऽर्कः, वशिरो मर्कटपिप्पली तृणजातिः 'अपामार्ग' इति प्रसिद्धः, बिल्वः श्रीफलः, अजशृङ्गी छगलविषाणिका उत्तमारणी 'मेण्ढिका' इति लोके, दर्भः, कुशः। बृहतीद्वयं कण्टकारिकाद्वयम्—एका स्थूलफला; द्वितीया ह्रस्वफला ॥ १०-११ ॥

''''वीरतरुः शरः, अन्ये तु वीरतरुः 'बेल्लन्तर' इति नाम्ना प्रसिद्धो जाङ्गलदेशे नर्मदातटे चर्मण्वतीनदीसमीपे च, तल्लक्षणमुच्यते,—"वेल्लन्तरुर्जगति वीरतरुः प्रसिद्धः श्वेतासितारुणविलोहितपीतपुष्पः। आदारितुल्यकुसुमः शमिसूक्ष्मपत्रः स्यात् कण्टकी विजलदेशज एष वृक्षः— इति, सहचरद्वयं कण्टशेलुद्वयं, दर्भः प्रसिद्धः; वृक्षादनी बन्दाकः 'कवलेखू' इति लोके, वृक्षकलम्बुकमपरे, गुन्द्रा पादरकभेदो 'गोदर' इति लोके, नलो दूर्वाकाराङ्कुरोन्तः शुषिरः स्वनामख्यातः; कुशो ह्रस्वदर्भः, काशः चामरपुष्पः, अश्मभेदकः पाषाणभेदकः; अग्निमन्थः तेजोवृक्षः, 'अङ्गेशूर' इति लोके; मोरटोङ्कोल्लपुष्पः, हस्तिकर्णपलाश इत्येके, इक्षुमूलमित्यपरे; वसुको बुकः 'बकपुष्प' इति लोके; वसिरः अपामार्गः; सूर्यावर्तभेद इत्येके; भल्लूकः श्योनाकः 'शोणा' इति लोके; कुरण्टिका कृष्णसूक्ष्मफला 'सिरिवालिका' इति लोके; इन्दीवरोऽपि तद्भेदो दीर्घपत्रो बहुलपुष्पः; कपोतवङ्का सुवर्चला, अन्ये 'शिरीषसदृशपत्रा स्वल्पविटपा' इति द्रव्यान्तरमाहुः; श्वदंष्ट्रा गोक्षुरकः'''' ॥ १२-१३ ॥

''''रोध्रो लाक्षाप्रसादनो रक्तः; सावरलोध्रः श्वेतस्थूलत्वक्; पलाशः किंशुक; कुटन्नटः स्योनाकः; अशोको लोहितकुसुमः स्वनामख्यातः; फञ्जी भार्गी; कट्फलः 'कायफल' इति लोके; एलवालुकं हरिवालुकं कृष्णगन्धिकट्फलसदृशं; शल्लकी गजभक्ष्या 'साल' इति लोके; जिङ्गिनी गुडमज्जनिका: 'गुलदुगि' इति लोके,

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

पूर्वदेशे स्वनामप्रसिद्ध कदम्बो वृक्षकदम्बः; सालः सर्जः; कदली रम्भा स्वनामप्रसिद्धा। स्तम्भी अतिसारादेः स्तम्भनः ॥ १४-१५ ॥

....मुष्ककः क्षारवृक्षः 'मोखक' इति लोके; पलाशः किंशुकः; धवः स्वनामप्रसिद्धः; चित्रकोऽपि स्वनाम्नैव प्रसिद्धः; मदनः पिण्डीतकः; वृक्षकः कुटजः; 'मदनवृक्ष' इत्यन्ये पठन्ति, मदनवृक्ष इत्यत्र वृक्षशब्दनिर्देशः फलप्रतिषेधार्थमिति व्याख्यानयन्ति; शिंशपा कृष्णसारा स्वनामख्याता; वज्रवृक्षः 'सेहुण्ड' इति लोके; त्रिफला हरीतक्यामलकबिभीतकानि ॥ २०-२१ ॥

....चव्यं हस्तिपिप्पलीमूलं स्वनामख्यातं; शृङ्गवेरं शुण्ठी; हस्तिपिप्पली गजपिप्पली; अजमोदा स्वनामख्याता, अन्ये यवानिकामाहुः; महानिम्बफलमिति महानिम्बो द्रेक्का 'पर्वतनिम्ब' इति लोके; मधुरसा मूर्वा.... ॥ २२-२३ ॥

....ध्यामकं कत्तृणं 'रोहिष' इति लोके; त्वक् वराङ्गं 'गुडतज' इति लोके; पत्रं पत्रकं; नागपुष्पं नागकेशरम्, अन्ये नागकेशरपुष्पसमपुष्पो महातरुरित्याहुः; हरेणुका रेणुका; व्याघ्रनखो बृहन्नखः, बृहन्नखीत्यन्ये, शुक्तिस्तद्भेदोऽल्पनखः चण्डा स्वनामख्यातेषत्कृष्णा चोरकभेदः अजमोदाकारा; स्थौणेयकं थुणेरकः; श्रीवेष्टकः सरलचोपः 'गुग्गुली' इति लोके; चोचस्त्वग्भेदो वनवासिकात्वक्; चोरकः स्वनामख्यातः ग्रन्थिपर्णकभेदो ग्रन्थिपर्णाकार एव; सर्जः सर्जरसः 'राल' इति प्रसिद्धः अन्तलोपात्; रसः गन्धरसः 'बोल' इति लोके; तुरुष्कः सिह्लकः; कुन्दुरकः शल्लकीचोपः; स्पृक्का कुटिलपुष्पा सुगन्धिद्रव्यमौत्तरापथिकं; भद्रदारु देवदारु; पुन्नागः सुरपर्णिका; सुगन्धिपुष्पा दक्षिणापथे 'सुरपर्ति' (सुरङ्गी) नाम्ना प्रतीता; केशरं बकुलं, केचित् समुदितं व्याख्यानयन्ति—पुन्नागकेशरं पद्मकेशरमित्यर्थः; अन्ये त्वेवं पठन्ति — 'पुन्नागनागकेशरं च' इति, पुन्नागं देववल्लभं राजचम्पकमिति लोके; नागकेशरं स्वनामप्रसिद्धम्... ॥ २४-२५ ॥

....भद्रदारु देवदारु। कलशी पृश्निपर्णी.... ॥ २६-२८ ॥

....श्यामा श्वेता त्रिवृता; महाश्यामा वृद्धदारकः; त्रिवृत् रक्तमूला त्रिवृत् 'निशोथ' इति लोके; दन्ती दन्तिनी; शङ्खिनी यवतिक्ताभेदः, 'श्वेतबुध्ना' इत्येके; तिल्वको रोध्रः, अन्ये तिल्वको रोध्राकारो बृहत्पत्रो रक्तत्वक्को वैरेचनिकः, कम्पिल्लको रोचनिका, स्वनामख्यातः, रम्यको द्रेक्का 'महानिम्ब' इति लोके प्रसिद्धः, पटोलमूलमित्येके, क्रमुकः पूगफलं; पुत्रश्रेणी द्रवन्ती एरण्डसदृशफलपत्राऽल्पविटपा 'शम्बरी' इति लोके, गवाक्षी इन्द्रवारुणी, राजवृक्षः किरमालकः, करञ्जद्वयं वृक्षविटपकरञ्जौ, गुडूची प्रसिद्धा सप्तला सातला स्नुहीभेदः छगलान्त्री वृद्धदार(रु) कभेदः, बुध्नाभेद इत्यपरे, सुधा सेहुण्डः, सुवर्णक्षीरी अनन्तासदृशपत्रा, कङ्गुष्ठमित्यपरे ॥ २९-३० ॥

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

''''कुचन्दनं रक्तचन्दनं; मूर्वा दुधीड:, 'चौरस्नायुक' इत्येके''''।। ३३-३४ ।।

''''काकोली वीरा स्वनाम्ना प्रसिद्धा, क्षीरकाकोली तद्भेद: स्वनामख्याता; जीवक: स्वनामप्रसिद्ध:, ऋषभ: स्वनामख्यात:, मुद्गपर्णी 'मुगवनी' इति लोके माषपर्णी 'माषवनी' इति लोके, 'अरण्यमाषस्तम्ब' इत्येके, मेदा महामेदा च स्वनामख्याता छिन्नरुहा गुडूची; तुगाक्षीरी वंशलोचना, पद्मकं पद्मकाष्ठं, प्रपौण्डरीकं स्वनामख्यातं यष्टीमधुद्रव्यादीषत्स्थूलं मधुररसं नेत्राश्च्योतनार्हं द्रव्यम्, अन्ये श्रीपुष्पमाहु:, मृद्वीका द्राक्षा; जीवन्ती 'डोडिका' इति लोके, लताऽर्कफलाकारसक्षीरफला, अन्ये सुवर्णजीवन्तीमाहु: । जीवन: प्राणधारण:; बृंहण: शरीरवृद्धिकर:'''' ।। ३५-३६ ।।

'''ऊषक: क्षारमृत्तिका वाराणसीसमीपे बडहरदेशे बाहुल्येन भवति, अन्ये तद्भवं द्रव्यान्तरमाहु:, कासीसद्वयं कासीसं भस्मसदृशं किञ्चिदम्ललवणरसं, द्वितीयं पुष्पकासीसमीषत्पीतं तुवररसं तद्भेद एव, तुत्थकं कर्परिकातुत्थं 'खपरिया' इति लोके, अन्ये मयूरग्रीवमाहु:''' ।। ३७-३८ ।।

''''चन्दनं रक्तचन्दनम्, अन्ये पद्ममिति पठन्ति, तत्र पद्मं पद्मपुष्पम् ।। ३९-४० ।।

''''अञ्जनं सौवीराञ्जनं, रसाञ्जनं दारुहरिद्राक्वाथेन कृत्रिमं अन्ये त्वेवं वदन्ति—रसाञ्जनं द्विविधं स्रोतोऽञ्जनं कृष्णपाषाणाकृति धातुद्रव्यम्, अन्यद्दारुहरिद्राक्वाथेन कृत्रिमं पीतलोहितम्, अत्र धातुद्रव्यमेव सौवीराञ्जनसाहचर्यात्, नागपुष्पं नागकेशरं, नलदं मांसी, नलिनकेशराणि पद्मकेशराणि'''' ।। ४१-४२ ।।

''''कट्फल: सोमवल्क: 'कायफल' इति लोके, राजादन: क्षीरिका, कतकफलं स्वनामख्यातं शशकपुरीषप्रतिमफलमम्बुप्रसादनं, शाकफलानि शाको मसृणकर्कशोदरपृष्ठदलो वृक्षविशेष:, तस्य फलानि'''' ।। ४३-४४ ।।

''''समङ्गाञ्जलिकारिका 'लज्जालु:' इति लोके: पुन्नागस्तुङ्ग: स्वनामख्यात: अन्ये सुरपर्णिका सुगन्धिपुष्पा दक्षिणापथे सुरपती (सुरंगी) ति प्रसिद्धा नागपुष्पं नागकेशरं, चन्दनंरक्तचन्दनम्, कुचन्दनं मलयाद्रिचन्दनं, मोचरस: शाल्मलीचुप: रसाञ्जन दार्वीक्वाथसमुद्भवं स्वनामख्यातं, कुम्भीक: श्लक्ष्णत्वक्को रौमश: कुम्भीनामा, वृक्षो यस्य त्वग् वस्त्राकारा भवति, अन्ये पाटलामाहु:; अपरे स्वल्पविटपमाहु:, स्रोतोजं सौवीराञ्जनं, पद्मकेशर स्वनामख्यातं, योजनवल्ली ''''मञ्जिष्ठा, दीर्घमूला दुरालभा, शालिपर्णीत्यपरे'''' । अम्बष्ठा माचिका 'साङ्कुरड' इति पश्चिमे प्रसिद्धा, पाठा इत्यपरे, धातकीकुसुमं धातकीपुष्पं समङ्गाञ्जलिकारिका 'लज्जालु:' इति लोके, कट्वङ्गोऽरलुक: बिल्वपेशिका

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

बालबिल्वगिरः, महारोध्रं केचिद् पठन्ति, सावररोध्रो लोध्रस्तस्यैव ग्राहित्वात् नेतरस्तस्य विरेचनत्वात्, पलाशः किंशुकः, नन्दीवृक्षः काश्मीरी, अन्ये गर्दभाण्डमाहुः, पद्मकेशरं··· ॥ ४५-४७ ॥

····न्यग्रोधो वटः, उदुम्बरः प्रसिद्धः, अश्वत्थः पिप्पलः प्लक्षः; पर्कटी; मधुकं प्रसिद्धं; कपीतन आम्रातकः, ककुभः अर्जुनः, आम्रः प्रसिद्धः ··· चोरकपत्रो लाक्षावृक्षः, जम्बूद्वयमेका राजजम्बूर्बृहत्फलाः द्वितीया काकजम्बूः स्वल्पफला, द्वयग्रहणाद्भूमिजम्ब्वास्तृतीयायाः प्रतिषेधः; प्रियालः सारद्रुमः; मधूको गुडपुष्पो 'महुवा' इति लोके, रोहिणी कट्फलः, वञ्जुलो वेतसः, कदम्बः प्रसिद्धः, बदरी प्रसिद्धा, तिन्दुकी तिन्दुकवृक्षः, 'टिम्बरुयणि' इति लोके, नन्दीवृक्षोऽत्र प्ररोही गर्दभाण्डः 'पार्श्वपिप्पल' इति लोके··· ॥ ४८-४९ ॥

····कुस्तुम्बुरु धान्यकं, चन्दनं रक्तचन्दनम्···· ॥ ५०-५१ ॥

उत्पलेत्यादि । उत्पलं नीलोत्पलं,····कुमुदं श्वेतोत्पलं, सौगन्धिकं नीलोत्पलाकारवर्णमुत्पलं सुगन्धि च, कुवलयमीषन्नीलधवलं, पुण्डरीकं श्वेतपद्मं, मधुकं यष्टीमधुकम्···· ॥ ५२-५३ ॥

····हेमवती श्वेतवचा, स्वनामख्याताऽरुणवर्णा, शाङ्र्ग (ङ्र्गे)ष्टा काकतिक्ता गौरवर्तुलावगुण्ठितफला 'चिरपोटिका' इति प्रसिद्धा, 'झझरुष' इति पूर्वदेशे, काकजङ्घामन्ये, काकमाचीत्यपरे; द्राविडी एला । स्तन्यशोधन इति स्त्रीक्षीरप्रसादनः···· ॥ ५४-५५ ॥

—त्रपु वङ्गं, सीसं नागं, ताम्रं प्रसिद्धं; रजतं रूप्यं, ····कृष्णलोहं, तीक्ष्णलोहं,···· लोहमलः प्रसिद्धः 'काट' इति लोके···· ॥ ६२-६३ ॥

···आरेवतः किरमालकः, कुटज इन्द्रयवः, अश्वमारकः करवीरः, कट्फलः सोमकल्कलः 'कायफल' इति लोकेः सप्तच्छदः सप्तपर्णः 'सातवन' इति लोके; मालती जाती··· ॥ ६४-६५ ॥

···त्रिकण्टको गोक्षुरकः, विदारिगन्धा शालपर्णी ·· ॥ ६६-६७ ॥

···अग्निमन्थः 'अग्निवधू' इति लोके, टुण्टुकः स्योनाकः···॥ ६८-६९ ॥

विदारी विदारीकन्दः, रजनी हरिद्रा, 'रञ्जनी' इत्यन्ये पठन्ति, रञ्जनी शिरहलकः, अजश्रृङ्गी मेढिका, कर्कटश्रृङ्गीत्यपरे । ···करमर्दी क्षीरफला 'करमदी' इति लोके, त्रिकण्टः गोक्षुरकः, सैरेयकः कण्टसेलियाकः, गृध्रनखो हिंस्रा··· ॥ ७२-७४ ॥

···कुशो ह्रस्वो मृदुः सूचीपत्र, काशश्चमरपत्रः, ···दर्भः पृथुलः खरपत्रो दीर्घः, काण्डेक्षुका महती खगाली, अन्ये इक्षुमेवाहुः, अन्ये तु पठन्ति 'काण्डश्च' इति तत्र काण्डः' शरः··· ॥ ७५-७६ ॥

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

"...कषायशब्देनात्र शृतशीतस्वफाण्टकल्कभेदाः पञ्चोच्यन्ते। पीयन्त इति पानका यूषमण्डादयः कथ्यन्ते..."॥ ७६-८० ॥

अध्यायः ३६

"...व्याधिप्रत्यनीका द्रव्यगणा उक्ताः, संशोधनसंशमनीये तु दोषप्रत्यनीकप्रायाः पञ्चकर्मोपयोगिनः शोधनद्रव्यसंग्रहगणा वातादिशमनद्रव्यगणाश्च कथयितव्या इति, तत्र द्विविधं संशोधनं —वमनं विरेचनं च, तत्र वमनपूर्वकत्वाद्विरेचनस्य प्रथमं वमन द्रव्यगणमभिधातुमाह—मदनेत्यादि। जीमूतको देवदाली, इक्ष्वाकुः कटुकालाबूः, धामार्गवः पीतपुष्पा कोषातकी, कृतवेधनः कोषातकीभेदः सर्षपाः श्वेतसर्षपा विशेषेण वमनार्हाः, कोविदारः काञ्चनारः कर्बुदारः श्लेष्मान्तकः 'बवहार' इति 'लिहूसाडक' इति च देशभाषया प्रसिद्धः, अरिष्टो निम्बः, विदुलो वेतसः, बन्धुजीवो मध्याह्नपुष्पकः 'मरुनीया' इति लोके, श्वेता श्वेतवचा, शणपुष्पी शणसदृशविटपः 'सणहुली' इति लोके, बिम्बी किन्दुरिका, वचा द्वितीयाऽरुणा, मृगेर्वारुरिन्द्रवारुणी, चित्रा चित्राण्डिका पटोलफलाकारफला आरण्यचण्डकेत्यर्थः; अन्ये द्रवन्तीमाहुः। "...ऊर्ध्वभागहराणि वमनकराणीत्यर्थः...." ॥ ३ ॥

"...त्रिवृत् रक्तमूला 'निसोतृ' इति लोके, श्यामा कृष्णमूला त्रिवृत्, दन्ती दन्तिनी; द्रवन्ती दन्तीभेदः 'संवरी' इति लोके, सप्तला सातला सेहुण्डभेदः, अपरे बुध्नामाहुः, शङ्खिनी यवतिक्ताभेदः, श्वेतबुध्नेत्यपरे, विषाणिका मेषशृङ्गी, गवाक्षी श्वेतपुष्पेन्द्रवारुणी, छगलान्त्री वृद्धदार(रु) कः, स्नुक् सेहुण्डः, सुवर्णक्षीर्यनन्तासदृशपत्रा 'हियावलि' इति लोके, 'कङ्गुष्ठ' इत्यपरे, किणिही कटभी, तिल्वकः स्वल्परोध्रः, कम्पिल्लको रोचनिकः स्वनामख्यातः, रम्यको द्रेक्का 'बकाइणि' इति लोके, पटोलमूलमित्यपरे, नीलिनी नीलबुध्ना (ह्ना), 'श्रीफलिका' इति लोके, चतुरङ्गुलः किरमालकः, अत्रैके चतुरङ्गुलस्थाने 'पञ्चाङ्गुल' इति पठन्ति, तेषां मते पञ्चाङ्गुल एरण्डः, अन्ये तु पञ्चाङ्गुलशब्देन पटोलफलसदृशफलां लतां स्निग्धपत्रां शारदफलामाहुः; पूतीकश्चिरबिल्वः; महावृक्षः सेहुण्डभेदः, तस्य क्षीरम्..."सप्तच्छदः सप्तपर्णः, ज्योतिष्मती काकमर्दनिका। अधोभागहराणीति विरेचनानीत्यर्थ..."॥ ४ ॥

"...कोशातकी घोषकः, सप्तला स्नुहीभेदः अपरे श्रीफलिकामाहुः, देवदाली स्वनामख्याता, 'देवली' इति लोके। उभयतोभागहराणीति वमनानि विरेचनानि चेत्यर्थः..."॥ ५ ॥

"...अपामार्गः शिखरी 'अन्धडक' इति लोके, शिग्रुः शोभाञ्जनकः, सिद्धार्थः सर्षपः, शिरीषो विषघाती स्वनामख्यातः, करवीरः 'कणवीर' इति लोके, बिम्बी

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

कुन्दुरुकः; गिरिकर्णिका सेफन्दः, किणिही कटभी, ज्योतिष्मती ककुन्दनी, अर्कालकौ अर्कद्वयं, शृङ्गवेरं शुण्ठी, तालीशं तालीशपत्रं, तमालं तमालपत्रं, पत्रकमिति लोके, सुरसा 'तुलसी' इति लोके, अर्जकः कुठेरकः, इङ्गुदी इङ्गुकः, मेषशृङ्गी मेढशृङ्गः पुत्रञ्जीवकसदृशपत्रो वृक्षः, अन्ये कर्कटशृङ्गमाहुः, मातुलुङ्गी सुरभिफला वनजाऽरण्यबीजपूरकः, मुरङ्गी रक्तकुसुमः शोभाञ्जनकः, पीलुर्मधुरफलः 'पीलु' इति लोके; जाती मालती; शकृद्रसो गोमयरसः; मूत्रं गोमूत्रम्। शिरोविरेचनानीति नस्यप्रयोगेण शिरस्थं श्लेष्माणं विरेचयन्ति स्रावयन्तीत्यर्थः।....लवणानि पार्थिवविशेषा इति पृथिव्या अवयवविशेषाः, एतेन स्वरूपेणैव लवणानि ग्राह्याणीत्युक्तम्। मद्यान्यासवसंयोगा इति सन्धानकसंयोगो मद्यम्, अत एव तदपि स्वरूपेणैव ग्राह्यम्....॥ ६ ॥

....संशमनानीति सम्यक् शमयतीति संशमनं, सम्यक्त्वं च दुष्टदोषस्यानिर्हरणपूर्वकं शमनम्, अदुष्टस्यानुदीरणं च; व्याधिसंशमनं तु प्रस्तुतव्याधेः संशमनमप्रस्तुतव्याधेरनुदीरणम्। तदुक्तं—"न शोधयति यद्दोषान् समान्नोदीरयत्यपि। समीकरोति च क्रुद्धान् तत् संशमनमुच्यते।".....मेषशृङ्गी मेढशृङ्गः पुत्रञ्जीवकतरुसदृशपत्रो वृक्षः, अन्ये कर्कटशृङ्गमाहुः, बलातिबले शुक्लपीतपुष्पं बलाद्वयं, आर्तगलः ककुभः, केचिदार्तगलं कण्टकीवृक्षमाचक्षते, कच्छुरा कुङ्कुमर्दनिका, 'कच्छुरा शूकशिम्बिः', इत्यन्ये: कुबेराक्षो काष्ठपाटला; पो (पे) टिकेत्यन्ये, वीरतरुर्बिल्वनासिका; शर इत्यन्ये, सहचरः कण्टशेलियाकः, अग्निमन्थः 'अग्निवधूः' इति पूर्वदेशे प्रसिद्ध, वत्सादनी गुडूची, वीर्येण गुडूची वातं हन्ति, रसेन कफपित्ते, अश्मभेदकः पाषाण-भेदकः, वसुकः शिवमल्लिका, बकपुष्पमिति लोके, वशिरः सूर्यावर्तः, अपामार्ग इत्यपरे काञ्चनको धत्तूरकः, 'कर्चूर' इत्यन्ये पठन्ति कर्चूरः शटी, कार्पासी वनकार्पासिका, कार्पासिविटपसदृशी, वृश्चिकाली वृश्चियाकः, पत्तूरः कुचन्दनम्। ....यावद्भूजलानलगुणबहुलं द्रव्यं वातसंशमनमिति ॥ ७ ॥

....चन्दनं श्रीखण्डं, कुचन्दनं रक्तचन्दनं, ह्रीबेरं बालकं, पयस्या क्षीरकाकोली, विदारी विदारीकन्दः, शैवलं शैवालं, कह्लारं रक्तोत्पलं 'बृहत्पत्रिका' इति लोके, अन्ये सौगन्धिकोत्पलं, कुमुदोत्पलं; श्वेतोत्पलं; कन्दली श्वेतश्लक्ष्णबहुपुट कन्दविशेषः 'सर्पच्छत्रकम्' इति लोके, मूर्वा कन्दलीसदृशस्वविटपः 'हधोड' इति लोके... ॥ ८ ॥

....कालेयकेत्यादि। कालेयकः कृष्णवर्णचन्दनविशेषो 'मलयाद्रिचन्दनम्' इति लोके, तिलपर्णी हुलहुलः, शीतशिवं कपूरं, शतपुष्पाभेदमेके, गवेधुकेत्यपरे, सरला त्रिवृत्, प्रकीर्या कण्टकी विटपकरञ्जः, उदकीर्या चिरबिल्वः, इङ्गुदी इङ्गुकः, 'पुत्रञ्जीवक' इत्यन्ये, सुमना जाती, काकादनी हिंस्रा, लाङ्गलकी कलिकारिका, हस्तिकर्णो गजकर्णाकारैकपत्रः, 'भूपलाश' इति लोके, रक्तैरण्ड

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

इत्यन्ये मुञ्जातकः, स्वनामख्यातः स्वल्पकन्द उत्तरापथे; लामज्जकमुशीरभेदः···· ॥ ६ ॥

अध्यायः ४०

····वीर्यं शक्तिरुत्पत्तिविशेषः सामर्थ्यं प्रभाव इत्यनर्थान्तरम्। यद्द्रव्यं परिणामकाले स्वाभाविकं रसं परित्यज्य रसान्तरं भजते तत्र 'विपाक' इति संज्ञा···· ॥ २ ॥

····द्रव्यलक्षणमाह—द्रव्यलक्षणमित्यादि। क्रियागुणवदिति क्रियागुणवद्द्रव्यमित्यर्थः क्रिया कर्म, गुणा उक्ता विंशतिः। समवायिकारणमपि द्रव्यमेव; यथा—पटे तन्तवः, घटे मृत्पिण्ड इत्यादि; न च क्रियायां क्रिया समवेता, न गुणेषु गुणाश्च समवेता इति ॥ ३ ॥

····संशमनमिति वमनविरेचनादिकं विना तत्स्थमेव शमयति संशमनं, संशमनभेदा एव सांग्रहिकादयः; पीडनमिति शाल्मलीत्वगादीनां व्रणे कर्मविशेषः; लेखनं पत्तलीकरणं; बृंहणं शरीरवृद्धिकरं; रसायनं वयः स्थापनादिकरणं; वाजीकरणं वाजिवद्येनाप्रतिहतः स्त्रियं याति, अन्ये तु वाजिशब्देन शुक्रमुच्यते, ततोऽवाजिनो वाजिनः क्रियन्ते येनेति वाजीकरणं, शुक्रोत्पादकमित्याहुः, श्वयथुकरविलयनेति करविलयनशब्दौ···· 'श्वयथुहरविलयन' इत्येके पठन्ति; दहनं क्षारादिना; दारणं गृध्रपुरीषादिना; मादनं मत्तताकरणम्, एतच्च मदिरादीनां कर्म; प्राणघ्नत्वं विषादेः; विषप्रशमनत्वमगदादीनां; विषप्रशमनादीनीत्यत्रादिशब्देन व्रणरोपणरोमसञ्जननादयो गृह्यन्ते। स्वबलगुणोत्कर्षादिति स्वबलोत्कर्षात् स्वगुणोत्कर्षाच्चेत्यर्थः। आत्मकर्म कुर्वन्ति वातादिदोषशमनं कोपनं वा कुर्वन्ति अभिभूय निराकरणं कृत्वेत्यर्थः। स्नेहभावाच्चेत्यत्रापि वातं शमयतीति योज्यम्। मधुरश्चेक्षुरस इत्यादि न केवलं वातं शमयतीति वीर्यं रसमभिभूय प्रकोपयत्यपि वातमित्यर्थः। कटुका पिप्पलीत्यादि अत्रार्द्रा पिप्पली यदि गृह्यते तदा तस्याः स्वादुशीतत्वात् कटुकेति विशेषणं युक्तं न स्यात्, अथ शुष्का तदा तस्याः कटूष्णत्वात् पित्तं हन्तीति विशेषणमयुक्तं भवेत; सत्यं, 'तेषु गुर्वी स्वादुशीता पिप्पल्यार्द्रा कफावहा इत्यत्र पाठे शीता चेति चकारो द्रष्टव्यः, तेन न केवलं शीता कटुका चेत्यर्थः, ततो नार्द्रपक्षे दोषः; शुष्कपक्षे तु 'शुष्का कफानिलघ्नी सा वृष्या पित्ताविरोधिनी' इत्यत्र पित्तेन सहेषद्विरोधिनीति व्याख्यानान्न दोषः; केषाञ्चिन्मते 'पित्तप्रकोपणी' इति पाठः; तेषां मते पित्तशमनीयत्व पिप्पल्या वीर्यवादीनां मतं, न पुनः सत्यमेषा पित्तं शमयति; यदि वा आर्द्रा पित्तप्रशमनी शुष्का प्रकोपणीति। अम्लमामलकं लवणं सैन्धवं चेत्यत्रापि मृदुशीतवीर्यत्वात् पित्तं शमयतीति योज्यम्। तिक्ता काकमाचीत्यादि पित्तं

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

वर्धयति केवलं न तु प्रकोपयति, तस्यास्त्रिदोषघ्नत्वात् । अन्ये चात्रैवं वदन्ति—वीर्यवादी एवमुष्णवीर्यां काकमाचीं मन्यते, आचार्यस्तु नात्युष्णशीताम्. अत एव त्रिदोषघ्नीत्वं काकमाच्या इति । मधुरा मत्स्याश्चेत्यत्रापि पित्तं वर्धयन्तीति योज्यम् । मूलकं बृहन्मूलकं, न पुनर्बालकं, त्रिदोषघ्नत्वात् ।। ५ ।।

....ये रसा वातशमना मधुराम्ललवणाः ये रसाः, पित्तशमना मधुरतिक्तकषायाः, ये रसा श्लेषमशमनाः कटुतिक्तकषायाः ।। ६-९ ।।

....विशिष्टः पाकोऽविपाकः.... ।। १० ।।

अध्यायः ४१

....व्यवायीति समस्तदेहं व्याप्य पश्चात् पाकं गच्छति विषमद्यवत्...।। (५) ४ ।।

....संशमनमिति न शोधयति यद्दोषान् समानान्नोदीरयत्यपि....।। ६-९ ।।

अध्यायः ४२

....परितोषः परितुष्टिः । प्रह्लादयति सुखमुत्पादयति । तर्पयति तृप्तिं करोति । जीवयति प्राणान् धारयति । उपलेपो मलवृद्धिः । दन्तहर्षो दन्तकुण्ठता । कफप्रसेकः श्लेष्मास्रावः । ...चोष आकर्षणम् हर्षो रोमहर्षः.... ।। ९ ।।

...रोमसंवेजनं रोमाञ्चः... ।। (२) ।।

...पुंस्त्वोपघातः शुक्रक्षयः.... ।। (३) ।।

....शृङ्गाटकं द्विविधं स्थूलाल्पभेदेन; त्रपुसं 'तिरसी' इति लोके; एर्वारुः रोमशा कर्कटी; गिलोड्यः कालङ्कतकः गिलोड्यकन्दः प्रावृड्जातः शणपत्रिकाकारवल्लीयुक्तो 'गिल्लोठी' इति लोके; 'अङ्ग (ङ्क) लोड्य' इत्यन्ये पठन्ति चिच्चो (ञ्चो) टकमिति च व्याख्यानयन्ति, प्रियालश्चारः, पुष्करबीजं पद्मबीजं राजादनः क्षीरिकः, पयस्या विदारीभेदः, क्षीरमोरटः किलाटमस्तु, 'पीलुपर्णी' इत्येके, मधुलिका मर्कटकः । दाडिमेत्यादि प्राचीनामलकः 'पानीयामलक' इति लोके, भव्यफलं 'कर्मरङ्ग' इत्येके 'तालफलसदृशमहावल्कलं कषायाम्लमधुरं' इत्यन्ये, पारावतः कामरूपे मधुराम्लरसफलं, दन्तशठो जम्बीरः शुक्तं सन्धानकविशेषश्चुक्रमिति लोके, सौवीरकतुषोदके निस्तुषतुषसयवकृते त्रिवृत्कषायसहिते सन्धाने, धान्याम्लं काञ्जिकं, प्रभृतिग्रहणाच्छाण्डाक्यादीनामवबोधः सैन्धवेत्यादि पाक्यमुद्भिदं, रोमकं शाकम्भरी देशोत्थं, श्वेतलवणमित्यन्ये, सामुद्रं समुद्रसमीपभवं गुर्जरराष्ट्रे प्रचुरं भवति, पक्त्रिमं पाकाभिनिर्वृत्तं फुल्लालवणम् इत्युच्यते; ऊषरप्रसूतमूषरलवणं,...। शीतशिवं कर्पूरं अवल्गुजफलं बाकुचीबीजं, चण्डा अजमोदाकारा सुगन्धिद्रव्यं, लाङ्गलकी कलिकारिका, शुकनासा

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

स्योनाकः। ...मण्डूकपर्णी ब्राह्मी, वेत्रकरीरो वेत्राङ्कुरः, स्वादुकण्टको विकङ्कतः 'वृक्षकण्टकारिका' इति प्रसिद्धः, शङ्खिनी यवतिक्ताभेदः, कृतवेधनः कोशातकी, सुमना जाती, अशोकरोहिणी कटुका, वैजयन्ती तर्कारी, सुवर्चला सूर्यावर्तः, वृश्चिकाली वृश्चिकपत्नी, ज्योतिष्मती काकमर्दनिका। ...कतकः तोयप्रसादनफलः, शाकः खरमसृणपत्रपृष्ठोदरः, तयोः फलम्, वनस्पतयो न्यग्रोधादयः,.... कुरुवकः कण्टसेलयाकः, कोविदारः काञ्चनारकः, ...जीवन्ति डोडी, चिल्ली क्षेत्रवास्तुकः, पालङ्क्या शाकविशेषः 'पालङ्क' इति लोके, सुनिषण्णकः सिरिवालिका, 'चतुष्पर्णी' इत्यपरे... ॥ ११ ॥

अध्यायः ४३

...चूर्णप्रकुञ्चं पुनरस्य मध्यमा मात्रा, प्रकुञ्चः पलं, 'मुष्टिः' इत्येके, 'कराङ्गुलिचतुस्कमूलावधिमितं चूर्णम्' इत्यपरे। प्रत्यक्पुष्पा अपामार्गः, सदापुष्पी अर्कस्तस्य मूलं... । शलाटु आमं फलम्। ...रम्यको महानिम्बः। ...फलपिप्पली: मदनफलबीजानि। ...जीवन्ती शुष्कयावनालवर्णा लतौषधी पर्ववती। ...रूपिका अर्कः... ॥ ३ ॥

....जीमूतको देवदाली.... ॥ ४ ॥

....कृतवेधनं कोशातकी.... ॥ ६ ॥

....इक्ष्वाकुः कटुकालाबुः ॥ ७ ॥

अध्यायः ४४

...त्रिवृत् 'निशोथ' इति लोके। ....तिल्वकः स्वल्प रोध्रः। ....सुधा 'सेहुण्ड' इति लोके.... ॥ ३-४ ॥

...इक्षोर्विकारैः खण्डादिभिः; न पुनर्गुडेन, उष्णवीर्यत्वात्तस्य; न च फाणितेन, त्रिदोषकरत्वात्तस्य; नापीक्षुरसेन, विदाहित्वात्तस्येति ॥ ५ ॥

....अरिष्टो निम्बः.... ॥ ६ ॥

...त्रिवर्णं त्रिजातकम्। ...प्रस्थो द्वात्रिंशत्पलानि, द्रवद्रव्यत्वात्। ...कुडवश्चत्वारि पलानि... ॥ ७-८ ॥

...विडङ्गसारो विडङ्गबीजानि। सिन्धूद्भवं सैन्धवं.... ॥ ९-११ ॥

...त्रिभण्डी शुक्ला त्रिवृत्... ॥ १५ ॥

...सिता शर्करा; अजगन्धा जवानिका, 'बोथइका' इत्यन्ये; त्वक्क्षीरी वंशलोचना; विदारी बिडाली (विराली); त्रिवृत् 'निशोत्र' इति लोके। ....क्षौद्रं मधु... । ...श्यामा वृद्धदारुकः, क्षारो यवक्षारः... । ...नीली श्रीफलिका... ॥ १६-२२ ॥

...श्यामा वृद्धादारुकः... ॥ २३ ॥

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

…नीली नीलिनी; श्रीफलिकेति लोके। कट्वी कटुरोहिणी… ॥ २६-२७ ॥

…फाणितं काकवी… ॥ २८-३० ॥

…मूर्वा चोरस्नायुः; शाङ्‌र्गेष्टा विटपकरञ्जः, चिरपोटिकेत्यन्ये, अपरे तु काकजङ्घामाहुः। सुधा सेहुण्डः। हैमवती श्वेतवचा… ॥ ३५-३९ ॥

…अजशृङ्गी कर्कटश्रृङ्गी, 'विषाणिका' इत्यपरे… ॥ ४०-४४ ॥

…द्रवन्ती चीरितपत्रा 'संवरी' इति लोके ॥ ४६ ॥

…चतुःस्नेहमिति घृततैलवसामज्जानश्चत्वारः स्नेहाः। शकृत् पुरीषम्… ॥ ४७-४८ ॥

…दन्ती सम्बरी; कनकाह्वयं कङ्गुष्ठं, 'नागकेसरम्' इत्यन्ये; यवासो दुरालभा; विश्वभेषजं शुण्ठी… ॥ ४९-५१ ॥

…नीलिनी श्रीफलिका… ॥ ६२-६९ ॥

चतुरङ्गुलात् किरमालकात्। …सिकतायां वालुकायां… ॥ ७३-७५ ॥

…सौधं सेहुण्डभवम्… ॥ ७८-७९ ॥

…महावृक्षः सेहुण्डः…। …उत्कारिका लप्सिका… ॥ ८०-८३ ॥

…सप्तला सेहुण्डभेदः। शङ्खिनी यवतिक्ता, तस्याः फलं मूलं च विरेचकम्, अन्ये 'शङ्खिनी यवतिक्ताभेदः' इत्याहुः; अपरे तु श्वेतबुध्नामाहुः। दन्ती दन्तिनी। आरग्वधः किरमालकः… ॥ ८४-८५ ॥

…यन्त्रादिपीडितद्रव्यरसः स्वरस उच्यते। यः पिण्डश्चार्द्रपिष्टानां स कल्कः परिकीर्तितः ॥ वह्नौ तु क्वथितं द्रव्यं श्रृतमाहुश्चिकित्सकाः। उपोषितं निशायां तु तोयस्थं शीतमुच्यते ॥ चूर्णमुष्णेन संपृक्तं तत् फाण्टमभिधीयते। अभिभूयाम्बुनोष्णेन क्षणात् पूतमितीतरे' इति। फाण्टलक्षणं तु प्रसङ्गादुक्तम्। कषायो द्विविधः—श्रृतकषायः, शीतकषायश्च। ते तु षट्कल्पा भवन्ति। कल्पा विधयः। अन्ये त्वेवं पठन्ति "चूर्णं कषायः शिशिरः श्रृतश्च तथा च कल्कः स्वरसस्तथैव। पञ्चैव कल्पाः खलु भेषजानां यथोत्तरं ते गुरवः प्रदिष्टाः" इति। ते तु स्वरस एव क्षीरमन्तर्भावयन्ति, फाण्टं शीतकषायेऽन्तर्भावयन्ति ॥ ९१ ॥

अध्यायः ४५

…अनिर्देशरसं अव्यक्तरसमप्रकटरसमित्यर्थः। …अमृतमिति अमृतमित्वेयर्थः, अमृतत्वं पुनरस्य दोषप्रकोपस्याकरणात्; 'अमृतं ब्रह्मरूपम्' इत्यन्ये। जीवनं प्राणधारणं, 'सौम्यधातुवृद्धिकरम्' इति केचित्, 'ओजोवृद्धिकरम्' इत्यन्ये। तर्पणं तृप्तिजनकम्। धारणमिति शस्त्रपातादिव्यथासु मूर्च्छतां शरीरं दधातीति धारणम्। आश्वासजननमिति मार्गादिशुष्कदेहानां प्राणजननम्।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

'''एकान्ततः पथ्यतममिति एकान्ततोऽतिशयेनेत्यर्थः, तर्हि तमप्प्रत्ययः कथं ? उच्यते—स्वार्थिकत्वात्; एतेनातिशयेन पथ्यमित्यर्थः; 'अन्येषामाकाशगुणभुयिष्ठ-भूमिसलिलानां पथ्यानां प्रकृष्टं पथ्यं पथ्यतमम्; एकान्तग्रहणेन सर्वकालदेश-पुरुषव्याधिषु प्रयोगोऽस्य द्योत्यते' इत्येके; 'तमप्प्रत्ययेन स्वस्थस्यातिशयेन हित-मित्यभिहितम् इत्यपरे ॥ ३ ॥

'''अन्ये तु भूतद्रव्यगुणसंयोगं रसविशेषहेतुमाहुः । तथाहि—तत्र स्वलक्षणो-दकभूयिष्ठायां भूमौ मधुरं, पृथिव्यनिलभूयिष्ठायामम्लं, जलाग्निगुणभूयिष्ठायां-लवणं, वाय्वग्निगुणभूयिष्ठायां कटुकं, पृथिव्यनिलगुणभूयिष्ठायां कषायम्, आकाश-गुणभूयिष्ठायामव्यक्तरसम्' इति ॥ ६ ॥

'''धाराभिः पततीति धारम् । करा वर्षोपलाः, तेषां तोयं कारम् । तौषारम् अवश्यायजं निशाजलम् । तदेव संहतावयवत्वेन स्फटिकशिलाशकल-सदृशावयवं हिमं, तद्भवं हैमम् । '''अविदग्धं अविवर्णम्''' ॥ ७ ॥

'''शैवालं शैवलं; हठः जलकुम्भिका, अभूमिलग्नमूलस्तृणविशेषः इत्येके । '''विष्टम्भो गुड्गुडाशब्दः''' ॥ ११ ॥

'''चम्पको राजचम्पकः, उत्पलं सौगन्धिकं''' ॥ १२ ॥

'''कतकं शशकपुरीषप्रतिमं फलं; गोमेदकः पुष्परागाभो मणिः; मत्कोल-मिति केचित्; बिसग्रन्थिः पद्ममूलं ''''मुक्ता मौक्तिकं, मणिः स्फटिकादिः''' ॥ १७ ॥

'''पौरुषेया वृष्या इत्यर्थ''' ॥ २३ ॥

'''बल्यमुपचयोजः शक्तिकरत्वात् । विशिष्टरसाद्युत्पादनाद्रसायनं स्वस्था-तुरोपयोगि । मेध्यं पवित्रम्''' ॥ २६ ॥

'''ह्लादि सुखावहम्'''' ॥ २७ ॥

'''अविदाहि अदाहकारीत्यर्थः ॥ ३७-३८ ॥

'''ओषधिशब्देन सर्वद्रव्याणि न तु फलपाकावसानाः''' । प्राणदमग्नि-सोमादिधारणादुपचयादिकरणाद्वा''' ॥ ४८ ॥

'''बल्यं मांसोपचयकरम्, अन्ये ओजसो वर्धनमिति, तन्मते ओजसो वर्धनम् इति पाठोऽग्रे न भवति । वृष्यं शुक्रजनकं, वाजीकरणं शुक्रप्रवर्तनम् । ''''मेध्यं मेधाजनकं पवित्रं वा । '''आयुष्यं आयुषे हितम्''' ॥ ४९ ॥

'''अतो द्वयमेव क्षीरपथ्यापथ्यविभागे हेतुर्जातिविशेषो भ्रमणादिविशेषश्च । सर्वव्याधिहरं सर्वदोषहरम् ॥ ५१-५२ ॥

'''स्थैर्यकरं शरीरदार्ढ्यकरम्, अन्ये 'तारुण्यस्थापकम्' इत्याहुः ॥ ५८ ॥

''''विष्टम्भो गुडगुडाशब्दः ॥ ५९ ॥

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

"...श्रृतं पक्वम्; आवर्तितमित्यर्थः..." ॥ ६२ ॥

"...बृंहणं देहवृद्धिकरम् ॥ ६३ ॥

"...वाडवमाश्वम् ॥ ७२ ॥

...सरः दध्न उपरितनो भागः स्नेहबहुलः 'तर' इति प्रसिद्धः। वह्नेर्विधमनः अग्निनाशनः। वृष्यः शुक्रवर्धन इति चोभयमतिवृद्धिकरत्वप्राप्त्ये; एतेन जनकप्रवर्तकमुक्तम् ॥ ७८ ॥

"...विष्टम्भीति सवाततोदशूला मलस्याप्रवृत्तिर्विष्टम्भः, अन्ये 'विष्टम्भो गुडगुडाशब्दः' इति प्राहुः ॥ ७६ ॥

"...अवृष्यम् अशुक्रलम्'... ॥ ८४ ॥

"...विनष्टं तक्रं धनावयवं तक्रकूर्चिका—

"...मण्डो मस्तुकः; कूर्चिकाभूतं यद्दधि तक्रं च ताभ्यां जातो यो मण्डः स तक्राल्लघुतरः, प्राक्तदधिजातं पुनर्मस्तु लाघवात्तक्रसममेव। अन्ये त्वेवं पठन्ति 'दधिकूर्चिकतक्रजः' इति... मस्तुत्रयसंग्रहः। 'तक्रतुल्यो दधिमण्डो विष्टम्भारुचिनाशन' इति च क्वचित् पठ्यते। प्राक्तमस्तु च ग्रीष्मादिविदाहेन सुजातस्य दध्नोऽच्छो भाग उच्यते ॥ ६० ॥

"...कूर्चिकीभूतक्षीरस्य घनभागः किलाटः; यं लोकाः क्षीरांशुमित्याहुः; सूदास्तु 'किलाटी' इति। पुंस्त्वं शुक्रम्—

"...पीयूषः सद्यः प्रसूताया गोः क्षीरं सप्ताहं यावत्, तदेव सप्ताहात् परतो यावत् प्रसन्नतां न गच्छति तावत् 'मोरट' इत्युच्यते। जेज्जटस्तु 'विनष्टक्षीरभवं मस्तु मोरटम्; इत्याह ॥ ६१ ॥

.... बलकरमोजस्करम्। बृंहणं देहोपचयकरम् ... ॥ ६२ ॥

.... संतानिका क्षीरस्योपरिस्त्यानो भागः क्षीरसर इत्यर्थः। तर्पणी तृप्तिजनिका ॥ ६४ ॥

"...अनभिष्यन्दीति अत्रेषदर्थे नञ्; तेन, अल्पाभिष्यन्दीत्यर्थः; एतेन दोषधातुमलस्रोतसां मन्दक्लेदप्राप्तिजननम्। स्नेहनं स्निग्धत्वापादकम्।... मेध्यं पवित्रम्। वयः स्थापनमिति यावदेवायुः प्रमितं तावदेवायुः स्थापयत्यनाबाधम्।... रक्षोघ्नं राक्षसभयहरम् ॥ ६६ ॥

...सर्पिर्मण्डस्त्वित्यादि। विलीनघृतस्य घनीभूत उपरितनो भागो मण्डः ॥ १०६ ॥

...तिलेषु भवं तैलं तिलतैलम्। "...बृंहणं धातुपुष्टिकरत्वेन शरीरदार्ढ्यावहत्वात्; न च लेखनत्वमप्यस्य विरुद्धं, मेदोहरत्वात्। न खलु तैलं मेदोघ्नमपि

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

मांसं न करोति, प्रतिनियतशक्तित्वाद्द्रव्याणाम्। प्रीणनं तृप्तिजनकम्। व्यवायि अपरिणतमेव व्याप्य देहं पच्यते। सूक्ष्मं सूक्ष्मस्रोतोनुसारि। विशदं निर्मलम्। विकासि सन्धिबन्धविमोचकम्। वृष्यं शुक्रलम्, अन्ये तु धातुपोषणकरणाद्वृष्यं सद्यः पुनरवृष्यमेव ॱॱ' ॥ ११२-११३ ॥

ॱॱॱ अधोभागदोषहरं विरेचनेन दोषहरमित्यर्थः ॥ ११४ ॥

ॱॱ'जीमूतको देवदाली, वृक्षकः कुटजः, कृतवेधनः कोशातकी, अर्कः प्रसिद्धः, कम्पिल्लको रेचनिकः, हस्तिकर्णो महापर्णो 'भूपलाश' इत्युच्यते, अन्ये रक्तैरण्डमाहुः, पृथ्वीका कृष्णजीरकः, पीलुः प्रसिद्धः, करञ्जो वृक्षकरञ्जः, इङ्गुदी कण्टकी (क) वृक्षः प्रसिद्धः, अन्ये पुत्रजीवकमाहुः शिग्रुः शोभाञ्जनफलं, सुवर्चला सूर्यावर्तः, विडङ्गः कृमिहा, ज्योतीष्मती काकमर्दनिका ॱॱॱ ॥ ११५ ॥

ॱॱॱ अतिमुक्तक आवन्तकः, कोलो बदरमज्जा, अक्षोड उत्तरापथे प्रसिद्धः; जीवन्ती स्वर्णजीवन्तीफलं, प्रियालः प्रसिद्धो मधुराम्लफलः, कर्बुदारः काञ्चनारः, सूर्यवल्ली अर्कपुष्पी, 'सूर्यावर्तभेदः' इत्यन्ये, सुवर्चलायाः पूर्वमेव पठितत्वात्, त्रपुसं कर्कटीफलं 'त्रिषुडी' इति लोके, एर्वारुर्ग्रीष्मकर्कटिका, कर्कारु वाडवं त्रपुसम्।ॱॱॱॱ अग्निसादनानि अग्निमान्द्यकराणि ॱॱॱॱ ॥ १२० ॥

ॱॱॱ पलाशः किंशुकः ॥ १२१ ॥

ॱॱॱॱ तुवरकं पश्चिमार्णवतीरजातमाहुः। तदुक्तं, —"पत्रैस्तु केशराकारैः कपित्थसदृशैः फलैः। वृक्षस्तुवरको नाम पश्चिमार्णवतीरजः"—इति। उभयतोभागदोषहरे चेति वमनेन विरेचनेन चेत्यर्थः ॥ १२२ ॥

ॱॱॱ गण्डीरः सारप्रधानस्तरुविशेषःॱॱॱॱ॥ १२३ ॥

ॱॱॱ तुम्बी तिक्तालाबुः, कोशाम्रः 'कोशम्ब' इति प्रसिद्धः, दन्ती दन्तिनी, द्रवन्ती शम्बरी, श्यामा वृद्धदारुकः, सप्तला सातलेति प्रसिद्धा, नीलिनी श्रीफलिका,ॱॱॱॱशङ्खिनी श्वेतश्रीफलिका, अन्ये यवतिक्ताभेदमाहुः। अधोभागदोषहरा इति विरचनेनॱॱॱॱ॥ १२४ ॥

ॱॱॱ यवतिक्ता यवक्षेत्रेषु जायते तिक्तसप्ताष्टपत्रा 'यवेन्तिका' इति प्रसिद्धा ॥ १२५ ॥

ॱॱॱएकैषिका अविद्धकरणी 'पाठा' इति लोके, त्रिवृदिति जेज्झटः ॥ १२६ ॥

ॱॱॱ सहकारतलमाम्रतैलम्। तच्च 'आम्रस्य तरुणफलवृन्तभङ्गमात्रत एव जातम्' इति गयी, 'तत्फलमज्जस्नेहः' इत्यन्ये ॥ १२७ ॥

ॱॱॱॱ सुकुमारं सौकुमार्यकरम्। लेखनं पत्तलीकरणम्। हृद्यं हृदयप्रियं हितं

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

च। वाजीकरणं शुक्रलम्। .... चक्षुष्यं चक्षुषे हितम्।.... आह्लादि सुखकारि। .... ॥ १३२ ॥

.... पिङ्गला महत्यो मक्षिकाः पुत्तिकाः, तद्भवं पौत्तिकम्, अन्ये 'मशकोपमा मक्षिकाः कृष्णवर्णाः पुत्तिकाः' इति वदन्ति। भ्रमराः प्रसिद्धाः, तद्भवं भ्रामरम्। मक्षिकाः पिङ्गला एव स्वल्पाः क्षुद्राः, तद्भवं क्षौद्रम्। पिङ्गलवर्णा महत्यो मक्षिकास्तद्भवं माक्षिकम्, अन्ये 'अत्यल्पा मक्षिकाः' 'इत्याहुः। पीणकपिङ्गला 'बग' इति लोके यत् कुर्वन्ति छत्रकाकारं हैमवते वने मालववने च तच्छात्रम्। 'मधूकवृक्षपुष्पेभ्यो जरत्कार्वाश्रमोद्भवाः। स्रवन्त्यार्घ्यं मधुप्राहुः श्वेतकं मालवे जनाः॥ तीक्ष्णतुण्डास्तु याः पीतवर्णाः षट्पदसन्निभाः। अर्घा नाम च तद्भूतमार्घ्यमित्यपरे जगुः, इति। ....उद्दालकाः कपिलकीटाः स्वल्पाः प्रायशो वल्मीकेष्वन्तर्मधु चिन्वन्ति, तद्भवमौद्दालकम्। दालमिति दलं पत्रं तदुपरिस्थितं दालम्, अन्ये तु कपिला एव स्वल्पतरा मक्षिकाः प्रायेण वृक्षकोटरोद्भवा 'दला' इत्युच्यन्ते, तद्भवं दालमिति ॥ १३३ ॥

....योगैरिति औषधसमूहैरित्यर्थः .... ॥ १४२ ॥

....गुरुत्वं चिरपाकित्वम्। विदाहीति "द्रव्यस्वभावादथ गौरवाद्वा चिरेण पाकं जठराग्नियोगात्। पित्तप्रकोपं विदहत् करोति तदन्नपानं कथितं विदाहि" इति। विष्टम्भो गुडगुडाशब्दः, अन्ये तु सवाततोदशूला मलस्या-प्रवृत्तिर्विष्टम्भः ....॥ १५८ ॥

....फाणितमित्यादि। फाणितं क्षुद्रगुडः 'काकवी' 'लहकाकर' वा इति लोके। अस्य त्रिदोषकरत्वं प्रभावात् ॥ १५९ ॥

....मत्स्यण्डिका द्रवखण्डः 'खण्डद्रव' इति लोके, खण्डः प्रसिद्धः, शर्करा सितोपला 'तवराज' इति लोके। गुडान्मत्स्यण्डिका ततः खण्डस्ततः शर्करेति वैमल्योत्कर्षे शैत्यादिप्रकर्षं इत्यर्थः ॥ १६२ ॥

....गौरवं वातपित्तहारित्वं, गौरवं मधुरविपाकित्वमित्यन्ये .... ॥ १६३ ॥

...मधुशर्करेत्यादि। पाकात् कालान्तरशोषणाद्वा घनीभूतावयवं मधु शर्करातुल्यत्वात् 'मधुशर्करा' इत्युच्यते। छेदनी कफादीनां पिण्डीभूतानां मेदका-रिणी ॥ १६६ ॥

....यवासक्वाथपाकघनीभावाच्छर्करा कृता यवासशर्करा ॥ १६७ ॥

....इन्द्रियबोधनम् इन्द्रियपाटवकरम्। विकासि सन्धिबन्धविमोचकम्। सृष्टविण्मूत्रप्रवर्तकम् ॥ १७० ॥

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

···मार्द्वीकं द्राक्षोद्भवम् ··· ॥ १७१-१७३ ॥

····कर्शनं कार्श्यकरम् ॥ १७४ ॥

···सुरा लोहितवर्णा पिष्टकिण्वकल्केन किञ्चित्कलुषा···· ॥ १७५ ॥

···श्वेतसुरा श्वेतपुनर्नवादिमूलशालिपिष्टककिण्वप्रभवा 'कतोली' इति प्रसिद्धा ॥ १७६ ॥

···प्रसन्ना सुराया मण्ड उपर्यच्छो भागः ··· ॥ १७७ ॥

····मधूलकः स्वल्पगोधूमो मध्यदेशे 'पीशीका' इति ख्यातः; मर्कटहस्ततृणं वा, तत्फलकिण्वं मधूलकम्; 'असंजातमद्यं मधूकपुष्पोत्थम्' इति जेज्झटः ॥ १७८ ॥

···अक्षस्य बिभीतकस्य वल्कलैः सह कृता आक्षिकी; 'वल्किकी' इति केचित् ···· ॥ १७९ ॥

····यवसक्तुकृतः कोहलः 'कौहलिका' इति लोके; अन्ये पुनर्भवतसुरामाहुः यामेव पौण्ड्राः 'काञ्चनाली' इत्याहुः ॥—

····जगलोऽधः किट्टं मद्यस्य यो बहिस्त्यज्यते। अन्ये 'किण्वभक्तसुरा जगलमित्युच्यते'····॥ १८० ॥

····बक्कसो जगल एवाद्रवः किण्वौषधामान्नम् ॥ १८१ ॥

····शीधुः सस्यक इक्षुरसेन क्वथितेन धातक्यादिबद्धपाशः कालान्तरेण निष्पन्नः किञ्चिद्गुडघृतावापः सस्यकवाच्यः ॥ १८२ ॥

····इन्द्रियबोधनः इन्द्रियपाटवजनकः ॥ १८३ ॥

····आक्षिक इत्यादि। बिभीतकक्वाथगुडकृतो धातकीकुसुमादिकृतसंस्कारः शीधुराक्षिकः। द्रव्यप्रभावादपरमद्यापेक्षया प्रायशः पाण्डुरोगे व्रणे चाविरुद्धः; ग्राहित्वमप्येवं वाच्यम् ॥ १८६ ॥

····जम्बूफलरसतुम्बरुक्वाथगुडधातक्यादिकृतसंस्कारो जाम्बवः शीधुरुक्तः। बद्धनिस्यन्दो बद्धमूत्रः। तुवरः कषायः ॥

····सुरासवः सुरया सूयते तोयकार्यं क्रियते यस्मिन् सः सुरासवः···॥ १८७ ॥

···मध्वासवो मधुगुडाभ्यां सन्धानम् ॥ १८८ ॥

···तत्र मैरेयो नाम सुरासवयोः प्रत्येकनिष्पादितयोरेकीकृत्य पुनः संधानान्मैरेयः। सुरा पैष्टी, आसवश्च गुडयोनिः, मधु च देयमिति त्रियोनित्वम्। यदि वा पैष्टी मध्वासवो गुडश्चेति सन्धानात्त्रियोनित्वेन मैरेयो द्विविधो भवति ॥ १८९ ॥

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

•••अत्र मधूकपुष्पोत्थे केचिद्गुडं नेच्छन्ति; शीधुत्वाद्गुडमिच्छन्त्यन्ये ॥ १६१ ॥

••••पुराणत्वं ज्ञातरसप्रसादनत्वेन गन्धादिसंपत्या; 'अतीतसम्वत्सरं जीर्णम्' इत्यन्ये वदन्ति ॥ १६३ ॥

••••द्रव्यसंयोग: अभयाचित्रकादिसंयोग: । संस्काराच्च मद्यादधिककर्मता•••• ॥ १६४-१६५ ॥

••••शीधुशब्देनात्र मद्यमाहु: । द्रव्यप्रधानमरिष्टं, द्रवप्रधान आसव:; उभयप्रधानं मद्यम् ••••॥ १६७ ॥

••••विदाहि "जठराग्निसंयोगाद्य: पाकमगच्छन् मध्यमायामेव पाकावस्थायां विदह्यमान: पित्तं कुर्वंश्चिरकालमवतिष्ठते न शीघ्रं जरां याति गुरुत्वाद्वस्तुस्वभावाद्वा स विदाहयुक्तो भावो भण्यते" इत्यागमिका:, अन्ये 'विदाहि विविधसन्तापकारि' इत्याहु: ।••••गुरु चिरपाकि । अहृद्यम् अप्रियम् ।••••तीक्ष्णं मुखे दु:खोत्पादकम् ।••••पिच्छिलं श्लेष्मस्पर्शवत्••••॥ १६८-२०२ ॥

••••मदावहं हर्षकारि••••॥ २०३ ॥

••••विकासि सन्धिबन्धविमोचनकारि••••॥ २०४-२०५ ॥

••••शुक्तं चुक्रमुच्यते, यदुक्तं—"यन्मस्त्वादि शुचौ भाण्डे सगुडक्षौद्रकाञ्जिकम् । धान्यराशौ त्रिरात्रस्थं शुक्तं चुक्रं तदुच्यते" इति, तच्चेक्षुरसमधूकपुष्पपीलुप्रभृतिभि: कषायव्यतिरेकेणासूयते, कन्दाद्यासुतमपि शुक्तमाहुरन्ये । छेदनं कफग्रन्थ्यादीनाम् ।••••जरणमामस्य••••॥ २१० ॥

••••गौडानि गुडोद्भवानि; "गुडाम्बुना सतैलेन सन्धानं काञ्जिकं तु यत् । कन्दशाकफलैर्युक्तं गुडशुक्तं तदुच्यते"—इति । रसशुक्तानि इक्षुरसादिकृतानि । गुडशुक्तवदिक्षुरसशुक्तं सन्धेयम् । मधुशुक्तं तु "जम्बीरस्य फलरसं पिप्पलीमूलसंयुतम् । मधुभाण्डे विनिक्षिप्य धान्यराशौ निधापयेत् ॥ त्र्यहेण तज्जातरसं मधुशुक्तमुदाहृतम्"—इति (मधुभाण्डे इति मधुपूर्णप्राये भाण्डे इत्यर्थ: अथवा मधूनि कृत्वा भाण्डे निक्षिप्येति योज्यम्) । मद्यशुक्तमिति पाठान्तरं; तत्र मद्यशुक्तलक्षणमुच्यते—"सर्वं मद्यं पञ्चरसं कालान्तरवशाद्यदा । त्यक्त्वाऽन्यरसमम्लत्वं याति शुक्तं तदुच्यते" इति •• ॥ २१२ ॥

••••तुषाम्ब्वित्यादि । काञ्जिकभेदावेतौ । तुषाम्बुसौवीरके विरेचनाध्यायोक्ते अपि सन्धानसामान्यादधिकगुणकर्मदर्शनायेहोक्ते ॥ २१३ ॥

••••धान्याम्लमित्यादि । धान्याम्लं काञ्जिकं शालिचूर्णाद्यवकोद्रवादिकृतं

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

मद्यम्। जीवनं प्राणधारणं शाल्यादिकृतत्वात्। दाहनाशनं स्पर्शात्।""जरणं पाचनम्"" ॥ २१४-२१६॥

"'गोमूत्रं गोरेव न तु वृषभस्य, महिषीसाहचर्यात्, न हि तत्र महिषेति पाठः; अथवा वृद्धव्यवहारादित्येके; आचार्यास्तु गोमहिष्यजीवानां स्त्रीणां, गजहयखरोष्ट्रमानुषाणां पुनः पुंसाम्, अनुक्तव्यक्तिके तु मूत्रपाठे उभयोरपि मूत्राणि ग्राह्याणि, यत्र तु व्यक्त्या स्त्रीपुरुषनिर्देशस्तत्र तस्यैवेति निर्णीतवन्तः ॥ २२०-२२१॥

""मानुषमित्यादि। कारभं मानुषं च मूत्रं विषापहमित्यर्थः। मानुषमष्टानां मूत्राणां मध्येऽनुद्दिष्टमपि 'तत् सर्वम्' इत्यनेनैव पूर्वोक्तेन सूचितत्वाद्विवृतम् ॥ २२८॥

अध्यायः ४६

""अशितं भोज्यमोदनादि, पीतं पेयं क्षीरादि, लीढं लेह्यं मध्वादि, खादितं भक्ष्यं मोदकादि"" ॥ ३॥

"'लोहितशाली रक्तशालिः; कलमोऽन्तर्वेद्यां 'कलविः' इति लोके; कर्दमक इति सातिशये पङ्के निष्पद्यत इति कर्दमको लोकतोऽवगन्तव्यः; पाण्डुक इति पाण्डुतुषः पाण्डुशूकश्च पाण्डुकः; सुगन्धको देवशालिः पाञ्चाले; शकुनाहृत उत्तरकुरोः सकाशाद्धंसैरानीतः, अवन्त्यां नगर्यां स एव वक्रनाम्ना प्रसिद्धः; मगधदेशे तु 'पाशक' इति, वृद्धवैद्यास्तु "द्वीपान्तरात् समानीतो गरुडेन महात्मना। शकुनाहृतः स शालिः स्याद्गरुडापरनामकः" इत्याहुः, पुष्पाणीव सुगन्धानि सुकुमाराण्यमण्डानि तण्डुलानि यस्य सः पुष्पाण्डको लोकतोऽवगन्तव्यः पुण्डरीकं श्वेतपद्मं तत्सदृशः सौकुमार्यवर्णसौरभैर्यः सः पुण्डरीको देवग्रहादेव बहुपोषनामा; महातण्डुलको महाशालिः; शीतादिभ्भेतीत्येत्रं शीतभीरुको लोकादवगन्तव्यः रोध्रपुष्पाकाराः शूका यस्य स रोध्रपुष्पकः; दीर्घाः शूका यस्य स दीर्घशूकः; काञ्चनकः स्वर्णशालिः; महिषशूको मध्यदेशे 'तिलवासी' इति प्रसिद्धः; हायनकः 'शङ्गुवाक' इति लोके, जेज्झटस्तु 'घोटकपुच्छ' इत्याह, दूषकमहादूषको लोकादवगन्तव्यः। प्रभृतिग्रहणाद्यवकनैषधादयः। शालय इति अकण्डितशुक्ला हैमन्ताः अन्ये तु कण्डितशुक्ला अकण्डितशुक्लाश्च हैमन्ताः शालयः ग्रैष्माः षष्टिकाः; 'प्रायेण गर्भपाकाः षष्टिकाः' इत्यन्ये; वार्षिकास्तु व्रीहयः, 'कण्डितशुक्लास्तु व्रीहयः' इत्यन्ये"" ॥ ४॥

""षष्टिको गौरषष्टिकः, मुकुन्दककाकलकासनपुष्पककुरवककेदाराः कृष्णषष्टिकाः, शेषा गौरकृष्णा इति। प्रभृतिग्रहणाच्चीनदुर्दरशारदादयः। षष्टिको

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

व्रीहिभेद एव, 'षष्टिको व्रीहिषु श्रेष्ठ' इत्युक्तत्वात्; किंतु व्रीहिश्चिरपाकी, षष्टिकस्तु शीघ्रपाकी ॥ ८-९ ॥

....स्थैर्यकृत् देहदार्ढ्यकृत् तारुण्यस्थापको वा ॥ १० ॥

....कृष्णव्रीहिः कृष्णतुषतण्डुलः; शालामुखः कृष्णशुक्लाकारतण्डुलः, जतु लाक्षा तदाकृति मुखं यस्यासौ जतुमुखः, नन्दीमुखः आडीचञ्चुसदृशमुखतण्डुलः, लावाक्षिसदृशतण्डुलो लावाक्षः, षष्टिकवत्त्वरितं पच्यत इति त्वरितकः; कुक्कुटाण्डानीव वर्णेन वर्तुलतया च तण्डुला यस्य सः कुक्कुटाण्डकः, पारावतवच्छुक्लतण्डुलः पारावतः, पाटलापुष्पवर्णव्रीहिः पाटलः'...॥ १२ ॥

...वृष्याः शुक्रवैरेचनिकाः। शुक्रलाः शुक्रवृद्धिकराः ॥ १७ ॥

....मूत्रविवर्धना इति अदाहित्वात्, 'मूत्रला' इत्येके, अन्ये तु 'मूत्रविवर्धना मूत्रापकर्षणाः प्रमेहिणां हिता इत्यर्थः' ॥ १८ ॥

...कुधान्येति कुत्सितानि कुधान्यानि ॥ २० ॥

....कोरदूषकः कोद्रवः; श्यामाकस्त्रिविधः—श्यामाकः, उष्ट्रश्यामाकः, हस्तिश्यामाकश्चेतिः; श्यामाकशब्देन तोयश्यामाक उच्यते, उष्ट्रश्यामाकः स्थूलश्यामाकः, हस्तिश्यामाकः श्यामिकेति लोके; नीवार उलिकाधान्यं, तद्विविधम्—एकं धान्यसदृशविटपं धान्यक्षेत्रजं, द्वितीयं महादलकाण्डं तु सलिलजं; तत्र सलिलजं सलिलवृद्धिमात्रस्तम्बप्ररोहं रक्तशूकं च, तदेव 'प्रशान्तिका' इति तन्त्रान्तरेऽपि पठ्यते; वरको वरटिका शाकम्भरीभूमौ प्रायशः; उद्दालको वनकोद्रवः; प्रियङ्गुः 'कङ्गुनिका' इति लोके; मधूलिका मर्कटहस्ततृणं; तद्भेदो नन्दीमुखी; कुरुविन्दको व्रीहिगुरुः; गवेधुकस्तृणविशेषः; 'गलगोधूम' इति लोके, देशान्तरे तु 'गरल' इति लोके, अन्ये तु प्रभृतिग्रहणाद्गवेधुकशब्दं गृह्णन्ति; सरः सरकर्णिका बरुकः 'बरु' इति लोके, अन्ये तु बरुकशब्दं प्रभृतिग्रहणाद्गृहणन्ति...मुकुन्दो मुलुन्दः; वेणुयवो वंशफलम्। शेषाणि तु वनचारिभ्यो ज्ञेयानि। प्रभृतिग्रहणेन झण्टीघर्मूटीजोन्नलिकादयः ॥ २१ ॥

...मुद्गा नानाविधा हरितपीतकृष्णरक्तभेदेन; वनमुद्गस्तु वने जायते कृष्णमुद्ग इति प्रसिद्धः; 'मुद्गिका' इति लोके; कलायास्त्रिपुटाः; मकुष्ठको मोठः; मसूरा द्विविधाः—कृष्णाः पाण्डुराश्च, तत्र कृष्णवर्णा मसूराभिधानाः पाण्डुवर्णा मङ्गल्याकाभिधानाः; चणकः प्रसिद्धः; सतीनो वर्तुलकः; स्वल्पास्त्रिपुटाः; हरेणुः स्वल्पवर्तुलः; आढकी तुवरी। वैदला इति एषां 'वैदला' इति सञ्ज्ञा, न पुनरन्वयार्थेन वैदलसंज्ञा, एवं हि विदलानामिति वैदला इति माषकुलत्थादिष्वपि वैदलत्वं स्याद्'... ॥ २७ ॥

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

...सन्तर्पणस्तृप्तिकरः । बलप्रदः बलमुपचयशक्तिलक्षणम् । वृष्यत्वशुक्रलत्वे स्रुतिवृद्धिकरत्वेन... ॥ ३४ ॥

...अलसान्द्रो राजमाषः । कषायरसप्रभावात् कफहारित्वमवृष्यत्वं च ज्ञेयम्.... ॥ ३५ ॥

...आत्मगुप्ता कपिकच्छुः; तस्याः फलमात्मगुप्तम् । काकाण्डफलमश्वकः; कपिकच्छुसदृशशिम्बः काकाण्डः 'शूकरशिम्बी' इति लोके....॥ ३५ ॥

...आरण्यमाषाणां रुक्षत्वाविदाहित्वे स्वजात्यपेक्षया ॥ ३६ ॥

...दन्तेभ्यो हितो दन्त्यः । त्वचे हितस्त्वच्यः । केशेभ्यो हितः केश्यः ॥ ३९ ॥

...स्थैर्यं वयःस्थापनकारित्वम्... ॥ ४१-४२ ॥

...अतियवा निःशूकाः कृष्णारुणयवा एव...। ...स्थिरो वयः स्थापनकारी ....॥ ४३ ॥

...सिद्धार्थकः श्वेतसर्षपः ।....असितसर्षपो रक्तसर्षपः ॥ ४८-४९ ॥

...नवमिति वर्षं यावत् । अभिष्यन्दि दोषधातुमलस्रोतसां क्लेदप्राप्तिजननम्....। ...विरूढम् अङ्कुरजननशक्तिरहितमित्यर्थः, अन्ये 'विरूढमङ्कुरितम्' इत्याहुः, ईषद्भृष्टं चणकमुद्रादिविरूढमाहुरपरे ॥ ५१ ॥

...जलेशयाः कोशस्थाः पादिनो मत्स्याश्च; आनूपाः कूलचराः प्लवाश्च; ग्राम्यशब्देनैकशफशब्देन च ग्राम्याः, शफः खुरः; क्रव्यभुक्शब्देन च गुहाशयाः प्रसहाश्च, क्रव्यं मांसं; जाङ्गलशब्देन जङ्घालविष्किरप्रतुदपर्णमृगबिलेशया इति त्रयोदश भेदाः षट्स्वेवान्तर्भूताः...॥ ५३ ॥

....एणः कृष्णहरिणः, हरिणो गौरहरिणः, ऋक्षो नीलाण्डः 'रोरु' इति प्रसिद्धः, कुरङ्गश्चतुरगतिः 'चतुरङ्ग' इति लोके, करालोऽधोनिष्क्रान्तदन्तो हिमवदादिपर्वतेषु 'कस्तूरीमृग' इति लोके, कृतमाला बहवः सङ्घातचारिणो मृगा देशान्तरे लोकादवगन्तव्याः, शरभोऽष्टापद उष्ट्रप्रमाणो महाशृङ्गः पृष्ठगतचतुष्पादः काश्मीरे प्रसिद्धः, श्वदंष्ट्रश्चतुर्दंष्ट्रोऽतिदुष्टः 'कर्कटक' इति कार्तिकपुरे, पृषतो बिन्दुचित्रितः 'चित्तल' इति लोके, चारुष्कश्चारुशरीरः स्वल्पतनुर्मृगभेद एव, मृगामातृका अल्पा पृथूदरा चतुरङ्गस्त्री 'भेदली' इति लोके... ॥ ५४ ॥

...तित्तिरिः कृष्णतित्तिरिश्चित्रपक्षः; कपिञ्जलो गौरतित्तिरिः; वर्तीरः कपिञ्जलानूकः कपिञ्जलादल्पो वर्तिकातः किञ्चिन्महान् वर्तिकासदृश एव, 'घर्घरा' इति लोके; वर्तिकावर्तिकौ तद्भेदौ; नप्तृका लोके घुडुरुकाभिधा हूङ्कारकारिण्यल्पा पाण्डुरोदरा; वार्तीका वर्तिचटकाः स्वल्पाः संघातचारिणः 'वगेडा' इति

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

लोके; चकोरो रक्ताक्षो विषसूचकः स्वनाम्ना ख्यातः; कलविङ्कः कालचटको भृङ्गराजाद्भिन्नः, अपरे भृङ्गराजमाहुः, अन्ये तु रक्तशिरसं कृष्णग्रीवं ग्रामचटकाकारं कलविङ्कमाहुः; मयूरः प्रसिद्धः; क्रकरो लावान्तको कपिञ्जलात् स्थूलः, 'कयर' इति लोके; उपचक्रः क्रकरभेदः कृशचञ्चुर्मदाविलः; कुक्कुटः प्रसिद्धः; सारङ्गश्चातकः; अन्ये कृष्णकर्बुरश्चातकाकारो विष्किरः; शतपत्रो दार्वाघाटः, 'काष्ठकुट्टक' इति लोके; कुतित्तिरिस्तित्तिरिभेदः पाण्डुः कपिलः; कुरुवाहकः कुरुकुरुकः; यवालको यवगुड्डुरुकः। प्रभृतिग्रहणेनैवंजातीयाः विकीर्य भक्षयन्तीति विष्किराः; त्रिभिश्चरणयुगलचञ्चुभिराहलन्ति विलिखन्तीति व्याहलाः… ॥ ५६ ॥

…कपोतो वनवासी 'पाण्डुक' इति लोके, स च नानाविधः, पारावतो गृहदेवकुलालयः; भृङ्गराजो भ्रमरको धूम्याटसदृशः 'पक्षिराज' इति लोके; परभृतः कोकिलः; कोयष्टिः कोयङ्गका दीर्घजङ्घा 'कोयङ्ग' इति लोके; कुलिङ्गो वन्यचटको ग्राम्यचटकाकारः; गृहकुलिङ्गः पुण्ड्रचटकः 'ग्रामचटक' इति लोके; गोक्ष्वेडो गोनर्दः; डिण्डिमाणवकः डिण्डिमोत्कटध्वनिः; शतपत्रो राजशूकः; मातृनिन्दकः प्रियात्मकः 'पुत्ररञ्जक' इति लोके; भेदाशी पुत्रशुकः, भेकाशीति केचित्, तत्रापि स एवार्थः; शुकसारिके प्रसिद्धः वल्गुली 'गदुलिका' इति लोके; गिरिशा गिरिवर्तिका, 'पर्वतवाही' इत्येके; लट्वा फेञ्जातको रक्तपुच्छाधोभागः, अन्ये भरद्वाजभेदमाहुः, 'लाट' इति लोके; लट्टूषको द्वितीयफेञ्जातकः, अन्ये सश्वानचञ्च्वाकृतिचञ्चुभागं दीर्घपुच्छादिलक्षणेन प्रतुदं विहङ्गमाहुः; सुगृहा पीतमस्तका 'वया' इति लोके; खञ्जरीटः सितासितवर्णो द्रुतललितगतिः 'कवडिया' इति लोके; हारीतो हरितपीतवर्णः 'हरिताल' इति लोके; दात्यूहः कालकण्टकः 'रायुक' इति लोके। प्रभृतिग्रहणाद् गोपापुत्रसारपदेन्द्रादयश्चरकोक्ताः। प्रतुदा इति प्रतुद्य भक्षयन्तीति हेतोः ॥ ६७ ॥

…काणकपोतो वनवासी पाण्डुकपोतः; अन्येऽरुणवर्णकमपि कपोतमाहुः ॥ ६६ ॥

…सिंहः पराक्रमी निद्रालुः; व्याघ्रो विकृतमुखो निद्रालुर्हिंस्रः; वृकः कुक्कुरसदृशः पशु क्षुद्रः; तरक्षुर्मृगशत्रुर्व्याघ्रविशेषः 'जरख' इति लोके; ऋक्षो भल्लूकोऽतिलोमशः 'रिंछ' इति लोके; द्वीपी व्याघ्रभेदश्चित्रव्याघ्रः 'चित्रक' इति लोके; मार्जारो बिडालः, अत्र च मार्जारो गुहाशयत्वादरण्यबिडालो बोद्धव्यः; शृगालः प्रसिद्धः; मृगेर्वारुर्मृगभक्षः शृगालाकृतिः 'हरिणडु (द्र) व' इति लोके…॥ ७२ ॥

…कङ्को दीर्घचञ्चुर्महाप्रमाणः, उक्तं च—"कङ्कः स्यात् कङ्कमल्लाख्यो बाणपत्रार्हपक्षकः। लोहपृष्ठो दीर्घपादः पक्षाढ्यः पाण्डुवर्णभाक्"—इति; कुर-

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

रश्चिल्ल्याकारो नादोत्थापितमत्स्यो हस्तमत्स्यग्राही 'कुरल' इति लोके प्रसिद्धः; चाष इन्द्रनीलमणिसदृशपक्षः शस्तदर्शनः 'करटाशन' इति लोके प्रसिद्धः; भासो गोकुलचारी गृध्रविशेषः श्वेतशिखावान्; शशघाती चिल्ल्याकारो महाचरणनखः प्रहारेण शशकाहरणशीलः 'शशाग्नि' इति लोके प्रसिद्धः, अन्ये 'पाजी' इत्याहुः उलूकः कौशिकः; चिल्लिः; चिल्हः, श्येनः सिञ्चानो गरुडान्वयः; गृध्रो मांसाशी योजनदृष्टिः।'''प्रसह्य भक्षयन्तीति प्रसहाः ॥ ७४ ॥

•••वायसः काकः ""॥ ७५ ॥

•••मद्गुमूषिको मालुयासर्पः; अन्ये तु मद्गुमूषिकौ भिन्नावाचक्षेते; तत्र मद्गुः पूर्वार्थ एव, मूषिको वृक्षमूषिकः वृक्षशायिका वृक्षमर्कटिका 'गिली' इति लोके; अवकुशो गोलाङ्गुलो वानरविशेषः; पूतिघासो वृक्षबिडालः सुगन्धिवृषणः 'कर्पूरक' इति लोके; वानरो मर्कटः। •••प्रायेण वृक्षस्थायित्वात् पर्णमृगाः ॥ ७६ ॥

•••श्वाविदित्यादि। श्वावित् सूचिसदृशरोमयुक्ता 'सिहै' इति लोके; शल्यको वज्रशकलो बृहद्गोधानुकारी 'साला' इति लोके; गोधाशशौ प्रसिद्धौ; वृषदंशो ग्राममार्जारः, अन्ये वनमार्जारमाहुः; लोपाकः शृगालभेदः, 'लाङ्गलक' इति लोके; लोमशकर्णो नलत्करः; कदली महाबिडालसमो व्याघ्राकारः 'कदली-हण्ड' इति पौण्ड्रे प्रसिद्धः, अन्ये सर्पविशेषमाहुः, अपरे 'कदलीमृग' इति समस्तं पठन्ति, तत्रापि स एवार्थः; मृगप्रियको गोनसः; अजगरो महासर्पः, सर्पः पुनरल्पो राजिलमण्डलिदर्वीकरभेदात्त्रिविधः; मूषिको भूमिमूषिकः; नकुलो भुजङ्गशत्रुः; तद्भेदो महाबभ्रुः।•••बिलशायित्वाद्बिलेशयाः ॥ ७८ ॥

""संहतं सान्द्रम्""। ७९ ॥

""दर्वीकराः फणाकरा इत्यर्थः। दीपका राजिमन्तः ॥ ८१-८४ ॥

•••अश्वाश्वतरेत्यादि। अश्वो घोटकः; अश्वायां गर्दभेन जनितोऽश्वतरः 'वेसर' इति लोके; गौः प्रसिद्धा; खरो गर्दभः; उष्ट्रः करभः; बस्तश्छगलः, उरभ्रो मेषः; मेदःपुरच्छको दुम्बकः, अन्ये एडकमाहुः•••। प्रायो ग्रामवासित्वाद्ग्राम्याः ॥ ८५ ॥

•••अनुगता आपोऽस्मिन्निति सजलस्थलात्मको देशः, तद्भवा आनूपाः। कूलं नद्यादितटं, तत्र चरन्ति भक्षयन्ति भ्रमन्ति च ये ते कूलचराः। प्लवन्ते पानीये तरन्ति ये ते प्लवाः। कोशः शङ्खादीनां सम्पुटः, तत्र तिष्ठन्तीति कोशस्थाः। पादिनः पादवन्तः"" ॥ ९२ ॥

•••गजो हस्तो; गवयो गोसदृशः; महिषः प्रसिद्धः; रुरुः शरदि शृङ्गत्यागी

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

तल्लक्षणं उच्यते—"विकटबहुविषाणः शम्बराकारदेहः सलिलतटचरत्वाच्छम्बरेभ्यो विचित्रः। त्यजति शरदि शृङ्गं रौत्यतोऽसौ रुरुः स्यात् पृथुलमृगविशेषः प्रायशश्चेदिदेशे" इति; चमरः केशमृत्युर्गोसदृशः; सृमरो महाशूकरः, अन्ये तु महाश्वाकारश्चमरान्तकः; रोहितो लोहितवर्णो मृगजातिः, अन्ये तु 'रोहिष' इति पठन्ति व्याख्यानयन्ति च—कच्छशूकरः इत्यर्थः; अपरे फलशूकरमाहुः; वराहः; शूकरः; खड्गी गण्डकः; गोकर्णो गोसदृशकर्णः 'गोन' इति प्रसिद्धः; कालपुच्छको ललत्कृष्णपुच्छकः; ओद्रः पानीयबिडालः, 'ओदन' इति लोके; न्यङ्कुः 'न्यंगुण' इति लोके; अरण्यगवयो वन्यगवयः ॥ ६४ ॥

•••हंसः कलस्वरो ललितगतिः प्रसिद्धः; सारसो लक्ष्मणो रक्तशिराः प्रसिद्धः एव; क्रौञ्चः क्रौंचिरः; चक्रवाको द्वन्द्वचरो निशावियोगी; कुररः अस्य प्रसहेष्वपि पाठः, तेनोभयेषामपि गुणा बोद्धव्याः, अन्ये तु कङ्कमल्लसदृशजलचरं कुररमाहुः; कादम्बः कलहंसोऽतिधूसरपक्षः, अन्ये तु रक्तचञ्चुशिरः कृष्णपादादीनां लक्षणेन कृत्वा 'कयंब' इति पठन्ति; कारण्डवः शुक्लहंसभेदोऽल्पः, अन्ये करह (ई) वमाहुः, उक्तं च 'कारण्डवः काकवक्रो दीर्घाङ्घ्रिः कृष्णवर्णभाक्—'इति; जीवञ्जीवको विषदर्शनमृत्युः; बकः पाण्डुरपक्षः प्रसिद्धः; बलाका बकभेदः 'बगुली' इति लोके; पुण्डरीको नलिननयनः, प्लवो महाप्रमाणः प्रसेवकगलः 'सगड' इति लोके; शरारीमुखः खदिरवर्णो 'गिर्गराटी' इति लोके; नन्दीमुखः पत्राटि आटीभेदः; मद्गुर्जलकाकः; उत्क्रोशः कुररभेदो मत्स्याशी; काचाक्षः कर्पदियाकः 'बहुडी' इति लोके; मल्लिकाक्षः शुक्लशबलः; शुक्लाक्षस्तद्भेदः, अन्ये तु मलिन चञ्चुचरणो हंसभेद एवेत्याहुः; पुष्करशायिका पद्मपत्रशायिका; कोनालकः श्यामपृष्ठश्वेतोदरः 'पानीयवर्तिका' इति लोके; अम्बुकुक्कुटिका जलकुक्कुटी कृष्णवर्णा, 'बुडियाक' इति लोके; मेघरावश्चातकः, अन्ये तु चातकं विष्किरेष्वामनन्ति; श्वेतवारलः शुक्लपक्षः प्रसेवकगलः 'ज्येष्ठबलाका' इति लोके••• ॥ १०५ ॥

•••शङ्खनकः क्षुद्रशङ्खः शङ्खभेद एव; शुक्तिः समुद्रजा शिम्पिः; शम्बूक आवर्तकोशः, 'सांखुला' इति लोके; भल्लूकः कपर्दकः, अन्ये शम्बूकभेदमाहुः••• ॥ १०८ ॥

••••कूर्मः कच्छपः, स तु नानाविधो वर्तुलदीर्घमहदादिभेदेन; कुम्भीरोऽपि नानाभेदो घडियालगोधादिभेदेन; कर्कटोऽपि द्विविधः कृष्णशुक्लभेदेन; शिशुमारो हत्याकारोऽन्तर्वक्त्रो बहिर्निःश्वासमुक्, सोऽपि द्विविधो वर्तुलदीर्घभेदेन, दीर्घं 'फाणित' इति लोकाः प्राहुः•••• ॥ १०९ ॥

•••रोहितो घनशकलः प्रसिद्धः; पाठीनः पुनरशकल एव दीर्घो निर्मलः सोऽ-

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

पि 'वोयाल' इति लोके प्रसिद्ध एव; वर्मिः सर्पाकारो मत्स्यः···"कृष्णमत्स्यस्तु शकली बहुकण्टकसंयुतः। कषायवर्णो रक्ताक्षः कथितो मत्स्यवेदिभिः"—इति; वागुञ्जारः 'वाहस' इति लोके; सहस्रदंष्ट्रो महापाठीनः; शेषास्तु कैवर्तेभ्यो ज्ञेयाः···· ॥ ११३ ॥

····शष्पं बालतृणं, शैवालं शैवलम् ॥ ११५ ॥

····ह्रदः 'द्रहः' इति लोके ॥ ११७ ॥

····तिमिर्महत्तमो मत्स्यः; तिमिङ्गिलस्ततोऽपि महत्तमः; कुलिशः 'कुडिश' इति लोके; नन्दिवारलकः 'समुद्रशिम्बाक' इति लोके; मकरो हिंस्रदंष्ट्रकः; गर्गरः स्वनाम्ना प्रसिद्धः; चन्द्रकः पार्श्वेषु कण्टकवलयितो वर्तुलो मत्स्यः; राजीवो वज्राभो बह्वायतः स्वनामप्रसिद्धः; शेषास्तु समुद्रतीरवासिभ्यो···· ॥ ११८ ॥

····महाभिष्यन्दीति दोषधातुमलस्रोतसामतिशयक्लेदकारीत्यर्थः; अन्ये त्वन्यथा कृत्वा पठन्ति, तदुच्यते—"हृदयस्थान्ननिर्यासवाहिस्रोतोमुखानि यत् भुक्तं लिम्पति पैच्छिल्यादभिष्यन्दि तदुच्यते ॥ वैशद्यात् कफहन्तृत्वात्तान्येव विवृणोति यत् । तदुक्तमनभिष्यन्दि द्रव्यं द्रव्यविशारदैः" इति ॥ १२२-१२५ ॥

····उत्क्लेशः थूत्करणम्····॥ १२७-१२८ ॥

····अतोऽस्माल्लघुत्वादल्पाभिष्यन्दित्वाच्च । अन्यथेति महाभिष्यन्दिनो गुरवश्चेत्यर्थः····॥ १३५-१३६ ॥

····सौवीरं महत्तममामपक्वावस्थासु मधुरं मरुदेशजं; सिंचितिकाफलं तद्भेद एवातिमधुरो मुष्टिप्रमाण उत्तरापथजः;····मातुलुङ्गं बीजपूरकं;····आम्रातकमाम्रफलसदृशम् 'अम्राटकं' इति लोके;····प्रियालश्चारो मधुराम्लफलः प्रायशो मगधेषु; ····भव्यमारुकं कार्तिकेयपुरे प्रसिद्धम्, अन्ये तु कर्मरङ्गफलं भव्यमाहुः, 'भव्यं तालफलोपमं केवलवल्कलसंहतिमात्रम्' इत्यपरे; पारावतः कामरूपे फलं पाककाले धवललोहितं मधुराम्लं च; वेत्रफलं पद्मबीजसमं; प्राचीनामलकं प्राग्देशोद्भवं 'पानीयामलकं' इति लोके; तिन्तिडीकं वृक्षाम्लं; नीपं कदम्बफलं; कोशाम्रं 'कौसिम्ब' इति प्रसिद्धं; अम्लिका प्रसिद्धा चिंचा वक्रफला···॥ १३९ ॥

···मेध्यं मेधायै हितम् । केशरं बीजपूरान्तर्गतं तन्तुजालं 'चहुडी' इति लोके ॥ १४९-१५१ ॥

···जाम्बवं जम्बूः राजादनं क्षीरिका; तोदनं राजप्रियं; शीतफलं 'रावणाम्लिका' इति प्रसिद्धं, 'काश्मीराम्लिका' इत्येके; तिन्दुकः कालसारो वृक्ष;····धन्वनं धनुर्वृक्षफलं 'धामण' इति लोके; अश्मन्तको यमलपत्रकः 'आसन्त' इति लोके;

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

अश्वकर्णः पूर्वदेशे गन्धमुण्डोऽश्वत्थसदृशः; फल्गुः काकोदुम्बरिका, 'कदुम्बरी' इति लोके। परूषकोऽल्पास्थिर्मृदुफलः 'फालसा' इति लोके; गाङ्गेरुकी नागबला; पुष्करवर्तिः 'आमोदं' इत्युत्तरापथे;....बिम्बी कुन्दरिका...॥ १६३ ॥

...ताडः (लः) ताडी नालिकेरः स्वनामप्रसिद्धाः; पनसो बहिःकण्टकी महाफलः 'कटीहल' इति लोके; मोचः कदलीफलम्....॥ १७७ ॥

....खर्जूरं द्विविधं वृक्षविटपभेदेन, त्रिविधमित्यपरे,....त्रैविध्यं च वृक्षखर्जूरं द्विविधमिति कृत्वा, तत्र पारसीकेषु देशेषु महत्प्रमाणं स्वादु भिन्नं पिण्डखर्जूरमित्यतो हेतोः ॥ १८२ ॥

...वातामादीन्युरुमाणान्तान्युत्तरापथे जातानि, तत्रैव प्रसिद्धानि। केचिद्व्याख्यानयन्ति—तत्र वातामो मज्जमधुरस्निग्धो दीर्घाकारः; अक्षोडो मदनफलाकारफलो मध्ये किञ्चिदुन्नतरेखान्वितः पर्वतपिलुः 'अखरोट्' इति लोके; अभिषुकः 'अभिषु' इति लोके, निकोचकमौत्तरापथिकं कोल्लकफलमुत्तरापथादवगन्तव्यम्... ॥ १८७ ॥

...लवलीफलं सुगन्धिफलं स्वनामप्रसिद्धम्। तल्लक्षणमुच्यते,—"घनस्निग्धा हरितांशुः प्रपुन्नाटसदृक्च्छदा। सुगन्धिमूला लवली पाण्डुकोमलवल्कला" इति ॥ १८६ ॥

...वसिरं सूर्यावर्तफलं देशान्तरे ज्ञेयमित्यर्थः। शीतपाक्यं बलाफलम्। अरुष्करनिबन्धनं भल्लातकवृन्तम् ॥ १६० ॥

....ऐरावतमैरावणिका कृष्णलोहितात्पफला। दन्तशठं जम्बीरफलम्, अन्ये जम्बीरभेदमाहुः। टङ्कं काश्मीरे स्वनामप्रसिद्धं वहुप्रकारम्। ऐङ्गुदमिङ्गुदीफलम्, अन्ये पुत्रञ्जीवकमाहुः....॥ १६१-१६३ ॥

...करीरो मरुजद्रुमः स्वनामख्यातः; आक्षिकमक्षिकीफलं; पीलु पीलुफलम्। तृणशून्यं मल्लिका, केतकीफलमित्यन्ये....॥ १६४ ॥

...तुवरकः पश्चिमोदधितीरे ॥ १६६ ॥

....किंशुकः पलाशः; अरिष्टो निम्बः.... ॥ १६७-१६८ ॥

...व्रणेभ्यो हितं व्रण्यम्। चक्षुषे हितं चक्षुष्यम् ॥ १६६ ॥

....आक्षं बिभीतकफलं...॥ २०० ॥

...जातीकोशो जातीपत्रिका 'जातिवनी' इति लोके।....जातीकटुकयोः फलमिति जातीफलं प्रसिद्धं; कटुकाफलं लताकस्तूरिकेति पञ्जिकाकारो, श्रीब्रह्मदेवस्तु लघुकक्को (ङ्को) लकमाह...॥ २०२ ॥

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

•••लताकस्तूरिका दक्षिणापथे विटपः, शकुनापितुल्यः•••॥ २०४ ॥

•••प्रियालमज्जा 'चारुली' इति लोके प्रसिद्धः। शम्पाकः किरमालकः ॥ २०५-२०७ ॥

•••पुष्पफलं कूष्माण्डकः; अलाबूः तुम्बिनी, सा च दीर्घवर्तुलादिभेदादनेकधा; कालिन्दं कृष्णबीजं कूष्माण्डसदृशं 'कलिन्द' इति लोके•••॥ २११ ॥

•••त्रपुसं सुधावासः; 'तेवसा' इति लोके; एर्वारुर्लोमशा कर्कटी; कर्कारुर्वाडवं त्रपुषं 'खरवारू' इति लोके; शीर्णवृन्तं सुवासकं त्रपुसभेदः, अन्ये तु शीर्णवृन्तं कर्बुरमाहुः, एके तु शीर्णवृन्तं पाकावस्थायां यस्य वृन्तं शटितं भवतीत्यर्थः, अपरे तु कर्बुरभेदं खुदपुत्रकमाहुः•••॥ २१६ ॥

••••श्रृङ्गवेरकं शुण्ठी;••••कुस्तुम्बुरुकं धान्यकं; जम्बीरो हरितशाकमुत्तरापथे जम्बीरगन्धि किंचिदम्लं; सुमुखो वनवर्बरिका; सुरसा सुरभिपर्णी 'तुलसी' इति लोके; अर्जकः श्वेतकुठेरकः; भूस्तृणं रोहिषः, तुम्बाकमन्ये; सुगन्धको गन्धतृणमल्पं भूस्तृणं सुगन्धितृणमिति केचित्, तत्रापि नार्थभेदः;••••कालमालो बर्बरिका; कुठेरकस्तद्भेद एव; क्षवकश्छिक्काकरः 'छिकणी' इति लोके; खरपुष्पो मरुवकः, अन्ये क्षवकभेदमाहुः, केचित् 'वोडयिका' इत्याहुः; शिग्रुः शोभाञ्जनकः, सुवासमित्यन्ये; मधुशिग्रुर्लोहितकुसुमोऽल्पविटपः शोभाञ्जनकभेदः; 'शुण्ठ' इत्यत्र क्वचित् (पठ्यते), स च स्वनामख्यातः; फणिज्झकः 'फाणिज' इति लोके, अन्ये मरुबकमाहुः; सर्षपराजिके प्रसिद्धे; कुलाहलो मुण्डितिका; अवगुल्थं वेगनामा, काकादनीत्यर्थः; गण्डीरोऽपि द्विविधः स्थलजो जलश्चेति, तत्र स्थलजो हरितशाकं; तिलपर्णिका चोरकः, श्रीहस्तिनीत्यपरे; वर्षाभूः पुनर्नवा; चित्रकमूलकलशुनाः प्रसिद्धाः; कलायोऽत्र त्रिपुटकभेदः;••••कलायस्त्रिपुटकः; पलाण्डुर्लशुनभेदः••• ॥ २२१ ॥

••••कारवी कृष्ण जीरक उत्तरापथे प्रसिद्धः; करवी यवानीत्येके, अजमोदेत्यपरे अन्ये राजिकामाहुः। उपकुञ्चिका स्थूलजीरक ईषत्कृष्णो 'वृहज्जीरक' इति लोके ॥ २२६ ॥

••••रसोनः पञ्चरसः स्वल्पकन्दो लशुन इत्यर्थः।••••पलाण्डुः स्थूलनालाग्रपत्रो गुन्द्रालिकाभेदः, स एव सक्षीरो मधुररसः क्षीरपलाण्डुरित्युच्यते ॥ २४४-२४८ ॥

•••चुच्चूर्नाडिकाकारपत्रः; 'चुचु' इति लोके; यूथिका वृक्षविशेषः, सा त्रिधा ईषच्छ्वेतपुष्पा, अतिश्वेतपुष्पा, पीतपुष्पा च,: तरुणी स्वनामप्रसिद्धा अन्ये 'वरुण' इति पठन्ति, वरुणकस्तिक्तशाको जलकूलजः; जीवन्ती जीवा 'तण्डुलीयकसदृशी'

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

इत्यन्ये, 'डोडिका' इत्यपरे; बिम्बीतिका कुन्दुरिका तस्याः पत्राण्यत्र गृह्यन्ते; नदीभल्लातकः ली (लो) जनकः, अन्ये 'अनन्ताभल्लातक' इति पठन्ति, तत्र अनन्ता लाङ्गलिका 'कलिहारी' इति लोके; भल्लातकवृक्षस्य फलान्यामानि पल्लवाश्च शाकत्वेनाभिप्रेताः; छगलान्त्री वृद्धदारकः, तस्य पत्राणि, बुह्नेत्यपरे; वृक्षादनी बन्दाकः वृक्षकलिम्बुकेत्यन्येः, फञ्जीशाको 'बाड' इति प्रसिद्धः, भार्गीमेके मन्यन्ते;....शेलुः श्लेष्मातकः 'लिसाड' इति लोके;....कर्बुदारः श्लेष्मातकभेदः; कोविदारः; काञ्चनारः....॥ २४६ ॥

...क्षीरवृक्षा अश्वत्थादयः; उत्पलानि नीलोत्पलप्रभृतीनि, तेषां पल्लवाः ॥ २५१-२५३ ॥

....पुनर्नवा श्वेतपुनर्नवा; वरुणो वृक्षविशेषः स्वनामप्रसिद्धः; तर्कारी अरणिका; उरुबूकः शुक्लैरण्डः; वत्सादनी वत्सपुत्रकः 'वत्सवतिया' इति लोके, गुडूचीत्यपरे बिल्वशाकं बिल्वजं; प्रभृतिग्रहणादन्यान्यपि...॥ २५४ ॥

तण्डुलीयकः 'चुलाई' इति लोके; उपोदिका पोइ; अश्वबला तुरुष्कदेशे बृहत्पत्रा मेथिकाभेद एव 'हिस्फित्थ' इति लोके, तन्त्रान्तरे मेथिकाहिस्फित्थयोः पृथग्गुणनिर्देशः कृतः—'वातपित्तहरा तिक्ता लध्वी श्लेष्माविरोधनी। मेथिका तत्समं किञ्चिद्धिस्फित्थं पुष्टिदं गुरु'—इति। चिल्ली क्षेत्रवास्तुकः, 'गौडवास्तुक' इत्यन्ये, यवशाकमाहुरेके, अन्ये तु यवशाकान्तरमाहुः; पालङ्क्या 'पालक्' इति लोके; वास्तूकष्टङ्कवास्तूकः 'टङ्कचुच्चू' इति लोके....॥ २५६ ॥

....मण्डूकपर्णी ब्राह्मी; सप्तला सेहुण्डः, जेज्झटस्तु सप्तलां यवतिक्ताभेदमाह; सुनिषण्णकः 'सिरिबालिका' इति लोके, श्रीब्रह्मदेवस्तु चतुर्दलमाह, तल्लक्षणं कथ्यते—'चाङ्गेरीसदृशैः पत्रैः सुनिषण्णश्चतुर्दलः। शाको जलान्विते देशे चतुष्पत्रीति कथ्यते' इति; सुवर्चला सूर्यावर्तः, केचिन्मारिषसदृशदण्डमार्तगलसदृशपत्रं लप्पसमाहुः; पिप्पलीगुडूच्यौ प्रसिद्धे, पूर्वं पिप्पलीफलमुक्तम्, अत्र तु पत्रं; गोजिह्वा दार्विपत्रिका कर्कशा दीर्घपत्रा 'गोजीभी' इति लोके; काकमाची प्रपुन्नाडौ प्रसिद्धौ: अवल्गुजः 'बाकुची' इति लोके; सतीनो वर्तुलकलायः; बृहतीफलं सामान्याद्बृहतीद्वयस्य फलम्, ...पत्रं च, वार्ताको वृन्ताको वर्तुलफलः 'बइगण' इति लोके; ....कटुकिका अरण्यकासमर्दिका, अन्ये तिक्तारिकामाहुः; अपरे तु कटुतिक्तपुष्पा मर्कफलाकारफलां प्रसिद्धामाहुः;....उरुबूको रक्तैरण्डः, अन्ये तूरुबूकस्य पत्रमत्र गृह्यते,... किराततिक्तको भूनिम्ब; कर्कोटकः प्रसिद्धः, अरिष्टो निम्बः, कोशातकी घोषकः 'तोरइ' इति लोके; वेत्रकरीर वेत्राग्रं; आटरूषको वासकः; अर्कपुष्पी अर्कपत्रसदृशी लता, अन्ये अर्कपर्णमाहुः...॥ २६२ ॥

...कालशाकं कालियाशाकं श्राद्धार्हम्।....नाडिका 'नाली' इति लोके।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

चाङ्गेरी 'अम्लचाङ्गेरी' इति लोके...॥ २७२-२७३ ॥

....लोणिका लोणिया; जातुकं शुक्लशालपर्णी, त्रिपर्णिका दुग्धिका, वनकार्पासीत्यपरे, पत्तूरः शिरबालिकाभेदो महापत्रः, जीवको जीवनामा स्वनामप्रसिद्धः; सुवर्चला सूर्यावर्तभेदः; डुडुरकः स्वनामप्रसिद्धः कुतुम्बको द्रोणपुष्पः; कुठिञ्जरः कुरहञ्जनकः 'कोल्हसुआ' इति लोके, कुनाडिकेति क्वचित्; तत्रकुनाडिका गोनाडीकः, कुन्तलिका चुच्चूसदृशा दीर्घपत्रा, कुरुण्टिका अम्लानसदृशपत्रकुसुमा हरितपुष्पा अन्ये 'कुनालिकाकुरण्टिके उत्तरापथजे' इत्याहुः....॥ २७४ ॥

...राजक्षवकशाकं कृष्णराजिका, अन्ये तु 'राजक्षवको वृहत्पत्रः क्षवथुकाकर' इत्याहुः....॥ २७६ ॥

....पूतिकरञ्जः कण्टकिकरञ्जः, अन्ये तु पूतिकश्चिरबिल्वः, करञ्जो नक्तमालः ॥ २७८ ॥

...ताम्बूलपत्रं नागवल्लीपत्रं 'पर्णम' इति लोके...॥ २७९-२८० ॥

...कोविदारः काञ्चनारस्तद्भेदो वा;.... । वृषो वासकः, अगस्त्यः 'अगथीया' इति लोके ॥ २८१ ॥

...रक्तवृक्षस्य रक्तचन्दनस्य । मुष्ककस्य क्षारवृक्षस्य 'मोखउ' इति लोके, असनो बीजकः...॥ २८४ ॥

...पद्मं पद्मपुष्पं सूर्योदयविकासि । कुमुदं चन्द्रोदयविकासि । कुवलयं कुमुदभेदः...॥ २८५ ॥

....मालती जाती ....॥ २८६ ॥

किंशुकं पलाशपुष्पं, कुरण्टकं सहचरपुष्पम् ॥ २८८ ॥

....मधुशिग्रू रक्तशोभाञ्जनकः, तस्य करीराणि कोमला नालाः....॥ २८९ ॥

....क्षवकश्छत्रकः, कुलेवरं खुखुण्डकः,....अन्ये तु क्षवकं द्रोणपुष्पीसदृशं विटपमाहुः, तन्न तस्यानुद्भिदत्वात्....॥ २९० ॥

....वेणोः करीरा इति केचिन्मधुररसपाकित्वविदाहित्वयोर्विरोधमाहुः.... ॥ २९१-२९२ ॥

....उमासर्षपादीनां यन्त्रादिपीडितानां निःस्नेहकल्कः पिण्याकः । तिलकल्कस्तिलपिण्याकः, सोऽपि यन्त्रादिपीडितः । स्थूणिकाशुष्कशाकानि नानाशाकैः कृता वटकाः....॥ २९४ ॥

....वटकाः पिष्टकासमर्दककूष्माण्डकमूलकादिकृता मुद्गादिकृताश्च । सवाततोदशूला मलाप्रवृत्तिर्विष्टम्भः ॥—

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

""मूलकादिशाकमेव किंचित् स्विन्नं क्षुण्णं सुगन्धिकटुद्रव्यान्वितं वटकीकृतं सूदेषु 'सिण्डाकी' इत्युच्यते; सा द्विविधा—आर्द्रा, शुष्का च; शुष्का वटकान्तर्गता, आर्द्रायास्त्वयमेव गुणनिर्देशः ॥ २६५ ॥

""बिसं पद्ममूलम्, अन्ये स्थूलपद्मनालं बिसमाहुः; मृणालं पद्ममूलात् स्थूलप्ररोहः, अन्ये तु सूक्ष्मं नालमाहुः, शृङ्गाटकं जलमध्ये त्रिकण्टकं 'सिघाडा' इति लोके,""मध्वालुकं रोमशं मधुरास्वादमेव, हस्त्यालुकं महत्काष्ठालुकमित्येके""॥ २९८ ॥

"महदल्पभेदेन शतावरी द्विविधा। तस्या एवाङ्कुराः शतावर्यङ्कुरा इत्यर्थः ॥ ३००-३०२ ॥

सुरेन्द्रकन्दो वज्रकन्दः ॥ ३०३-३०४ ॥

""वेणोः करीरा वंशमूलाङ्कुराः ॥ ३०५ ॥

""स्थूलकन्दो ग्राम्यकन्दः; केचित् 'सकलकन्द' इति पठन्ति; तत्रापि स एवार्थः; शूरणः स्वनामप्रसिद्धः, माणकं महापत्रं यथापूर्वमधः पत्रपरित्यागि"" ॥ ३०६ ॥

""कुमुदं श्वेतोत्पलम् उत्पलं नीलोत्पलम्।""वराहकन्द इति वराहकन्दो 'बकालुक' इति प्रसिद्धः, अन्ये तु 'वाराही' इति पठन्ति, वाराही गृष्टिकोच्यते ॥ ३०८-३०९ ॥

""दक्षिणसमुद्रसमीपभवं सामुद्रं, विडं कृत्रिमं स्वनाम्ना ख्यातं; तच्च प्रसारणीकल्कभक्तलवणसंयोगादग्निदाहेन निर्वृत्तं, सौवर्चलं प्रसिद्धं, तदेव निर्गन्धं काललवणमित्युच्यते; रोमकं शाकम्भरीदेशोत्थं, 'रुमासरःसंभवम्' इत्यन्ये, भूमिमुद्भिद्योत्पन्नस्य क्षारोदकस्य सूर्यरश्मिभिर्वह्निना वा क्वथनाद्यल्लवणमुत्पद्यते तदौद्भिदं""। जेज्जटश्चरकमतानुसारेण सैन्धवानन्तरं सौवर्चलं पठति, 'तदसम्यक्, सामुद्रा त् सौवर्चलस्योष्णत्वात्, उत्तरोत्तरमुष्णानीति वचनात्' इति गयी ॥ ३१३ ॥

""सूक्ष्मं सूक्ष्मस्रोतोऽवगाहनशीलम्। वातानुलोमनं मार्गावृतवातस्य स्रोतः शुद्धिकरत्वेन प्रवर्तनं।""व्यवायीति अपक्वमेव देहमखिलं व्याप्नोति पश्चाद्देहस्थमेव पाकमुपैति।""उत्क्लेदि आर्द्रीभावकारि, अन्ये 'प्रकोपयति श्लेष्मपित्तादीन्' इत्याहुः। ""पाकाभिनिर्वृत्तत्वाद्गुडिकाभूतमेव गुडिकालवणं भवति, तच्च 'वृक्षलवणम्' इति ख्यातम् ॥ ३१४-३२० ॥

""ऊषसूतमूषरप्रजातम्। वालुकैलमिति वालुकाः सिकताः ताभिर्युक्ता इला पृथ्वी वालुकैला, तत्र संभवं वालुकैलम्। मूलाकरोद्भवमिति मूलभूतं,

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

आकरो मूलाकरः; प्रशस्यतरस्तुरङ्गमोत्पत्तिभूमिः, तत्रोद्भवं मूलाकरोद्भवम्। कटु चोच्यत इति कटु लवणमिति प्रसिद्धमित्यर्थः ॥ ३२१ ॥

""यवक्षारो यवशूकोद्भवः 'शीतलिका' 'यवक्षार' इति च लोके; स्वर्जिक्षारः 'साजी' इति लोके; पाकेन निर्वृत्तः पाकिमः क्षारपाकविधानोक्तः प्रतिसारणीयः पानीयश्च, 'पाकिमं तूषरपांशुकाभिनिर्वृत्तम्' इत्यन्ये, अपरे पाकिमाद्भिन्नमूषरक्षारमाहुः, टङ्कणक्षारः सौभाग्यापरपर्यायः 'सुहागा' इति लोके"" ॥ ३२२-३२५ ॥

""सारङ्गोऽत्र गौरहरिणः; कुरङ्गश्चतुरङ्गो भेदुलापतिः, एणः कृष्णहरिणः, वर्मीर्मत्स्येषुः, वर्मी रोहितक इत्येके; 'रोहितो मत्स्यानां' इति चरकवचनात्, अन्ये सर्पाकारमत्स्यमाहुः, श्रीब्रह्मदेवस्तु 'वर्मी महाशकलोरोहितभेदोऽत्र, न पुनः सर्पाकारमत्स्यः 'इत्याह; कूर्मः कच्छपः,""खर्जूरं पिण्डखर्जूरं, राजादनं क्षीरिका, परूषकं कषायेषु, परूषकं 'फालसा' इति लोके।""सतीनो वर्तुलकः, वास्तुकष्टङ्कवास्तुकः; चूचूः 'चूच्च' इति लोके, चिल्ली क्षेत्रवास्तुकः, मूलकपोतिका बालमूलकं, मण्डूकपर्णी ब्राह्मी; जीवन्ती 'डोडी' इति लोके, 'जीवन्ती जीवा; तण्डूलीयकसदृशी' इत्यन्ये""॥ ३३२-३३९ ॥

""कृतान्नं संस्कृतान्नं साधितान्नमित्यर्थः""॥ ३४० ॥

""पेया यवागूः, सा विरलद्रवा, तदुपरितनो भागो मण्डः; एतद्द्वयमपि पेयम् ॥ ३४१ ॥

""विलेपी घनसिक्था; सा च लेह्या, तत्र मण्डपेयाविलेपीनां तण्डुलजलप्रमाणादिकं सूपकारा एव जानन्ति""॥ ३४२ ॥

""संतर्पणी तृप्तिजननी। वृष्या शुक्रला। बृंहणी शरीरवृद्धिकरी""॥ ३४३ ॥

""पेया सिक्थसमन्वितेति अत्र पेया यवागूरुच्यते, सा च सिक्थसमन्विता भवति। विलेपी बहुसिक्था स्यादिति बहुसिक्था घृतसिक्था पृथग्द्रवरहिता, अत एव लेह्या।""पेया यवाग्वपरपर्याया सिक्थसमन्विता विरलद्रवा, विलेपी घनसिक्था लेह्या पृथग्द्रवरहितेति भेदत्रयं सिक्थैर्विरहित इत्यादिना श्लोकेनोक्तम्। केचित् "अन्नं पञ्चगुणे तोये, यवागूं षड्गुणे पचेत्। चतुर्दशगुणे मण्डं, विलेपीं तु चतुर्गुणे" इति परिभाषादर्शनात् पेयायवाग्वोर्भेदमाहुः ॥ ३४४ ॥

""पायसो दुग्धघृतण्डुलसिद्धः""सवाततोदशूला मलाप्रवृत्तिर्विष्टम्भः ॥ ३४५ ॥

""कृशरा तिलतण्डुलमाषकृता यवागूः ॥ ३४६ ॥

""परिशुष्कप्रदिग्धयोरयं विशेषः—"भृष्टं बहुघृते सिक्तं मुहुरुष्णाम्बुना मृदु। जीरकाद्यैर्घनं मांसं परिशुष्कं तदुच्यते ॥ तदेव गोरसादानं प्रदिग्धमिति

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

विश्रुतम्"—इति। स्थिरं कठिनम्। हर्षणं हर्षोत्पादकम्। बलमुत्साहः, ओजो हृदि स्थितं धातुधाम""॥ ३५३ ॥

""शूलिकाप्रोतमिति लोहादिशलाकारोपितम्""॥ ३५५ ॥

""भर्जितादीनि व्याख्यानयन्ति—"भर्जितं स्याद्धृतादौ तु पिष्ट्वा यत् साधितं पुनः। अपूपादिकृतं पिष्ठं दधिदाडिमसौरभैः। ""अङ्गारादिषु यत् पक्वं प्रतप्तं तदुदाहृतम्""॥ ३५६-३५८ ॥

""खडकाम्बलिकौ यूषविशेषौ। तत्र खडो द्विविधः—सतक्रशमीधान्यः, सतक्रशाकश्च। तथाहि—"सतक्राणि शमीधान्यानि स्निग्धानि संग्राहकाणि खडानि" इति, सतक्रशाकस्तु। कपित्थतक्रचाङ्गेरीमरिचाजाजिचित्रकैः "सुपक्वः खडयूषोऽयमथ काम्बलिको परः॥ दध्यम्ललवणस्नेहतिलमाषसमन्वितः"—इति। तक्राम्लसिद्धः काम्बलिकः; अम्लानां बहुत्वात्। जेज्झटमते तु दधिदाडिममाष-शाकस्नेहयुक्तं व्यञ्जनं खड इत्युच्यते, नलमते तु 'तिलं सुलुञ्चितं कृत्वा पिष्टं क्षीरे त्र्यहोषितम्। पटे पूतं पचेद्धीमानार्द्रकावापिते घृते॥ मरिचाजाजिसा-मुद्रैर्युक्तस्तिलखण्डो भवते—इति काम्बलिकलक्षणं तत्रैवोक्तं—'दधिमस्त्वम्ल-सिद्धस्तु यूषः काम्बलिकः स्मृतः। पुनः सौवर्चलाजाजीबीजपूरकसौरभैः। संयोज्य मथितः स्वच्छ एष काम्बलिको भवेत्"—इति।""दाडिमेन क्रियते योऽम्लो यूषः स दाडिमाम्लः। दध्यम्ल इति दध्ना क्रियते योऽम्लोयूषः स दध्यम्लः॥ ३७६–३७७ ॥

""षा (खा) डवलक्षणमुच्यते—"स्पष्टाम्लमधुरोऽस्पष्टकषायलवणोषणः। अतिक्तः खाडवः कोलकपित्थाद्युपबृंहितः"—इति; खाडवा इति बहुवचनं खाडव-भूयस्त्वप्राप्तये, तच्च विस्तरभयान्न लिखितम्। पानकानि अम्लिकाद्राक्षादि कृतानि एवमादिग्रहणात् सट्टकप्रभृतीनि॥ ३७८ ॥

""तिलविकृतिर्मोदकादिः, पिण्याकविकृतिः फुट्टाढकादिः। तिलपिण्याकस्य शुष्कशाकस्य विरूढकस्य च व्यञ्जनानि देशपुरुषविशेषतो ज्ञेयानि। विरूढमङ्-कुरितं विगतरोहं वा, अन्ये शाकमेवात्यन्तरूढं विरूढमाहुः। सिण्डाकी अनासुता शुष्कार्द्रा सुट्टमेषु, 'अन्नादिष्वासुतसिण्डाकी शुक्तगुणा नोक्तगुणा' इत्येके, ""मूलका-दिशाकमेव किंचित् स्विन्नं क्षुण्णं सुगन्धिकटुकद्रव्यान्वितं वटकीकृतं सुट्टमेषु 'सिण्डाकी' इत्युच्यते, अन्ये तु 'शाकसिक्थमण्डासुतिः सिण्डाकी' इत्याहुः॥ ३८१ ॥

""तत्र रागः—'सितारुचकसिन्धूत्थैः सवृक्षाम्लपरूषकैः। जम्बूफलरसैर्युक्तो रागो राजिकया कृतः'—इति। षाडवाः पुनर्मधुराम्ललवणसंयोगजा नानाविधाः॥ ३८३ ॥

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

""""रसाला शिखरिणी ॥ ३८४ ॥

""""परूषकं 'फालसा' इति लोके; कोलं बदरः""""॥ ३८८-३९१ ॥

"""भक्ष्या लड्डुकादयः""""॥ ३९२ ॥

""""'मर्दिताः समिताः क्षीरनालिकेरसितादिभिः । अवगाह्य घृते पक्वो घृतपूरोऽयमुत्तमः'; 'घेव (उ) र' इति लोके ॥ ३९३ ॥

"""समितावेष्टिताः पाकघनीभूता मधुरा घृतोदरा मधुमस्तकाः; त एव 'मधुशीर्षका' उच्यन्ते; केचिन्मधुमस्तकशब्देन खज्जकमाहुः । संयावाः पुनः—"समितां मधु (घृत)-दुग्धेन मोदयित्वा सुशोभनाम् । पचेद्घृतोत्तरे खण्डे क्षिपेद्भाण्डे नवे ततः । संयावोऽसौ युतश्चूर्णैः खण्डैलामरिचार्द्रकैः"—इति । पूपाः 'पूआ'—इति लोके । मोदका लड्डुकाः ॥ ३९५ ॥

"""""आमगोधूमचूर्णं च सर्पिःक्षीरगुडान्वितम् । नातिसान्द्रो नातिघनो विष्यन्दो नाम नामतः"—इति । अन्ये तु घृतभ्रष्टतण्डुलान् विष्यन्दशब्देनाहुः, तन्नेच्छति गयी ॥ ३९७ ॥

""""तत्र फेनकाः "विमर्द्य विमलां शुक्लां समितां नातिशर्कराम् । संवेष्टनाय गर्भार्थं खरपाकं घृते पचेत् । फेनकं फनसङ्काशं सम्पूर्णशशिसन्निभम्"—इति ॥ ३९८ ॥

""""स्विन्नपिष्टमुद्गादिकल्को वेसवारः"""अपरे, वेसवारं शुण्ठ्यादिकृतमाहुः""""॥ ३९९ ॥

पललं तिलपिष्टं गुडाद्युपेतं, तेन कृताः पाललाः; इमेऽपि सामिताः । शष्कुल्य इति शष्कुल्यः 'शांकुली' इति लोके ॥ ४०० ॥

""""पैष्टिकाः तण्डुलपिष्टकृताः ॥ ४०१ ॥

विग्रथितं क्षीरं घनत्वमापन्नं कूर्चिका, तया विविधप्रकाराः कृताः कूर्चिकाविकृताः ॥ ४०३ ॥

""""विरूढककृता अङ्कुरितमुद्गादिकृताः ॥ ४०४ ॥

""""किलाटः क्षीरकूर्चिकापिण्डः"""। """यवपिष्टमुष्णोदके सिक्तमीषत्स्विन्नमृदितं शृङ्गाटादिप्रकारं कुल्माषमाहुः 'यवादयः स्विन्ना' इत्येके"""॥ ४०९ ॥

""""वाट्यो यवगोधूमादिभिर्दलितैः कृतः, अन्ये तु भृष्टयवकृतो भक्ष्य इत्याहुः""""॥ """"धाना भृष्टयवाः; उलुम्बा होलकाः; अत्र मुद्गकलायादिशिम्बा अग्निपक्वा 'होलका' इत्युच्यन्ते ॥ ४१० ॥

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

""आर्द्रशालिधान्यं मृदुभृष्टं मुसलाघातचिप्पटीभूतावयवं 'पृथुका' इत्युच्यते ॥ ४१५ ॥

""अन्नादनु पश्चात् पीयत इत्यनुपानम्""॥ ४१९ ॥

""धान्याम्लं काञ्जिकं""॥ ४२०-४२१ ॥

""कृष्णगन्धः शोभाञ्जनकः । ""कषायाणां क्षीरवृक्षादिफलानाम् । मधुराणां द्राक्षादीनां, वातामाभिषुकादीनां च । कटुकानां फलानामित्यर्थः । श्वदंष्ट्रा गोक्षुरकः; वसुको बुकः, केदारगिरौ 'बगहुल' इति प्रसिद्धः । शाकानामनुपानं निर्दिशन्नाह । ""जीवन्ती डोडी । ""मण्डूकपर्णी ब्राह्मी""॥ ४३२-४३३ ॥

""दोषसंघातभेदनं दोषसमूहपृथक्करणम् । तर्पणं तृप्तिजनकम् । मार्दवकरं शरीरकोमलतोत्पादकम्""॥ ४३५-४३७ ॥

""अनुपानमिति अनुशब्दं लक्षणार्थमाहुः, आहारं लक्षीकृत्य पानमिति, आहारमाश्रित्य यत् पीयत इत्यर्थः; तेन मध्याद्ययोरप्यनुपानशब्दः प्रयुक्तो भवति ॥ ४३८ ॥

""प्रसेकी लालास्रावी""॥ ४४० ॥

""कार्ष्णायसे कृष्णलोहपात्रे, 'कान्तलोहपात्रे' इत्यन्ते । राजते रौप्यमये । भक्ष्या लड्डुकादयः । ""'वैदलेषु वेत्रवंशादित्वग्ग्रथितेषु'""। "सिक्त्वा बहुघृते भृष्टं मुहुरुष्णाम्बुना मृदु । जीरकाद्यैर्धनं मांसं परिशुष्कं तदुच्यते । तदेव गोरसादानं प्रदिग्धमिति विश्रुतम् ।" ""कट्वरं तक्रम्, अन्ये तु—"सौवीराम्लमथात्यम्लं काञ्जिकं कट्वरं विदुः । अन्ये तु तदधोभागं तक्रं वाऽत्यम्लतां गतम् । सस्नेहं दधिजं तक्रमाहुरन्ये तु कट्वरम्"—इति । खडो यूषविशेषः; स च सतक्रशमीधान्यः; सतक्रशाकश्च । ""वैदूर्यं रत्नविशेषः, ""तत्र रागः "सितारुचकसिन्धूत्थैः सवृक्षाम्लपरूषकैः । जम्बूफलरसैर्युक्तोरागो राजिकया कृतः"—इति षाडवाः पुनर्मधुराम्ललवणसंयोगजा नानाविधाः, विशेषतः सूदेभ्यो ज्ञेयाः । सट्टकस्तु "लवङ्गव्योषखण्डैस्तु दधि निर्मथ्य गालितम् । दाडिमीबीजसंयुक्तं चन्द्रचूर्णविचूर्णितम् । सट्टकं तु प्रमोदाख्यं नलादिभिरुदाहृतम्"—इति । ""तत्र वज्रं षट्कोटिकं रत्नं हीरक इत्यर्थः । ""सूदः सूपकारः । सूपप्रहितमोदनं भक्तम्""॥ ४४९-४५७ ॥

""सुमनः फलैः जातीफलैः ॥ ४८४-४८६ ॥

""जीवनः प्राणधारणः । ""अनुलोमनो वातमलप्रवर्तनः । ""व्यवायी गुणः । अखिलमित्यादि अपक्व एवाखिलं देहं व्याप्नोति पश्चान्मद्यविषवत् पाकं याति; अन्ये 'भावाय कल्पते' इति पठन्ति, तत्रापि स्थितये कल्पते नोर्ध्वमधो वा प्रवर्तत

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

इति स एवार्थः; अपरे तु पुनर्भावशब्दमभिप्रायार्थमिच्छन्ति, तत्र नियतद्रवप्रभावेणात्मशक्त्यनुरूपं तत्तद्द्रव्यं मद्यविषवद्विशिष्टाभिप्रायाय कल्पत इत्यर्थः । व्यवायिनः सकाशाद्विकासिद्रव्यस्य किंचिद्भेदं दर्शयन्नाह—विकासीत्यादि । विकासी गुणः । विकसन् प्रसर्पन् । एवमिति अपक्व एव सकलं देहं व्याप्य । धातुबन्धान् विमोक्षयेत् धातुशैथिल्यं करोतीत्यर्थः । अन्ये तु 'सरविशेषो व्यवायी, तीक्ष्णविशेषो विकासि' इति ब्रुवते, तन्नेच्छति गयी । आशुकारी गुणः, आशुत्वात् । सूक्ष्मो गुणः, अत्र स्थूलगुणमपि केचित् पठन्ति; स च पाठो भावान्न लिखितः ''''॥ ५१४–५२४ ॥

चिकित्सा-स्थानं

अध्यायः १

'''चुच्चुः चीचुरिति लोके । उपोदकः 'पोइ' इति लोके ॥ ४१-४२ ॥

'''स्नैहिकेषु च बीजेषु तिलातसीसर्षपैरण्डादिबीजेषु'''॥ ५१-५२ ॥

'''रोहिणीफलमिति रोहिणी हरीतकीभेदस्तत्फलम्; अन्ये तु कटुतुम्बीफलमाहुः; कटुकाफलमिति पाठान्तरम् । ''''अर्जुनः ककुभः'''॥ ६४-६८ ॥

'''समुद्रमण्डूकी जलशुक्तिः, मणिचूर्णानि स्फटिकादिचूर्णानि; श्रीब्रह्मदेवस्तु समुद्रमण्डूकीं मुक्ताशुक्तिमाह, जेज्जटाचार्येण'''॥ ६६-१०० ॥

'''नक्तमालस्य पल्लवाः करञ्जस्य कोमलपत्राणीत्यर्थः ॥ १०१-१०३ ॥

'''दीर्घवृन्तः श्योनाकः । आलं हरितालम् । ''''तत्र रक्तफला शमी प्रलेपे भक्षणे च केशघ्नीति वृद्धवैद्या वदन्ति । ''''आगारगोधिका गृहगोधिका 'ब्राह्मणी' इति लोके । रम्भा कदली । आलं हरितालम् । बीजमैङ्गुदं इङ्गुदीवृक्षबीजम्''' ॥ १०४-१०८ ॥

'''पत्रमाश्वबलमिति अश्वबला उपोदकी तस्या इदमाश्वबलं; ब्रह्मदेवस्तु अश्वबला यवनभूमौ मेथिकाकारबीजा भवतीत्याह । क्षीरवृक्षावटादयः । औदकानि पद्मकुमुदादीनि । '''मूर्वा धनुर्गुणोपयुक्तो लताभेदः । शुकनासा चर्मकारवटः 'कुप्यक' इति कान्यकुब्जे; 'चर्मकारजम्बूपलासिका''''॥ ११२-११८ ॥

अध्यायः २

'''वेशवारैर्निरस्थिस्विन्नस्निग्धपिष्टमांसैः । कृशरा तिलतण्डुमाषकृता यवागूः'''॥ २३-२५ ॥

'''कर्कटाख्या कर्कटशृङ्गी । ''''अमृता गुडूची । हरेणवः कलायाः । मृणालम् उशीरम् । उत्पलं नीलोत्पलम् । ''''सोमलता इत्यपरे'''॥ ३६-४० ॥

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

…चित्रातैलसमन्वितमिति चित्रातैलम् एरण्डतैलं, तत्फलं पुरीषमार्दवं वातानुलोमनं च। ….अश्वकर्णः पूर्वदेशप्रसिद्धोऽश्वत्थसदृशः; मोचकी शाल्मली; मेषशृङ्गं कर्कटशृङ्गं, पुत्रञ्जीवकभेद इत्यन्ये….॥ ५६-६५ ॥

…समङ्गा मञ्जिष्ठा, रजनी हरिद्रा, पद्मा भार्गी, त्रिवर्गः त्रिफला पथ्या हरीतकी…॥ ७३-७४ ॥

…समङ्गा मञ्जिष्ठा। पद्मा भार्गी। सुवर्चला सूर्यभक्ता। हरेणुका रेणुका। तरुणानि आमानि॥ ८२-८४ ॥

….राजवृक्षादाविति आरग्वधादावित्यर्थ….॥ ८६-८८ ॥

…द्रवन्ती चीरितपत्ना। दन्ती चिरबिल्वो वृक्षकरञ्जकः। दन्ती उदुम्बर-पर्णी पृथ्वीका स्थूलजीरकः, एलेत्यन्ये, हिङ्गुपत्रिकेत्यपरे। तेजोवती काकमर्द-निका नीलि निलाञ्जनिका शारदा। भूमिकदम्बो मुण्डितिका। सुवहागोधापदी शुकाख्या चर्मकारवटः। लाङ्गलाह्वाया कलिहारिका। नैपाली मनः शिला। जालिनी कोशातकी। मदयन्ती मेन्दिका नखरञ्जनी। मृगादनी इन्द्रवारुणी। सुधा सेहुण्डः। मूर्वा चोरस्नायुः। कीटारिः विडङ्गः कीटमारिणीत्यन्ये; करञ्जिका नक्तमालफलम्….॥ ८६-६२ ॥

अध्यायः ३

…सतीनो वर्तुलकलायः; सतीनानां वातकराणामपि सर्पिरादिसंस्कृतत्वा-द्यूषो भग्ने युज्यत एव। बृंहणं देहवृद्धिकरम् ॥ ५ ॥

….सर्वगन्धा एलादयः, अन्ये च कटुकफलादयः…. ॥ अत्र च क्षीरपाके इयं परिभाषा स्मरणीया—"क्वाथ्याद्दष्टगुणं क्षीरं क्षीरात्तोयं चतुर्गुणम्। क्षीराव-शेषं कर्तव्यं क्षीरपाके त्वयं विधिः" इति। …अंशुमती शालपर्णी। कालानुसारिवा-तगरं; ….सैरेयकं कण्टशेलुकः। क्षीरशुक्ला क्षीरविदारी। अनन्ता उत्पलसारिवा। मधूलिका मर्कटतृणविशेषः। शृङ्गाटकं त्रिकण्टकं जलजं फलम्…. ॥ ५५-६६ ॥

…त्रपुसं कर्कटीभेदः, अक्षो विभीतकः प्रियालश्चारः…॥ ६७-६८ ॥

अध्यायः ४

…षड्धरण इति षण्णां चित्रकादीनां धरणा मानविशेषा यत्र योगे स षड्-धरणो योगः। तत्र धरणप्रमाणं मध्यमैरेकविंशतिभिर्निष्पावैर्भवति। ….षड्धरणानि कथं सप्तदिनान्युपयुज्यन्ते उच्यते—एकस्मिन् दिने कर्षयोगः, स चाष्टादशनिष्पा-वैर्भवति, तत्र षड्धरणेभ्यः प्रतिदिनं त्रयस्त्रयो निष्पावा उच्छ्रिता भवन्ति; ततः षड्भिस्त्रिकैरष्टादशनिष्पावाः, तैरष्टादशभिः सप्तमं दिनं पूर्यते; अथवा संज्ञैषा षड्धरण इति। ….'कटुकाऽतिविषा क्षपा' इति केचित् पठन्ति….॥ १-४ ॥

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

""तिल्वकः पट्टिकारोध्रः । कम्पिल्लको रोचनिकावृक्षः फलारुणरेणुः । ""रम्यको द्रेक्का पर्वतनिम्बः 'राजनिम्ब' इति लोके ॥ २७ ॥

""अम्लं काञ्जिकम् । ""हैमवता इति हैमवता उत्तरापथसम्भूताः, ते पुनः कस्तूरीशटीकुष्ठमांसीसरलसुरदारुमुरादयः । दक्षिणपथगाः चन्दनजातीफलकङ्कोललवङ्गादयः""॥ २९ ॥

"" गन्धर्वहस्त एरण्डः, मुष्ककः कृष्णपुष्पमुष्ककः, नक्तमालः करञ्जः, पूतीकश्चिरबिल्वः""॥ ३० ॥

""गण्डीरो द्विविधः स्थलजो जलजश्च, तत्र स्थलजो हरितशाकपठितः; जलजो जलपिप्पलीगण्डीरः; पलाशः शटी; नादेयी जलजम्बूः; कृष्णगन्धा शोभाञ्जनकः; नीपो महाकदम्बः; निर्दहनी मोरटः अग्निमन्थ इत्येके, अपरे चित्रकमाहुः; वैजयन्ती अरणिका; ""वाष्पिकाद्वयं तच्च लोहितं कृष्णं च सिन्धुविषये, केचिद्वर्षाभूद्वयमिति पठन्ति; इक्षुरकस्तालमखाना""॥ ३२ ॥

अध्यायः ५

""शृगालविन्ना पृश्निपर्णी, ""श्यामा त्रिवृद्विशेषः, 'वृद्धादारुक' इत्यन्ये । रास्ना सुरसा । सुषवी पानीयवल्ली । ""सुरभिः रास्ना । ""मयूरकोऽपामार्गः । क्षीरविदारी दीर्घकन्दा भृशं मधुरा । ""बिल्वपेशिका बालबिल्वगिरः""॥ ७ ॥

""बिसं भिषण्टकमिति लोके, मृणालं पद्मनालं, भद्रश्रियं शुक्लचन्दनम् । ""वञ्जुलो वेतसः, गलोड्यं पद्मबीजं, गौरी हरिद्रा, शैवलं शैवालम् । धान्याम्लं काञ्जिकम्""॥ ८ ॥

""श्लेष्मातकः शेलुः 'लिसोडा' इति लोके""॥ १० ॥

""सहा माषपर्णी, सहदेवा गाङ्गेरुकीति प्रसिद्धा, मूर्वा चोरस्नायुः, प्रियालश्चारः; घृतमण्डो घृतस्योपर्यच्छो भागः सैरेयकेत्यादि सैरेयः कण्टशेलुवाकः, सुषवी पानीयवल्ली""॥ १२-१३ ॥

""अभिष्यन्दि दोषधातुमलस्रोतसां क्लेदप्राप्तिजननम् ॥ १७ ॥

""उरुबूकः शुक्लैरण्डः, स्फूर्जकः फणिज्जकाकारः प्रायशः पारियात्रे भवति अर्जकः कुठेरकः, शङ्खिनी यवतिक्ताभेदः""। ताम्रचूडः कुक्कुटः, कृष्णमत्स्यः कुलीरमत्स्याकारोऽशल्कः""॥ १८ ॥

""सहा माषपर्णी""॥ २२ ॥

""शृङ्गवेररसम् आर्द्रकरसम् । शुक्तं चुक्रम्""॥ २४ ॥

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

...अजगन्धा 'बोवयिका' इति; गयी तु 'अजगन्धा क्षेत्रयवानी' इत्याह। मातुलुङ्गाम्लः बीजपूरकरसः...॥ २८ ॥

अध्यायः ६

...धान्याम्लं काञ्जिकं, शुक्तं चक्रं, फलाम्लो बीजपूररसः....॥ ४ ॥

...वास्तुकः टङ्कवास्तुकः; जीवन्ती डोडिका, अश्वबला हिस्फीत्थो मेथिकाभेदः; चिल्ली क्षेत्रवास्तुकः, चुच्चुः 'चुचु' रिति लोके...॥ ८ ॥

...मुरुङ्गी मधुशिग्रुः....॥ ९ ॥

....कृतवेधनः कोशातकी। जम्बूः भूमिजम्बूः। उत्तमारणी योधामल्ली। अर्कोऽर्कक्षीरम्। अलर्कः मन्दारः...॥ १२ ॥

...सीधुं शस्यकं....। आस्फोता सारिवा। ....कुल्माषा यवौदनाः....॥ १३ ॥

अध्यायः ७

...वसुको बकपुष्पम्। वशिरो मर्कटसंज्ञस्तृणजातिविशेषः, सूर्यावर्तभेद इत्यन्ये। अश्मन्तकोऽम्ललोटः कोविदारसदृशपत्रकः। कपोतवङ्का कटभीसदृशपत्रो विटपी मध्यदेशे प्रसिद्धः। आर्तगलः ककुभकः सुगन्धिमूलः 'कौहा' इति नाम्ना पूर्वदेशे प्रसिद्धः, अन्ये तु आर्तगलः 'कुखक' इत्याहु, बहिःकेशरः कण्टकितफलो विटप इत्यन्ये। कच्चको मध्यलेखानिचितः ऋजुकपत्र ईषद्रक्तमूलः 'कवहक' इति मालवके प्रसिद्धः, अन्ये तु कच्चकस्थाने 'ककुभ' इति पठन्ति; स च प्रसिद्धः। कुब्जः गुञ्जा। वृक्षादनी बन्दाकः। भल्लुकः श्योनाकः। शाकः कर्कशमसृणपृष्टोदरपत्रो वृक्षस्तस्य फलम्। कतकफलमम्बुप्रसादनं शशकशुष्कपुरीषप्रतिमम्...॥ १-७ ॥

...इत्कटः महती खगाली। मोरट इक्षुमूलम्। पत्तूरः शरबालिका। कुरण्टिका शरबालिकाभेदो लोहितपुष्पः। शिलाजं शिलाजतु। इन्दीवरं शरबालिका भेदो दीर्घपत्रो बहुलपुष्पः; जेज्जटस्तु इन्दीवरं नीलोत्पलं; तन्नेच्छति गयी ॥ ९-१३ ॥

...पिचुकः करीरः; तस्य फलं; 'कार्पासफलं' इत्येके। इन्दीवरं कर्णपूराख्यो महापुष्पः शरबालिकाभेदः; अन्ये नीलोत्पलमाहुः, तन्नेच्छति गयी। अङ्कोलोऽङ्कोटः, कतकः प्रागुक्तः शाकोऽपि ॥ १७ ॥

....तालमूलिका मुषली मूषकपुच्छाकारशिफा....॥ १८ ॥

...त्रिकण्टको गोक्षुरकः। अन्ये तु 'मर्कटकस्य बीजानां' इति पठन्ति; तत्रापि स एवार्थः। अनेन योगेन भिद्यते अश्मरी, शर्करा तु शान्तिमुपैति ॥ १९ ॥

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

....यष्टिका यष्टिमधु। ब्राह्मी लवणिका....। एडाख्यया सह शोभाञ्जन-मार्कवौ....। मार्कवो भृङ्गराजः ॥ २४ ॥

अध्यायः ८

...वृक्षादनी बन्दाकः, बृक्षकलम्बिकामपरे। अम्लेन काञ्जिकेन। सौवीरकेण काञ्जिकभेदेन...॥ १२-१६ ॥

आरग्वधः कृतमालकः; निशा हरिद्रा; काला अहिंस्रा...॥ ३० ॥

...कदलीमृगः पूर्वदेशे प्रायशः शबलो दृष्टः, स तु बृहत्तमबिडालसमो व्याघ्राकारो बिलेशयः; लोपाको लाङ्गलकः शृगालभेदः; प्रियकः ललितकोऽजगर प्रायः श्लक्ष्णो दीर्घः...॥ ३७ ॥

....अम्लं काञ्जिकम्, सुरा मद्यभेदः, सौवीरकं काञ्जिकभेदः...॥ ३८ ॥

...ज्योतिष्मती कुङ्कुमर्दनिका, लाङ्गली कलिहारिका, श्मामा त्रिवृद्विशेषः। गोलोमी दूर्वा। तिल्वकः पट्टिकारोध्रः। गिरिकर्णिका श्वेतस्यन्दा। काञ्चनक्षीर्यौ द्वे एकं कङ्कुष्ठम्, अन्या पीतदुग्धा बृहत्पत्री यवतिक्ता..॥३६॥

...नागदन्ती दन्तिनी....॥ ४० ॥

मागधी पिप्पली। समङ्गा अञ्जलिकारिका; वराहक्रान्तेत्यपरे.... ॥ ४३-४६ ॥

....अश्वमारकः करवीरः। स्नुही सेहुण्डः....॥ ४८-४९ ॥

....मलपूः काकोदुम्बरिका। हयमारकः करवीरः। सुधा स्नुही। सुर्वचिका स्वर्जिक्षारः....॥ ५०-५२ ॥

अध्यायः ९

निष्पावो राजशिम्बी....॥ ४ ॥

....उद्दालकः अरण्यकोद्रवः। ....मण्डूकपर्णी ब्राह्मीभेदः। रूपिकापुष्पैः अर्कपुष्पैः....॥ ५ ॥

....मेषशृङ्गी कर्कटशृङ्गी; गयी तु पुत्रञ्जीवकभेदमाह। श्वदंष्ट्रा गोक्षुरकः। शाङ्गेष्टा काकतिक्ता; 'भुंभुरटा' इति लोके; 'गूथकरञ्ज' इत्यपरे। ....ककुभः सुगन्धिमूलो विटपः। पलाशः किंशुकः। पिचुमर्दो निम्बः। समङ्गा स्पर्शरोदनिका; लज्जालुरिति लोके। प्रियालश्चारः। ...तुवरकः पश्चिमसमुद्रभूमिषु प्रसिद्ध एव ॥ ७ ॥

....पिप्पली गजपिप्पली चेत्युपकुल्याद्वयं च बोद्धव्यं, विशाला इन्द्रवारुणी, मूर्वा चोरस्नायुः, षड्ग्रन्था वचा....॥ ८-९ ॥

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

शाको महाखरपत्रः, 'शाखोट' इत्यन्ये; गोजी गोजिह्वा; काकोदुम्बरिका काष्ठोदुम्बरिका। ....आरेवतः किरमालकः। ....ज्योतिष्कः काकमर्दनिका, तस्याः फलम्। ....शिग्रुर्विटपशाकः, शोभाञ्जनमन्ये। करञ्जिका वृक्ष-करञ्जः....॥ १० ॥

....श्रीनिकेतं नवनीतधूपः सरलनिर्यास इति। रात्रिर्हरिद्रा ॥ ११-१२ ॥

...सिन्धूद्भूतं सैन्धवम्। इक्षूद्भूतो गुडः। केशरं बकुलम्। तार्क्ष्यशैलं रसाञ्जनम् ॥ १३ ॥

हेमक्षीरी कङ्कुष्ठम्। व्याधिघातः किरमालकः। सर्जो लघुसर्जः। अजकर्णो महासर्जः; 'गन्धमुण्ड' इत्येके। स्नानेत्यादि....॥ १४ ॥

....उदुम्बरी भद्रनामा काष्ठोदुम्बरिका महती, मलपूः सैवाल्पविटपा... ॥ १५ ॥

...द्वीपी चित्रकायो व्याघ्रः; तस्येदं चर्म द्वैपम्। मातङ्गो हस्ती, तस्मा.. ज्जातं मातङ्गजं चर्म। ....पूतिः कीटः शस्यादौ वर्षाकाले कर्बुरकः 'तेलिनि' इति प्रसिद्धः; पूर्वदेशे 'पुण्डलिका' इति। ....राजवृक्षः आरग्वधः....॥ १६ ॥

....जलगण्डो जलगण्डीरकः; नदीपिप्पलिकेत्यन्ये। 'गजलेण्डजे क्षारे' इत्यन्ये पठन्ति; तच्च न पठनीयं तन्त्रान्तरविरोधात्...॥ २१-२२ ॥

....नदीजं तापीनदीसमुत्थो माक्षिकधातुः; काकाह्वानोदुम्बरी काकसंज्ञो-दुम्बरिका; या च लाक्षा साऽपि तज्जा सान्निध्यात्; तार्क्ष्यशैलं रसाञ्जनं... ॥ २५-२६ ॥

....आलं हरितालम्। सिंहो रक्तशोभाञ्जनः। क्षीरिणी अर्कपुष्पी... ॥ २७-२८ ॥

वायसी काकतिक्ता 'चिरपोटिका' इति लोके, 'काकमाची' इत्यन्ये फल्गुः काकोदुम्बरिका, 'अवल्गुः' इत्यपरे पठन्ति, अवल्गुः बाकुची; तिक्ता कटुका। पारावतपदी ईषल्लोहितो हंसपदीभेदः। केशराह्वयो बकुलः....॥ २९-३३ ॥

...मदयन्तिका नखादिरागजननी 'मेंहदी' इति प्रसिद्धा। वायसी काक-माची। शकृदादीनि गवां ग्राह्याणि। नीलिका नीलाञ्जनिका शारदफला। नीलिनी नीलिका....॥ ३४-३८ ॥

पूतीकः चिरबिल्वः। नरेन्द्रद्रुम आरग्वधः। सुमना जाती ॥ ४० ॥

...अक्षो बिभीतकः। ...पलांशां पलमेव अंशो यस्याः सा तथा तां पलपरिमाणामित्यर्थः। ....त्रीण्यप्येतानि कुष्ठहराणि रसायनान्यपि। ....अक्षपीडो यवतिक्ता...॥ ४४-४६ ॥

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

""सप्ताह्वः सप्तपर्णः । ""त्रिभण्डी त्रिवृत्'''॥ ५० ॥

""मालती जाती । स्नुही सेहुण्डः । आस्फोता सारिवा । विषं प्रसिद्धम् । लाङ्गलशब्देन कलिहारिकोच्यते । वज्राख्यः द्वितीयसेहुण्डः । आलं हरितालम्''' ॥ ५४-६३ ॥

अध्यायः १०

'''धानाः शुष्कभृष्टयवाः, उलुम्बकाः सरसा भृष्टयवाः, कुलमाषा यवपिष्टमया अम्लरसस्विन्नाः शृङ्गाटादयः अपूपाः स्थूलपूपाः पूर्णकोशाः यवपिष्टमया एव कुष्ठहितशमीधान्यस्विन्नविदलादिपूर्णकोष्ठाः, उत्कारिका संयावप्रकारा, शष्कुल्यो यवप्रकारेण संस्कृतैस्तिलैर्यवपिष्टेन शष्कुलीकल्पेन विधेयाः, कुणावी यवपर्पटी"" । चित्रा अपूपविशेषः । वेणुयवा वंशफलानि ॥ ४-५ ॥

'''उत्तमारणी उत्तमकरणी, कोशवती देवदाली""॥ ८॥

""श्यामा वृद्धदारकः, सप्तला यवतिक्ता, शङ्खिनी तद्भेदः, तिल्वक; पटिट्कारोधः""॥ १२ ॥

अध्यायः ११

""अपतर्पणं लङ्घनं, अपतर्पणानि व्यायामशोधनानि तिक्तकटुकादिकानि च ॥ ४ ॥

""तुषोदकं तत्रोक्तमेव काञ्जिकं, शुक्तं, चुक्रं""सुरा पिष्टमयी, द्रवप्रधान आसवः""॥ ५ ॥

उद्दालका अरण्यकोद्रवाः । निकुम्भा दन्ती'''॥ ६ ॥

"""“द्रव्यमापोत्थितं क्वाथ्यं दत्वा षोडशिकं जलम् । पादशेषं च कर्तव्यमेष क्वाथविधिः स्मृतः”""॥ ८ ॥

""पारिजातः पारिभद्रकः । ""वैजयन्ती अरणिका । '''शैवलं शेवालं, प्लवो गोपालदमनकः, हठो जलकुम्भिका । ककुभः सुगन्धिमूलो विटपी । '''मधुनो योगवाहित्वान्मेहहरत्वाच्चः । '''राजवृक्षः किरमालकः । '''कदर आपीतसारः खदिराकारः, क्रमुकः पूगफलम् । मूर्वा चौरस्नायुः; दुःस्पर्शा दुरालभा । """“यदप्सु श्रृतशीतासु षडङ्गादि प्रयुज्यते । कर्षमात्रं ततो द्रव्यं साधयेत् प्रास्थिकेऽम्भसि । अर्धश्रृतं प्रयोक्तव्यं पाने पेयादिसंविधौ—” "" ॥ ९ ॥

""अनन्ता उत्पलसारिवा; पद्मा भार्गी, त्रायन्तिका मदयन्तिका; लोहितिका मञ्जिष्ठा, रामतरुणीत्यन्ये; अम्बष्ठा माचिका, ‘सांकुरड’ इति लोके; '''। तालपर्णी मुषली; तुङ्गः पुन्नागः, केशरं नागकेशरं, श्रीवेष्टको नवनीतधूपः

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

सरलनिर्यासः, मोचरसः शाल्मलीनिर्यासः। ''''शृङ्गाटकं जलमध्ये त्रिकण्टकं; गिलोड्यः कन्दः प्रावृड्जातः शणपत्राकारो वल्लीयुक्तश्चर्मण्वतीनदीभव (वः) श्वेतवर्तुलपाषाण सदृशः 'गुगिलोट' इति लोके; बिसं पद्ममूलं, तस्य स्थूल-प्ररोहो मृणालं, असनो बीजकः, तिनिशः स्यन्दनः, कट्वङ्गोऽरलुकः; चर्मवृक्षः 'चर्मलोह' इति प्रसिद्धो लकुचद्रुमाकारो महावृक्षः; गिरिकर्णिका श्वेतस्यन्दः, शीतशिवः शतपुष्पाभेदः, निचुलो जलवेतसः, अजकर्णः सर्जः पूर्वदेशे प्रसिद्ध एव, हरिवृक्ष इन्द्रवृक्षः, धवाकार इत्येके, 'कुटज' इत्यन्ये पठन्ति, 'हरिद्रावृक्ष' इत्यपरे पठन्ति; राजादनः क्षीरिका, गोपघोण्टा घाटाबदरी, विकङ्कतः कण्ट-किका''''॥ १० ॥

''''नीवार उलिकाधान्यं, तद्द्विविधम्—एकं धान्यसदृशविटपं धान्यक्षेत्रजं, द्वितीयं महादलकाण्डं तत्तु सलिलजं; तत्र सलिलजं सलिलवृद्धिमात्रस्तम्बप्ररोहं रक्तशूकं; तदेव प्रसाधि (रि) केति तन्त्रान्तरे पठ्यते''''॥ १२-१३ ॥

अध्यायः १२

''''शार्ङ्गेष्टा काकतिक्ता 'भुम्भुरुडक' इति लोके। क्षुद्रा लघुकण्टकारिका। ''''सोमवल्कः कट्फलः''''॥ ६ ॥

अध्यायः १३

''''सैन्धवं लवणम्। अञ्जनं स्रोतोञ्जनं; तस्योत्पत्तिस्थानं वर्णसा सिन्धुश्च महानदः; अथवा वर्णसोद्भवाञ्जनपरिहाराय सैन्धवमुक्तं, तेन सिन्धुमहानदोद्-भवमेवाञ्जनं ग्राह्यम्''''॥ ३५ ॥

अध्यायः १४

'''नीवार उलिकाधान्यम् ॥ ४ ॥

'''चित्राफलतैलं दन्तीफलतैलम्'''' ॥ ५ ॥

''''श्यामा वृद्धदारकः। क्षीरसिद्धास्तण्डुलाः पायसः ॥ ६ ॥

''''किण्वं सुराबीजम् ॥ ७ ॥

'''शङ्खिनी यवतिक्ताभेदः। ''''महावृक्षः सेहुण्डः। महावृक्षक्षीरमात्रा कल्कप्रमाणा। '''गुञ्जा चिरिहिण्टिका। काकादनी वायसतिन्दुका'''॥ ८ ॥

''''सरला त्रिवृत् '''मुरङ्गी शोभाञ्जनकः। श्यामा वृद्धदारुकः। ज्योतिष्कः काकमर्दनिका। ''''स्नुही सेहुण्डः, स च बहुकण्टकः श्रेष्ठः। ''''उत्कारिकां लप्सिकाम्। ''''महावृक्षः सेहुण्डः''''॥ १० ॥

'''जीमूतको देवदाली, इक्ष्वाकुः कटुतुम्बी, धामार्गवो महाकोशातकी''' ॥ १२ ॥

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

...इक्षुरकः कोकिलाक्षकः...॥ १३ ॥

अध्यायः १५

....धन्वनो धुनुर्वृक्षो बदरीसदृशपत्रः; नगवृत्तिका 'शल्लकी'...॥ ९-११ ॥

....कृष्णा पिप्पली; तन्मूलं पिप्पलीमूलं; दीप्यकः अजमोदा। ....शाकः कर्कशपत्रवृक्षः, 'सागवन' इति लोके। ....ककुभः सुगन्धिमूलो विटपः...॥ २०-२७ ॥

...कालानुसारिवा कृष्णसारिवा, 'कालानुसारिवा' इत्यत्र केचिदाचार्या अस्मिन् तैले क्षीरशुक्लकं पठन्ति, क्षीरशुक्लकं क्षीरविदारी....॥ २८-३६ ॥

...आदित्यपर्णी सूर्यावर्तः। वीरतरुः स्वनामप्रसिद्धः; अर्जुन इत्येके; कोकिलाक्ष इत्यपरे....॥ ४४ ॥

अध्यायः १६

....मुरङ्गी शोभाञ्जनकः। ....आनूपा महिषादयः, औदकाः कोशस्थादयः; तर्पयतीति तर्पणं.... । वेशवारः संस्कृतमांसविशेषः। कृशरा तिलतण्डुलमाषकृता यवागूः क्षीरसिद्धास्तण्डुलाः पायसः....॥ ४-९ ॥

....क्षीरशुक्ला क्षीरविदारी। समङ्गा मञ्जिष्ठा; वराहक्रान्तेत्यपरे.... ॥ १०-१५ ॥

....सुमना जाती। निचलो वेतसः....॥ १६-२१ ॥

....कुलत्थिका चक्षुष्या....॥ २२-३३ ॥

....सन्धानं मैरेयः; अम्लं काञ्जिकं, सुरा पिष्टमयी; द्रवप्रधान आसवः.... ॥ ३५-३७ ॥

....तिनिः तिनिसः.... ॥ ३९-४३ ॥

अध्यायः १७

....शृङ्गाटकं जलमध्ये त्रिकण्टकम्। गुन्द्रा पहरकभेदः। ....ह्रीवेरः वालकम्। लामज्जक उशीरमूलम्। स्रोतोजं सौवीराञ्जनम्। ...सुगन्धिका उत्पलसारिवा। ....मधूदकं मधुमिश्रमुदकम् ॥ ६-९ ॥

...गौरी हरिद्रा, गोरोचनेत्यन्ये। अरविन्दं पद्मम् अम्बु वालकम्। राजादनं क्षीरिका। ऋषभः कूर्चशीर्षकः स्वनामप्रसिद्धः। मधुनः शर्करा मधुशर्करा। स्थिरा शालपर्णी... ॥ १०-१३ ॥

...अजा अजगन्धा 'बोबई' इति लोके। सरला त्रिवृत्। काला कासमर्दः। एकैषिका शतावरी, अन्ये त्रिवृद्भेदमाहुः। अजशृङ्गी छागलविषाणिका;

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

'उत्तमारणी' इति लोके; गयदासाचार्येण कर्कटश्रृङ्गी व्याख्याता। ....काला-नुसार्या तगरं, चोचः त्वक्, गुञ्जा चिरहिण्टिका, शीतशिवं शतपुष्पाभेदः; इन्द्रपर्णी इन्द्रवारुणी, अत्र गयदासाचार्येण इन्द्रपुष्पी पठिता व्याख्याता च; इन्द्रपुष्पी लाङ्गलकी। पालिन्दिः कालवल्ली, मुञ्जात उत्तरापथजः स्वल्पकन्दः महीकदम्बोऽलम्बुषा मुण्डितिकेति लोके, जेज्टाचार्यो भूकदम्बमाह ॥ १४-१५ ॥

....उत्कारिकाभिः लप्सिकाभिः। नागदन्ती दन्ती। सोमः सोमसंज्ञः; सोमलतेत्यन्ये; कट्फल इति जेज्जटाचार्यः तन्नेच्छति गयी, तस्य तीक्ष्णोऽष्णत्वात् ॥ २०-२१ ॥

....श्यामा वृद्धदारुकः। त्रिभण्डी त्रिवृत्। वृक्षकः कुटजः.... ॥ २२ ॥

...किण्वः सुराबीजम्। ....सुराष्ट्रजा तुवरमृत्तिका। ....निकुम्भो दन्ती। तालीतलं मुशलीमूलं; नलमित्यन्ये पठन्ति; तत्र नलः शुषिरपर्वा स्वनाम प्रसिद्धः। रूपिका श्वेतार्कः। 'नीलीफलरूपिकाभिः' इति केचित् पठन्ति; नीलीफलं शारदं फलं; श्रीफलिकेति लोके ॥ २३-२५ ॥

...कुम्भीकः स्थलकुम्भिका, वनस्पतयो वटाद्याः; ....शलाटूनि कोमलफलानि ग्राह्याणि। सरला त्रिवृत्। सुगन्धिका उत्पलसारिवा। मोचरसः शाल्मली-पुष्पः। अहिपुष्पं नागकेशरम् ॥ २६-२८ ॥

...घोण्टाफलं बदरीफलं; ....अलवण काकमर्दनिका, तस्या इदं पत्रमालव-णम्। ....शङ्खिनी यवतिक्ता। ...वाराहिकन्दो गृष्टिकाकन्दः। ...कोशातकी देवदाली। शुकनासा चर्मकारवटः। मृगभोजिनी इन्द्रवारुणी। ...पिण्डीतकस्त्रि-विधिः कृष्णपुष्पः, श्वेतपुष्पः; पीतपुष्पश्च; तेष्वत्र वराहवर्णपुष्पैर्विभाव्यत इति वरा-हविभावितः कृष्णपुष्पो ग्राह्यः; सुवहा गन्धनाकुली नापिणीति लोके, गोधापदीत्य-परे, कन्दालीत्यन्ये; तस्याः कन्दशकलेषु कन्दखण्डेषु; कृतं संस्कृतम्। ... ते अमर-वरायुधसाह्वया वज्रकन्दास्तेषु। ...मार्कवरसेन भृङ्गराजरसेन ॥ ३४-४१ ॥

अध्यायः १८

...रोहिणी कटुका। अमृता गुडूची। कृष्णगन्धा शोभाञ्जनकः, शमीत्यपरे गोजी गोजिह्विका; शाखोटक इत्यन्ये। तालपत्री मुसली। ...नरेन्द्रः किरमालकः। ...पञ्चाङ्गुल एरण्डः। ...सरला त्रिवृत; केचित् सरलं शालतरुमाहुः.... ॥ ५-७ ॥

...मुचुलुन्दः कण्टकीमदनः, अन्ये मुचुकुन्दमाहुः... ॥ ८-११ ॥

...विकङ्कतवृक्षः कटायिका। आरग्वधः किरमालकः। काकणन्ती गुञ्जा।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

काकादानी वायसतिन्दुका, अहिंस्रेत्यन्ये। तापसवृक्ष इङ्गुदः। पिण्डफला तिक्तालाबुः। काला कटुहिंस्रा''''॥ १२-१३ ॥

'''दार्वी दारुहस्तकः''' ॥ १७-१६ ॥

'''जीमूतको देवदाली। कोशवती कटुकोशातकी। ''''बर्हिष्ठं वालकम्। जीमूतको देवदाली। ''''कैडर्येत्यादि कैडर्यः पर्वतनिम्बः। '''खरमञ्जरिः अपामार्गः'''' ॥ २०-२३ ॥

'''प्रचलाको मयूरः; कृकलासमन्ये प्राहुः''''॥ २८ ॥

''''कर्कारुकं कूष्माण्डं, एर्वारुः ग्रीष्मकर्कटी, प्रियालश्चारः; पञ्चाङ्गुल एरण्डः''''॥ २६-३१ ॥

''''गोजी दार्वीपत्रिका, शाखोटक इत्यन्ये। '''सोमः सोमलता, कट्फलमित्यपरे। '''श्यामा त्रिवृत्, गिरिह्वा श्वेतस्यन्दः; अञ्जनकी नीलाञ्जनिका शारदं फलं, श्रीफलकेति लोके। सप्तलिका यवतिक्ता''''॥ ३२-३४ ॥

''''कांस्यनीलः कांस्यमसी। शुकः ग्रन्थिपर्णः; लाङ्गलाख्या कलिकारिका। काकादनी वायसतिन्दुका'''॥ ३५-३६ ॥

'''निष्पावः शिम्बः। '''आस्फोता सारिवा''''॥ ३७-४० ॥

''''पतङ्गो रक्तकाष्ठम्। आलं हरितालम्''''॥ ४१-४२ ॥

''''काला हिंस्रा; गजादिनामा हस्तिपिप्पली, करहाटं मदनफलम्। एकैषिका अम्बष्ठा, त्रिवृदित्येके; वृक्षकः कुटजः'''॥ ४३-४७ ॥

'''अजगन्धा बोवयिका, विशल्या अग्निशिखवृक्षः; विषाणिका आवर्तनिका, शुकाह्वयः चर्मकारवटः'''॥ ४८-५० ॥

'''श्यामा त्रिवृत्, सुधा सेहुण्डः; लोहपुरीषं लोहमलम्; अन्ये तु लोहमगरं वदन्ति, तथा पुरीषं कपोतपारावतविट्''''॥ ५२-५५ ॥

अध्यायः १६

''''सरला त्रिवृत्। ''''निचुलो वेतसः''''॥ २८-२६ ॥

'''अञ्जनं रसाञ्जनम्। मृणालं पद्मनालम्''''॥ ३०-३२ ॥

शालः शङ्कुः, अश्वकर्णः पूर्वदेशप्रसिद्धोऽश्वत्थसदृशः, अजकर्णः 'पियासाल्' इति लोके। पत्तूरः सिरिवालिका॥ ३३-३५ ॥

''''वैजयन्ती अग्निमन्थवृक्षः ॥ ३६-३६ ॥

सौराष्ट्री तुवरमृत्तिका। पुष्पं पुष्पाञ्जनम् ॥ ४०-४१ ॥

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

"'श्वेतः श्वेतस्यन्दः; काम्बोजिका कूविका; गयी तु माषपर्णीमाह। तिनिशः स्यन्दनः। क्षीरिणो वटादयः। '''गोजी गोजिह्वा''''।। ४२-४४ ।।

''''एलुकाख्यम् एलवालुकम्। '''कण्टकिकरञ्जः पूतीकरञ्जः, चिरबिल्व इत्यन्ये। '''पाकिमं लवणं विडलवणम्''''।। ५६-६२ ।।

''''काकादनी कालाहिंस्त्रेत्यर्थः। '''कदम्बपुष्पी अलम्बुषा मुण्डतिकेति लोके प्रसिद्धा। मन्दारी आली, लम्बा कटुकालाबुः। शुकनसा चर्मकारवटः'''
।। ६३-६६ ।।

''''द्रवन्ती शम्बरी। त्रिवृता त्रिवृत्। दन्ती दन्तिनी। नीली शारदं फलं श्रीफलिकेति लोके। श्यामा वृद्धदारुकः। शङ्खिनी यवतिक्ताभेदः''''
।। ६८-६९ ।।

अध्याय २०

''''शुक्तिः जलशुक्तिः। श्रुघ्नी स्वर्जिका''''।। १-४ ।।

'''सारतैलेन शिंशपागुरुसरलदेवदार्वादितैलेन''''।। १७-१८ ।।

''''शिला मनःशिला''''।। २१-२२ ।।

''''कुटन्नटः तगरः। '''दुःसाध्योऽयं व्याधिर्न शक्यते रसायमन्तरेणापनेतुं; रसायनमष्टादश दिव्यौषधयः सोमश्चौषधराजा''''।। २४-२६ ।।

'''मार्कवो भृङ्गराजः'''।। २७-२८ ।।

अध्यायः २१

'''अश्वकर्णः पूर्वदेशे 'गन्धमुण्ड' इति ख्यातोऽश्वत्थसदृशः। पतङ्गं रक्तचन्दनम्।। १०-१२ ।।

अध्यायः २२

''''श्रीवेष्टकः सरलनिर्यासः'''' ।। १-६ ।।

''''पत्तङ्गं रक्तचन्दनं'''' ।। १४-१८ ।।

''''काकोदुम्बरिका काष्ठोदुम्बरिका, गोजी गोजिह्वा। निचुलो वेतसः ''''।। १९-२३ ।।

''''तेजोवती काकमर्दनिका'''' ।। २४-२५ ।।

''''स्वादुकण्टको गोक्षुरः, कण्टकारिवृक्षमन्ये ।। २६-३३ ।।

''''सन्तानिका 'सर' इति भाषा; क्षीरसान्निध्यात् सन्तानिकाघृते क्षीरोत्थ एव'''' ।। ३४-४० ।।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

""कुटन्नटः श्योनाकः । किणिही कटभी, सरला त्रिवृत्"" ॥ ४९-५८ ॥

""पतङ्गं रक्तचन्दनम् । श्वेता श्वेतस्यन्दा"" ॥ ५९-६६ ॥

""शालः शङ्कुः, राजादनः क्षीरिका, सारः सारवृक्षः खदिरादिः । ध्यामं गन्धतृणं, कालानुसारिवा कालवल्ली । श्रीः नवनीतखोटिः सरलनिर्यासः, सर्जरसः राला ।"'टिण्टुकः श्योनाकः"" ॥ ६७-७५ ॥

अध्यायः २३

""हरितकः कुठेरशिग्रुसुरसासुमुखासुरिभूतृणादिः""॥ ४ ॥

"'अम्लं काञ्जिकम्"' ॥ १०-११ ॥

"'वर्षाभूः रक्तपुनर्नवा ।"'मयूरकः अपामार्गः । सहा माषपर्णी, मुरङ्गी शोभाञ्जनकः । क्षारो यवक्षारः । "'वृक्षकः कुटजः नक्तमालः महाकरञ्जः । ""सुवर्चला सूर्यावर्तः । शाङ्गेंष्टा काकजङ्घा""॥ १२ ॥

अध्यायः २४

""भिल्लोटको हि पर्वते केदारभूमौ प्रसिद्धः । गयी तु भिल्लोटककषायमन्त-र्मुखप्रक्षालनमाह""॥ १५-१६ ॥

""जातीशब्देन जातीफलं कथ्यते ॥ २१-२४ ।

केशप्रसाधनी कङ्कतिका 'काकुइ' इति लोके""॥ २९ ॥

""वृष्यं शुक्रवृद्धिकरं, प्रभावात् ॥ ६९ ॥

""सरीसृपाः कृष्णसर्पादयः । व्याला व्याघ्रादयः । विषाणिभ्यः शृङ्गिभ्यः "" ॥ ७६-७७ ॥

अध्यायः २५

""खरमञ्जरिः अपामार्गः । अवल्गुजा बाकुचिका ।""तालपत्री मुशली । ""कुलीरः कर्कटः, गोधा 'गोसाप्' इति भाषा । सरला धूपकाष्ठः"" ॥ १३-२७ ॥

""तीली नीलाञ्जनिका शारदफला, 'श्रीफली' इति लोके । भृङ्गराजो मार्कवः । पिण्डीतकं कृष्णं कृष्णपुष्पो मदनः"" ॥ २८-३१ ॥

""सैरीयकः कण्टसेलीयाकः,""मार्कवो भृङ्गराजः । चूत आम्रः । पुनर्नवे द्वे शुक्ललोहिते । कर्दमः पद्मिनी मूलपङ्कः । पिण्डीतको मदनकः, तस्य यत्फलं पाण्डुरवर्णं भवति तदिह ग्राह्यम् । बीजसारं असनसारम् । अञ्जनं नीलवर्णं रसाञ्जनं, अन्ये स्रोतोऽञ्जनमाहुः । नीरजं नीलोत्पलम् ।""मोदयन्ती मल्लिकेति लोके ख्याता"" ॥ ३२-३७ ॥

"'अरिष्टपत्रं निम्बपत्रं, फेनिलवृक्षपत्रं वा ।""मदयन्तिका 'मेंदी' इति लोके यस्याः पिष्टैः पत्रैर्नखानां रागं स्त्रिय उत्पादयन्ति"'॥ ४३ ॥

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

अध्यायः २६

…तथाऽन्यत्रापि 'वाजीवातिबलो येन यात्यप्रतिहतः स्त्रियः' इत्यादि-लक्षणं वाजीकरणम्। तत् त्रिविधम् — जनकं, प्रवर्तकं, जनकप्रवर्तकं चेति। तत्र जनकं मांसघृतादिकं, यतस्तद्रसादिधातुक्रमेण परिणतं सत् प्रधानधातुपुष्टिं करोति; प्रवर्तकमुच्चटाचूर्णादिकं शुक्रवैरेचनिकं, न च तस्य वैरेचनिकोक्त्या शुक्र-क्षयकारित्वं स्यात्, अतो विरेचनं शुक्रस्य पतनायाभिमुखीभावमात्रकरणं; जनकप्रवर्तकं तु गव्यघृतगोधूममाषकाकाण्डफलादिकम्। केवलं देहबलकरं जनकं गोधूमादिकं, केवलमनोबलकरं सङ्कल्पादि तु प्रवर्तकं, घृतक्षीरादि देहमनो-बलकरं सदुभयकरमिति। वृष्यादिद्रव्याणां सद्यः शुक्रादिकरणे प्रभावोऽयम्। तथा च श्रीवाग्भटः— "केचिदाहुरहोरात्रात् षडहादपरे, परे। मासात् प्रयाति शुक्रत्वमन्नं पाकक्रमादिति॥ वृष्यादीनि प्रभावेण सद्यः शुक्रादि कुर्वते। प्रायः करोत्यहोरात्रात् कर्मान्यदपि भेषजम्…" (वा० शा० अ० ३) ॥ ६-८॥

…परिभाषामा—"द्रव्यादष्टगुणं क्षीरं क्षीरात्तोय चतुर्गुणम्। क्षीरावशिष्टं कर्तव्यं क्षीरपाके त्वयं विधिः" — इति…॥ १८-१९॥

…बस्ताण्डे अजमुष्कौ। शिशुमारस्य 'अण्डे' इति शेषः। कुलीरः कर्कटकः, 'गृहचटक' इत्यन्ये, 'कुलीरो मत्स्यविशेष' इत्यपरे। कूर्मः कच्छपः। नक्रो मत्स्यभेदः; 'घडियाल' इति लोके। अण्डमत्र प्राणाधारो वर्तुलः नतु मुष्कः। ऋषभो वृषभः। बस्तः छागः। तेषां शुक्राणि गुरूपदेशात् तदाधार-भूतान्येवाण्डानि॥ २५-२६॥

…स्वयंगुप्ता कपिकच्छूः। इक्षुरकः कोकिलाक्षः 'तालमखाना' इति लोके। उच्चटा शणघण्टाकारः स्वल्पविटपः प्रायशो हिमवति सरयूनदीतीरे दृश्यते… ॥ २७-३६॥

अध्यायः २७

…अजकर्णो महासर्जः, 'गन्धमुण्ड' इति लोके। …चन्दनं रक्तचन्दनं, सितचन्दनमित्यपरे…॥ ८-१०॥

अध्यायः २८

…अवल्गुजा बाकुची, साऽपि श्वेता गृह्यते। कृष्णाया बाकुच्याः, तेन कृष्णावल्गुजफलानां पिण्डं गोमूत्रेण पाययेत्। 'कृष्णायाः पिप्पल्या' इति जेज्जटः, तन्नेच्छति गयी। …ब्रह्मवर्चसी तेजस्वीत्यर्थः…॥ ३-४॥

…पुष्करं पद्मवराटकम्…॥ ५-६॥

हैमवत्या वचायाः श्वेतवचाया इत्यर्थः…॥ ७-८॥

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

"'गोचन्दना प्रियङ्गुः। मोहनिका पुत्रञ्जीवी; 'अवाक्पुष्पी' इति अपरे''''॥ २०-२६ ॥

अध्यायः २९

''''वल्ली लता; प्रतानं दूर्वाशैवलकमूलानामिव विस्तारः; क्षुपको विटपः '''॥ १०-१२ ॥

''''हठः जलकुम्भिका'''॥ २७-३१ ॥

अध्यायः ३०

''''तिल्वको रोध्राकारो बृहत्पत्रो रक्तत्वग्वैरेचनिकः; सप्तला यवतिक्ताभेदः; शङ्खिन्यपि तद्भेदः, विषाणिका मेषशृङ्गी, गवाक्षी इन्द्रवारुणी; कम्पिल्लको रेचनिका स्वनामख्यातः, शम्पाकः किरमालकः, नीलिनीं नीलाञ्जनिका शारदं फलम्। जीमूतो देवदाली, कृतवेधनः कोशातकी, इक्ष्वाकुः कटुतुम्बी, धामार्गवो महाकोशातकी। ''''खरमञ्जरी अपामार्गः, मधुशिग्रुः शोभाञ्जनकः, सूर्यवल्ली पटोलसदृश वल्ली, ज्योतिष्मती काकमर्दनिकाः''' । पूतीकः चिरबिल्वः, कृतमालः किरमालः। तुरवकः पश्चिमसमुद्रभूमिषु पलाशानुकारी वृक्षः। ''''त्रपुसः सुधावासः, त्रपुसीति लोके, एर्वारुर्लोमशा फर्कटी, कर्कारुः वाडवं त्रपुसं 'खेरसा' इति लोके। ''''कपोतवङ्का ब्रह्मसुवर्चला, अवल्गुजो बाकुचीः; ''''। पिचुमर्दो निम्बः; अतिमुक्तकः अवन्तकः, भाण्डी 'भाण्डनी' इति लोके प्रसिद्धो विटपो भाण्डधावनार्थमासुतीवलाः समाहरन्ति। प्रियालः चारः। पिण्डीतको मदनः। श्रवणः तापसवृक्षः 'इङ्गुदी' इति लोके, कङ्गुकं प्रियङ्गुः, टुण्टुकः स्योनाकः। पीतदारु देवदारु'''' ॥ ५ ॥

'''स्नेहाश्चत्वारः सर्पिस्तैलवसामज्जानः। दधिमस्तुको दधिसरः। '''प्रक्षुद्रा क्षुद्रावगाढाः क्षुद्रं फणितं 'काकवी' इति लोके'''॥ ३८-४४ ॥

अध्यायः ३२

''''कृशरा तिलतण्डुलमाषैः कृता यवागूः, क्षीरसिद्धास्तण्डुलाः पायसः, उत्कारिका लप्सिका वेशवारः 'चटनी' इति भाषा'''॥ १२ ॥

अध्यायः ३३

''''फलाम्लं बीजपूरादि''''॥ २० ॥

'''सरस्य भावः सरत्वमानुलोम्यं, गयी तु विसरणस्वभावत्वं सरत्वमाह; सूक्ष्मस्य भावः सौक्ष्म्यं सूक्ष्मस्रोतोऽनुसारित्वं; तीक्ष्णस्य भावस्तैक्ष्ण्यं शीघ्रतरदोषस्रावणकरत्वम्; उष्णस्य भाव औष्ण्यं, सौम्यद्रव्योपमर्दनकरणसामर्थ्यं; विकाशिनो भावः विकाशित्वं, विकाशिभावेन धातोः शैथिल्यकरणसामर्थ्यम्।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

अत्र प्रकृतिः, स्वभावः, शक्तिविशेषः, प्रभावो, वीर्यमित्यनर्थान्तरम् । तेन प्रकृत्या वीर्येणान्यथागतमूर्ध्वंगतं, सत्यपि सरत्वादिविरेचनगुणसाम्ये वमनस्योर्ध्वंगामित्वं प्रभावविभावितं, कुतः ? यत उच्यते—"कटुकः कटुकः पाके चित्रको वह्निदीपनः । तद्वद्दन्ती प्रभावात्तु विरेचयति सा नरम्"; तथाच—"विषं विषघ्नमुद्दिष्टं प्रभावस्तत्र कारणम्"—इति; तथा—"ऊर्ध्वानुलोमिकं यच्च तत्प्रभावप्रभावितम्" (च० सू० अ० २६) इति । एतेनैतदुक्तं भवति—सरत्वादिभिर्गुणैर्विरेचनमधो दोषानपहरेत्; वमनस्य तुल्यगुणत्वेऽपि वीर्येणोर्ध्वगामित्वम् । पञ्जिकाकारेण 'प्रकृत्या गतमन्यथा' इत्यत्र 'सम्यग्युक्त्याऽतथाऽन्यथा' इति पठित्वैवं व्याख्यातं—सम्यग्युक्त्या सरत्वादिगुणैर्विरेचनमाधोभागेन, वमनमूर्ध्वभागेन दोषानपहरेत्; अतथाऽन्यथेति नञत्र वैपरीत्ये: अतथा असम्यग्युक्त्या विरेचनं च वमनं चान्यथा दोषविपरीतान् गुणान् हरेदिति । केचित्तु 'सम्यग्युक्तं वृथाऽन्यथा' इति पठन्ति । अयमर्थो युक्तः किल; सरत्वादयो गुणाः सुयुक्ता आशुतरदोषहराः तथैव चान्यायोपयुक्ता एव जीवशोषितधातुरसेन्द्रियमनओजःप्रभृतीनाक्रुष्य मारयन्तीति ॥ ३३ ॥

कीदृशं सत् पुनर्विरेचनं वमनद्रव्यं च दोषानादाय अध ऊर्ध्वं च यातीत्याह—यात्यधो दोषमित्यादि । विरेचनद्रव्याणि स्थिरगुर्व्योः पृथिव्यम्भसोर्गुणभूयिष्ठानि, अत एव स्थिरत्वात् पच्यमानानि गुरुत्वादधो यान्ति; वमनद्रव्याणि तु वाय्वग्न्योः शीघ्रगलघुगुणयोर्गुणभूयिष्ठानि, अतः शीघ्रगत्वादपक्वान्येव लघुत्वादूर्ध्वमुत्तिष्ठन्ति । द्रव्याणि हि द्रव्यप्रभावात् गुणप्रभावाच्च कार्मुकाणि भवन्ति ॥ ३४ ॥

अध्यायः ३७

""यत्र शट्यादौ पौष्करं कुष्ठं च यत्पठ्यते तत्र पौष्करं मूलं, तद्विटपशाखाश्च कुष्ठमिति ज्ञेयम् । अमरदारुः देवदारुः सिन्धुजं सैन्धवम् । नराधिपः कृतमालकः । सरतीति सरला त्रिवृत्, विरेचनीयत्वात् । श्यामा वृद्धदारुकः""
॥ ७-१४ ॥

आमिषं गुग्गुलुः । सुरद्रुमो देवदारुः । तस्करः चोरकः ॥ १५-१८ ॥

""गुडूची हरीतकी चेति अमृताद्वयम् । सहचरः सैरीयः, वरी शतावरी, विश्वा शुण्ठी; काकनासा वायसपल्ला ॥ १९-२६ ॥

श्यामा प्रियङ्गुः । जीमूतो मुस्तकः""॥ २७-२९ ॥

रक्ता मञ्जिष्ठा, गुन्द्रा पट्टोरकभेदः । तृणमूलं कुशकाशादितृणपञ्चमूलम् ॥ ३०-३२ ॥

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

इन्द्रसुरा इन्द्रवारुणी। शाङ्र्गेष्टा भुम्भुरुट्टाको वेष्टितफलः काकमाच्यनुकारः। कट्वी कटुका।···श्यामा वृद्धदारुकः। निचुलो जलवेतसः। रेणुः पर्पटकः·····॥ ३३-४२ ॥

औरभ्रो मेषस्य, शौकरो वन्यशूकरस्य, आजः छागस्य···॥ १०७॥

···फलं मदनफलम्। ···शुक्तं चुक्रम्·····॥ ११७-१२२ ॥

अध्यायः ३८

····फलं त्रिफला। सरलो वृक्षविशेषः। ···शक्रजा यवा इन्द्रयवाः। मधूलिका तृणविशेषः 'मर्कटिका' इति लोके ॥ २४-२८ ॥

···शम्पाकः किरमालकः। निशाच्छदः शटी। ····अम्भोदः मुस्ता···· ॥ ४३-४६ ॥

···अब्दो मुस्ता, उत्पलं नीलोत्पलम्, रेणुः पर्पटकः। आत्मगुप्ता कपिकच्छूकः श्यामा प्रियङ्गुः। फलं मदनफलम्···॥ ५१-५४ ॥

····अनन्ता उत्पलसारिवा। ····अभीरुः शतावरी····॥ ५५-५६ ॥

····भद्रा कट्फलं · ॥ ६०-६३ ॥

····इन्द्राह्वः कुटजः···· ॥ ६४-६६ ॥

····निशाच्छदः शटी षड्ग्रन्था वचा····॥ ६७-७० ॥

····चटका ग्रामचटकाः तेषामण्डानि, उच्चटा घुर्घुराख्यः शणघण्टकारफलोऽल्पो विटपः सरयूपकण्ठे हिमवति वारेन्द्रयां च प्रायश उपलभ्यते···॥ ८४ ॥

····ऐरावती नागबला, शेलुः श्लेष्मातकः, धन्वनो धनुर्वृक्षः यस्य 'धामन' इति लोके प्रसिद्धिः····॥ ८५-८६ ॥

अध्यायः ४०

···अभिष्यन्दि उपलेपकारि····॥ ३१ ॥

कल्पस्थानं

अध्यायः १

····जीवजीवकः पक्षिविशेषः, 'क्रुरिच' इति लोके।····भृङ्गराजो भ्रमरको धूम्याट-सदृशः पक्षिराज इति लोके···· । पृषतः चित्रबिन्दुः, 'चित्तल' इति लोके ····॥ २८-३३ ॥

····नलदं मांसी, लामज्जं उशीरभेदः····॥ ३४-३६ ॥

····श्यामा श्यामालता, प्रियङ्गुरित्यपरे; इन्द्रा इन्द्रवारुणी; गोपा सुगन्धमूला सारिवा; 'इन्द्रगोप' इत्यन्ये पठन्ति, तत्रेन्द्रगोपः कीटविशेषः; सोमा गुडूची, सोमलतेत्यन्ये: उत्पलं नीलोत्पलम् ॥ ३७ ॥

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

""अलाबुः तिक्तालाबुः; कोशातकी घोषकः घुसेण्डिकेति लोके। उदश्विव् तक्रम् ॥ ४०-४१ ॥

""नीलिनीफलं नीलाञ्जनिकाफलं, यस्य श्रीफलेति लोके प्रसिद्धिः"" ॥ ४२-४३ ॥

""शिरीषमाषकाः शिरीषबीजानि ॥ ४८-५० ॥

"'वेणुपत्रिका वंशपत्राणि; अन्ये वेणुपत्रिकां वंशसदृशपत्रिकां द्रव्यान्तरमाहुः। सोमवल्ली गुडूची। अमृता अमृतासङ्गः खर्परिकातुत्थकं, उत्तरपदलोपात्। श्वेता श्वेतस्यन्दः। कालीयकं दारुहरिद्रा""॥ ५१-५४ ॥

""ऋष्यो नीलाण्डः 'रोरु' इति प्रसिद्धः। कालखण्डलग्ननलिकामध्यगतजलं पित्तम्। श्यामा प्रियङ्गुः; पालिन्दी त्रिवृत्, मूषिकपर्णी द्रवन्ती, द्रव्यान्तरमित्यन्ये""॥ ५६-५८ ॥

""पयस्या अर्कपुष्पी। फञ्जी भार्गी। बन्धुजीवो मध्याह्नपुष्पकः''' ॥ ६०-६१ ॥

'''सश्वेतं वचासहितं; गयी तु श्वेतां कटभीमाह। समदयन्तिकं मल्लिकासहितम्''' ॥ ६३-६४ ॥

""बहुपत्रा मयूरशिखा। सोमवल्कः कट्फलः''' ॥ ६७-६८ ॥

""मुष्ककः कालमुष्ककः। अजकर्णः सर्जः पूर्वदेशे प्रसिद्धः। फेनः समुद्रफेनः। गोपित्तं गोरोचना''' ॥ ६९-७१ ॥

अध्यायः २

""तीक्ष्णं राजिकामरिचादिवत्। सूक्ष्मं सूक्ष्ममार्गानुप्रवेशि। आशु शीघ्रं प्रहणनकारि। व्यवायि सकलं देहं व्याप्य पश्चात् पाकंयाति। विकाशि प्रसर्पदपसर्पद्धातुबन्धशैथिल्यकारि। विशदम् अपिच्छिलम्। लघु लघुगुणयुक्तम्।"" विकाशित्वादिति हिंसनशोलत्वात्"" ॥ १९-२३ ॥

""कोशातकी घोषकः; अग्निकः अजमोदः 'मोटर' इत्यन्ये; सूर्यवल्ली पटोलसदृशपत्रा, यस्याः पत्ररसेनोक्तं मासं स्विन्नमिव भवति; अन्ये सूर्यावर्तमाहुः किणिही कटभी, शैलुः श्लेष्मातकः, गिर्याह्वा श्वेतस्यन्दः, पुनर्नवे सितपीतपुष्पे ''' ॥ ४४-४६ ॥

'''पुन्नागः तुङ्गः पूर्वदेशे प्रसिद्धः; एलबालुकं स्वनामप्रसिद्धं; नागपुष्पं नागकेशरं; ध्यामकं कत्तृणं; स्थिरा शालपर्णी"" ॥ ४७-४९ ॥

'''ध्यामकं कत्तृणं; शावरो रोध्रः; परिपेलवं वन्यकः, कैवर्तमुस्तकमन्ये; तोयं बालकं; सुवर्णगैरिका दक्षिणापथे प्रसिद्धम्''' ॥ ५०-५२ ॥

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

अध्यायः ३

""मकरो जलजन्तुरित्येके, अन्ये आग्नेयकीटपठितं मकराकारत्वेन मकरं, कर्कटवृश्चिकं मकरमन्ये। "गोधा पञ्चनखी पवित्रा सौम्यकीटपडिता; कृष्ण-शब्दस्य लोपात् कृष्णगोधां विदुरन्ये। प्रचलाकं सौम्यकीटपठितं कीटविशेषमाहुः। गृहगोधिका कोष्ठागारी कोष्ठगृहकारिका"" ॥ ५ ॥

""अश्वकर्णः पूर्वदेशे प्रसिद्धो गन्धमुण्डः अश्वत्थसदृशः; असनो बीजकः; पारिभद्रः फलभद्रो रक्तकुसुमः कण्टकी रोहिणीसदृशपत्त्रः पूर्वदेशे प्रसिद्धः राजद्रुमः किरमालकः, सोमवल्कः कट्वलः"" ॥ ६ ॥

""तारो रूप्यं, सुतारः पारदः; सुरेन्द्रं सुवर्णं, कुटजमन्ये; गोपा सारिवा; कुरुविन्दो मुस्ता, निशातपाषाण इत्यन्ये, उत्तमलोहितरत्नं कुरुविन्द इत्येके ॥ १३-१५ ॥

""भोगिनः सर्पाः ॥ २८-२६ ॥

अध्यायः ४

""दर्वीकराः फणावन्तः, मण्डलिनः फणावर्जिता विविधमण्डलैश्चित्रिताः, राजिमन्तो रेखायुक्ताः फणावर्जिता ईषद्विषा गमालादयः। ""वैकरञ्जाः सङ्-कीर्णजाताः; पृथग्जातीयसर्पिणो पृथग्जातीयसर्पाभ्यां जाता वैकरञ्जाः"" ॥ ६-१२ ॥

""सुपर्णो गरुडः"" ॥ २०-२१ ॥

अध्यायः ५

"एतेन मन्त्रतन्त्राभ्यां तु विष्प्रतीकारः"" ॥ ८ ॥

"कोविदारः काञ्चनारः। कटभी श्वेतस्यन्दः"" ॥ १७ ॥

""सौवीरकं काञ्जिकम्"" ॥ १८-१६ ॥

""विशल्या काष्टपाटला, रक्ता मञ्जिष्ठा; नरेन्द्रः किरमालकः"" ॥ ६१-६२ ॥

""ध्यामकं कत्तृणं, कुटन्नटः श्योनाकः; सितसिन्धुवारः श्वेतनिर्गुण्डी ॥ ६५-६७ ॥

""मुरङ्गी शोभाञ्जनकः, रक्ता लता मञ्जिष्ठा, सुगन्धिका सर्पगन्धिका; किणिही कटभी, मृगादनी कर्कटिका, इन्द्रवारुणीफलमित्यन्ये, पुरः गुग्गुलुः, पालिन्दी त्रिवृत्, कालवल्लीत्यपरे; क्रमुकं पूगफलं, रुबूकमित्यन्ये पठन्ति स चैरण्डः, सुरस्याः प्रसूनं तुलसीपुष्पं, शिखी मयूरः, कुक्कुट इत्यन्ये, "पृषतः चित्तलः"" ॥ ६८-७२ ॥

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

""पृथ्विका एला, हिङ्गुपत्रिकेत्यन्ये"" ॥ ७३-७४ ॥

...श्लेष्मातकी बहुवारः इति लोके, कट्फलं काश्मरी, मातुलुङ्गो बीजपूरकः, श्वेता गिरिह्वा श्वेतस्यन्दा, किणिही नीलस्यन्दा, सिता शर्करा"" ॥ ७५ ॥

""सुगन्धा सर्पसुगन्धा नाकुलीति यावत्, नगवृत्तिका शल्लकी, श्वेता श्वेतस्यन्दः... ॥ ७६-७७ ॥

""लवणद्वयं सैन्धवं सौवर्चलं च। मालती जाती, नागपुष्पं नागकेशरं"" ॥ ८२-८३ ॥

...सोमराजी वाकुची, सिन्धुवारः श्वेतपुष्पा निर्गुण्डी, चोरको ग्रन्थिपर्णानुकारी, सर्पगन्धा नाकुली सप्तला यवतिक्ताभेदः, श्यामा श्यामलता, प्रियङ्गुरित्यन्ये, अम्बष्ठा पाठा, अश्मन्तको वृक्षोऽम्लोटकानुसारी, भूमिः कृष्णमृत्तिका, कुरवकः स्निग्धपत्रः सितकुसुमः स्वनामप्रसिद्धः... ॥ ८४-८६ ॥

अध्यायः ६

..तिनिशः स्यन्दनः, पलाशः किंशुकः, पिचुमर्दो निम्बः, पारिभद्रको रक्तसुकुमः कण्टकी फलभद्राख्यः..., ककुभः सुगन्धमूलो विटपविशेषः, सर्जकः स्वनामप्रसिद्धो वृक्षविशेषः, कपीतनो गर्दभाण्डः, श्लेष्मातको बहुवारः। प्रग्रहः किरमालकः, महावृक्षः सेहुण्डः, अरुष्करो भल्लातकः, मधुकं यष्टीमधु, मधुशिग्रुः शाकविपटः, रक्तशोभाञ्जनक इत्यपरे, शाको महापत्रः 'श्रीपर्णं' इति लोके, गोजी गोजिह्वा, इक्षुरकः कोकिलाक्षकः, गोपघोण्टा कर्कोटी, अरिमेदो रामकः""। मूलं पिप्पलीमूलं, वराङ्गं वनवासिकात्वक्, चोचं द्वितीया स्थूला त्वक् यां शाल्मलकमित्याचक्षते, करञ्जिका नक्तमालः; अनन्ता उत्पलसारिवा, सोमः सोमवल्कः कट्फलाख्यः, बाह्लीकं कुङ्कुमं, गुहा शालपर्णी; प्लक्षः पर्कटी, निचुलको जलवेतसः वक्रं तगरं; आलं हरितालं; वर्धमान एरण्डः; पुत्रश्रेणी द्रवन्ती, टुण्टुकः श्योनाकः, एलवालुकः स्वनामप्रसिद्धः; नागदन्ती इन्द्रवारुणीभेदः... ॥ ३-७ ॥

""तिलपर्णिकं 'हुलहुल' इति लोके; गयी तु तैलपर्णिकः सरलरसः नवनीतखोटिरिति प्रसिद्धः; नलदं उशीरभेदः लामज्जकं, भद्रश्रियं श्वेतचन्दनं, यवफला दुग्धिका, नीली नीलाञ्जनिका शारदं फलं, सुगन्धिका सर्पसुगन्धा; कालेयकं पीतचन्दनं, जटा द्वितीया मांसी, पुन्नागः स्वनामप्रसिद्धः, एला स्थूलैला।""ध्यामकं कत्तृणं, तोयं बालकं, हरेणुः रेणुका; क्षुद्रैला सूक्ष्मैला, कुटन्नटः वन्यकः, 'फञ्जीमदनक' इति लोके; 'शिलापुष्पं शिला मनःशिला; पुष्पं पुष्पकासीसं; कालानुसारिवा तगरभेदः काश्मरी श्रीपर्णी, शीतशिवं कर्पूरं, शमीत्यपरे, सोम-

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

राजी बाकुची, पृथ्विका श्यामवर्णः स्थूलजीरकः, हिङ्गुपत्रिकेत्यपरे; श्वेते इति कटभीद्वयं, श्वेतामिति केचित् पठन्ति तत्र श्वेता वचा, स्थौणेयं ग्रन्थिपर्णकं''''', तृणशून्याः केतक्याः, मल्लिकाया इत्यपरे''''; सिन्धुवारो निर्गुण्डीभेदः; अश्वकर्णः सर्जभेदः, तिनिशःस्यन्दनः, बिम्बी कुन्दुरिका; सर्पाक्षी रक्तपुष्पा पूर्वदेशे प्रसिद्धा; गन्धनाकुली सुगन्धमूला रास्ना, शिलापुष्पमित्यत्र तिलपुष्पमिति केचित् पठन्ति तच्च प्रसिद्धं''''अष्टौ लवणानीति जेज्जटाचार्यः, तन्नेच्छति गयी'''' ॥ १४-२७ ॥

अध्यायः ७

''''जालिनी कोशातकी, ऋषभी कपिकच्छुः, बृहत्यश्चेति चकारेण क्षारमित्यत्रापि सम्बन्धनीयम्''''॥ १५ ॥

''''सहे मुद्गपर्णीमाषपर्ण्यौ'''॥ १८-२० ॥

''''भद्रकाष्ठं देवदारु, जटा जटामांसी'''॥ २२ ॥

''''श्वेतां श्वेतस्यनन्दां'''॥ २३-२४ ॥

''''अंशुमती शालपर्णी, गोजी गोजिह्वा, अमृता गुडूची; वक्रं तगरं, सर्पगन्धा सर्पच्छत्रिका । समृत्तिकाः सक्ष्णमृत्तिकाः, 'अहिमृत्तिका' इति केचित् पठन्ति, अत्राहिमृत्तिका वल्मीकमृत्तिकाः 'अववृत्तिका' इति जेज्जटाचार्यः पठति; तत्रागवृत्तिका शल्लकी । ''''काकादनी कृष्णश्रीफलिका'''॥ २५-३१ ॥

'''शुक्राख्यः चर्मकारवटः''''॥ ३४ ॥

''''कट्वी कटुरोहिणी''''॥ ३८-४० ॥

''''श्वा कुक्कुरः '''तरक्षुः मृगशत्रुर्व्याघ्रविशेषः 'जरख' इति लोके, ऋक्षो भल्लूको तिलोमशः 'रीच्छ' इति प्रसिद्धः'''॥ ४३-४५ ॥

अध्यायः ८

'''स्थिरादौ शालपर्ण्यादौ'''॥ ४४-४५ ॥

'''वक्रं तगरं, सुवर्चिका स्वर्जिकाक्षारः'''' ॥ ४६-४७ ॥

''''निचुलो वेतसः, जलं बालकम्''''॥ ४९-५० ॥

''''विश्वम्भराभिः तिसृभिः । अतिबला कङ्कतिका; अतिगुहा शालिपर्णी गुहा पृश्निपर्णी ॥ ५१ ॥

''''सहा मुद्गपर्णी'''॥ ५२ ॥

'''रास्ना गन्धनाकुली । '''तुङ्गं पद्मकेशरं, पुन्नाग इत्यपरे । वञ्चुलो जलवेतसः; जेज्जटस्तु कम्बुकेति पठित्वा किणिहीति व्याख्यानयति'''॥ १००-११५ ॥

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

''''अक्षीवपिप्पलमिति अक्षीवाद् महानिम्बाज्जातः पिप्पल अक्षीवपिप्पलः; अन्ये शोभाञ्जनाज्जात इति मन्यन्ते''''॥ १२० ॥

''''कर्णिका मांसकन्दी ''''किण्वं सुराबीजम्। ''''शिखी लाङ्गलकी, वंशो वंशत्वक्। ''''दन्तो गोदन्तो गवा दन्तः ॥ १३६-१३७ ॥

उत्तरतंत्र

अध्यायः ६

''''अरिष्टकं कृष्णफलं 'अरीठा' इति लोके'''॥ १८-१९ ॥

अध्यायः ९

''''पुराणं सर्पिः संवत्सरोषितं घृतम्; अन्ये दशवर्षस्थितं घृतं पुराणं कथयन्ति''''॥ ३-४ ॥

''''ह्रीबेरं बालकम्। वक्रं तगरम्। साम्भ इति चतुर्गुणोदकं; अर्धोदकमिति केचित्'''॥ १३ ॥

''''वृक्षादनी वन्दाकः, वृक्षकलम्बुकेत्यन्ये। '''पत्तूरः सितिवारः, 'सिरिवाली' इति लोके प्रसिद्धा। आर्तगलः कण्टकफलो जलमुक्तदेशजः, 'ककुभ' इत्यन्ये। अग्निकः अजमोदा। ''''वीरतरः शरः वेल्लन्तरो वा''''॥ १८-१९ ॥

अध्यायः १०

'''स्रंसनं विरेकः'''॥ ३ ॥

'''गुन्दा एरकाभेदः, गवेधुकेत्यन्ये, शैवलं दूर्वा; शैलभेदः पाषाणभेदः; चन्दनं रक्तचन्दनं, रात्रिः हरिद्रा, अनन्ता उत्पलसारिवा'''॥ ४-५ ॥

''''पालाशं शोणितं किंशुकरसः; अन्ये पलाशखपुरमाहुः। ''''पालिन्दी श्यामा त्रिवृत्, सारिवामन्ये ॥ ७ ॥

'''क्रिमिघ्ना विडङ्गः, धात्री आमलकं, बीजः पीतसारः 'बीजक' इति यावत्, मुस्तादीनां रसे रसक्रिया कार्याः''''॥ ८ ॥

अध्यायः ११

'''कुटन्नटं तगरं; फणिज्झकः तीक्ष्णगन्धः स्वनाम्नेव प्रसिद्धः, अन्ये निर्गुण्डीमाहुः; पत्तूरः शरबालिकः, भङ्गैः पत्रभङ्गैः; अन्ये भङ्गशब्देन पल्लवानाहुः ''''बर्हिष्ठं बालकम् ॥ ५ ॥

''''त्रीण्यूषणानीति त्रिकटुकमित्यर्थः। बर्हिष्ठं बालकम्। अमरकाष्ठं देवदारु। प्रकीर्यः कण्टकिकरञ्जः। '''आलं हरितालम्''''॥ ६-९ ॥

''''मरिचं शुक्लं शोभाञ्जनबीजम्'''॥ १३ ॥

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

....इन्द्रसुरा इन्द्रवारुणी....॥ १४ ॥

....जात्याः कोरकं जातीकलिका ॥ १५ ॥

.. नादेयमिति सैन्धवमित्यर्थः। मरिचं च शुक्लमिति शोभाञ्जनबीजमित्यर्थः अन्ये शुक्लमेव मरिचं कथयन्ति। नेपालजाता मनःशिला ॥ १६ ॥

अध्यायः १२

...कटङ्कटेरी दारुहरिद्रा। कालीयकं दारुहरिद्रानुकारि प्रसिद्धम्....॥ ७ ॥

...श्रीपर्णी काश्मरी। धात्री आमलकी, बिम्बीलोटो भिल्लोटो हिमाद्रिजो वृक्षः....॥ ११-१२ ॥

....पत्रं पत्रकम्। अञ्जनं रसाञ्जनम्....॥ १३-१४ ॥

...अञ्जनं रसाञ्जनं। ....नेपाली मनःशिला। मरिचं प्रसिद्धं, केचित् मरिचशब्देन सितमरिचं शोभाञ्जनफलापरपर्यायं वदन्ति। गैरिकं स्वर्णगैरिकम् ...॥ १५-१६ ॥

...सर्वाणि सुवर्णत्रपुसीसताम्ररजतकृष्णलोहादिजातानि। धातवो मनःशिलागैरिकादयः। लवणानि सैन्धवादीनि पञ्च। रत्नानि वैदूर्यमरकतप्रभृतीनि। दन्ता गवादीनामश्वादीनां च। शृङ्गाणि गवादीनामेव....॥ २४-२६ ॥

....शिला मनःशिला। ....कोलास्थि बदरास्थि, कतकं शशपुरीषानुकार्यम्बुप्रसादनं फलं, मधुकं यष्टीमधु, दन्तो गोदन्तः। अर्णवमलं समुद्रफेनम्। ...मधुकं यष्टीमधु। ...वंशजो वंशकरीरः, वंशाङ्कुर इति यावत्...॥ २८-३५ ॥

....मैरेयं सुरासवयोरेकत्र सन्धानं, ...दध्युत्तरकं दध्नसरः....॥ ३९-४१ ॥

....आरेवतः कृतमालकः; 'ऐरावत' इति केचित् पठन्ति, तत्र ऐरावतो नारङ्गम्....॥ ४२ ॥

...कृष्णबीजं पिप्पलीतण्डुलः। कीटशत्रुः विडङ्गः...॥ ४४ ॥

....लवणोत्तमं सैन्धवम् ॥ ५१ ॥

....तुत्थकं कज्जलतुल्यभागं ताम्रपात्रे घृष्टं सर्पिर्युतमञ्जनमिति....॥ ५३ ॥

अध्यायः १३

...मनोह्वा मनःशिला। आर्द्राञ्जनं रसाञ्जनम्। माक्षीकं सुवर्णमाक्षीकम्। ....हविषा घृतेन ॥ ३-८ ॥

अध्यायः १४

....पुष्पं पुष्पाञ्जनं नेपाली मनःशिला...॥ ३-४ ॥

....रोचना गोरोचना, क्षारो यवक्षारः....॥ ५ ॥

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

""शिला मनःशिला; एला सूक्ष्मैला, नतं तगरं, सिन्धूत्थं सैन्धवम्""
॥ ६ ॥

""पत्रभङ्गैः पत्रखण्डैः; अन्ये पत्रभङ्गशब्देन पल्लवमाहुः""॥ १० ॥

अध्यायः १५

...मण्डूकीं च समुद्रजामिति समुद्रजा मण्डूकी मुक्तानां शुक्तिः। कुरुविन्दः पद्मरागः, 'निशानोपल' इत्यन्ये, अश्मन्तकं सलोपमं (?) मणिविशेषः। वैदूर्यमिति विदूरगिरिसंभवम् अत्यच्छमानीलं, पुलकं स्फटिकमेव पाकाद्वर्णान्तरमापन्नं; केचित् 'वैदूर्योपलकं' इति पठन्ति, तत्र वैदूर्योपलकं वेरुडिकेति व्याख्यानयन्ति। मेषशृङ्ग इङ्गुदीभेदः; केचित् मेषविषाणरचितभाजनं मन्यन्ते ॥ २५-२८ ॥

अध्यायः १७

""शालः सर्जभेदः; नलिनं ईषद्रक्तं पद्मं, उत्पलं नीलोत्पलं, हरेणुः रेणुका, कृष्णह्वा पिप्पली""॥ ८-६ ॥

नलिनं ईषद्रक्तं पद्मं, उत्पलं नीलोत्पलं, किञ्जल्कः केशरः... । गोशब्दस्य पशुवाचित्वादजादयो गृह्यन्ते; यकृद्रसः कालखण्डरस इति व्याख्यानयन्ति ॥ १०-११ ॥

'...हरेणुः हरेणुका... ॥ २३ ॥

नदीजं सैन्धवं; शिम्बीशब्देनात्र हरितमुद्गाः, चक्षुष्यत्वात्; अन्ये शिम्बीस्थाने शिम्बेति पठन्ति, तत्रापि स एवार्थः; अञ्जनं सौवीराञ्जनम्। गवां छागादीनाम्। चन्दनं रक्तचन्दनम्... ॥ २७ ॥

...क्रव्यभुजो गृध्रादयः, एणः कृष्णासारः"" ॥ ३५ ॥

...स्रोतसि यत् समुत्थितं सिन्धु स्रोतसि वर्णसार्पणसयोः स्रोतसि वा यत् समुत्थितं स्रोतोऽञ्जनं, सौवीराञ्जनमित्यन्ये""। ""मालतीकोरकाः जातीकुसुमानि... ॥ ३६-३७ ॥

...कनकाकरोद्भवं तुत्थकं"" ॥ ३६ ॥

""भिल्लोटको हिमवदासन्नभूमिजः ककुभानुकारिफलो वृक्षविशेषः""। "" अञ्जनं सौवीराञ्जनं, ""जलोद्भवं स्रोतोञ्जनं ""अन्ये जलोद्भवं शङ्खं वदन्ति ॥ ४० ॥

... पलाशः किंशुकः, रोहितो दाडिमपुष्पतुल्यपुष्पः, मधुकः स्वनामप्रसिद्धो वृक्षविशेषः... ॥ ४१ ॥

""किणिही अपामार्गः"" ॥ ४२ ॥

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

....मागधी पिप्पली। ....माक्षिकं मधु ॥ ४३ ॥

....मूत्रवर्गे अष्टस्वपि मूत्रेषु। ....शिग्रुः शोभाञ्जनकः.... ॥ ४४-४५ ॥

....शतावरीपायस इति शताबरीमूलश्रृतेन पयसा कृतः शतावरीपायसः आमलकेषुवायस इति आलमकश्रृतपयसा कृतः पायस इत्यर्थः। अन्ये तु शतावरीस्वरससिद्धा यवागूः शतावरीपायसः, आमलकस्वरससिद्धा यवागूश्चामलकपायसः। ....यवौदनो वाट्यसंज्ञकः गृञ्जासंज्ञको वा... ॥ ४६ ॥

....जीवन्ती डोडिका, सुनिषण्णकं चतुष्पत्री, अन्ये शिरवालिकामाहुः, वरवास्तुकं; टङ्कवास्तुकं, चिल्ली क्षेत्रवास्तुकः; मूलकपोतिका बालमूलकं, शाकुनं लावादिकं; ....तर्कारी अरणिका, करीरो गूढपत्रः, शिग्रुः शोभाञ्जनकः; आर्तगलो नीलसहचरः.... ॥ ५०-५१ ॥

....सारिवा उत्पलसारिवा।...सिद्धार्थकः सर्षपः। ...पयस्या अर्कपुष्पी, क्षीरकाकोलीत्यन्ये। पत्रं पत्रकम्। ....वातघ्नानि भद्रदार्वादीनि....॥ ८७-९४ ॥

अध्यायः १८

विद्रुमः प्रवालः सिन्धुजं सैन्धवम् ॥ २४-२५ ॥

....हरेणुः वर्तुलकलायः.... ॥ ५६ ॥

....औदुम्बरं ताम्रभागं, शातकुम्भं सुवर्णभागं, राजतं रूप्यभागं....। ....माक्षिके मधुनि, वसा शुद्धमांसस्नेहः। ...मुक्ता मौक्तिकं, विद्रुमं प्रवालं, कालानुसारिवा तगरमूलं, जेज्जटस्तु द्वितीयसारिवामाह। ....असनो बीजकः; शातकुम्भे सुवर्णमये, शाङ्गे ....मेषश्रृङ्गमये.... ॥ ८५-९३ ॥

...वक्रं तगरं, रत्नानि सप्त पद्मरागमरकतनीलवैदूर्यमुक्ताप्रवालहेमानि। उत्पलस्य नीलोत्पलस्य, ...बृहत्योः कण्टकारीद्वयस्यापि कुसुमानि, तुत्थमुत्तमं मयूरग्रीवाख्यं, केचित् तुत्थं खर्परिकातुत्थं, गृहकोपिका गृहगोधिका, गृहकारिकेत्यन्ये.... ॥ ९४-९७ ॥

अध्यायः २१

...नेपालजा मनःशिला। सिन्धुप्रसूतं सैन्धवम्। ....मधुरसा मूर्वा.... ॥ १४ ॥

...पलाण्डुः लशुनभेदः, मधुकं यष्टीमधु; लवणोत्तमं सैन्धवम्। गुटिकाञ्जनं वर्त्यञ्जनम्। दार्वी हरिद्राद्वयं; विदेहदर्शनात्.... ॥ १५ ॥

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

अध्यायः २१

""वर्षाभिः श्वेतपुनर्नवा, दधित्थः कपित्थः, उन्मत्तो धत्तूरकः, शिग्रुः शोभाञ्जनकः, विटपशाकमन्ये"" ॥ ६-७ ॥

शिग्रुः मधुशिग्रुः, मुरङ्गी द्वितीय शोभाञ्जनकः, कदुष्ण ईषदुष्णः"" ॥ १७-१८ ॥

"तीक्ष्णा मूर्धविरेका इति अपामार्गबीजादिभिः। तीक्ष्णाः कवलाः पिप्पल्यादिभिः"" ॥ ३२-३३ ॥

""राजवृक्षादिः आरग्वधादिः ॥ ४०-४१ ॥

""कार्पासी वनकार्पासी। शैवलं दूर्वा, हठमित्यन्ये। महावृक्षः सेहुण्डः, प्रसवाः पल्लवाः। कुलीरः कर्कटश्रृङ्गी, मण्डूकी ब्राह्मीभेदः" ॥ ४२-४५ ॥

""समङ्गा अञ्जलिकारिका, 'वराहक्रान्ता' इत्यपरे"" ॥ ४६ ॥

"अम्बष्ठा सांकुरडा, शिला मनःशिला, पर्णी शालपर्णी"" ॥ ४७-४८ ॥

""क्रमिघ्नं विडङ्गसारचूर्ण" ॥ ५२-५३ ॥

अध्यायः २३

""व्योषं त्रिकटुकम्। शिवाटी श्वेतपुनर्नवा, शेफालिकेत्यन्ये। उग्रा वचा, तीक्ष्णगन्धा शोभाञ्जनकः" ॥ ४ ॥

"अग्निकः चित्रकः, अजमोदामन्ये" ॥ १० ॥

अध्यायः २४

""विजया हरीतकी ॥ २१ ॥

""श्रीरिति श्रीवेष्टकः नवनीतधूपः, 'गुग्गुली' इति लोके; सर्जरसो राला पत्तङ्गं रक्तचन्दनं; मधुलिका गुडूची, कर्कटतृणमपरे, गोजी गोजिह्विका, श्रीपर्णी काश्मीरी"" ॥ २६-२८ ॥

""श्यामा त्रिवृत्; तिल्वकः पट्टिकारोध्रः"" ॥ २९ ॥

"त्रिकण्टको गोक्षुरकः। श्वेता श्वेतस्यन्दः। सदाभद्रा काश्मरी।"" सरला त्रिवृत्, किणिही कटभी, दारु देवदारु, निकुम्भा दन्ती ॥ ३०-३३ ॥

"तेजोवती काकमर्दनिका, अग्निकः अजमोदा"" ॥ ३६-३७ ॥

"सिता शर्करा, अनन्ता उत्पलसारिवा, चन्दनं रक्तचन्दनं"" ॥ ३८-४१ ॥

अध्यायः २६

"वञ्जुलो वेतसः, कल्हारं रक्तोत्पलं, चन्दनं रक्तचन्दनं, उत्पलं नीलोत्पलं, शैवलं दूर्वा, अम्भोरुहं पद्मम्" ॥ १३-१४ ॥

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

....व्योषं त्रिकटुकं, क्षारो यवक्षारः... ॥ २३ ॥

....कृमिघ्नैः विडङ्गादिभिः... ॥ २८-२६ ॥

...मधुकं यष्टीमधुकं... ॥ ३१-३३ ॥

...सारिवा प्रसिद्धा, उत्पलं नीलोत्पलम्.... ॥ ३५ ॥

...मधुमस्तकाः खजुकाः; संयावः कण्डकघृतैश्चातुर्जातककर्पूरसुगन्धः लप्सिकेति लोके, घृतपूरः 'घेवर' इति प्रसिद्धः... ॥ ३६-३७ ॥

...महासुगन्धा उत्पलसारिवा, ...पालिन्दी कालवल्ली । अम्लं काञ्जिकम् ... ॥ ३६-४० ॥

अध्यायः २८

....द्रुमग्रहणं विटपनिषेधार्थम् । ....वातघ्नद्रुमाः स्वप्रभावेण ग्रहावेशमपि निर्वर्तयन्ति, अचिन्त्यशक्तित्वात् ॥ ३ ॥

...सुरामण्डः सुराया उपर्यच्छो भागः, कैडर्यो महानिम्बः.... ॥ ४ ॥

काकादनी काकजङ्घा ॥ ६ ॥

....सोमवल्ली गुडूची, इन्द्रवल्ली मत्साण्डकः गण्डदूर्वेति लोके, मृगादनी इन्द्रवारुणी ॥ ७ ॥

...भक्ष्याः स्वस्तिकमोदकादयः.... ॥ ८ ॥

अध्यायः २६

....अनन्ता उत्पलसारिवा, कुक्कुटी कुक्कुटीशरीरवत् कुसुमचित्रा वल्ली स्फटिकरचितकुक्कुटाण्डतुल्यकन्दा, मर्कटी कपिकच्छुः.... । ....प्रसन्ना सुरा, ... पयो दुग्धम् ॥ ७ ॥

अध्यायः ३०

...मृगैर्वारुः इन्द्रवारुणी; नागदन्ती दन्तिनी; सहदेवा पीतपुष्पा बला, बृहती स्थूलफला ॥ ६ ॥

...करञ्जेषु नक्तमालेषु । नियतात्मना संयतेन्द्रियेण 'करञ्जेषु' इत्यत्रान्ये 'निकुञ्जेषु' इति पठन्ति, निकुञ्जेषु वनेषु ॥ ७ ॥

...निष्कुटे गृहोपवने, अन्ये निष्कुटं वनगहनमाहुः....॥ ८ ॥

अध्यायः ३१

....अजश्रृङ्गी कर्कटश्रृङ्गी, उत्तमारणीत्यन्ये । सहे मुद्गमाषपर्ण्यौ....॥ ३ ॥

... सर्जरसो रालः, पलङ्कषा गुग्गुलुः, नलदं जटामांसी, गिरिः गिरिकर्णिका; अन्ये गिरिकदम्बो महाकदम्बः स्वनामख्यातः....॥ ४ ॥

....अश्वकर्णो गर्दभाण्डः, ककुभः अर्जुनः....॥ ५ ॥

....सिन्दुको निर्गुण्डी...॥ ६-८ ॥

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

अध्यायः ३२

""कपोतवङ्का कबडवङ्केति लोके प्रसिद्धा ब्रह्मसुवर्चलापरपर्याया। आस्फोता सारिवा। वयस्था ब्राह्मी; अन्ये गुडूचीमाहुः। गोलोमी दूर्वा"" ॥ ३-४ ॥

""तुगाक्षीरी वंशलोचना ""। गिरिकदम्बको महाकदम्बः। गन्धनाकुली सुगन्धा रास्ना। कुम्भिका जलजा""॥ ५-७ ॥

अध्यायः ३३

"'केशांश्चर्म च कुक्कुटस्य, केशांश्चर्म च मानुषस्येत्येके; केचित् चर्मेति सर्पस्य वदन्ति, तेन चर्म त्वक् कञ्चुलिका सर्पस्य"'॥ ६ ॥

"'कुक्कुटी स्फटिकरचितकुक्कुटाण्डसदृशनन्दा कुक्कुटीशरीरवत् कुसुम-चित्रा वल्ली। मर्कटी कपिकच्छुः; मर्कटमूलीत्यन्ये, शुकशिम्बीत्यपरे। अनन्ता सारिवा। "'सर्वगन्धा एलादिकाः""॥ ७-९ ॥

अध्यायः ३४

""सुवहा गोधापदी। प्रचीबलो मत्स्याक्षकः; काकजङ्घेत्यन्ये। नदीभल्ला-तकं नदीपिप्पलिका गण्डोपलीति पर्याया। सर्वगन्धा एलादिकाः। "'रोहिणी कट्फलः। "'बस्तगन्धा बोथयिका। अहेस्त्वचः सर्पस्य कञ्चुकाः। लम्बा तिक्तालाबूः। काकादानी काकतिन्दुका ॥ ३-६ ॥

अध्यायः ३५

""तर्कारी अरणिका, वांशी वंशलोचना; कुबेराक्षी काष्ठपाटला, पेटि-केत्यन्ये ॥ ३ ॥

""भृङ्गाः पत्रभङ्गाः, तदुपयोगिका वृक्षाः। अजहरिगन्धयोरिति बस्त-गन्धाश्वगन्धयोः अजाश्वगन्धाचतुर्गुणरसेन तैलं वसां च संयोज्य""॥ ४ ॥

""मधूलिका मर्कटहस्ततृणम्। पयसि गोक्षीरे"'॥ ५ ॥

"'चाषः कर्णायसः चीरल्लिः 'चिल्ल' इति लोके, चाषादिजिह्वां धारयेत्। वर्णको रोचनिका कम्पिल्लक इत्यर्थः; कङ्कुष्ठमित्यन्ये। ""अञ्जनं रसाञ्जनं, सौवीराञ्जनमित्यन्ये। पारदं शम्भुरेतः। ""पायसं क्षीरसंसिद्धास्तण्डुलाः, पुरोडाशः अष्टाकपालः पिष्टमयः कपालोपरि पक्वस्तृणाग्निना। मन्त्रेत्यादि"" ॥ ६-८ ॥

अध्यायः ३६

"'सरला शुक्ला त्रिवृत्; अनन्ता उत्पलसारिवा, कुटन्नटं तगरं"" ॥ ३-४ ॥

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

""वयःस्था गुडूची, ब्राह्मीत्यन्ये, गोलोमी दूर्वा, जटिला मांसी"॥ ६ ॥

""अक्षता यवाः ॥ ७ ॥

अध्यायः ३८

""राजवृक्षादिः आरग्वधादिः ॥ २५ ॥

अध्यायः ३९

""दारु देवदारु, हैमवती वचा, अम्लं काञ्जिकम् ॥ १३० ॥

""मद्यं पुराणं सम्यक् पक्वं, दीपनीयत्वात् कफघ्नत्वाच्च ॥ १४२ ॥

""अस्माभिर्वृद्धपठितत्वात् सर्वोऽपि लिखितः ॥ १४३-१४४ ॥

"कठिल्लं पुनर्नवाशाकं, पापचैलिकं पाठाशाकं, गोजिह्वां गोजीशाकम् ॥ १५१-१५२ ॥

""कपिञ्जलो गौरतित्तिरिः, एणः कृष्णमृगः, पृषतः चित्रमृगः 'चीतल' इति लोके; शरभः अष्टपादुष्ट्रप्रमाणो महाशृङ्गः, कालपुच्छः स च प्रसिद्धः, कुरङ्गः चतुःशृङ्गः 'मेढुली' इति लोके"॥ १५३ ॥

""सारसो रक्तचञ्चुकः पक्षिविशेषः, क्रौञ्चः 'क्रौञ्चि' इति प्रसिद्धः; शिखी मयूरः, तित्तिरः कृष्णतित्तिरिः"॥ १५४ ॥

""सारिवा उत्पलसारिवा, हरेणुः रेणुका""॥ १६९ ॥

""हरेणुका रेणुका; कुस्तुम्बुरु धान्यकं नलदं उशीरम्""॥ १७१-१७२ ॥

""काश्मर्यं गम्भारीफलम्""॥ १७३-१७४ ॥

""श्रीपर्णीशब्देन गम्भारीफलं, ""मधूको गुडपुष्पः; तस्यापि फलं ग्राह्यम्" ॥ १७५ ॥

""पद्मं कमलम्, उत्पलम् ईषन्नीलम्" ॥ १७८ ॥

"आरग्वधः कृतमालफलं, काश्मर्यं गम्भारीफलम् । स्वादुतिक्तकषायाणामिति स्वादूनि द्राक्षामधुकसारिवादीनि, तिक्तानि दुरालभापर्पटककिराततिक्तकप्रभृतीनि, कषायाणि पद्मोत्पलप्रभृतीनि"" ॥ १७९ ॥

"समङ्गा अञ्जलिकारिका, वराहक्रान्तामपरे" ॥ १८२-१८३ ॥

"सप्तच्छदः सप्तपर्णः, स्फूर्जको वनकुरण्टकाकारः फणिज्जकापरपर्यायः" ॥ १८६ ॥

""नागपुष्पं नागकेशरम्"" ॥ १८७ ॥

""पुरो गुग्गुलुः ॥ १९० ॥

""भूतीकं सुगन्धितृणं 'रोहिषं' इति प्रसिद्धम्" ॥ १९३-१९४ ॥

""विजया हरीतकी" ॥ १९५-१९८ ॥

"वृश्चीवः श्वेतपुनर्नवा, वर्षाभूः रक्तपुनर्नवा"" ॥ २०२ ॥

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

…दीपनीयानि पिप्पल्यादीनि, वैरेचनानि त्रिवृदभयादीनि…॥ २०६ ॥

…धात्री आमलकी …॥ २१३ ॥

…मधुकं यष्टीमधु, रोहिणी कटुका…॥ २१४ ॥

…ताम्रचूडः कुक्कुटः… ।…तिल्वकः पट्टिकारोध्रः…॥ २१७ ॥

…सारिवा उत्पलसारिवा सुगन्धमूला, सिंही बृहत्कण्टकारिका, तामलकी दरफलिका, …स्थिरा शालपर्णी…॥ २१८-२२० ॥

…कलशी पृश्निपर्णी, त्रायन्ती त्रायमाणा, अम्भोदो मुस्ता…॥ २२३-२२५ ॥

…अरिष्टो निम्बः, वृषो वासकः, अम्बुदो मुस्तं, भूनिम्बः किराततिक्तकः; यासो दुरालभा, शक्रयवः इन्द्रयवः, उत्पलं कुष्ठम् ॥ २२६-२२८ ॥

…उत्पलं नीलोत्पलं, एला सूक्ष्मैला, एलवालुकं कुष्ठगन्धिकं, चन्दनं रक्तचन्दनं, अमरदारुः देवदारु, बर्हिष्ठं वालुकं, रजनीद्वयं पिण्डहरिद्रा दारुहरिद्रा च, पर्णिनीद्वयं शालपर्णी पृश्निपर्णी च, सारिवाद्वयं सारिवा उत्पलसारिवा च… ॥ २२९-२३३ ॥

…मणिभिः स्फटिकादिभिः। …सुमना जाती, नलदं मांसी, पद्मं लोहितपद्मम् … ॥ २३४-२३६ ॥

…विश्वं शुण्ठी, निशा हरिद्रा, मूर्वा चोरस्नायुः, आमयं कुष्ठम्…॥ २५६ ॥

…क्षीरिवृक्षा न्यग्रोधादयः, असनो बीजकः, अरिष्टो निम्बः, सप्तच्छदः सप्तपर्णः, अर्जुनः ककुभः, आस्फोटा सारिवा अर्को वा, तेजोवती काकमर्दनिका …॥ २५७-२५८ ॥

…अजा छागी, अविः मेषी, पलङ्कषा गुग्गुलुः… ॥ २६२ ॥

…आरनालं काञ्जिकं, शुक्तं चुक्रं तच्च तण्डुलाम्बुसौवीरादिभिः कृतसन्धानं तथा च तन्त्रान्तरे पठ्यते—"प्रस्थमेकं तु भक्तस्य त्रयं सौवीरकस्य च। अर्धं प्रस्थं तु दध्नश्च भिषगम्लस्य दापयेत् ॥ पलषोडशकं चैव शोधितस्यार्द्रकस्य च। सैन्धवं पिप्पलीं चैव चूर्णीकृत्य विनिक्षिपेत् ॥ स्थापयेत् सुदृढे भाण्डे सर्पिषा परिभाविते। हेमन्ते वासराण्यष्टौ वसन्ते षट् दिनानि च ॥ प्रावृट्काले चतुरहं वर्षास्वपि च वासयेत्। अत ऊर्ध्वं क्षिपेच्चूर्णं चातुर्जातात्पलद्वयम् ॥" …पलाशैः पत्रैः। अर्जकः कुठेरकः; अन्ये सितपर्णासमाहुः; शिग्रुः शोभाञ्जनानुकारी विटपः शोभाञ्जनमपरे… ॥ २७१-२८१ ॥

…शुक्तं चुक्रं, धान्याम्लं काञ्जिकं; …अम्लं काञ्जिकं, फेनिला उपोदिका। …पलाशतरुजैः पलाशपल्लवैः। अरिष्टो निम्बः, फेनिलावृक्षो वा… ॥ २८२-२८५ ॥

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

""अञ्जनं रसाञ्जनं, नलदं मांसी, पत्रं पत्रकं, उत्पलं नीलोत्पलं, व्याघ्रनखो नखः। मधुशुक्तं जम्बीररसकृतः सन्धानविशेषः; तया चोक्तं—"जम्बीरस्य फलरसं पिप्पलीचूर्णसंयुतम्। मधुभाण्डे विनिक्षिप्य धान्यराशौ निधापयेत्॥ म सेन तज्जातरसं मधुशुक्तं प्रकीर्तितम्"" ॥ २६६-२६६ ॥

""ह्रीबेरं वालकं, मधूलिका जलयष्टी"" ॥ ३००-३०१ ॥

""दधित्थं कपित्थम् ॥ ३०३ ॥

""माक्षीकं मधु"" ॥ ३०४ ॥

""श्यामा वृद्धदारकः"" ॥ ३०६ ॥

""चन्दनं रक्तचन्दनम्, उत्पलं नीलोत्पलम्, अञ्जनं स्रोतोऽञ्जनं, तदभावे रसाञ्जनं सौवीराञ्जनं वा, मृणालं बिसं, पद्मकं पद्मकाष्ठं"" ॥ ३०६-३११ ॥

अध्याय: ४०

""कलिङ्गा इन्द्रयवाः। प्रतिविषा श्यामकन्दाऽतिविषाभेदः। महौषधं शुण्ठी। मूर्वा चोरस्नायुः निर्दहनी चित्रकः, त्र्यूषणं त्रिकटुकम्। सिद्धार्थकाः श्वेतसर्षपाः, कटुरोहिणी कटुका। सावरकं रोध्रं, हरिद्रे हरिद्राद्वयं, कौटजा यवा इन्द्रयवाः। मेषशृङ्गी कर्कटशृङ्गी, त्वक् त्वचा, कृमिघ्नं विडङ्गं, वृक्षकः कुटजः, वृक्षादनी बन्दाकः, वीरतरुः शरः, बृहत्यौ क्षुद्रफला स्थूलफला च, द्वे सहे मुद्गपर्णी माषपर्णी च। अरलुः श्योनाकभेदः तस्य त्वक्, अन्ये श्योनाकमरलुशब्देनाहुः त्वक्शब्दोऽर्थवशात् तिन्दुकी चेत्यादिष्वपि सम्बन्धनीयः। तेजोवती काकमर्दनिका। दीप्यको यवानी, अन्ये अजमोदामाहुः। शृङ्गवेरं शुण्ठी, बिल्वशलाटु कोमलं बिल्वं, वात्सकं फलं इन्द्रयवाः"" ॥ ३५-४६ ॥

""भूनिम्बं किरातं, सरसाञ्जनं रसाञ्जनसहितम्। दार्वी दारुहरिद्रा, बिल्वं बिल्वफलम्। मृणालं पद्मनालं, चन्दनं रक्तचन्दनं, रोध्रं शावरं, नागरं शुण्ठी। घनं मुस्तम्"" ॥ ६३-६५ ॥

""बिल्वं बिल्वफलं कोमलं, शक्रयवा इन्द्रयवाः, अम्भोदो मुस्ता"" ॥ ६६ ॥

""मधुकं यष्टीमधु, उत्पलं नीलोत्पलम्। अब्दं मुस्तं, ह्रीबेरं बालकं"" ॥ ६७ ॥

""ग्रहण्या मार्दवात् अग्निस्तम्भात्। संस्तम्भनं संग्रहणम् ॥ ६८ ॥

""समङ्गा लज्जालुका, अन्ये वराहक्रान्तामाहुः। शाल्मलीवेष्टकः शाल्मलीनिर्यासकः, अन्ये वेष्टकं वृन्तमाहुः; वृक्षः कुटजः। आम्रास्थिमध्यं आम्रफलमज्जा। शृङ्गवेरं शुण्ठी, दीर्घवृन्तत्वक् अरलुत्वक्, अन्ये श्योनाकत्वगित्याहुः"" ॥ ६६-७१ ॥

""पद्मा भार्गी, समङ्गा लज्जालुका, बिल्वजम्बूशलाटु चेति बिल्वफलं कोमलं, जम्बूफलं च कोमलम्"" ॥ ७३ ॥

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

…कच्छुरा कङ्कतिका; तन्मूल…। पयस्या अर्कपुष्पी, अन्ये दुग्धिकामाहुः; क्षीरकाकोलीमपरे, चन्दनं रक्तचन्दनं, पद्मा भार्गी, सिता शर्करा, अब्जकेशरं पद्मकेशरं… ॥ ७४ ॥

…दार्वी दारुहरिद्रा, कणा पिप्पली… ॥ ७७-७८ ॥

…दीर्घवृन्तस्य अरलुकस्य। …जीवन्ती उत्तरापथे महाकन्दा कर्कोटिका-सदृशपत्रा, लाटविषये तु मूलिनी महाप्रताना… ॥ ८१-८३ ॥

…तित्तिरिं कृष्णतित्तिरिं…; तथा चोक्तं—"संग्राहि स्तम्भनाद्भिन्नं यथा तदभिचक्ष्महे। आग्नेयगुणभूयिष्ठं तोयांशं परिशोषयेत् । संगृह्णाति मलं तत्स्याद्ग्राहि शुण्ठ्यादयो यथा। समीरगुणभूयिष्ठं शीतत्वाद्यन्नभस्वतः॥ विधाय वृद्धिं स्तभ्नाति स्तम्भनं तद्यथा वटः"…॥ ८४-८५ ॥

…फाणितमिव फाणितं, स्त्यानमध्वाकृति। ओजसा शक्त्या आत्मप्रभावेण … ॥ ८६-९० ॥

…बिल्वं बिल्वफलं कोमलं, उत्पलं नीलोत्पलं, सनागरैः सशुण्ठीकैः। उदरामयी अतीसारी… ॥ ९१ ॥

…अर्जुनः ककुभः… ॥ ९६ ॥

…दार्वीत्वक् दारुहरिद्रात्वक्। अन्ये दार्वी दारुहारिद्रा, त्वक् त्वचमाहुः। भद्ररोहिणी कटुका… ॥ १०४-१०५ ॥

…मूत्रशोधनैः तृणपञ्चमूलीपाषाणभेदगोक्षुरप्रभृतिभिः… ॥ १०७ ॥

…मधुरैः काकोल्यादिभिः, अम्लैः बीजपूरककपित्थचुक्रिकावृक्षाम्लकाञ्जिकादिभिः… ॥ १०८ ॥

…दधिमण्डो दधिमस्तु… ॥ ११० ॥

…फञ्जी पाठाभेदः, अन्ये भार्गीमाहुः। कच्छुरा कङ्कतिका, अन्ये दुरालभामाहुः। शेलुः श्लेष्मातकः। दाधिका दध्ना संस्कृताः… ॥ ११३ ॥

…प्रियालः चारः, प्लक्षः पर्कटी, तिनिशः स्यन्दनः…॥ ११६ ॥

…पयस्या अर्कपुष्पी ॥ १२० ॥

…कुमुदं श्वेतम्; उत्पलं नीलं, पद्मा भार्गी…॥ १२१ ॥

…तिलाः कृष्णाः कृष्णतिलाः, समष्टयाह्वा यष्टीमधुसहिताः। मोचरसः शाल्मलीनिर्यासः। कच्छुरा कङ्कतिका…॥ १२२-१२४ ॥

…फाणितं काकवी…। १२५ ॥

…कोशकार इक्षुभेदः…॥ १२६ ॥

…कुल्माषान् आस्तरस्विन्नान् यवपिष्टमयान्। श्वेतां सुरां पैष्टीम्…॥ समङ्गा लज्जालुका…॥ १३४ ॥

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

""विडं लवणभेदः; दध्नः; सरो दध्न उपरितनो भागः। यमके घृततैले ॥ १३६ ॥

""दीपनैः चित्रकादिभिः संग्राहकैः धातकीबिल्वशलाटुप्रभृतिभिः"" ॥ १३७ ॥

""दध्ना ससारेण उपरितनस्निग्धभागसराख्यसहितेन""। कूर्पो दक्षिणापथे पाषाणविशेषः शङ्खमुण्डाकृतिः रसायनवादेषु प्रयुज्यते।""वातघ्नानि शालपर्ण्यादीनि, भद्रदार्वादीनीत्यन्ये; सांग्राहिकाणि बिल्वपाठाचाङ्गेरीप्रभृतीनि; दीपनीयानि चित्रकशुण्ठ्यादीनि।""एणः कृष्णसारः, अविः भेडः, अजा छागी, वटप्रवालैः वटकोमलपल्लवैः""बस्तस्य छागस्य""। १४५-१४६ ॥

""मेध्याण्डं छागलाण्डं""॥ १५४ ॥

""क्षवकः छिक्काकरः फणिज्जकाकारो लोके 'छिकिनी' इति प्रसिद्धः"" ॥ गजाशना शल्लकी, कुम्भिका पानीयकुम्भिका""॥ १५५ ॥

अध्यायः ४१

""बिडाला ग्राम्यादिभेदेन षट्प्रकारा मार्जाराः, तथा च—"ग्राम्यो वन्यस्तोयजातः पक्षिमार्जारविज्जकौ। सुगन्धवृषणश्चेति मार्जाराः षट् प्रकीर्तिताः"—इति। व्याला व्याघ्रादयः, बिलेशयाः श्वाविच्छल्लकीप्रभृतयः आखुरत्र वृक्षमूषिकः।""नागो हस्ती, अश्वतरो वेशरः"" ॥ ३६-३६ ॥

""मांसादा गृध्रादयः"" ॥ ४० ॥

""सिता शर्करा, मगधोद्भवा पिप्पली ॥ ४१ ॥

""वाजिगन्धा अश्वगन्धा"" ॥ ४२ ॥

""तुरङ्गगन्धा अश्वगन्धा। पुनर्नवे श्वेतरक्ते द्वे"" ॥ ४३ ॥

"मूर्वा चोरस्नायुः। खदिरद्रुमाणामिति द्रुमग्रहणं मध्यमवयसः""। त्रिवर्गः त्रिफला" ॥ ४४-४५ ॥

""हुताशः चित्रकः, महीकदम्बो मुण्डितिका। "व्योषं त्रिकटुकं, महावृक्षपयः सेहुण्डक्षीरं, सुराख्यं देवदारु, लवणोत्तमं सैन्धवम्, केचित् 'लवणोत्तमम्' इत्यत्र 'मगधोद्भवां' इति पठित्वा पिप्पलीमिति व्याख्यानयन्ति"" ॥ ४६-४८ ॥

"अक्षं बिभीतकं, गायत्री खदिरः, अरिष्टो निम्बः, असनो बीजकः, " शालः प्रसिद्धः ""। उग्रा वचा, अम्भोदो मुस्तं, सुराष्ट्रजा तुवरमृत्तिका। तुगाक्षीरी वंशलोचनम्, अन्ये वंशलोचनानुकारिपार्थिवद्रव्यमाहुः। मन्थहतं खजविलोडितम्। ""मेध्यं मेधाजनकम् ॥ ५०-५४ ॥

अध्यायः ४२

""उष्णैरिति पिप्पल्यादिप्रभृतिभिः ""॥ १६-२१ ॥

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

""आनूपा गजगवयादयः; औदका मत्स्यादयः"" ॥ २२ ॥

"" एकशफा अश्ववेशरादयः"" ॥ २३ ॥

"""पृथ्वीका हिङ्गुपत्रिका, 'कृष्णजीरक' इत्यन्ये; दीप्यकः अजमोदा, ग्रन्थिकं पिप्पलीमूलम्""" ॥ २५-२६ ॥

""धान्यं धान्यकम्। अजगन्धा बोवयिका। सुरसः तुलसी""॥ २७-२८ ॥

""हुतभुक् चित्रकः। क्षारो यवक्षारः, रुक् कुष्ठं; वृक्षाम्लं तिन्तिडीकम् ""॥ २९-३० ॥

""आरनालं काञ्जिकं, दध्यम्लं दधिमस्तु। दीप्यकः अजमोदा""॥ ३१-३३ ॥

""क्षारो यवक्षारः""॥ ४५ ॥

""सुखाम्बुना ईषदुष्णोदकेन।""वृश्चीवः शुक्लपुनर्नवा। उरुबूकः शुक्लैरण्डः। वर्षाभूः रक्तपुनर्नवा। बृहतीद्वयमिति एका अणुफला, द्वितीया कण्टकिनी स्थूलफला""। ४६-४८ ॥

""खलाः कपित्थदाडिमतक्रशाकादिसंस्कृताः 'कचिला' इति प्रसिद्धाः"" ॥ ५४ ॥

""सामुद्रं समुद्रलवणं, समुद्रफेनमपरे""॥ ५९ ॥

""पूतीकः चिरबिल्वः, नूपवृक्षो गिरिमालकः ॥ ६१ ॥

""द्रवन्ती चीरितपत्रा दन्तीभेदः। पयः दुग्धं, द्राक्षारसः द्राक्षास्वरसः। ॥ ६२-६३ ॥

""कुल्माषान् यवपिष्टमयान् भक्ष्यान्""॥ ६५ ॥

""त्रिलवणं सैन्धवसौवर्चलबिडानि।""अभीरुः शतावरी, शृङ्गाटी जलजं द्रव्यं त्रिकण्टकफलं। गुडशर्करा गाङ्गेटीफलम्। हिमं चन्दनम्। षड्ग्रन्था वचा। वृक्षज इन्द्रयवः। मूलकं पिप्पलीमूलम्""॥ ६९-७२ ॥

""वल्लूरं शुष्कमांसम्। वैदलं मुद्गवनमुद्गादिकम्। आलुकं पिण्डालुकादिभेदेनानेकप्रकारम्""॥ ७५ ॥

""आशुकारी शीघ्रमत्ययकारित्वात्""॥ ८८ ॥

""पायसो दुग्धसिद्धास्तण्डुलाः। कृशरापिण्डैः तिलतण्डुलमाषकृतयवागूपिण्डैः"" ॥ ८९ ॥

""अङ्कुराः शुङ्गाः।""जाङ्गलान् वैहङ्गान्, लावादिकृतानित्यर्थः। बिलेशयाः श्वाविच्छल्लकादयः ॥ ९०-९१ ॥

""सुरा पिष्टभवा। सौवीरकं काञ्जिकभेदः। चुक्रं शुक्तम्। मस्तु दधिमस्तु। उदश्वित् अर्धोदकं तक्रम्। ""काललवणशब्देन यद्यपि निर्गन्धसौवर्चलमुच्यते, तथाऽप्यत्र गन्धवत्सौवर्चलं ग्राह्यं, तन्त्रान्तरोक्तत्वात्"" ॥ ९२ ॥

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

""शिग्रु विटपशाकं, शोभाञ्जनमपरे । श्यामा अरुणमूला त्रिवृत् । सुरसा तुलसी । अश्वमूत्री शल्लकी ॥ ६४ ॥

""पृथ्वीका हिङ्गुपत्रिका । अजाजी उत्तरापथे जीरकविशेषः । काम्बलिकेन दधिमस्त्वम्लसिद्ध्यूषेण । चुक्रं शुक्तम्"" ॥ ६५-६६ ॥

""राजतं रूप्यमयम्"" ॥ १०५ ॥

""धान्वनं जाङ्गलममांसरसम् ॥ १०६-१०७ ॥

""उदकजानि पद्मानि ॥ १०८ ॥

""यूषं शूलहरशिम्बिधान्ययूषम् । अर्जकः कुठेरकः ॥ १११ ॥

""शृगालविन्ना पृश्निपर्णीभेदः । महासहा माषपर्णी । क्षुद्रसहा मुद्गपर्णी । इक्षुरकः कोकिलाक्षकः"" ॥ ११२-११५ ॥

""सेव्यं उशीरं"" ॥ ११६ ॥

""अम्लैः दाडिमक्रादिभिः । दीपनसंयुतैरिति पञ्चकोलयुतैः ॥ १२६ ॥

""श्यामा वृद्धदारकः । उरुबूकः रक्तैरण्डः, शुक्लैरण्डमपरे । बृहती अणुफला स्थूलफला वा ॥ १२७ ॥

""धान्याम्लं काञ्जिकम्"" ॥ १३० ॥

अध्यायः ४३

""श्रीपर्णी काश्मरी, मधुकं यष्टीमधु, सिता शर्करा, उत्पलं कुष्ठम्"" ॥ १५ ॥

""श्यामा वृद्धदारकः"" ॥ १७-१९ ॥

""धान्याम्लं काञ्जिकम्"" ॥ २०-२२ ॥

अध्यायः ४४

""घृतेनैव स्नेहनमुक्तं तत्तेषां पित्तभूयिष्ठत्वाद्रक्तदूष्यत्वाच्च । ""तैल्वकमिति तिल्वकः पट्टिकारोध्रः"" ॥ १४-१५ ॥

""अयोरजो लोहचूर्णम् । व्योषं त्रिकटुकम् । ""हरिद्रां पिण्डहरिद्राम् । केचित् हरिद्रा शब्देन आदौ दारुशब्दलोपात् दारुहरिद्रां गृह्णन्ति"" । १७ ॥

""शुकाख्या चर्मकारवटः, अन्ये शुकशिम्बामाहुः । काकादनी काकतिन्दुकः । आदारिबिम्बीं सकदम्बपुष्पीमित्यादि । ""आदारी वेल्लन्तरसदृशपुष्पा आलिरिति लोके, बिम्बी रास्नानुकारिविटपा लोहितफला च; कार्तिककुण्डस्तु आदारिशिम्बी आउलिरिति प्रसिद्धेति व्याख्यानयति । कदम्बपुष्पी भूमिकदम्बः, अलम्बुषामपरे"" ॥ १९ ॥

""प्रवालो विद्रुमः, मुक्ता मौक्तिकं, अञ्जनं रसाञ्जनम्"" ॥ २१ ॥

""आजं शकृत् छागलीपुरीषम् । ""विडं लवणम् । लवणोत्तमं सैन्धवम्"" ॥ २२ ॥

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

''''मण्डूरं लोहकिट्टानुकारि द्रव्यम् । अग्निः चित्रकः । व्योषं त्रिकटुकम् ।'''' ताप्यो माक्षिकधातुः'''' ॥ २३ ॥

''''अयोमलं लोहसिङ्घाणकम्'''' ॥ २४ ॥

''''मूर्वा चोरस्नायुः । ''''शिग्रोः फलं शोभाञ्जनकफलम्'''' ॥ २५-२६ ॥

''''त्रिभण्डी त्रिवृत्, ''''गवाक्षी इन्द्रवारुणी'''' ॥ ३० ॥

''''कालेयकं दारुहरिद्रानुकारि द्रव्यं''''। ''''नदीजं धातुं सुवर्णमाक्षिकम् । ''''जतु शैलजं वेति शिलाजतु वा मूत्रयुतं पिबेत्'''' ॥ ३१ ॥

''''सिन्धूद्भवं सैन्धवम् ।''''लोहं च किट्टमिति लोहसिंहाणकमित्यर्थः'''' ॥ ३२-३५ ॥

अध्यायः ४५

''''जाङ्गलरसा एणादिलावादिकृताः, ते च वातानुबन्धे । सतीनयूषा वर्तुलकलाययूषाः, ते च कफानुगे रक्तपित्ते हिताः । पटोलेत्यादि । शेलूः दक्षिणापथजं शाकं, श्लेष्मान्तकमपरे । सुनिषण्णकः शिरवालिका, चतुष्पर्णीत्यपरे । अतिमुक्त आवन्तकः । अङ्कुराः कोमलपल्लवाः पटोलादीनाम् । सिन्दुवारः निर्गुण्डी ।''''पटोलेत्यत्र केचित् जीवन्तीति पठन्ति ।''''सन्तानिका घृतस्योपरितनः स्त्यानो भागः'''' ॥ १६-१८ ॥

''''लाजा भृष्टधान्यानि । अञ्जनं रसाञ्जनम् ।''''कालाञ्जनं सौवीराञ्जनम् ।''''तुगाख्या वंशरोचनानुकारि पार्थिव द्रव्यं, अन्ये वंशरोचनामाहुः;''''। ''''पथ्या हरीतकी, रजनी हरिद्रा'''' ॥ २९-३२ ॥

''''उत्पलं नीलोत्पलं मृत् केदारमृत्तिका; अम्भोरुहकेशरं पद्मकेशरम्'''' ॥ ३३ ॥

''''मातुलुङ्गो बीजपूरकः, 'मधुकर्कटी' इति अन्ये'''' ॥ ३६ ॥

''''अञ्जनं सौवीराञ्जनम् । गैरिकं सामान्यगैरिकम् । उत्पलं नीलोत्पलं; नागकेशरमपरे । सुवर्णं सुवर्णगैरिकम्, अन्तलोपात् । कालीयकं दारुहरिद्रानुकारि द्रव्यम् । अम्बुदो मुस्ता । यष्टिकाह्वयो मधुयष्टिका । मृणालं पद्मकेशरम् । सौगन्धिकं कुमुदभेदः'''' ॥ ३९-४१ ॥

अध्यायः ४६

''''सतीनो वर्तुलकलायः ॥ १६ ॥

''''भुजङ्गपुष्पं नागकेशरम् । कोलस्य मध्यं बदरमज्जा ।''''बिसं बिसेन्द्रकं; मृणालं पद्मनालम्'''' ॥ १७ ॥

''''धात्रीफलानां आमलकफलानां स्वरसैः'''' ॥ १९ ॥

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

अध्याय: ४७

....षाडवो यूषविशेषः। आम्रातकादिभिः क्वथितैरिक्षुविकारयुतैः षाडवः कार्यः। तथा च तन्त्रान्तरे षाडवकल्पना,—'युतमिक्षुविकारेण क्वथितं चूतजं फलम्। घृतशुण्ठी तैलयुतं विज्ञेयो घनषाडवः"—इति....॥ २५ ॥

...' रसान् मांसरसान्;.... ।यूषान् मुद्गादियूषान्। तिक्तानि दुरालभादीनि; कटुकानि पिप्पल्यादीनि....॥ २८ ॥

....नागपुष्पं नागकेशरम्, एला सूक्ष्मैला, अजाजी उत्तरापथे प्रसिद्धो जीरकविशेषः।....पानं पानकम्।....कार्पासिनी वनकार्पासिनी। सुवर्चला सूर्यभक्ता। ....कार्पासं कार्पासीमूलं....॥ ३०-३३ ॥

....काश्मर्यं गम्भारीफलं....॥ ३४ ॥

....इक्ष्वाकुः तिक्तालाबूः। धामार्गवः पीतघोषः। वृक्षकः कुटजफलम्। काकाह्वया उदुम्बरिकागो (का) ष्ठोदुम्बरिका....॥ ३७ ॥

....करीरो मरुदेशजः, तस्य फलम्। श्रीपर्णीयुक्तं काश्मरीफलयुक्तम्। ....क्षीरिप्रवाला वटादिपल्लवाः। भव्यं तालफलप्रमाणं उत्तरापथजम्, अन्ये कर्मरङ्गमाहुः ॥ ३९-४१ ॥

....पुष्पफलोद्भवं कूष्माण्डोद्भवम्। मधूको गुडपुष्पः। त्रिसुगन्धि त्रिजातकम्॥ ४५ ॥

....वर्षाभूः श्वेतपुनर्नवा, त्वक् चोचं, कर्बुदाराङ्कुराः काञ्चनाराङ्कुराः ॥ ४६ ॥

....भृङ्गरसो भृङ्गराजरसः। विल्वं बिल्वफलम्.... ॥ ५२ ॥

....पानकानि द्राक्षादाडिमादिकृतानि। हृद्यानि मनःप्रियाणि.... ॥ ५३ ॥

....करकाः स्फटिकगुटिकाकारा वृष्टिजलजाः पाषाणाः.... ॥ ५५-५६ ॥

....लामज्जकं पर्वतोद्भूतमूलं, अन्ये उशीरमाहुः; अम्बुरुहं पद्मोत्पलादिकं; ....तोयं वालकं; ....पद्मम् ईषच्छुक्लं, उत्पलानि नीलोत्पलानि.... ॥ ५८ ॥

....पत्रं पत्रकम्, अम्बु वालकं, चन्दनं, श्वेतचन्दनं;.... । ....उत्पलं नीलोत्पलं, प्रियको बीजकः, केशरो बकुलः, पुण्डरीकं श्वेतपद्मं, पुन्नागो देववल्लभः स्वनामप्रसिद्धः, नागं नागकेशर, करवीरोऽत्र रक्तकरवीरः, ... । तमालं पत्रकं, तृणं सुगन्धितृणं, पद्मपत्रकं, कमलपत्रं, जात्युत्पले पूर्ववत्, अग्रकरवीरो रक्तकरवीरः.... ॥ ६०-६१ ॥

....मन्थं "शक्तवः सर्पिषाऽभ्यक्ताः शीतवारिपरिप्लुताः" इत्याद्युक्तलक्षणम्....॥ ७२ ॥

....श्रृङ्गवेरं शुण्ठी। ....हृद्यानि मनःप्रियाणि....॥ ८० ॥

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

अध्यायः ४८

""कण्टकिपञ्चमूलं करमर्दकत्रिकण्टकेत्यादिनोक्तम्"" ॥ २१ ॥

""मोचा कदली । बिसं पद्ममूलम्"" ॥ २३ ॥

""राजादनः चारः, अन्ये क्षीरिकामाहुः"" ॥ २६ ॥

""मांसोदकं मांसरसस्याच्छो भागः सौरावाख्यः"" ॥ २८ ॥

""मन्थः 'सक्तवः सर्पिषाऽभ्यक्ता' इत्याद्युक्तः"" ॥ ३० ॥

अध्यायः ४९

""क्षीरघृतमिति क्षीरमथनोद्भूतं घृतं क्षीरयुक्तं वा घृतं क्षीरघृतं; क्षीरोदकमिति वा पाठः""॥ १८-२० ॥

""दधित्थः कपित्थः, ""। मधुरसा मूर्वा । तण्डुलाम्बुना तण्डुलधावनोदकेन । ""स्वयंगुप्ता कपिकच्छूः । ""कुस्तुम्ब्रुर्यो धान्यकाः । ""त्र्यूषणं त्रिकटुकं; ""सिता शर्करा । त्रिसुगन्धिकं त्रिजातकं वा"" ॥ २७-३५ ॥

अध्यायः ५०

""गुरूणि गुणतः पाकतश्च । विष्टम्भीनि करीरप्रभृतीनि । रूक्षाणि चणकादीनि । अभिष्यन्दीनि अभिमुखेन स्यन्दितुं शीलं येषां तानि, अभिष्यन्दनशीलानि मत्स्यमाषफाणितादीनि । शीतशब्दः पानादिभिस्त्रिभिः सम्बध्यते"" ॥ ३-५ ॥

""यष्ट्याह्वं यष्टीमधु"" ॥ १६ ॥

""नारीपयःपिष्टमशुक्लचन्दनं"" ॥ १७ ॥

""शालनिर्यासः सर्जरसः । नैपालं मनःशिलाजातं धूमम् । गोविषाणोद्भवं गोश्रृङ्गोद्भवधूमं, चर्मबालैर्गोरेव"" ॥ १८ ॥

""काञ्चनाह्वं गैरिकं सुवर्णगैरिकं दाक्षिणात्यप्रसिद्धं"" । श्वावित् सेढिका, तस्याः सूचय एव लोमानि । ""बर्हिपत्रप्रसूतं मयूरपिच्छचन्द्रिकोत्पन्नं भस्म"" ॥ १९-२० ॥

""पूतिकीटो 'भोंदुलिका' इति लोके"" । ""वारणकेशरं नागकेशरं"" ॥ २३ ॥

""कृष्णां पिप्पलीं, सितां शर्करां श्रृङ्गवेरं शुण्ठीं; ""कोलास्थिमज्जा बदरास्थिजातं बीजं, अञ्जनं सौवीराञ्जनं, लाजाः पुष्पितं धान्यम्"" ॥ २६ ॥

""गैरिकं स्वर्णगैरिकं, कटुरोहिणी तिक्ता"" ॥ २७-२८ ॥

""वृषदंशो वनमार्जारः, गोधा पञ्चनखा । ""मृगद्विजा जङ्घालविष्किराः"" ॥ २९ ॥

अध्यायः ५१

""हिंस्रा बृहद्धिंस्रा, पूतीकः चिरबिल्वः"" ॥ १८-२० ॥

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

""श्रृङ्गी कर्कटश्रृङ्गी। मधूलिका तृणजातिः 'मर्कट' इति लोके। तार्क्ष्यं रसाञ्जनम्। अम्बुदो मुस्ता"" ॥ २१-२२ ॥

""सुवहा गोधापदी, कालिका कालेयकं, शुकाख्या चर्मकारवटः, शुकशिम्बामपरे, नैचुलं फलं जलवेतसफलं, काकादनी वायसतिन्दुकः, वर्षाभूः श्वेतपुनर्नवा, बृहतीद्वयं स्थूलफला चणकफला च""॥ २३-२४ ॥

""व्योषं त्रिकटुकम्। ""गोपवल्ल्युदके सारिवाक्वाथे"" ॥ २५-२६ ॥

""तामलकी दलफलिका, उग्रा वचा, जीवन्ती पटोलसमानपत्रा कन्दवती पश्चिमदेशे प्रसिद्धा, लाटदेशे स्थूलवल्ली विलक्षणैव, पुष्करं पुष्करमूलं, भूतीकं रोहिषं कणा पिप्पली, अग्निः चित्रकः, तेजोवती काकमर्दनिका""॥ २७-२९ ॥

""वातहरैः पञ्चमूलप्रभृतिभिः""॥ ३१ ॥

""तिमिरो नखरागिपत्रः 'तिवरिया' इति प्रसिद्धः, कर्कटाख्यः कर्कटश्रृङ्गी; केचित् 'कर्कटाख्या' इत्यत्र 'कर्कटाख्यश्च' इति पठन्ति, तत्र कर्कटाख्यः तृणजातिः। श्वावित् सेढिका, तस्याः सूचय एव रोमाणि। कोला चव्यम्। मागधिकाकणा पिप्पलीतण्डुलाः। शल्लकाङ्गजं शल्लकशकलं; अन्ये 'शल्लका गजं' इति पठन्ति, तत्र शल्लका शल्लकी, गजं नागकेशरम्। नृत्तकौण्डको मर्कटकः; केचित् 'नृत्तकौण्डकबीजानि' इत्यत्र 'नीचैःकदम्बबीजानि' इति पठन्ति, तत्र नीचैः कदम्बबीजानि लघुकदम्बबीजानि""॥ ३२-३५ ॥

""सप्तच्छदः सप्तपर्णः"" । धाना भृष्टयवाः"" ॥ ३६ ॥

""तर्पणं सक्तवः"" ॥ ३७-३८ ॥

""कोलमज्जा बदरमज्जा, मज्जाशब्द आकारान्तोऽप्यस्ति, तेन मज्जामिति साधुपाठः। 'तालमूलम्' इत्यत्र 'तालमूलीम्' इति केचित् पठन्ति; तत्र तालमूली मुषली। ""नीपं बृहत्कदम्बफलं, कदम्बं लघुकदम्बवृक्षफलं"" ॥ ३९ ॥

""कृष्णा पिप्पली। कर्कटाख्या कर्कटश्रृङ्गी ॥ ४० ॥

""कणा पिप्पली"" ॥ ४१ ॥

""तलकोटः अङ्कोठः। उत्कारिका लप्सिका"" ॥ ४५ ॥

""छदनं पत्रकम्, आमिषं गुग्गुलुः। उरुबूकमूलं रक्तैरण्डमूलम्"" ॥ ४९-५० ॥

""मधूच्छिष्टं मदनम्। शालनिर्यासो राला"" ॥ ५१ ॥

""तुरुष्कः सिह्लकः"" ॥ ५२ ॥

""जाङ्गला एणादयो लावादयश्च। उरभ्रो मेषः। आनूपाः कच्छपादयः"" ॥ ५४ ॥

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

अध्यायः ५२

....श्रृङ्गी कर्कटश्रृङ्गी। अब्दं मुस्ता। अमराह्वो देवदारुः.... ॥ १४ ॥

....फलत्रिकं त्रिफला, व्योषं त्रिकटु, देवकाष्ठं देवदारु ॥ १५ ॥

....तुगा वंशलोचना, अन्ये वंशलोचनानुकारि पार्थिवं द्रव्यमाहुः। ....सितोपलां शर्करां ....। धात्री आमलकीफलं, कणा पिप्पली, विश्वं शुण्ठी, सितोपला शर्करा। दध्नो मण्डेन मस्तुना ॥ १७-१८ ॥

...गायत्रिसारा खदिरसारः.... ॥ १९-२० ॥

....सौवीरकेण काञ्जिकेन.... ॥ २१ ॥

....आलं हरितालम्। छगलाम्बु छागमूत्रम्.... ॥ २२ ॥

....अम्बु वालकम्। पुराह्वया शल्लकी, गुग्गुलुमपरे.... ॥ २४ ॥

....उत्कारिकां लप्सिकाम्। नागराढ्यां शुण्ठ्यधिकाम्.... ॥ २५ ॥

....प्रच्छर्दनं वमनम्। कायशिरोविरेका इति कायविरेको विरेचनं, शिरोविरेको नस्यभेदः; स च पिप्पल्यादिकृतः। ....विशोषणं लघुरूक्षाल्पभोजनम्, अन्ये नानाप्रकारलङ्घनमाहुः; तथा चोक्तम्—"चतुःप्रकारा संशुद्धिः पिपासा मारुतातपौ। पाचनान्युपवासश्च व्यायामश्चेति लङ्घनम्"—इति। ....कृमिघ्नानि यानि द्रव्याणि सुरसादीनि तान्याहुः। ....व्योषं त्रिकटुकम्। सिन्धु सैन्धवम्। त्रिकण्टो गोक्षुरकः। हुतभुक् चित्रकः। अम्भोधरः मुस्तम्.... ॥ २८-३१ ॥

....प्रियालः चारः। मधूलिका मर्कटकः.... ॥ ३४ ॥

...रक्ता मञ्जिष्ठा, अञ्जनं सौवीराञ्जनं, समानतन्त्रदर्शनात्, वह्निः अजमोदा, मूर्वा चोरस्नायुः; उपकुल्या पिप्पली.... ॥ ३५ ॥

....ग्रन्थिकं पिप्पलीमूलं, व्योषं त्रिकटु, इभकृष्णा हस्तिपिप्पली, सिन्धु सैन्धवं, अग्निः चित्रकः.... ॥ ३८-४१ ॥

....इभकणा गजपिप्पली। आत्मगुप्ता कपिकच्छूः। ग्रन्थिकं पिप्पलीमूलम्। अग्निः चित्रकः। यवासो धन्वयवासकः, पूर्वपदलोपात्.... ॥ ४२-४६ ॥

....कुलीरः कर्कटः, शुक्तिः जलशुक्तिः, चटको ग्रामचटकः, एणः कृष्णमृगः.... ॥ ४७ ॥

अध्यायः ५३

....मार्कवो भृङ्गराजः, ...। आर्तगलः ककुभः ॥ १० ॥

....अग्निको अजमोदा.... ॥ ११ ॥

अध्यायः ५४

....किणिही कटभी ॥ २४ ॥

....पारिभद्रः पर्वतनिम्बः। पत्तूरः शिखालिका.... ॥ २६ ॥

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

'''अश्वशकृच्चूर्णं घोटकपुरीषचूर्णम्। वैडङ्गं विडङ्गचूर्णम्। 'वैडङ्गम्' इत्यत्र 'बैडालम्' इति केचित् पठन्ति; तत्र बिडालविट्चूर्णमिति व्याख्यानम्'''' ।'''मूषिकपर्णी दन्ती, अन्ये मूषिककर्णाख्यं द्रव्यान्तरमाहुः ।''''धान्याम्लं काञ्जिकम्'''' ॥ २७ ॥

'''श्वाविधः सेढायाः''' ॥ ३० ॥

''''त्रपु रङ्गं 'कथीर' इति लोके। दधिमस्तुग्रहणं अन्यमस्तुनिषेधार्थं; अन्ये 'दधिमस्तुना' इत्यत्र दधिग्रहणं कूर्चिकामस्तुपरिहारार्थमिति व्याख्यानयन्ति। तन्न, दधिमस्तुग्रहणेन कूर्चिकामस्तुग्रहणमसम्भवं, सर्वनिबन्धविरोधात् समानतन्त्रविरोधाच्च ॥ ३२ ॥

अध्यायः ५५

'''भद्रदारु देवदारु। घनं मुस्ता। मूर्वा चोरस्नायुः। मधुकं यष्टीमधु'''' । दुःस्पर्शा दुरालभा। एर्वारुः ग्रीष्मकर्कटिका''' ॥ २१-२५ ॥

''''पीलुः उष्ट्रप्रियो गुडफलः, भादानके 'पीलु' इति प्रसिद्धः। अम्लपाचनैः अम्लं काञ्जिकं, पाचनानि चित्रकादीनि,''''। स्वर्जी स्वर्जिकाक्षारः''' ॥ ४३-४४ ॥

'''अग्निकः अजमोदा। पथ्या हरीतकी। पलङ्कषा गुग्गुलुः''' ॥ ४५ ॥

''''वर्षाभूः पुनर्नवा।''''आरेवतफलं गिरिमालकफलम्'''' ॥ ४६-४७ ॥

''''निर्दहनी अग्निमन्थः, गणिकारिकेत्यन्ये ॥ ४८ ॥

''''इक्ष्वाकुः कटुतुम्बी। विशल्या काष्ठपाटला, इन्द्रवारुणीत्यन्ये। किण्वं सुराबीजं; अग्निकः अजमोदा।''''अग्निः चित्रकः ।४९॥

'''मदनं मदनफलं,''''। निदिग्धिका कण्टकारी''' ॥ ५१ ॥

''''निकुम्भो दन्तीवृक्षः, कम्पिल्लः रोचनिका, श्यामा अरुणमूला त्रिवृत्, इक्ष्वाकुः कटुतुम्बी, अग्निकः अजमोदा, कृतवेधनं कोशातकीभेदः, मागधी पिप्पली, लवणानि सैन्धवादीनि''' ॥ ५२-५३ ॥

अध्यायः ५६

'''कलिङ्ग इन्द्रयवः। गृञ्जनो रसोनभेदः''' ॥ १४ ॥

'''अम्लेन काञ्जिकेन।''''त्रिवर्गौ त्रिफलात्रिकटुकौ'''' ॥ १५-१६ ॥

''''क्षवः फणिज्जकाकारः प्रायशः पारियात्रे भवति। 'क्षवकाणि वाऽपि' इत्यत्र 'क्षवकाग्निकान् वा' इति केचित् पठन्ति। अत्रापि अम्लेनेति सम्बध्यते। ''''निकुम्भो दन्ती'''' ॥ १७ ॥

'''केचिन्मातुलुङ्गीं मधुकर्कटीमाहुः''' ॥ १८ ॥

''''माक्षिकं मधु''' ॥ २६ ॥

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

अध्याय: ५७

…केचित् एलशब्देन एलवालुकं मन्यन्ते, पदेऽपि पदैकदेशप्रवृत्तेः। 'एलजलेन' इत्यत्र 'उष्णजलेन' इति पाठान्तरम्। लवणोत्तमं सैन्धवम्…… ॥ ६ ॥

…करीरो गूढपत्रो मरुदेशेऽतिप्रसिद्धः कण्टकिवृक्षः, मूर्वा चोरस्नायुः; अभया हरीतकी, केचिदभयं मन्यन्ते, तन्मते उशीरं, अक्षं बिभीतकं; इन्द्रवृक्षः कुटजः; नृपवृक्षः गिरिमालकः।……निर्दहनी चित्रकः, अजमोदा इत्यन्ये।……द्विरदमूत्रं हस्तिमूत्रम्। तुगा वंशरोचनानुकारि पार्थिवं द्रव्यमाहुः। रजनीं च मुख्यां पिण्डहरिद्राम्। ……मण्डूकी ब्राह्मी, अमृता गुडूची, लाङ्गली कलिकारिका… ॥ ९-११ ॥

……मूलं पिप्पलीमूलादि। फलं दाडिमादि। षाडवा रसालाद्याः। रागाः कपित्थरागादयः। केचित् "सितारुचकसिन्धूत्थैः सवृक्षाम्लपरूषकैः। जम्बूफलरसैर्युक्तो रागो राजिकया कृतः॥ मधुराम्लकटूनां तु संस्काराः षाडवा मताः" इत्याहुः; अपरे तु षाडवशब्देन यवानीषाडवमाहुः, तन्त्रान्तरसंवादात्; रागशब्देन च रागषाडवं मत्वा द्राक्षादाडिमाद्यन्वितं मुद्गयूषमिति च व्याख्यानयन्ति…… ॥ १२ ॥

…त्रीण्यूषणानीति त्रिकटुकम्। यवयूको यवक्षारः… ॥ १३ ॥

अध्याय: ५८

…अष्ठीला उत्तरापथे दीर्घवर्तुलपाषाणविशेषः, अन्ये चर्मकाराणां लौहीं भाण्डीमाहुः… ॥ ७-८ ॥

…एर्वारुः ग्रीष्मकर्कटिका।……धान्याम्लं काञ्जिकम्…… ॥ २९ ॥

……सुरा पिष्टकृता… ॥ ३० ॥

…वर्चः पुरीषम्। रासभो गर्दभः। वाजी घोटकः… ॥ ३५ ॥

…मूर्वा चोरस्नायुः। मधुकं यष्टीमधु… ॥ ३६ ॥

……अक्षो बिभीतकः… ॥ ३७ ॥

…त्रपुसः सुधावासः।……श्वेतं कर्कटकं त्रपुसम्… ॥ ४१-४२ ॥

……श्वदंष्ट्रा गोक्षुरकः, क्रौञ्चः पक्षिविशेषः, 'कैंचर' इति लोके, कोकिलाक्षकः खग्गली, शतपर्वको जलगण्डीरः। अक्षबीजं बिभीतकमज्जा…॥ ४४-४५ ॥

……नलः स्वनामप्रसिद्धः शुषिरपर्वा, अश्मभेद; पाषाणभेदः, एर्वारु ग्रीष्मकर्कटिका, बीजकः असनसारः… ॥ ४७ ॥

…यावशूको यवक्षार। पारिभद्रः पर्वतनिम्बः, अन्ये पारिभद्रशब्देन कण्टकिवृक्षं रक्तकुसुमं फलभद्रसंज्ञकं वदन्ति। ऊषणं पिप्पली…… ॥ ४८ ॥

……ताम्रचूडवसा कुक्कुटवसा…… ॥ ५२ ॥

……स्वयङ्गुप्ता कपिकच्छूः, इक्षुरकः कोकिलाक्षकः…… ॥ ५३-५७ ॥

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

""कोलास्थि बदरमज्जा, मधुकं यष्टीमधु, श्वदंष्ट्रा गोक्षुरकः, इक्षुरकः कोकिलाक्षः, सहस्रवीर्या दूर्वा, अंशुमती शालपर्णी, पयस्या अर्कपुष्पी, दुग्धिकामन्ये काला कालानुसारिवा, श्रीपर्णिकामन्ये, शृगालविन्ना पृश्निपर्णी"" ॥ ५८-६४ ॥

""चित्रफला गुडदुग्धिका इन्द्रवारुणीपर्याया"" ॥ ६५-७२ ॥

अध्यायः ५९

""श्वदंष्ट्रा गोक्षुरकः। अश्मभित् पाषाणभेदः। कुम्भी स्थलकुम्भी यस्यास्त्वक् वक्रा भवति। गिरिकर्णिका अपराजिताभेदः। विदारिगन्धादिः प्रथमो गणः। संहृत्य एकीकृत्य। त्रैवृतं तैलं घृतं वेति तत्र त्रिभिर्घृतवसामज्जभिर्वृतं तैलं, तैलवसामज्जभिर्वृतं घृतं वा त्रैवृतम्"" ॥ १७-१८ ॥

अध्यायः ६०

""कुल्माषा यवपिष्टकृताः शृङ्गाटकादयः, ""अतिमुक्तको माधवीलता 'अवेतक' इति लोके, अम्बुजानि उत्पलादीनि"" ॥ ३४ ॥

""अजः छगलः ॥ ३८-३९ ॥

""गजाह्वा गजपिप्पली। मार्जारो बिडालः, ऋष्यो नीलाण्डो मृगभेदः"" ॥ ४० ॥

""खरो गर्दभः, अश्वतरो वेसरः, करभ उष्ट्रः, श्वा कुक्कुरो मांसवर्गे प्रोक्तलक्षणः"" ॥ ४१-४२ ॥

"'सिद्धार्थकः श्वेतसर्षपः। कृष्णा पिप्पली"" ॥ ४३ ॥

""लशति भिनत्ति रोगानिति लशुनम्। सिद्धार्थकः सिद्धप्रयोगारम्भकत्वात् श्वेतसर्षपः। गोलोमी दूर्वा। अजलोमी श्वेतदूर्वा। भूतकेशी मांसी। जटा गन्धमांसी। कुक्कुटा कुक्कुटशिम्बी, वर्तमानप्रतिषु कुक्कटीति दृश्यते, कुक्कटी कुक्कटस्त्शकन्दा महौषधिः। सर्पगन्धा वर्षासु छत्राकारा। काणविकाणिके काकोलीक्षीरकाकोल्यौ। तथेत्यत्र तिक्तेति, 'विकाणिके' इत्यत्र 'विषाणिके' इति च केचित् पठन्ति। तिक्ता कटुतुम्बी, विषाणिका मेषशृङ्गी। वज्रप्रोक्ता वज्रकन्दः, स्नुहीत्यन्ये; 'वज्रप्रोक्ता' इत्यत्रान्ये 'ऋष्यप्रोक्ता' इति पठन्ति; वयःस्था गुडूची। शृङ्गी कर्कटशृङ्गी। मोहनवल्लिका वटपत्रिका। लता प्रियङ्गुः। स्रोतोञ्जनं पर्णसानद्यां सिन्धुनदे वा भवति। तल्लक्षणम्—"वल्मीकशिखराकारं रूपे नीलोत्पलद्युति। स्रोतोञ्जनं प्रशंसन्ति तच्च प्रत्यञ्जने हितम्—"इति। नैपाली मनःशिला। रक्षोघ्ना ये प्रकीर्तिता इति श्वेतसर्षपाः। 'रक्षोघ्नं यच्च कीर्तितं' इत्यन्ये, तत्र रुद्राक्षं; अपरे तु 'यद्यद्रक्षोघ्नमीरितं' इति पठन्ति, गुग्गुलुप्रभृतीनीति च व्याख्यानयन्ति। ऋक्षो भल्लूकः। द्वीपी चित्रकः। मार्जारो बिडालः। वाजी घोटकः। श्वावित् सेहि (ढि) केति लोके। शल्यको गोधानुकारी वज्रशल्यकः"" ॥ ४६-५३ ॥

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

अध्यायः ६१

""शिग्रुः शोभाञ्जनकः, कट्वङ्गः अरलुः, स्योनाक इत्यन्ये, किणिही श्वेतस्यन्दः; ""। गवां मूत्रे इति चेतोविकारहरत्वेन हस्तिच्छागभेडमूत्राणां निर्दिष्टत्वात्तन्निषेधार्थं 'गवां मूत्रे' इति कृतम्"" ॥ २२-२३ ॥

""नागो हस्ती । पृषतः चित्रलो मृगः । ऋक्षो भल्लूकः"" ॥ २४ ॥

""कोलं बदरम् । पलङ्कषा गुग्गुलुः । जटिला मांसी । ""पथ्या हरीतकी"" ॥ २७-२८ ॥

""पयः क्षीरम् । सिता शर्करा"" ॥ २६ ॥

""मूत्रवर्गेऽष्टविधे"" । अन्ये मूत्रवर्गेष्वित्यत्र चेतोविकारहरत्वेन छागोरभ्रहस्तिमूत्राणि गृह्णन्ति ॥ ३० ॥

""सुरद्रुमः देवदारु । सिद्धार्थः सर्षपः । व्योषं शुण्ठीमरीचपिप्पल्यः । रजनीयुग्मं हरिद्राद्वयम् । समङ्गा लज्जालुः । अम्बुदो मुस्ता । शैरीषं शिरीषबीजम् । गिरिकर्णी श्वेतस्यन्दा । हुताशनः चित्रकः"" ॥ ३१-३३ ॥

""इन्द्रवृक्षः कुटजः, "" । मूर्वा चोरस्नायुः । फल्गुः काष्ठोदुम्बरिका । ""भूनिम्बः किरातकः । पूतीकः चिरबिल्वः । व्योषं त्रिकटुकम् । निशायुग्मं हरिद्राद्वयम् । सारिवाद्वयम् आस्फोता काकवल्ली च । पौष्करं पुष्करमूलम् । यासो दुरालभा, दन्ती दन्तिनी, उग्रा वचा, नीलिनी रजनिका शारदाफला; कृमिशत्रुः विडङ्गम् ""॥ ३४-३७ ॥

अध्यायः ६२

""कुल्माषान् वेति यवपिष्टमयान् भक्ष्यान्"" ॥ २०-२६ ॥

""ब्राह्मी मण्डूकपर्णी, अन्ये लवणिकामाहुः । ऐन्द्री इन्द्रवारुणी, अन्ये मत्स्याक्षकभेदमाहुः । सुरा सुराह्वं, अन्तलोपात्; अन्ये तु इन्द्रसुरा इन्द्रवारुणी; इन्द्रशब्दलोपात् । जटा जटामांसी । विषघ्नी हरिद्रा, अन्ये निर्विषामाहुः । विशल्या गुडूची । सुरसा तुलसी । ज्योतिष्मती काकमर्दनी । नागरं शुण्ठी । अत्रान्ये 'नागविन्नाम्' इति पठन्ति, नागविन्ना इन्द्रवारुणीभेदः, वृश्चिकपत्रिकेत्यपरे । अनन्ता उत्पलसारिवा । अभया हरीतकी । सौराष्ट्री तुवरिका"" ॥ ३०-३२ ॥

अध्यायः ६३

रसभेदकथने प्रयोजनमाह—दोषाणामित्यादि । यः पञ्चदशप्रकारो व्रणप्रश्नाध्याये दोषाणां प्रसर उक्तः, तद्रसभेदानां त्रिषष्ट्याः प्रयोजनमुच्यत इति सम्बन्धः । अत्र पञ्चदशधेत्युपलक्षणं, तेन दोषभेदानां त्रिषष्टिरपि गृह्यते । अयमभिप्रायः—त्रिषष्टिप्रकाराणामपि दोषभेदानामुपयोगार्थं रसभेदा उक्ताः ॥ ३ ॥

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

कीदृशा रसास्त्रिषष्टिभेदान् यान्तीत्याह—अविदग्धा इत्यादि। अविदग्धा असंयुक्ता एकाकिनः समवायतो भिद्यन्त इत्यर्थः। विदग्धाः संयोगतः समवायतश्च संयुक्ता रसान्तरसंयोगाद्भिद्यन्ते। विदग्धशब्दः संयुक्ते वर्तते, धातूनामनेकार्थत्वात्। भिद्यन्ते एकैकेनानुगमनाद्भेदं यान्तीत्यर्थः। ते रसाः। तत्र यथासंभवं केचित् संयोगतः केचित् समवायतश्च भिद्यन्ते। संयुक्ता यथा—बदरकपित्थफलादिकं मधुराम्लं (१), उष्ट्रीक्षीरोरभ्रमांसादिकं मधुरलवणं (२), कुक्कुरशृगालमांसादिकं मधुरकटुकं (३), श्रीवाससर्जरसादिकं मधुरतिक्तं (४), तैलधन्वनफलादिकं मधुरकषायं (५); ऊषकादिकं अम्ललवणं (६); चुक्रादिकं अम्लकटुकं (७), सुरादिकं अम्लतिक्तं (८), हस्तिनीदधिशुकमांसादिकं अम्लकषायं (९), त्रपुसीसादिकं लवणतिक्तं (१०), गोमूत्रस्वर्जिकादिकं लवणकटुकं (११), समुद्रफेनादिकं लवणकषायं (१२), कर्पूरजातीफलादिकं तिक्तकटुकं (१३), लवलीफलहस्तिनीघृतादिकं तिक्तकषायं (१४), भल्लातकमज्जाहरितालादिकं कटुकषायम् (१५), एवं द्विरसभेदाः पञ्चदशधा दर्शिताः। अतः परं रसत्रितयभेदा वक्ष्यन्ते—हस्तिमांसादिकं मधुराम्ललवणं (१), शल्यकमांसादिकं मधुराम्लकटुकं (२), गोधूमोत्थसुरादिकं मधुराम्लतिक्तकं (३), मस्तुतक्रादिकं मधुराम्लकषायं (४), काणकपोतमांसादिकं मधुरलवणंकटुकं (५), शम्बूकादिमांसं मधुरलवणतिक्तं (६), पद्मकन्दादिकं गुडसंयुक्तं मधुरलवणकषायं (७), तृणशून्याफलशुष्ककुस्तुम्बर्यादिकं मधुरकटुतिक्तकं (८); गोधामांसैरण्डतैलादिकं मधुरकटुकषायं (९), गुडूचीशाखामृगामिषतुवरकतैलादिकं मधुरतिक्तकषायं (१०); रोप्यशिलाजत्वादिकम् अम्ललवणकटुकं (११), हस्तिमूत्रादिकम् अम्ललवणतिक्तं (१२), सरोमकं हस्तिनीदध्यादि अम्ललवणकषायं (१३), मरिचसंस्कृतसुरादिकम् अम्लकटुतिक्तकं (१४), अम्लवेतसादिकम् अम्लकटुकषायं (१५), कीरमांसयुतसुरादिकम् अम्लतिक्तकषायं (१६), अविमूत्रादिकं लवणकटुतिक्तं (१७), अरुष्करं सरोमकं लवणकटुकषायं (१८), समुद्रफेनादिकं लवणतिक्तकषायं (१९), कृष्णागरुसुरदारुस्नेहादिकं कटुतिक्तकषायं (२०), एवं त्रिकभेदा विंशतिर्दर्शिताः। अतः परं चतुःसंयोगाः पञ्चदशप्रकारा वक्ष्यन्ते—गोमूत्रान्वितशिलाजतुप्रभृतिकं मधुराम्ललवणकटुकं (१), गोमूत्रैकशफक्षीरादिकं मधुराम्ललवणतिक्तकं (२), सैन्धवान्विततक्रादिकं मधुराम्ललवणकषायं (३), लशुनान्वितं सुरादिकं मधुराम्लकटुतिक्तं (४), काञ्जिकान्वितैरण्डतैलादि खदिरान्वितशिलाह्वादिकं च मधुराम्लकटुकषायं (५), उदुम्बरान्वितं यवासशर्करादिकं मधुराम्लतिक्तकषायं (६), वार्ताकफलादिकं मधुरलवणतिक्तकटुकं (७); गोमूत्रान्विततैलादिकं मधुरलवणकटुकषायं (८), तिलगुग्गुल्वादिकं

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

मधुरकटुतिक्तकषायं (९); समुद्रफेनशर्कराचित्रकान्वितबदरादि मधुरलवणतिक्तकषायं (१०); सुवर्चलान्वितहस्तिनीदध्यादिकृतसुरादिकम् अम्ललवणकटुतिक्तं (११), सौवर्चलान्वितहस्तिनीदध्यादिकं अम्ललवणकटुकषायं (१२); औद्भिदलवणान्वितं शुकमांसादिकम् अम्ललवणतिक्तकषायं (१३), बालमूलकहस्तिनीदध्यादिकं अम्लकटुकतिक्तकषायं (१४), सरोमकं बालबिल्वादिकं लवणकटुतिक्तकषायं (१५); एवं चतुष्करससंयोगाः पञ्चदश कथिताः। अतः परं पञ्चरससंयोगाः षड् वक्ष्यन्ते—आमकरमर्दान्वितं भृष्टवार्ताकफलादिकं मधुराम्ललवणतिक्तकषायं (१); कटुत्रययवक्षारान्वितक्रादिकं मधुराम्ललवणकटुकषायं (२), औद्भिदान्वितक्रादिकं मधुराम्ललवणतिक्तकषायं (३), हरीतकीधात्रीफलादिकं मधुराम्लकटुतिक्तकषायं (४), रसोनादिकं मधुरलवणकटुतिक्तकषायं (५); भल्लातकरौप्यशिलाजतुमिश्रितनिम्बादिकम् अम्ललवणकटुतिक्तकषायं (६); एवं पञ्चरससंयोगाः षड् दर्शिताः। अतः परं षड्रसं वक्ष्यते—एणमांसादिकं मधुराम्ललवणकटुतिक्तकषायम्। अतः परमेकैकरसानाह—सन्तानिकागोदुग्धादिकं मधुरं (१), आमकरमर्दादिकम् अम्लं (२), रोमकादिकं लवणं (३), चव्यादिकं कटुकं (४), निम्बपर्पटादिकं तिक्तं (५), पद्मन्यग्रोधाद्यङ्कुरादिकं कषायं (६); एवं षट् कथिताः। अनेन प्रकारेण त्रिषष्टिः कथिताः। कार्तिककुण्डस्त्वमुं पाठमन्यथा आपातनिकां कृत्वा व्याख्यानयति; तद्यथा—दोषाणां पञ्चदशधा प्रसरो भेदः, तस्य बहुभिस्त्रिषष्टिरसभेदैः सह प्रयोगो दुर्घटः; अतो दोषभेदानामपि बहुत्वमाह—अविदग्धा इत्यादि। अविदग्धा अप्रकुपिताः; विदग्धाः कुपिता दोषाः; यद्यस्मिन् पाठे दोषाणां त्रिषष्टिभेदा उक्ताः, तर्हि पूर्वपाठे पञ्चदशधा प्रसरः किमित्युक्तः? सत्यं, कुपितदोषस्यात्यन्तचिकित्सनीयत्वापादनार्थम्; अन्यत् ग्रन्थगौरवभयात् परित्यक्तम्॥ ४॥

पूर्वमविदग्धा विदग्धाश्च रसा एकैकेनानुगमनाद्भिद्यन्त इत्युक्तं, तदेव स्मारयति—एकैकेनानुगमनमित्यादि। भागशः अंशांशतया। रसानामेकैकेनानुगमनं प्रवर्तनं यदुदीरितमस्मिन्नध्याये भणितं, तद्वशात्ते रसास्त्रिषष्टिधा भिद्यन्त इति पूर्ववाक्येन सह सम्बन्धः। तां च रसभेदत्रिषष्टिं, मतिमान् ऊहापोहविद्वैद्यः, तत्र दोषभेदेषु प्रयोजयेत्। मतिमानिति पदात् यादृशा एव दोषाणां हीनाधिकभावेन भेदास्तादृशा एव रसभेदा योज्या इति सूचयति। अन्ये तु 'एवमेवानुगमनं' इति पठित्वा दोषाणामेवं भागशोऽशांशबलविकल्पेनैकं प्रत्येकस्यानुगमनं दोषभेदीये यदुदीरितं तत्र रसभेदत्रिषष्टिं योजयेदिति। यद्यपि दोषभेदीये यद्वक्ष्यते इति सुन्दरं नतु यदुदीरितमिति; तथाऽपि भाविनि भूतवदुपचाराद्दोषभेदीये यदुदीरितमिति कृतम्। अपरेऽत्रामुं पाठमन्यथा पठित्वा बहु जल्पन्ति, तच्च ग्रन्थगौरवभयाच्छिष्यबुद्धिव्याकुलहेतुत्वाच्च परित्यक्तम्॥ ५॥

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

सप्तम अध्याय

डल्हण द्वारा व्याख्यात सिद्धान्त विषयक विवेचना

द्रव्यगुण शास्त्र के सैद्धान्तिक पक्ष में द्रव्यविषयक तथा तदाश्रित रस-गुण-वीर्य-विपाक-प्रभाव एवं कर्मविषयक सिद्धान्तों का समावेश होता है। आचार्य डल्हण ने अपनी निबन्ध-संग्रह-टीका में एतद्विषयक मूल-सूत्रों की ग्रन्थकार के भावों को स्पष्ट करने वाली जहाँ सुगम व्याख्या की है वहाँ विषय से सम्बन्धित अतिरिक्त सामग्री का समावेश कर वृद्धि भी की है।

प्रथम खण्ड में हमने ऐसे सभी सन्दर्भों का संग्रह किया है। इनका सारांश निम्न प्रकार से है—

१. द्रव्य

द्रव्य के विषय में विविध गुत्थियाँ आचार्य श्री ने अपनी टीका में खोली हैं, जो मुख्य रूप से निम्न प्रकार से हैं—

(क) उन्होंने द्रव्य के लक्षण तथा द्रव्य की प्रधानता के विषय में दिए व्यवस्थित कारण पर प्रकाश डाला है।

(ख) द्रव्य वर्गीकरण के प्रकरण में स्थावर एवं जंगम दो भेद बताकर पुनः पार्थिव द्रव्यों का वर्णन किया गया है। सुश्रुत-संहिता के इस मूल कथन पर आचार्य ने अपना मन्तव्य देकर स्थावर एवं पार्थिव वर्ग-विषयक समाधान किया है। वर्गीकरण में विभिन्न भेदों में उदाहरण रूप में कितने ही अतिरिक्त द्रव्य बताए गए हैं।

(ग) द्रव्यों को नाम, रूप एवं योग के अनुसार विभाजन करने पर प्रकाश डाला गया है और बताया गया है कि एक ही द्रव्य भिन्न-भिन्न देशों में भिन्न-भिन्न नामों से जाना जाता है। इसी सन्दर्भ में आचार्य ने मार्गदर्शन किया है कि द्रव्य के परिचय हेतु किन-किन स्रोतों से ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।

(घ) संशमन वर्ग में द्रव्य के वातशामक, पित्तशामक और कफशामक भेद बताकर द्रव्यों की क्रिया भूतानुसार बताई गई है।

द्रव्यविषयक अग्रलिखित व्याख्या अवलोकनीय है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

संहितागत मूलपाठ	व्याख्या
१. 'द्रव्यम्' सू० ४०/१ ।	१. 'द्रव्यमौषधमुच्यते' ।
२. "द्रव्यलक्षणं तु' क्रियागुणवत् समवायिकारणम् इति" सू० ४०/३ ।	२. "क्रियागुणवत् इति क्रियागुणवद्द्रव्यमित्यर्थः; क्रिया कर्म, गुणा उक्ता विंशतिः । समवायिकारणमपि द्रव्यमेव; यथा—पटे तन्तवः; घटे मृत्पिण्ड इत्यादि । न च क्रियायां क्रिया समवेता न गुणेषु गुणाश्च समवेता इति ।"
३. "द्रव्यं प्रधानं, कस्मात् ? व्यवस्थितत्वात्, इह खलु द्रव्यं व्यवस्थितं न रसादयः, यथा—आमे फले ये रसादयस्ते पक्वे न सन्ति" सू० ४०/३ ।	३. "द्रव्यप्राधान्यं प्रथमं सकारणं प्रतिपादयन्नाह; व्यवस्थितत्वादिति द्रव्यं हि व्यवतिष्ठते न रसादयः यथा—आम्रफलमेकमेव प्रथमं कषायाम्लं पश्चादम्लं ततो मधुरमपि भवति, न तु तदेवाम्र फलं आम्रातकं कोशाम्रं वा भवति ।"
४. "द्रव्याणि पुनरोषधयः । तास्तु द्विविधाः स्थावरा जङ्गमाश्च" सू० १/२८ ।	४. "द्रव्याणि पुनरोषधय इति ओषधिशब्दोऽत्र सानिध्यात् वक्ष्यमाणस्थावरजङ्गमराशिद्वय एव वर्तते, न पुनर्यावदोषधिमात्रे; अन्यथा हि पार्थिवेष्वप्योषधिशब्दो वर्तत इति पार्थिवानामुपादानं पृथङ्नस्यात् । अन्ये तु पार्थिवेष्वपि ओषधिशब्दो वर्तत इत्याहुः ।"
५. "स्थावराश्चतुर्विधाः—वनस्पतयो, वृक्षा, वीरुध, ओषधय इति । तासु अपुष्पाः फलवन्तो वनस्पतयः, पुष्पफलवन्तो वृक्षाः प्रतानवत्यः स्तम्बिन्यश्च वीरुधः फलपाकनिष्ठा ओषधय इति" सू० १/२९ ।	५. अपुष्पा इति अविद्यमानपुष्पाः, फलवन्त इति फलं येषामास्ति ते वनस्पतय इति, के पुनरीदृशाः ? प्लक्षोदुम्बरादयः । पुष्पफलवन्तो वृक्षा इति उभययुवता वृक्षाः; के ते ? आम्रजम्बूप्रभृतयः ।........ प्रतानवत्यः विस्तारवत्यः वीरुधः, न केवलं प्रतानवत्यो वीरुधः

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

संहितागत मूलपाठ	व्याख्या
	स्तम्बिन्यश्च गुल्मिन्यश्च, गुल्मः पुनः वर्तुललतासन्ततिविटपः; ताश्च विदारीकोलवल्लीशालपर्णीपृश्निपर्णी प्रभृतयः""। फलपाकनिष्ठा इति निष्ठा नाशः, फलपाकेन परिणतया नाशो यासां तास्तथोक्ताः, ते पुनर्गोधूमादयः। अन्ये तु निष्ठाशब्दं प्रत्येकं सम्बध्नन्ति, फलनिष्ठा पाकनिष्ठा इति; तत्र फलनिष्ठाः 'शालितिलकुलत्थादयः' पाकनिष्ठा कवकादयः।
६. "जङ्गमाः खल्वापि चतुर्विधाः ""' सू० १/३०।	६. "जरायुजादिषु पूर्वोक्तसंस्वेदजादिक्रमत्यागो योनिसंकरं बोधयति; तेन पक्षिषु बलाका जरायुजा अण्डजाश्चेति; सर्पजातिषु अहिपताका जरायुजा, संस्वेदजेष्वपि काश्चित् पिपीलिका अण्डजा उद्भिज्जाश्च। ""तदुक्तं—"सर्पजातिषु अहिपताका जरायुजा।" इति।
७. "लोको हि द्विविधः स्थावरो-जङ्गमश्च""तत्र चतुर्विधो भूतग्रामः संस्वेदजरायुजाण्डजोद्भिज्जसंज्ञः" सू० १/२२।	७. """स्थावरः वृक्षादिः। जङ्गमः मनुष्यादिः। ""भुवः शरीरस्य च संस्वेदादूष्मणो जाताः संस्वेदजाः; जरायोर्जाता जरायुजाः, जरायुर्गर्भाशयः अण्डाज्जाता अण्डजा। ""भुवमुद्भिद्य जाता उद्भिज्जाः। ""चतुर्धा निपतितानामूष्माणं विना कस्यचित् सिद्धिर्नास्तीति संस्वेदजस्य प्राङ्निर्देशः।"
८. तत्र स्थावरेभ्य"""स्वरसादयः ""	८. स्वरसादय इत्यादि ग्रहणात्तैलक्षार

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

संहितागत मूलपाठ	व्याख्या
जङ्गमेभ्य''''रुधिरादयः'' सू० १/३१ ।	भस्मकण्टकप्रभृतीनां ग्रहणम् ।'''' रुधिरादय इत्यादि शब्दान्मांस-वसाघृतास्थिखुरादयः ।
९. ''पार्थिवा सुवर्णरजत''''कपाला-दयः'' सू० १/३२ ।	९. ''''''सुवर्णस्येह पार्थिवत्वमेवाङ्गी-क्रियते गुरुत्वकाठिन्यस्थैर्यादिहे-तुभिः । सूत्रे आदिग्रहणाल्लोहमल-सिकतासुधाहरिताललवणगैरिक-रसाञ्जनप्रभृतीनां ग्रहणं । यद्यपि स्थिति शीलत्वात्तथा लोकद्वित्व-समाख्यानेऽपृथगुक्तत्वाच्च स्थावर शब्देनैव पार्थिवा उच्यन्ते, तथाऽप्यत्र प्रकरणाद्येष्वाहारोप-योगित्वं फलमूलाद्यवयवेषु रस-प्रधानतया तत्रैव चतुर्विधे वनस्पत्यादिगणे स्थावरशब्दो वर्तत्ते न तु पार्थिवेष्वपि, तेषामाहारेषु प्रायेणानुपयोगात्, अन्यदपि समाधानान्तरमस्ति, तच्च विस्तारभयान्न लिखितम् ।''
१०. ''ओषध्योऽमृतकल्पास्तु''''विवर्ज-येत्'' सू० ३/५१ ।	१०. ''ओषधीनां ज्ञानमपि नामरूपयोग-भेदात्त्रिविधं, तत्रनामादिषु मध्ये योगज्ञानं प्रधानं, इदं च योगज्ञानं शास्त्रज्ञाने सति भवति, तस्मा-देतान् विवर्जयेदिति, एताञ्छास्त्र-ज्ञान बहिष्कृतान विशेषेण परि-हरेत् ।''
११. ''तत्र लोहितशालि''''प्रभृतयः शालयः'' सू० ४६/४ ।	११. ''अत्र लोहितशाल्यादयस्तेषु तेषु देशेषु तैस्तैर्नामभिः प्रसिद्धाः, एकमेव हि द्रव्यं नानादेशेषु नाना-शब्दैरभिधीयते, यथा बह्वोऽन्नं भक्तमाहुः, दाक्षिणात्यास्तु

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

संहितागत मूलपाठ	व्याख्या
	कूरमिति, तत्र दाक्षिणात्येषु भक्तसंज्ञा चैव प्रसिद्धाः तदितरेषु पुनः कूरसंज्ञेति तस्मात्तु शूकशमीकुधान्यानि नानादेशजकृषीवलेभ्यो ज्ञेयानि; मृगास्तु नानादेशीयव्याधेभ्यः शाकुनिकेभ्यः पक्षिणः; कन्दमूलफलाशिभ्यो वनेचरतपस्विभ्यः कन्दमूलफलानि; शाकानि तु ग्राम्यारण्यवासिभ्यः, कृतान्नानि तु सूदेभ्यः; भेषजद्रव्याणि पुनः क्रय्याणि वणिग्भ्यः अक्रेयाणि पुनर्मूलादीनि तापसवनेचरेभ्य इति।"
१२. 'वातसंशमनो वर्गः' सू० ३९/७।	१२. "यावद्भूजलानलगुण बहुलं द्रव्यं वातसंशमनम्। प्रभृति ग्रहणान् माषतिलातसीप्रभृतीनां ग्रहणम्।"
१३. 'पित्तसंशमनो वर्गः' सू० ३९/८।	१३. "ख भूमिजलानिलभूयिष्ठं तदपि पित्तशमनं ग्राह्यम्। 'प्रभृति-ग्रहणादनुक्तमपि मधुरतिक्तकषायं द्रव्यं ग्राह्यम्।"
१४. 'श्लेष्मसंशमनो वर्गः' सू० ३९/९।	१४. "तेजोऽनिलाकाशगुणभूयिष्ठमनुक्तमपि द्रव्यं कफसंशमनम्। प्रभृतिग्रहणादनुक्तकटुतिक्तकषायाणामुपसंहारः।"

२. रस

रस के लक्षण और रस की व्यक्तता एवं अव्यक्तता पर प्रकाश डालते हुए रसों के भौतिक संगठन एवं वर्गीकरण पर डल्हण ने बड़ी ही उत्तमता से प्रकाश डाला है। उन्होंने द्रव्यों के उदाहरण रसानुसार दिये हैं एवं रसों के कर्मों पर उपयुक्त एवं अपेक्षित व्याख्या भी की है।

रसविषयक विशेष सन्दर्भ आगे द्रष्टव्य हैं।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

(१) रस का पर्याय आचार्य ने अस्वाद कहा है—'आस्वादतो रसात्' सू० ४६/३३।

(२) रस की व्यक्तता एवं अव्यक्तता पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने यह बताया है कि—

"व्यक्तरसा रसेन्द्रिय ग्राह्यमधुरादिरसता", सू० ४५/११।

"अव्यक्तरसं मधुरादिरसविशेषानुपलब्धेः", सू० ४१/४।

(३) रसों के भौतिक संगठन, प्रकरण में लवण रस में जल एवं अग्नि महाभूत की प्रधानता बताई गई है, जो एक दूसरे से विपरीत है। इस पर आचार्य ने सुन्दर व्याख्या करते हुये प्रभाव से इसका कारण बताया है—

"उच्यते, पृथग्व्यवस्थितयोर्जलाग्न्योर्विरोधो न पुनः सहोत्पन्नयोरेककार्ययोः; प्रभावाद् वा जलान्तर्गतमप्येतत् तेजो नोपहन्यते।"

(४) मूल संहिता में रसों का अग्निसोमात्मक वर्गीकरण किया गया है। इस पर आचार्य डल्हण ने निम्नलिखित मन्तव्य दिया है—

"सौम्याश्चाग्नेयाश्चेति चकारद्वयात् स्नेहरूक्षगुरुलघुत्वैरपि द्वैविध्यं संसूचयति" सू० ४२/७।

(५) मधुरादि षट्-रसों के द्रव्यों का निर्देश करते हुए निम्नलिखित कथन व्यक्त किया है—

(क) मधुर रस : मधुराणि काकोल्यादीनि — चि० ५/८।
स्वादूनि द्राक्षामधूकसारिवादीनि — उ० ३९/१७९।
मधुरफलं तालनारिकेलादि — सू० २१/२३।
मधुराणां द्राक्षादीनां, वाताममाभिषुकादीनां च — सू० ४६/४३२।
मधुरैः काकोल्यादिभिः — उ० ४०/१०८।
मधुरैः यष्टीमधुकादिभिः — उ० १७/७९।

(ख) अम्लरस : अम्लैः बीजपूरककपित्थ-चुक्रिका-वृक्षाम्ल-काञ्जिकादिभिः — उ० ४०/१०८।
साम्लं सतिन्तिडीकादि द्रव्यम् — सू० ४६/३८९।
अम्लैर्दाडिमतकादिभिः — उ० ४२/१२६।
ईषदम्लैः दाडिमामलकैः तेषामेवाम्लेषु प्रधानत्वात् — सू० १४/३८।
अम्लफलानि आम्रातकादीनि — उ० २१/२१।
अम्लानि सुरामस्त्वारनालबीजपूरचुक्राणि — उ० २१/२८।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

(ग) कटुरस : कटूनि त्रिकटुकादीनि — उ० ५३/१५ ।
कटुकं मरिच्यादि — सू० ४६/३५२ ।
कटुकैः शुण्ठ्यादिभिः — सू० ४६/३७६ ।
कटुकानि पिप्पल्यादीनि — उ० ४७/२८ ।

(घ) तिक्तरस : तिक्तानि पटोलादीनि — चि० ५/८ ।
तिक्तादीनि दुरालभापपंटककिराततिक्तक प्रभृतीनि — उ० ३६/१७६ ।
तिक्तैस्तु निम्बादिभिः — चि० ६/५३ ।

(ङ) कषायरस : कषायरस द्रव्यं, तच्च लोध्रादिकं अन्ये तु हरीतक्यादिकं पञ्चवल्कलादिकं चाहुः — सू० १४/४० ।
कषायाणि पद्मोत्पलप्रभृतीनि — उ० ३६/१७६ ।
पञ्चकषायाः न्यग्रोधोदुम्बरप्लक्षाश्वत्थगर्दभाण्डाः — उ० ३८/२५ ।

(६) तिक्त रस : रसों के कर्म पर विशेष व्याख्या निम्न प्रकार से है—'तिक्तैर्द्रव्यैः स्यादामपाचनम्' — उ० ४०/६० ।

इसकी व्याख्या में आचार्य डल्हण ने लिखा है—"एवं विशिष्टैस्तिक्तैर्दुरालभा गुडूच्यतिविषा प्रभृतिभिरामपाचनं पित्तातिसारे बोद्धव्यम् । ननु, तिक्तानि शीतवीर्याणि कथमामातिसारे पाचनानि ? उच्यते, ज्वरातिसारादौ तिक्तान्यपि पाचनान्येवाभिमतानि, उक्तं च—स्वेदनं लङ्घनं कालो यवागवस्तिक्तकोरसः । पाचनान्य विपक्वानां' इति । अन्ये तु तिक्तानि अर्कागरू प्रभृतीन्युष्णवीर्याणि पाचनीयानि; नान्यानि तेषां शीतवीर्यत्वात् ।"

आचार्य प्रियव्रत शर्मा तिक्तरस के आम पाचन कर्म पर दिये गए उपर्युक्त स्पष्टीकरण को सन्तोषजनक स्वीकार नहीं करते (डल्हणाज कॉमेण्ट्स ऑन ड्रग्स, पृ० ९४) ।

कषायरस : "कषायरस प्रभावात् कफहरित्वमवृष्यत्वं च ज्ञेयम् ।" सू० ४६/३५

रसों के दोषों पर कर्म : "ये रसाः वातशमना मधुराम्ललवणाः ।
ये रसाः पित्तशमना मधुरतिक्तकषायाः ।
ये रसाः श्लेष्मशमनाः कटुतिक्तकषायाः ।
सू० ४०/६

३. गुण

गुर्वादि गुणों की संख्या बीस है । सुश्रुत-संहिता में तीन अतिरिक्त गुण बताये गए हैं—व्यवायी, विकाशी एवं आशुकारी ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

आचार्य डह्लण ने गुणों पर विशद टिप्पणी की है जो सर्वथा मन्तव्य एवं द्रष्टव्य है—

गुरुलघु गुण : गुरुमात्रागुणविपाकेभ्यः — उ० ४०/३ ।
द्रव्यतो गुरुं माषमहिषवराहपिशितादिकम् — सू० ४६/४६३ ।
लघुता अगुरुत्वम् आकाशगुणः — सू० १४/६ ।
लघुरिति रक्तशालिजांगलमांसादि द्रव्यं लघु — चि० १/१३२ ।
सुलघु पुराण रक्तशाल्यादि — उ० ३४/१४५ ।

शीतोष्ण गुण : शीत इति असंयुक्तस्य वायोर्गुणोऽयम् — नि० १/७ ।
उष्णैरिति उष्णस्पर्शैः न तूष्णवीर्यैं — सू० ४५/१४४ ।

स्निग्धरुक्ष गुण : द्रव्यं स्निग्धं सर्पिरादि — सू० १२/१५ ।
रूक्षो गुणस्तद् (स्निग्ध) विपरीतो रौक्ष्यकाठिन्यकरः— सू० ४६/५१६ ।
रूक्षाणि चणकादीनि — उ० ५०/३ ।
परूषौ रूक्षौ — नि० १६/५ ।
परूषं खरस्पर्शम् — उ० ७/२६ ।

मृदुतीक्ष्ण गुण : मृदुकोमलम् — सू० १५/२१ ।
मृदुसत्व कर्शनं न भवति — उ० ४१/३३ ।
तीक्ष्ण इति तीक्ष्णगुणकर्मकरत्वात् — सू० ४६/५४ ।
तीक्ष्णं हि द्रव्यमचिरकारी भवति — सू० ४५/२०५ ।
तीक्ष्णं दाहपाक स्रावकरम् — क० ८/८३ ।
तीक्ष्णं पित्तकोपि — उ० ४४/३ ।
तीक्ष्णं राजिकामरिच्यादिवत् — क० २/१६; सू० २१/११ ।
तीक्ष्णैः दन्तिद्रवन्ती प्रभृतिभिः — उ० ४२/८ ।
तीक्ष्णौषधानि चिरबिल्वचित्रकादीनि — चि० १/३ ।

पिच्छिल विशद गुण : उपलेपिभिः पिच्छिलादिभिः — नि० ७/७ ।
पिच्छिलं श्लेष्मस्पर्शवत् — उ० ४३/१६६ ।
पिच्छिलमिति विशदविपरीतम् — उ० ५८/२५ ।
मृत्स्नं चेति पिच्छिलम् — सू० १५/२१ ।
पिच्छिलद्रव्याणि शाल्मलीशेलुवटपर्णादीनि — सू० ३७/११ ।
पिच्छिला अरलुशाल्मलीप्रभृतयः — उ० ४०/१०२ ।
विशदः पिच्छिल विपरीतः — सू० ४६/७० ।
विशदं अपिच्छिलम् — क० २/२० ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

विशदम् रूक्षम् — चि० १२/२० ।
विशदं निर्मलम् — सू० ४५/११२ ।
परूषं अपिच्छिलम् — सू० १४/१ ।
विशदं धूलिवत् — सू० ४१/४ ।

सान्द्रद्रव गुण : संहतं सान्द्रम् — सू० ४६/७९ ।
सान्द्रम् घनम् — सू० ४५/१९८ ।
क्षुधं तृणं द्रवत्वात् — सू० ४६/३४२ ।

श्लक्षण कर्कश गुण : श्लक्ष्णो मसृणः — चि० १/७ ।
श्लक्ष्णो अकर्कशः — सू० ११/१६ ।
कर्कशं खर स्पर्शम् — सू० ४६/२९७ ।
खरः कर्कशः — सू० ४६/५१६ ।
खरः खरस्पर्शः कर्कोटकफलवत् — नि० १/७ ।
कर्कशी शाकपत्र सदृशैः — नि० १६/५ ।

स्थूलसूक्ष्म गुण : स्थूलं स्थूलावयवं पिष्टान्नादि — नि० ४०/३ ।
सूक्ष्मं सूक्ष्मस्रोतोनुसारि — सू० ४५/११२ ।
सूक्ष्मं सूक्ष्म स्रोतोऽवगाहनशीलम् — सू० ४६/३१६ ।

स्थिरसर गुण : स्थिरः कठिनः — उ० १७/५५ ।
स्थिराणि अविसर्पीनि — चि० ६/३ ।
स्थिरं शरीरावयवस्थैर्यकारि — सू० १५/२१ ।
स्थैर्यमचलत्वम् — सू० ४१/३ ।
सरं प्रसरणशीलम — सू० १५/२१ ।
सरस्यभावः सरत्वमानुलोम्यम्, गयी तु विसरण स्वभावां सरत्वमाह — चि० ३३/३३ ।
सरैः विरेचनद्रव्यैः — उ० २१/३० ।

व्यवायी गुण : व्यवायीति समस्तदेहं व्याप्य पश्चात् पाकं गच्छति विषमद्यवत् — सू० ४१/४ ।

विकाशी गुण : विकाशि सन्धिबन्धविमोचकम् — सू० ४५/११२ ।
विकाशिभावेन धातोः शैथिल्यकरणसामर्थ्यम् — चि० ३३/३३ ।
विकाशि प्रसर्पदप्रसर्पद्धातु बन्धनशैथिल्यकारि — क० २/२० ।

आशुकारी गुण : आशुकारि शीघ्रकारि — उ० ४७/३ ।
आशुशीघ्रं प्रहणनकारि — क० २/१९ ।

योगवाही गुण : यादृग्द्रव्येण संयोज्यन्ते तादृक् कर्म कुर्वन्तीति योगवाहित्वम् — सू० ४५/१४२ ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

यद्यपि सुश्रुत-संहिता में परादि गुणों का वर्णन नहीं है तो भी आचार्य डल्लण ने अपनी टीका में कुछ पर आपाततः विशद टिप्पणी की है जो निम्नांकित है —

युक्ति-योजना : युक्तिविशेषो योजनाविशेषः तोयाग्नि संस्कारवासना मात्राकालाद्यपेक्षः — सू० ४१/५।
योजना-प्रयोगः प्रकृष्टो योगः — सू० ८/२०।

संयोग : संयोगः एकद्वित्र्यादि द्रव्येण संहतीभावः — सू० २०/३।

विभाग : विभक्तिर्विभागः समुदायात् पृथक्करणम् — शा० ७/१।

पृथक्त्व : विविक्तता शरीराणां भावानां सिरास्नाय्वस्थिपेशीप्रभृतीनां जाति व्यक्तिभ्यां मिथः पृथक्त्वम् — शा० १/१६।

परिमाण : परिमाणमिति स्वं सर्वतोमानम् — सू० १५/३७।

४. वीर्य

आचार्यश्री ने वीर्य के विषय में अनेक स्थलों पर व्याख्या की है, जिसमें वीर्य के लक्षण, स्वरूप एवं भेद के सम्बन्ध में टिप्पणी किया है। एक स्थान पर प्रभाव को वीर्य का अर्थान्तर कह दिया है, जो भ्रमोत्पादक प्रतीत होता है।

वीर्य के स्वरूप पर प्रकाश डालने वाले निम्नलिखित अर्थ अवलोकनीय हैं—

(क) येन कुर्वन्ति तद् वीर्यम् —सू० ४६/२०८ (चरकानुसार)।

(ख) वीर्यं शक्तिः —सू० ६/१५, चि० २४/७७, ३८/५०, ४१/१६।

(ग) औषधस्य सारं—वीर्यम् —चि० १/११७।

इसके अतिरिक्त आचार्य डल्लण ने और भी स्पष्ट करते हुए शीतोष्णादि को शक्तिमान् गुण कहा है और शक्ति तथा शीतोष्ण आदि में अन्तर स्पष्ट करते हुए लिखा है—

(क) वीर्यं शक्तिः; शीतोष्णादयो वाऽष्टौ शक्तिमन्तो गुणाः — सू० ४१/५।

(ख) वीर्यशब्दः शक्त्यभिधायकः न तु शीतादिवीर्यवाचकः — सू० ४५/१५७।

(ग) वीर्याणि शीतोष्णादीनि — सू० १/३८।

(घ) अल्पवीर्या अल्पशक्तयः; अन्ये तु वीर्यशब्दं शीतोष्णरूपवीर्यवाचिनं मन्यन्ते — सू० ६/११।

वीर्य के भेदों के विषय में उन्होंने स्पष्ट विवेचन किया है—

(क) द्विविधवीर्यस्याति शीतोष्णवीर्यभेदेन — सू० १४/३।

(ख) आग्नेयं अग्निभूताधिदैवत्स्वभावम् सौम्यं सोमभूताधिदैवतस्वभावम् — सू० १/२२।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

(ग) वीर्यं शीतोष्णमष्टविधं वा — सू० ४/५।

(घ) अष्टविधवीर्यस्येति शीतोष्णस्निग्धरुक्ष विशदपिच्छिलमृदुतीक्ष्ण-भेदेन — सू० ४/५।

ये अष्टभेद सुश्रुतानुसार हैं। कभी-कभी आचार्यश्री ने चरक के मत को भी लिखा है, जैसे—

वीर्यसंज्ञका गुणाः पिच्छिलविशदतीक्ष्ण मृदवो गृह्यन्ते तथा गुरुलघुवीर्यं च — सू० २०/१७।

वास्तव में चरक-संहिता में अष्टविध वीर्य के अन्तर्गत गुरु-लघु का समावेश किया गया है जबकि सुश्रुत-संहिता में गुरु-लघु के स्थान पर विशद पिच्छिल की गणना की गयी है।

वास्तव में अग्निसीमात्मक सृष्टि में वीर्य भी दो ही प्रकार के कहे गये हैं परन्तु आचार्यश्री ने साधारण को तीसरा भेद बताते हुए लिखा है—

(क) प्रायेणहि सर्वं द्रव्यं शीतोष्णं, न तृतीयो राशिरस्ति, अतो द्वावैव अग्नीषौमौ भूयांसौ — सू० १/२२।

(ख) अनुष्णशीतमिति साधारणम् — सू० १/२२।

(ग) नात्युष्णशीता काकमाची यथा — चि० ८/२९।

(घ) उभयसाधारणानि नातिस्निग्धरूक्षाणि स्वास्थ्यवृत्तिकराणि द्रव्याणि षष्टिकरक्तशालि लावकदाडिम तण्डुलीयकादीनि — सू० १५/३४।

(ङ)शीतलाश्च गणाः काकोल्याद्युत्पलादिन्यग्रोधादयः — सू० ३७/४।

(च) आग्नेयानां च द्रव्याणां इति तिलभाष सुरा शुक्तादीनाम् — सू० १५/१२।

(छ) उष्णं उष्ण वीर्यम्, तेनानूपमांसं मधुरतिक्तं काकमाच्यादि कटु च यत् किञ्चित् उष्णवीर्यं तद् गृह्यते — चि० १५/१७।

(ज) उष्णैरुष्णवीर्यैः वचादि पिप्पल्यादिमुष्ककादि गणैः अन्ये तु उष्णवीर्यं अजगन्धादिभिः मिश्रोक्तैः — चि० १९/१२।

(झ) उष्णगणाः भद्रदार्वादयः पिप्पल्यादयश्च — चि० १७/४।

(ञ) द्रव्याण्युष्णानि उष्णवीर्याणि कुष्ठागुरुप्रभृतीनि — सू० ३७/९।

(ट) उष्णस्य भाव औष्ण्यं सौम्यद्रव्योपमर्दनकरणसामर्थ्यम् — चि० ३३/३३।

आचार्यश्री ने वीर्य के विषय में इतना कहने के साथ-साथ यह भी कह दिया कि वीर्य और प्रभाव में कोई अन्तर नहीं। ज्ञातव्य है कि सुश्रुत-संहिता में प्रभाव का पृथकशः निर्देश नहीं किया गया है। यह माना जाता है कि डल्हणाचार्य

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

का यह मन्तव्य कि 'प्रभाव वीर्य का पर्यायवाची है', भ्रमोत्पादक है (डल्हणाज कॉमेण्ट्स ऑन ड्रग्स, पृ० ६६)।

(क) वीर्यं शक्तिः प्रभावः इत्यनर्थान्तरम् — चि० ३५/२५।

(ख) वीर्यं च अचिन्त्य क्रियाहेतुः — सू० ४५/११।

(ग) द्रव्यरस गुणविपाकैर्यत् कर्म कर्तुं न शक्यते तत् कर्म कुर्वन प्रभावो वीर्यमुच्यते, तथाहि वीर्यं शक्तिरुत्पत्ति विशेषः सामर्थ्यं प्रभाव इत्यनर्थान्तरम् — सू० ४०/१।

वास्तव में वीर्य को चिन्त्यशक्ति और प्रभाव को अचिन्त्य-शक्ति माना जाता है।

५. विपाक

विपाक का लक्षण स्पष्ट करते हुए श्री डल्हणाचार्य ने लिखा है—

विशिष्टः पाको विपाकः — सू० ४०/१०।

विपाकं सुखपरिणामम् — उ० ६४/६६।

यद् द्रव्यं परिणामकाले स्वाभाविकं रसं परित्यज्य रसान्तरं भजते तत्र 'विपाक' इति संज्ञा — सू० ४०/१।

विपाक के भेद को बताते हुए उन्होंने निर्देश किया है—

द्वौ विपाकौ गुरुलघू — सू० १/३८।

गुरुश्चिरपाकी — सू० ४१/३।

गौरवं वातपित्तहारित्वं गौरवं मधुरविपाकित्वमित्यन्ये — सू० ४५/१६३।

रस के कर्म के विपरीत गुणकारिता को विपाक के आधार पर स्पष्ट किया है—

कटुका पिप्पली पित्तं शमयति — सू० ४०/५।

६. प्रभाव

जैसा कि अभी स्पष्ट किया गया है कि सुश्रुत-संहिता में प्रभाव का अलग से वर्णन नहीं है और आचार्य डल्हण ने प्रभाव को वीर्य का अर्थान्तर कहा है, तो भी कितने ही स्थानों पर द्रव्य स्वभाव, प्रकृति, अचिन्त्य शक्ति आदि के द्वारा प्रभाव का ज्ञापन हुआ है। निबन्ध-संग्रह से द्रष्टव्य है—

प्रकृतिः, स्वभावः, शक्तिविशेषः, प्रभावो, वीर्यमित्यनर्थान्तरम् —चि० ३३/३३।

स्वभावो ह्यत्र सहजोधर्मः — सू० १/२४।

यदा द्रव्यप्रभावविशेषेण खर्जूरमातुलुंगसौवर्चलादिस्नेहाभ्यंगादि भिर्नप्रशममेति — चि० ४/७।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

दोषदुष्टिकारित्वेन धातुदूषणकरत्वं न लभ्यते, विशिष्टशक्तित्वाद् द्रव्याणाम् — सू० २०/२० ।

न खलु तलं मेदोघ्नमपि मांसं न करोति, प्रतिनियत शक्तित्वाद् द्रव्याणाम् — सू० ४५/११२ ।

अमीमांस्यानि; कानि पुनस्तानि; खदिर तुवरकरसाञ्जनहरिद्रादीनि कुष्ठघ्नानि, न तु सर्वाणि द्रव्याणि — सू० ४०/१६ ।

मन्त्राणामचिन्त्य शक्तित्वात् — उ० २८/११ ।

एतेन मन्त्रतन्त्राभ्यां तु विषप्रतिकारः — क० ५/८ ।

गुरुत्वलघुत्वे चेह प्रभावविशेषाधिष्ठिते त्रिवृतादिमदनफलादि द्रव्य समवेते ग्राह्ये न तु गुरुत्वलघुत्वमात्रे — सू० ४१/६ ।

क्षीरोत्थघृत'''संग्राहि प्रभावात् — सू० ४५/१०५ ।

वृष्यम् शुक्रवृद्धिकरं प्रभावात् — चि० २४/६६ ।

प्रभाव के सम्बन्ध में एक द्रव्य का प्रभाव कहा है परन्तु द्रव्य-संयोग से जो प्रभाव होता है उस सम्बन्ध में डल्हण ने यह लिखा है—

ऋषयस्त्वेव जानन्ति द्रव्यसंयोगजं फलम् — उ० ५५/५१ ।

उन्होंने उदाहरण देते हुए स्पष्ट किया है—

शालिषु पयोऽनुपानं समानमपि अचिन्त्यत्वात् संयोगशक्तीनाम् — सू० ४६/४२६ ।

संयोगशक्तेवडिचिन्त्यत्वात् — सू० ४६/३६६ ।

योगशक्तिप्रभावात्तिलयवकल्कवत् क्षारस्य शोधनरोपणत्वं न विरूध्यते — सू० ११/५ ।

द्रव्यसंयोगशक्तेऽरचिन्त्यत्वात् — चि० १०/१३ ।

भल्लातकविधानवत्ताहारे क्षीरं कुष्ठकरमपि न विरुद्धं, रसायन शक्तेरचिन्त्यत्वात् — चि० १०/१३ ।

शक्तूनां शीतवीर्यत्वेऽपि प्रभावविशेषात् पाचनत्वं संयोग विशेषाद्वा — सू० ३८/६ ।

प्रभाव के प्रकरण में चरक-संहिता से सूत्र लिये गए हैं—

''यत् उच्यते, कटुकः कटुकः पाके चित्रको वह्निदीपनः । तद्दन्ती प्रभावात्तु विरेचयति सा नरम् ।''

तथा च—''विषं विषघ्नमुद्दिष्टं प्रभावस्तत्र कारणम्'' — चि० ३३/३३ ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

७. कर्म

द्रव्यों के कर्मों को स्पष्ट करते हुए आचार्य डल्हण ने बहुत सुन्दर व्याख्या दी है। कर्मवाचक पारिभाषिक शब्दों को जाने बिना संहिता के रहस्यों को समझ पाना सम्भव नहीं और इस गुत्थी को आचार्यश्री ने अपनी व्याख्या द्वारा सुलझाया है। जहाँ अनेक कर्मवाचक पदों की व्याख्या में उन्होंने सरल अर्थ दिया है, वहाँ निम्नलिखित सूत्र बहुत महत्त्व के हैं—

चक्षुः प्रसादनम् (चि० २४/६६) दृष्टि प्रसादनं, दृष्टिसंयुक्तपाद (दृष्टिगतं) निबन्धन नाड़ी प्रसादनत्वात् प्रभावादित्यपरे।

इतनी महत्त्व की व्याख्या जिसमें दृष्टिसंयुक्तपाद निबन्धन नाड़ी के प्रसादन को लिखा है व्याख्याकार की चतुर्दिक विद्वत्ता का द्योतक है। इसी तरह स्तम्भन एवं संग्राही कर्म किस प्रकार होते हैं इसकी व्याख्या भी डल्हण ने बहुत सुन्दर की है—

"आग्नेयगुणभूयिष्ठं तोयांशं परिशोषयेत्।
संगृह्णाति मलं तत् स्याद् ग्राहि शुण्ठ्यादयो यथा॥
समीरगुणभूयिष्ठं शीतत्वाद् यन्नभस्वतः।
विधाय वृद्धिं स्तंभ्नाति स्तम्भनं तद् यथावटः॥"

(उ० ४०/८५)

इतनी सरल एवं वैज्ञानिक रीति से महाभूतों के आधार की व्याख्या देखते ही बनती है। उन्होंने इसी तरह की व्याख्या अन्य कर्मवाचक पदों की भी की है तथा कुछ के उदाहरण भी दिये हैं। नीचे डल्हण प्रदत्त व्याख्या का संग्रह प्रस्तुत किया जा रहा है—

अग्निसादन	सू० ४५/१२०	अग्निमान्द्यकरण।
अधोभागदोषहर	सू० ४५/११४	अधोभागदोषहरं विरेचनेन दोषहरम्।
अनुलोमन	सू० ४६/५२२	अनुलोमनो वातमल प्रवर्तनः।
	सू० ४२/६	अनुलोमनो वातमूत्रपुरीषाणाम्।
	सू० ४६/३१६	वातानुलोमनं मार्गावृतवातस्य स्रोतः शुद्धिकरत्वेन प्रवर्त्तनम्।
अपतर्पण	सू० ११/४	अपतर्पणं लंघनं, अपतर्पणानि व्यायाम शोधनानि तिक्तकटुकानि च।
अभिष्यन्दी	चि० ४०/३१	उपलेपकारि।
	सू० ४६/५१	दोषधातुमलस्रोतसां।
	चि० ५/१२	क्लेदप्राप्तिजननम्।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

	सू० ४५/२५	दोषान् व्याधीन् झटिति यदभिष्यन्दते उत्पादयति तदभिष्यन्दि, विपर्ययेणानभिष्यन्दि ।
	सू० ४६/१२५	हृदयस्थान्ननिर्यासवाहिस्रोतोमुखानि यत्। भुक्तं लिम्पति पैच्छिल्याद-भिष्यन्दि तदुच्यते ॥ वैशद्यात् कफहन्तृत्वात् तान्येव विवृणोतियत्। तदुक्तमनभिष्यन्दि द्रव्यं द्रव्यविशारदैः ॥
	चि० ३३/५	अभिष्यन्दिभिराहारैर्ग्राम्यानूपौदकमांसपयोमाषादिभिः ।
अमृत	सू० ४५/३	अमृतत्वं, दोषप्रकोपस्याकरणात् अमृतं ब्रह्मरूपम् ।
अविदग्ध	सू० ४५/७	अविवर्णम् ।
अविदाहि	सू० ४५/३८	अदाहकारी ।
अवसादन	चि० १/८३	अवसादनं उन्नतव्रणस्य निम्नत्वकरणम् ।
अवृष्य	सू० ४५/८४	अशुक्रलम् ।
अहृद्य	सू० ४५/११९	अहृद्यम् ।
	सू० ४५/१९८	अप्रियम् ।
आप्यायन	सू० ४६/३६१	आप्यायनः स्मृतिस्वरहीनज्वरक्षीणकृशाल्परेतसां स्वास्थ्यकरः ।
आयुष्य	सू० ४५/४९	आयुषे हितम् ।
आश्वासजनक	सू० ४५/३	मार्गादिशुष्कदेहानां प्राणजननम् ।
आशुकारी	सू० ४६/५२४	आशुत्वात् ।
	उ० ४२/८८	शीघ्रगत्ययकारित्वात् ।
उत्क्लेश	सू० ४६/१२८	थूत्करणम् ।
उत्क्लेदी	सू० ४६/३१९	आर्द्रीभावकारि; अन्ये 'प्रकोपयति श्लेष्मपित्तादीन्' इत्याहुः ।
उत्सादन	सू० ३७/३१	उत्सादनं मांसवर्धनं लेपप्रयोगादुत्सादनं भवति ।
	चि० १/८५	उत्सादनम् निम्नव्रणस्योन्नतिकरणम् ।
उपलेप	सू० ४२/९	मलवृद्धिः ।
उपनाह	चि० २०/५२	पाचन ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

कफप्रसेक	सू० ४२/९	श्लेष्मास्रावः ।
कर्शन	सू० ४५/१७४	कार्श्यकरम् ।
कायविरेक	उ० ५२/२८	विरेचनम् ।
केश्य	सू० ४५/३९	केशेभ्यो हितः ।
कृमिघ्न	उ० ५२/२९	कृमिघ्नानि द्रव्याणि सुरसादीनि ।
गौरव	सू० ४५/१९३	गौरवं वातपित्तहरत्वं, गौरवं मधुरविपाकित्वमित्यन्ये ।
चक्षुष्य	सू० ४५/१३२	चक्षुषे हितम् ।
	सू० ४५/१९९	—
चक्षुःप्रसादन	चि० २४/६९	दृष्टिप्रसादनं, दृष्टिसंयुक्तपाद (दृष्टिगतं) निबन्धननाडीप्रसादनत्वात् प्रभावादित्यपरे ।
छेदन	सू० १५/३५	छेदनीयम् स्रोतोविशोधनीयम् ।
	सू० ४५/१६६	छेदनी कफादीनां पिण्डीभूतानां भेदकारिणी ।
	सू० ४२/९	विश्लेषणः पृथक्करणः प्रत्यवयवानां छेदित्वात् ।
जरण	सू० ४५/२१०	जरणयामस्य ।
	सू० ४५/२१६	जरणं पाचनम् ।
	सू० ४५/१८५	जरणोऽन्नादिपरिणामकारी ।
जीवन	सू० ४२/९	प्राणधारणम् ।
	सू० ४५/३	—
	सू० ४५/२१४	सौम्यधातुवृद्धिकरमिति ।
	सू० ४६/५१७	केचित् ओजोवृद्धिकरम् इत्यन्ये ।
तर्पण	सू० ४२/९	तृप्तिजनकम् ।
	सू० ४५/३	—
	सू० ४६/४३७	—
त्वच्य	सू० ४६/३९	त्वचे हितः ।
तापन	सू० ४१/३	तापनं शरीरादि संतापनम् ।
दन्तहर्ष	सू० ४२/९	दन्तकुण्ठता ।
दन्त्य	सू० ४६/३९	दन्तेभ्यो हितः ।
दारुणीकरण	चि० १/८६	दारुणीकरणं कठिनीकरणम् ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

दीपन	सू० ४६/३४०	दीपनम् जाठराग्नेः ।
	उ० ४०/१८२	दीपनम् अग्निदीपनम् ।
	सू० ४०/१३७	दीपनं चित्रकादिभिः ।
	सू० ४०/१४७	दीपनं चित्रकशुण्ठ्यादीनि (उदाहरण) ।
	चि० ६/९	दीपनं पिप्पल्यादिकम् ।
दोषसंघातभेदन	सू० ४६/४३६	दोषसंघातभेदनं दोषसमूह पृथक्करणम् ।
दोषपाचन	सू० ३८/२८	दोषपाचनो इति आमसृष्टानां दोषानां पाचनः ।
धारण	सू० ४५/३	शस्त्रपातादिव्यथां सुमूर्च्छतां शरीरं दधातीति ।
निर्वापण	चि० १/४९	निर्वापणं नाम पित्तरक्तव्रणस्य पच्यमानस्य ज्वलत इव ओषधादिभिर्वेदनोपशमः ।
प्रक्लेदन	सू० ४६/५२०	प्रक्लेदनः आर्द्रभावकरः ।
प्रच्छर्दन	उ० ५२/२८	वमनम् ।
प्रसेकी	सू० ४६/४४१	लालास्रावी ।
प्रह्लादयति	सू० ४२/९	सुखमुत्पादयति ।
पाचन	सू० ४१/३	पाचनमाहारादिपाकः ।
	सू० ४६/३४०	पाचन आमादीनाम् ।
	सू० ४६/५१५	पाचनो व्रणादीनाम् ।
	सू० ४२/९	पाचनो दोषामयोः शोथस्य वा ।
	चि० ५/२६	पाचनीयानि पञ्चकोलादीनि ।
	सू० ५५/४३	पाचनानि चित्रकादीनि ।
प्राणद	सू० ४५/८२	अग्निसोमादिधारणात् उपचयादिकरणात् ।
प्रीणन	सू० ४५/११२	तृप्तिजनकम् ।
पुंस्त्वोपघात	सू० ४२/३	शुक्रक्षयः ।
पौरुषेय	सू० ४५/२३	वृष्या ।
बन्धकारक	सू० ४६/५२०	बन्धकारक उपचयकारक ।
बलकर	सू० ४५/९२	ओजस्कर ।
बलप्रद	सू० ४६/३४	बलमुपचयशक्तिलक्षणम् ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

बल्य	सू० ४५/२६	उपचयौजःशक्तिकरत्वात् ।
	सू० ४५/४६	मांसोपचयकरणम्, अन्ये ओजसो वर्धनम्, तन्मते 'ओजसो वर्धनम्' ।
वृंहण	सू० ३८/३६	बृंहणः शरीरवृद्धिकरः ।
	सू० ४५/६२, सू० ४१/३, चि० १/१२३	बृंहणं देहोपचयकरम् ।
	उ० ६४/१७	बृंहणं चात्यर्थकर्शितस्योपचयार्थम् ।
	सू० ४५/११२	धातुपुष्टिकरत्वेनशरीरदार्ढ्यावहत्वात् ।
	सू० ४६/४४	वृंहणा न लेखना मांसकरा इत्यर्थः ।
	सू० ४५/६३	देहवृद्धिकरम् ।
	चि० ३/५	—
	सू० ४०/५	शरीरवृद्धिकरम् ।
	सू० १५/४	वृंहणाः शरीरस्य द्रवत्वमूर्तिमत्वाभ्याम् ।
बस्तिशोधन	सू० ४६/५४	बस्तिशोधना इति अश्मरी शर्करा मूत्रकृच्छ्रमूत्राघातादिषु पथ्याः; मूत्रविरेचनकारिणा इत्यर्थः ।
	सू० ३७/११८	बस्तिशोधनैश्च तृणपञ्चमूलादिगणद्रव्यैः ।
मदावह	सू० ४५/२०३	हर्षकारि ।
मादन	सू० ४०/५	मादनं मत्तताकरणम् । एतच्च मदिरादीनां कर्म ।
मार्दवकर	सू० ४६/४३७	शरीरकोमलतोत्पादक ।
मेध्य	सू० ४५/२६, ६६	पवित्रम् ।
	सू० ४५/४६	मेधाजनकं पवित्रं वा ।
	सू० ४५/५३	मेधाजनकम् ।
मेध्यान्न	सू० १५/१४	स्निग्धान्न ।
मूत्रविवर्धन	सू० ४६/१८	मूत्रविवर्धना मूत्रला इत्येके; अन्ये मूत्रविवर्धना मूत्रापकर्षणाः प्रमेहिणां हिताः ।
मूत्रवृद्धिकर	चि० ७/३६	मूत्रवृद्धिकर यवागू गुडक्षीरादिसौहित्यविधानम् ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

मूत्रशोधन	उ० ४०/१०७	मूत्रशोधनैः तृणपञ्चमूलीपाषाणभेद-गोक्षुरप्रभृतिभिः।
	चि० ७/३५	मूत्रविशोधन द्रव्याणि तृणपञ्चमूली गोक्षुरक कूष्माण्डपाषाणभेद प्रभृतिभिः।
यात्राकर	सू० ४६/५२२	यात्राकरः शरीरस्थापयित्वाद् देहस्य यात्रां वर्त्तनं करोति।
रक्षोघ्न	सू० ४५/६६	राक्षसभयहरम्।
रसायन	सू० ४०/५	वयःस्थापनादिकरणम्।
	सू० ४५/२६	विशिष्टरसाद्युत्पादनाद्रसायनं; स्वस्थातुरोपयोगी।
	चि० २७/१	रसादिधातूनामयनमाप्यायनम्, अथवा भेषजाश्रितानां रसवीर्यविपाकप्रभावाणामायुर्बलवीर्याणां वयः स्थैर्यकराणामयनं लाभोपायो रसायनम्।
रोचन	सू० ४५/१६३	रोचिष्णु साधु रोचते, तृप्तस्यापि रुचिकरम्।
रोपण	सू० ११/५	रोपणः शुद्धव्रणस्य।
रोमसंवेजन	सू० ४२/२	रोमाञ्चः।
लंघन	सू० ५२/२६	चतुःप्रकारा संशुद्धिः पिपासा मारुतातपौ, पाचनान्युपवासश्च व्यायामश्चेति लङ्घनम्।
लेखन	सू० ४१/६	लेखनं कफमेदसोः।
	सू० ४५/११२	लेखनं मेदोहरणम्।
	सू० ४०/५ सू० ४५/१३२ सू० ४६/५१६	लेखनं पत्तलीकरणम्।
वमन	सू० ३६/३	ऊर्ध्वभागहराणि वमनकराणि।
	सू० ३६/३	कानिचिद् द्रव्याणि साक्षाद् वामयन्ति कानिचिद् द्रव्यमिलितानि।
	चि० ८/२५	वामनीयम् मदनफलादि।
	चि० ३३/३४	वमनद्रव्याणि तु वाय्वग्न्योः शीघ्रगलघुगुणयोर्गुणभूयिष्ठानि अतः शीघ्रगत्वादपक्वान्येन लघुत्वादूर्ध्वमुत्तिष्ठन्ति।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

वय:स्थापन	सू० ४५/९६	वय:स्थापनमिति यावदेवायुः प्रमितं तावदेवायुः स्थापयत्यनाबाधम् ।
	चि० ३५/३	वय:स्थापयतीत्यनेन आयुर्वृद्धिकरत्वं सूचयति ।
	सू० १/७	वय:स्थापनं वर्षशतायुः स्थापनं, अन्ये तु वयः स्थापनं जरापहरणं, तारुण्यं बहुकालं स्थापयतीत्यर्थः ।
वृष्य	सू० ४५/४९,६५	शुक्रजनकः शुक्रकरः ।
	सू० ४५/७८	शुक्रवर्धन; शुक्रवृद्धिकरत्वप्राप्तये, एतेन जनक प्रवर्तकमुक्तम् ।
	सू० ४५/११२	शुक्रलं, अन्ये धातुपोषणकरणात् ।
	सू० ४६/१७	वृष्याः शुक्रवैरेचनिकाः ।
	सू० ४६/३४३	वृष्यं शुक्रलम् ।
	शा० ४/४०	वृषं स्त्रीरमणशक्तियुक्तः ।
	चि० २४/६६	शुक्रवृद्धिकरं प्रभावात् ।
व्यवायी	सू० ४२/५	व्यवायीति समस्तदेहं व्याप्य पश्चात् पाकं गच्छति विषमद्यवत् ।
	सू० ४५/११२	व्यवायि अपरिणतमेव व्याप्य देहं पच्यते ।
	सू० ४६/३१८	व्यवायीति अपक्वमेव देहमखिलं व्याप्नोति पश्चाद्देहस्थमेव पाकमुपैति ।
	सू० ४६/५२३	व्यवायी गुणः । अपक्व एवाखिलं देहं व्याप्नोति पश्चान्मद्यविषवत् पाकं याति ।
	क० २/१९	व्यवायि सकलं देहं व्याप्य पश्चात् पाकं याति ।
वाजीकरण	सू० ४५/४९	शुक्रप्रवर्तनम् ।
	सू० ४५/१३२	शुक्रल ।
	सू० ४०/५	वाजीकरणं वाजिवद्येनाप्रतिहतः स्त्रियं याति; अन्ये तु वाजिशब्देन शुक्रमुच्यते; ततोऽवाजिनो वाजिनः क्रियन्ते येनेति वाजीकरणं शुक्रोत्पादकमित्याहुः ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

	सू० १४/१७	याभिरोषधिभिः स्त्रीषु नरो वाजीव समर्थो भवति ता वाजीकरण्यः।
वातानुलोमन	सू० ४६/३१६	वातानुलोमनं मार्गावृतवातस्य स्रोतः-शुद्धिकरत्वेन प्रवर्तनम्।
विकाशी	सू० ४५/१७०	सन्धिबन्धविमोचकम्।
	सू० ४६/५२३	विकासी गुणः। विकसन् प्रसर्पन्। एवमिति अपक्व एव सकलं देहं व्याप्य धातुबन्धान् विमोक्षयेत् धातुशैथिल्यं करोतीत्यर्थः। अन्ये तु सरविशेषो व्यवायी; तीक्ष्णविशेषो विकासि इति ब्रुवते; तन्नेच्छति गयी।
	क० २/२०	प्रसर्पदपसर्पद्धातुबन्धशैथिल्यकारी।
विदाही	सू० ४५/१९८	द्रव्यस्वभावादथ गौरवाद्वा चिरेणपाकं जठराग्नियोगात्। पित्तप्रकोपं विदहन् करोति तदन्नपानं कथितं विदाहि॥
	सू० ४५/१९८	"जाठराग्निसंयोगाद्यः पाकमगच्छन् मध्यमायामेव पाकावस्थायां विदह्यमानः पित्तं कुर्वंश्चिरकालमवतिष्ठते न शीघ्रं जरां याति गुरुत्वाद्वस्तुस्वभावाद्वा स विदाहयुक्तो भावो भण्यते" इत्यागमिका; अन्ये विदाहि विविधसन्तापकारि इत्याहुः।
	सू० २१/२१	विदाहीति यदम्लोद्गारदाहतृष्णा प्रभृतीनुदीर्य कृच्छ्रात् पाकमुपगच्छति तद् विदाहि।
	चि० १४/४	विदाहि काञ्जिकादि।
	उ० ५०/३	विदाहीनि मरिचसर्षपमद्यप्रभृतीनि।
विरेचन	सू० ३९/४	अधोभागहराणि विरेचनानि।
	सू० ३९/११	दोषप्रच्यावनं विरेचनम्।
	सू० ३३/३४	विरेचनद्रव्याणि स्थिरगुर्व्योः पृथिव्यम्भसोर्गुणभूयिष्ठानि अतएव स्थिरत्वात् पच्यमानानि गुरुत्वादधो यान्ति।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

	सू० ३५/३५	विरेकोऽपि चतुरंगुलादिमृदुद्रव्याश्रयो मृदुः ।
	चि० १/१२७	दोषप्रच्यावनं त्रिफलाद्राक्षादिकषायादिभिः ।
	उ० ३९/२०९	वैरेचनानि त्रिवृदभयादीनि ।
	उ० ५५/४३	स्नेहविरेचनैः एरण्डतैलादिभिः ।
विरूक्षण	सू० १५/३५	मेदोघ्न ।
विलायन	चि० २४/५१	विलायनं द्रवीकरणम् ।
	सू० १२/२१	उष्णक्रिया पुनः रक्तविलयनकरो भवति ।
	सू० ११/५	विलयनः शोफस्य वातकफभूयिष्ठस्य ।
विष्टम्भ	सू० ४५/११; ५९	गुडगुडाशब्द ।
	सू० ४५/७९, १५८	सवाततोदशूला मलस्याप्रवृत्तिर्विष्टम्भः; "अन्ये विष्टम्भो गुडगुडाशब्दः" ।
	सू० ४६/४७	जीर्यन्ति गुडगुडाशब्दं कृत्वा पाकं गच्छन्तीत्यर्थः । अन्ये "सवाततोदशूला मलस्याप्रवृत्तिं कृत्वा पाकं गच्छन्तीत्यर्थः" ।
	सू० ४६/४९८	विष्टम्भि चणकमसूरादि ।
	उ० ५०/३	विष्टम्भीनि करीरप्रभृतीनि ।
विष्यन्दन	सू० ४१/३	विष्यन्दनं द्रवस्रुतिः ।
	सू० ४६/९१	विष्यन्दि श्लेष्मस्रावि, एतेनश्लेष्मणो जनक प्रवंतकत्वमुक्तम् ।
विशोषण	सू० ४६/२५	विशोषी द्रवधातोः ।
	चि० २/८७	विशोषणं लंघनम् । आहारोऽपि विशोषण एव कटुतिक्तकषायादिः ।
	उ० ५२/२९	विशोषणो लघुरुक्षाल्पभोजनं, अन्ये नानाप्रकारं लंघनमाहुः ।
शिरोविरेक	उ० ५२/२८	नस्यभेदः ।
शिरोविरेचन	सू० ३९/६	शिरोविरेचनानीति नस्य प्रयोगेण शिरस्थं श्लेष्माणं विरेचयन्ति स्रावयन्ति ।
शुक्रल	सू० ४६/१७	शुक्रवृद्धिकरः ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

शोषण	सू० ४२/१०	शोषणो द्रवधातोः व्रणेमेहादीनां वा।
	सू० ११/५	शोषणो व्रणक्लेदस्य।
	चि० १३/९	शोषणो दुष्टरक्तादेः।
शोणितस्थापन	चि० १/३८	शोणितस्थापनं शोणितातिप्रवृत्तिस्तम्भनम्।
शोधन	सू० ११/५	शोधनः दुष्टव्रणस्य।
	सू० ४५/२१७	शोधनानि मलशुद्धिकराणि।
स्कन्दन	उ० १४/३९	स्कन्दनं शोणितस्य स्त्यानीकरणम्।
स्थापन	सू० ४६/४३८	स्थापयेत् न कर्शयति नापि स्थूलयति अपितु मध्यं करोतीत्यर्थः।
स्तम्भन	सू० ४६/६१६	स्तम्भनं अतिसारादीनाम्।
	सू० ११/५	स्तम्भनः शोणितातिप्रवृत्तेः।
	सू० ४२/१०	स्तम्भनो गात्राणां मृदूनां वा दृढीकरणः।
संधान	सू० ४५/१३२	सन्धानं भग्नस्य।
स्नेहन	सू० ४५/९६	स्नेहनं स्निग्धत्वापादकम्।
स्रंसन	उ० २३/३	स्रंसनं विरेकः।
स्वेदन	सू० ४६/१०२	स्वेदनं स्वेदजनकम्।
	सू० ४६/५०५	स्वेदनमिति स्वेदनस्यामवातावजयकारि पाचनत्वात्।
संहनन	सू० ४६/३६१	संहननः क्षतोरसां तथा भग्नविश्लिष्टसन्धीनां सन्धानकरः।
संशमन	सू० ३९/७	सम्यक् शमयतीति संशमनं; सम्यक्त्वं च दुष्टदोषस्यानिर्हरणपूर्वकं शमनं; अदुष्टस्यानुदीरणं च। व्याधिसंशमनं तु प्रस्तुतव्याधेरनुदीरणम्। तदुक्तम्—"न शोधयति यद् दोषान् समानान्नोदीरयत्यपि। समीकरोति च क्रुद्धान् तत् संशमनमुच्यते ॥
	चि० ६/१६	न वामयति न विरेचयति व्याधिना सहैकीभूय तत्स्थमेव व्याधिं शमयेत तत् संशमनम्।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

	सू० १/२७	यत् किञ्चित् पीतलीढादिकमनिर्हृत्य दोषं शमयति तत् संशमनम्; यदुक्तम्—"न शोधयति यद्दोषान् समीकरोति क्रुद्धांश्च तत् संशमनमुच्यते।" तदपि "द्विविधं बाह्यमाभ्यन्तरं च। तत्र बाह्यमालेपपरिषेकावगाहाभ्यंगशिरोवस्तिकवलग्रहगण्डूषादिकं आभ्यन्तरं तु पाचन-लेखन-बृंहण-रसायन-वाजीकरण-विषप्रशमनादिकम्।"
	सू० ३६/६	संशमनानीति यद्द्रव्यं न वामयति न विरेचयति व्याधिना सहैकीभूय तत्स्थमेव व्याधिमुपशमयति तत् संशमनमुच्यते।
	सू० ४०/५	संशमनमिति वमनविरेचनादिकं विना तत्स्थमेव शमयति संशमनम्; संशमनभेदा एव सांग्राहिकादयः।
	सू० ४६/३७३	न विरेकं करोति नापि वमनं किन्तु तत्स्थमेव दोषं शमयतीति संशमनः।
संशोधन	सू० १/२७	सम्यक्शोधयतीति संशोधनम्, तद्विविधं-बहिराश्रयमाभ्यन्तराश्रयं च। तत्र बहिराश्रयं शस्त्रक्षाराग्निप्रलेपादयः; आभ्यन्तराश्रयं चतुः प्रकारं वमनं विरेचनं; आस्थापनं शोणितमोक्षणं च अन्ये तु शोणितमोक्षणमित्यत्र शिरोविरेचनं मन्यन्ते।
	सू० ३९/१	तत्र द्विविधं संशोधनम्—वमनं विरेचनं च।
	सू० ३७/११८	संशोधनैस्त्रिवृदादिभिः।
संग्राही		स्तम्भनादभिन्नता "आग्नेयगुणभूयिष्ठं तोयांशं परिशोषयेत् संगृह्णाति मलं तत् स्याद् ग्राहि शुण्ठ्यादयो यथा। समीरगुणभूयिष्ठं शीतत्वाद् यन्नभस्वतः विधाय वृद्धिं स्तम्भ्नाति स्तम्भनं तद्यथा वयः।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

ह्लादि	सू० ४५/२७	सुखावहम् ।
ह्लादन	सू० ४५/५१५	सुखकारी, दृढस्वेदमूर्च्छादाहजिदित्यर्थः।
हर्षण	सू० ४६/३५३	हर्षणं हर्षोत्पादकम् ।
हृद्य	उ० ४७/५४	मनः प्रियाणि ।
	उ० ६४/७५	हृद्यं हृदयाय हितम् ।
क्षपण	सू० १५/३६	"क्षपणं वृद्धिसाम्ययो ह्रासः। तत्र पित्तं कटुकोष्णत्वाद् धातून्क्षपयति वायुश्च शोषणहेतुत्वात् कफो मार्गावरोधकत्वात् ।"
	सू० १५/१७	क्षपणमत्र संशमनम् ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

अष्टम अध्याय

संहितोक्त वनस्पतियों का डल्लणाभिमत अर्थ

सम्पूर्ण सुश्रुत-संहिता में वर्णित द्रव्यों पर चाहे वे औद्भिद द्रव्य हों, जांगम हों या पार्थिव हों—आचार्य डल्लण ने प्रकाश डाला है। संहिताओं के द्रव्यों को आज उसी रूप में ग्रहण करने की बड़ी समस्या है। इस समस्या के समाधान हेतु उन्होंने बड़ा योगदान दिया है। ज्ञातव्य है कि उन्होंने संहितोक्त द्रव्यों के सरल प्रसिद्ध नाम बताये परन्तु कहीं-कहीं एक ही द्रव्य के लिए एक से अधिक मतानुसार भिन्न-भिन्न द्रव्यों का ग्रहण किया और इस तरह ऐसे द्रव्यों के विषय में संदिग्धता बनी रही। इस अध्याय में हमने उन संहितोक्त द्रव्यों को लिया है जिनके विषय में डल्लण ने निश्चित एक-एक द्रव्य को ही ग्रहण किया है और किसी प्रकार का मतान्तर व्यक्त नहीं किया है। सुश्रुत-संहिता के द्रव्यों को समझाने के लिए डल्लण का यह एक बड़ा योगदान है।

द्रव्यों के नामकरण में उन्होंने कितने ही द्रव्यों के प्रचलित नामों के संस्कृत पर्याय दिये हैं, जैसे—अतिमुक्तक के लिए आवन्तक, अर्कपर्णी को अर्कपत्रा; कीटारि को कीटमारणी; इंगुदी की इंगुका, इन्दीवर को कर्णपूरक; विषघ्नी को निर्विसा; ज्योतिष्मती को काकमर्दनिका तथा इसी तरह के अन्य कितने ही पर्यायों की उन्होंने रचना की है। केवल इतना ही नहीं; अपितु उन्होंने कुछ द्रव्यों का संस्कृत भाषा में नवीन नाम भी प्रदान किया है। इनमें उदाहरणार्थ कुछ निम्नलिखित हैं—

१. बन्धुजीव (सू० ३८/३) का 'मध्याह्न पुष्पक' नाम दिया है जो प्रसिद्ध 'फूल दोपहरिया' का नवीन संस्कृत नाम है।

२. विश्वदेवा (सू० ३८/४) को 'गुडशर्करा' नाम दिया है जो प्रसिद्ध गुलशकरी का रूपान्तर है।

३. जिङ्गनी (सू० ३८/१४) को 'गुडमज्जनिका' नाम दिया है जो 'गुलहुणी' का नवीन नामकरण है।

४. काकनासा (चि० ३७/२०) को 'वायसफला' कहा है।

५. अक्षोड (सू० ४६/१८७) को 'पर्वतपीलु' नाम दिया है।

६. त्रपुस (उ० ५८/४२) का 'सुधावास' नामकरण किया है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

७. क्षवक (सू० ३८/१८) को 'क्षवथुकार' और (सू० ४६/२२१) में 'छिक्काकर' नाम से वर्णन किया है।

८. उन्होंने कालानुसारिवा (चि० २२/६६) को 'कालवल्ली' नया नाम दिया है।

९. कालेयक को 'मलयाद्रि चन्दन' कहा है (३६/६)।

इसी तरह के अनेक नाम डल्हण की महत्वपूर्ण देन हैं।

आचार्य ने दो द्रव्यों के विभेदक स्वरूप को अच्छी प्रकार स्पष्ट किया है, जिससे तद् तत् उपयुक्त द्रव्य का ही बोध हो सके। उदाहरणार्थ, निम्नलिखित वनस्पतियाँ अवलोकनीय हैं—

१. कुम्भीवृक्षा के लिए 'स्थलकुम्भी' (उ० ३/१० और उ० ५६/१७), जलकुम्भी (चि० १७/२७) को 'पानीयकुम्भीका' (उ० ४०/१५५) या 'जलजा' (उ० ३२/७) कहा है जिससे दोनों का अन्तर स्पष्ट रहे।

२. जटा को जटिला से अलग बताने हेतु उन्होंने जटा को 'जटामांसी' (उ० ६२/३०), 'गन्धमांसी' (उ० ६०/४७) तथा 'द्वितीयामांसी' (क० ६/१५) नाम दिया, जब कि जटिला को केवल 'मांसी' (सू० १६/२६; उ० ६१/१८) नाम दिया जो भूतकेशी के लिए निर्दिष्ट था।

इसी तरह उन्होंने कुछ ऐसे नामकरण किए हैं जो केवल एक द्रव्य की ओर ही इंगित करने वाले हैं, यथा—अग्निमन्थ को 'अरणी' कहा (सू० ३७/३) जब कि तर्कारी को 'अरणिका' (सू० ३८/१०) नाम से स्पष्ट किया।

आचार्य ने द्रव्यों के युग्मों के नवीन नाम दिए हैं—

१. कुम्भद्वय : स्थलकुम्भी और जलकुम्भी।

२. बृहतीद्वय : स्थल बृहती एवं चणक बृहती।

३. जीरकद्वय : श्वेत एवं पीत जीरक को ग्रहण किया तथा कृष्णजीरक को नहीं गिना। कृष्णजीरक को उपकुञ्चिका कहा और तीनों को मिलाकर 'जीरकत्रय' कहा है।

४. हरिद्राद्वय : पिण्डहरिद्रा और दारुहरिद्रा।

५. पुनर्नवाद्वय : श्वेत तथा रक्तपुष्पा अथवा पीतपुष्पा कहा है।

इसी तरह डल्हण ने द्रव्यों की उपयुक्त जानकारी देने हेतु बड़ा योगदान दिया है। एक मत वाले द्रव्यों का अग्रलिखित संग्रह प्रस्तुत किया जा रहा है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

संहितोक्त द्रव्य	सन्दर्भ	डल्हणाभिमत द्रव्य
१	२	३
अङ्कलोड्य (पा०)	सू० ४२/११	चिंचोटक
अर्क	सू० ३८/१६	रक्तपुष्प
अर्कालक	सू० ३९/६	अर्कद्वय
अगवृत्तिका (पाठ जेज्जट)	क० ७/२९	शल्लकी
अग्नि	उ० ४४/२३; ५१/२९; ५२/३९, ४२ ५५/५०	चित्रक
अग्निमन्थ	सू० ३७/३; ३८/८, १०; ६८; ३९/७	अरनी तेजोवृक्ष
अग्रकखीर	उ० ४७/६१	रक्तकरवीर
अङ्कोल	चि० ७/१७	अङ्कोट
अजमोदा	सू० ३८/२२	स्वनामख्याता, अन्य यवानिका
अजा	चि० १७/१४	अजगन्धा
अजाजी	उ० ४२/९५; ४७/३१	जीरकविशेष उत्तरापथे।
अर्जुन	सू० १४/३६; चि० १/९८; उ० ३९/२५७; ४०/९६; ४५/३४	ककुभ
अञ्जनकी	चि० १८/३४	नीलाञ्जनिका, शारदफल
अणु	उ० १९/१३	अश्मन्तक
अतिगुहा	सू० १९/२९; क० ८/५१	पृश्निपर्णी शालिपर्णी
अतिच्छत्रा	सू० १९/२९	द्रोणपुष्पी
अतिबला	क० ८/५१	कङ्कतिका
अतिमुक्त (अतिमुक्तक)	सू० ४५/१२०; चि० ३१/५; उ० ४५/१६; ६०/३५	आवन्तक, माधवीलता
अतियवा	सू० ४६/४३	निःशूका कृष्णारुणयवा
अपामार्ग	सू० ३९/६	शिखरी
अब्जकेशरम्	उ० ४०/७४	पद्मकेशर
अब्द	चि० ३८/५१ उ० ४०/६६; ५२/१४	मुस्ता
अभया	उ० ५७/९; ६२/३१	हरीतकी
अभय (पाठान्तर)	उ० ५७/९	उशीर
अभीरु	चि० ३८/५७; उ० ४२/७०	शतावरी
अम्बु	चि० १७/१०; उ० ४७/६१; ५२/२४	बालक
अम्बुजा	उ० ६०/३४	उत्पल
अम्बुद	उ० ३९/२२७; ४५/४०; ५१/२१; ६१/३१	मुस्ता
अम्बुरुह	उ० ४७/५८, ५९	कमल, पद्मोत्पल
अम्भोद	चि० ३८/४४; उ० ३९/२२४; ४०/६६; ४१/५०	मुस्ता
अम्भोधर	उ० ५२/३१	मुस्ता

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

१	२	३
अम्भोरुह	उ० २६/१४; ४५/३३	पद्म
अम्लीका	सु०४६/१३९	चिंचा-वक्रफल
अमरकाष्ठ	उ० ११/८	देवदारु
अमरदारु	चि० ३७/८; उ० ३९/२३०	देवदारु
अमरवरायुध	चि० १७/४१	वज्रकन्द
अमृतवल्ली	चि० १०/१४	गुडूची
अमृता	सू० १२/२३; ३७/२४; चि० २/३९; १८/५; क० ७/२९	गुडूची
अमृताद्वया	चि० ३७/२०	गुडूची एवं हरीतकी
अमराह्व	उ० ५२/१४	देवदारु
अरलु	उ० ४०/४१	श्योनाक भेद
अरविन्द	चि० १७/१०	पद्म
अरिमेद	क० ६/३;	रामक
	सु० १९/२८; ४४/६; ४६/१९७; ४६/२६२; चि० २५/४३; उ० ३१/७; ३९/२२६, २५७, २८३, २८५; ४१/५०	निम्ब
अरुष्कर	सू० ४६/१६०; क० ६/३	भल्लातक
अलर्क	सू० १६/१९; ३८/१६; चि० ६/१२	अर्क
अलाबु	सू० १०/१६; क० १/४१	तिक्तालाबु
अलवणा	सू० ३८/१६; चि० १७/३४	ज्योतिष्मती
असान्द्र	सू० ४६/३५	राजमाष
अवगुत्थ	सू० ४६/२२१	वेगनामा; काकादनी
अवल्गु (अवल्गुजा)	सू० ४६/२६२; ४२/११, चि० ९/५ (पा०); २५/१५; २८/३; ३१/५	बाकुची
अश्मन्तक	सू० २५/२०; ४६/१६३; शा० १०/५७; ५९; क० ५/८५	कोविदार सदृश पत्र (कर्बूदाराकार) यमलपत्रक
अश्मभिद् (अश्मभेद)	सू० ३८/१०; ३९/७; उ० ५८/४७; ५९/१७	पाषाणभेद
अश्वत्थ	सू० ३८/४८	पिप्पल
अश्वमारकः	सू० ३८/६४; चि० ८/४८	करवीर
अश्वमूत्ती	उ० ४२/६४	शल्लकी
अंशुमती	चि० ३/६०; क० ७/२८; उ० ५८/५९	शालपर्णी
अशुक्ल-चन्दन	उ० ५०/१७	रक्तचन्दन
अशोक रोहिणी	सू० ४२/११	कटुका
असन	सू० ३९/१२; ४६/२८४; क० ३/९; उ० १८/९२; ३९/२५७; ४१/५०	बीजक
असनपुष्पक	सू० ४१/८	कृष्णबण्टिक
असित	उ० १२/४८	रसाञ्जन

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust
Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

१	२	३
असितसारिका	उ० १२/४८	श्यामलता (पा०)
असितमुष्कक	सू० ११/११	कृष्णमुष्कक
असितसर्षप	सू० ४६/४९	रक्तसर्षप
अहिपुष्प	चि० १७/२८	नागकेशर
अहिंस्रा	सू० ३७/३	वृहदहिंस्रा
अक्ष	सू० ४६/२००;	बिभीतक
	चि० ३/६७; ९/४४;	
	२५/३४; ३१/६;	
	उ० ४१/५०; ५७/९;	
	५८/३७; ५८/४५	
अक्षत	सू० २९/२९; उ० ३६/७	यव
अक्षपीड	चि० ८/४८	यवतिक्ता
अक्षोड	सू० ४६/१८७	पर्वतपीलु

आ

१	२	३
आटरुषक	सू० ४६/२६२	वासक
आढकी	सू० २०/५;	तुवरी
	२१/१९; ४६/२७	
आत्मगुप्ता	सू० ३७/२६;	कपिकच्छु
	४६/३६; ३८/५२;	
	उ० ५२/४२	
आर्द्रश्रृंगवेर	चि० १४/१०	आर्द्रक
आर्द्राञ्जन	उ० १३/७	रसाञ्जन
आदित्यपर्णी	चि० १५/४४	सूर्यावर्त
आमय	उ० ३९/२५६	कुष्ठ
आमिष	चि० ३७/१५;	गुग्गुलु
	उ० ५१/५०	
आरग्वध	सू० ३८/६;	कृतमाल,
	४४/८४; चि० ८/३०;	किरमाल
	१८/१३;	
	उ० ३९/१७९	
आरेवत	सू० ३८/६४;	गिरिमाल;
	चि० ९/१०; २०/५१	किरमाल
	उ० १२/४२; ५५/४६	कृतमाल
आलुक	सू० ४२/७६	पिण्डालु आदि अनेक प्रकार
आस्फोता	सू० ११/११;	सारिवा
	चि० ६/१३; ९/५४;	
	१८/३९;	
	उ० ३२/३	
आस्फोटा	उ० ३९/२५७	सारिवा/अर्क
आसुरी	सू० ४६/२३८	राजिका (पा०)
आक्ष	सू० ४६/२००	विभीतक फल

इ

१	२	३
इत्कटः	सू० २१/२३;	खग्गली
	चि० ७/९	खगाली
इन्द्रा	क० १/३७	इन्द्रवारुणी
इन्द्रपर्णी	चि० १७/१५	इन्द्रवारुणी
इन्द्रयव	सू० ३८/६;	कुटजफल
	उ० ४०/४४	
इन्द्रवल्ली	उ० २८/७	मरसाण्डक
इन्द्रवृक्ष	सू० ११/११;	कुटज
	उ० ५९/९; ६१/३४	
इन्द्रसुरा	चि० ३७/३४;	इन्द्रवारुणी
	उ० ११/१५	
इन्द्राह्व	चि० ३८/६५	कुटज
इभकणा	उ० ५२/४२	गजपिप्पली
इभकृष्णा	उ० ५२/३८	हस्तिपिप्पली
इभा	उ० ४१/४९	हस्तिनी
इक्ष्वाकु	सू० ३९/३;	कटुकालाबु;
	४३/७;	

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

१	२	३
	चि० १४/१२; ३१/५; उ० ४७/३७; ५५/४९; ५५/५२	कटुतुम्बी, तिक्तालाबु
इक्षुर (इक्षु कः)	चि० ४/३२; १४/१३; २६/३५; क० ६/३; उ० ४२/४०; २/११३; ५८/५४; ५८/५८	कोकिलाक्ष
इक्षुभूत	चि० ९/१३	गुड
	उ	
उग्रा	उ० २३/५; ४१/५० ५१/२७; ६१/३६	वचा
उच्चटा	चि० २६/३५; ३८/८४	घुर्घुरा
उद्दालक	सू० २०/५; २१/१९ २५/३२; ४६/२१; शा० १०/५७; चि० ९/५; ११/६	आरण्यकोद्रव वनकोद्रव
उत्तमा	सू० ३७/१७	त्रिफला
उत्तमारणी	चि० ६/१२; १०/८	योधामल्ली, गोधामल्ली (पा०), उत्तमकरणी
उदकज	उ० ४२/१०८	पद्म
उदकीर्य	सू० ३९/९	चिरबिल्व
उदीच्य	सू० ३९/२०९	बालक
उदुम्बरी	चि० ९/१५	भद्रनामा, काष्ठोदुम्बरिका
उन्मत्त	उ० २१/६	धत्तूरक
उपकुञ्चिका	सू० ४६/२२९	स्थूल जीरक; ईषत् कृष्णा
उशोदिका	सू० ४६/२५६; चि० १/४२	पोई
	ऊ	
ऊषणा	उ० १८/१००	पिप्पली
ऊषण	उ० ५८/४८	मरिच
	ए	
एला	क० ६/१६; उ० १४/७; ३९/२३०; ४७/३१	स्थूलैला; सूक्ष्मैला
एलवालुक	सू० ३८/१४; उ० ३९/२३०	हरिवालुकं कृष्णगन्धिफल;
एलुकाख्य	चि० १९/५९	एलवालुक
एल	उ० ५७/६	एलवालुकम्
एर्वारु	सू० ४२/११; ४५/१२०; ४६/२१६; चि० १८/२९; ३१/५; उ० ५५/२५; ५८/२९; ५८/४७	ग्रीष्मकर्कटी
	ऐ	
ऐरावत (पा०)	सू० ४६/१९१ उ० १२/४२	ऐरावणिका, कृष्णलोहिता अल्पफला; नारङ्गम्

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

१	२	३
ऐरावती	चि० ३८/८६	नागबला
औ		
औदक	चि० १/११४	पद्मकुमुद
ऋ		
ऋषभी	सू० ३८/४ क० ७/१६	कपिकच्छु
ऋषभक	सू० ३८/४; क० ७/१६	वृषभकः अयमपि स्वनामख्यातः
क		
ककुभ	सू० ३१/५; ३८/४८; चि० ९/७; ११/९; १५/२४; क० ६/३	अर्जुन
कक्कोलक	सू० ४६/२०२	बृहत्-कक्कोलक
कङ्कुष्ठ	सू० २८/१३	सुवर्णक्षीरी निर्यास
कटङ्कटेरी	उ० १२/७	दारुहरिद्रा
कट्फल	सू० ३८/१४; ३८/१८; ३८/२८; ३८/४३; ३८/६४	सोम-वल्क
कट्फल	क० ४/७९	काश्मरी
कटभी	क० ५/१८	श्वेतस्यन्द
कट्वंग	सू० ३८/४६; चि० ११/१०; उ० ६१/२३	अरलु, स्योनाक
कटुरोहिणी	सू० ४६/४५१; उ० ५०/२७	तिक्ता कटुका
कठिल्ल	उ० ३९/१५१	पुनर्नवा शाक
कणा	उ० ४०/७७; ५१/२५; ५१/४१; ५२/१८	पिप्पली
कदम्ब	सू० ३८/१४	कदम्ब वृक्ष
कदर	सू० ३८/१२;	खदिराकार श्वेतसार
	चि० ११/९	खदिराकार आपीतसार
कदली	सू० ३८/१४	रम्भा
कपीतन	सू० ३८/४८ क० ६/३	आम्रातक गर्दभाण्ड
कम्बोजिका	चि० १९/४२	कूविका (गयदास मतानुसार माषपर्णी)
कर्कटाख्य	चि० २/३९; उ० ५१/३२	कर्कटशृंगी
कर्कन्धु	उ० ५१/४०	बदर
कर्कारु	सू० ४५/१२०; ४६/२१६; चि० ३१/५	वाड्व; त्रपुष
कर्कारुक	चि० १८/२९	कुष्माण्ड
कर्चूरः (पा०)	सू० ३९/७	शटी
करञ्ज	सू० ३८/६; ३८/१६; ४५/११५	नक्तमाल
करञ्ज-द्वय	सू० ३८/२९	वृक्ष करञ्ज और विटप करञ्ज (कंटकी करञ्ज)

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

१	२	३
कर्दमक	सू० ४६/४	पंक (कीचड़) में पैदा होने वाला
करवीर	सू० ३९/६ उ० ४७/६१	रक्तकरवीर
करहाट	चि० १८/४५	मदनफल
कलशी	सू० ३८/२७; उ० ३९/२२३	पृश्निपर्णी
कलाय	सू० १८/१६; २१/१९ ४६/२७; ४६/२२१; ४६/२२७	त्रिपुटक
कलिङ्ग	उ० ४०/३५; उ० ५६/१४	इन्द्रयव
कशेरुक	सू० ४६/२९८	पिण्डालुक (प्रसिद्ध)
कषाय	चि० २२/३२	आमपूगफल (अन्ये)
काञ्चनक	सू० ३९/७	धतूरक
काञ्जनक	सू० ४६/४	स्वर्णशालि
काकणन्ती	नि० २/१३; ५/८; चि० १८/१३; उ० ४०/१४	गुञ्जा
काकाण्डफल	सू० ४६/३६	अश्वक
काकनासा	चि० ३७/२०	वायसफला
काकाह्वनो-दुम्बरी	चि० ९/२५	काकसंज्ञो-दुम्बरिका
काको-	चि० ९/१०,	काष्ठो-
दुम्बरिका	२२, १९; उ० ४७/३७	दुम्बरिका
काण्ड (पाठान्तर)	सू० ३८/७५	शर
काणा	उ० ६०/४७	काकोली
कार्पासी (कार्पास; कार्पासिनी)	सू० ३९/७ उ० २१/४३; ४७/३४	वनकार्पासिका
कारवी	सू० ४६/२२९	कृष्ण-जीरक
कालशाक	सू० ४६/२७२	कालिया शाकं श्राद्धार्हं
कालिका	उ० ५१/२३	कालेयक
कालिन्द	सू० ४६/२११	कृष्णवीज
कालेयक	सू० ३९/९;	कृष्णवर्ण चन्दन विशेष
	क० ६/१५;	पीत चन्दन
	उ० ४४/३१	दारुहरिद्रानु-कारिद्रव्य
काश	सू० ३८/१२; ३८/७५	चामरपुष्प
काश्मर्य	सू० ४६/१८२;	गम्भारीफल
	क० ६/१८	श्रीपर्णी
	उ० ३९/१७३; ३९/१७९; ४७/३४	गम्भारीफल
किराततिक्त	सू० ३८/६; ४६/२६२	भूनिम्ब

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

१	२	३
किंशुक:	सू० ४६/१९७; ४६/२८८	पलाश
कीटशत्रु	उ० १२/४४	विडंग
कीटारि	चि० २/९१	विडंग, कीटमारी
कुक्कुटा	उ० ६०/४७	कुक्कुट-शिम्बी
कुचन्दन	सू० ३८/८; १२; ३३; ३८/४५; ३९/८	रक्तचन्दन; मलया-द्रि चन्दन
कुटज	सू० ३८/६; ६४	इन्द्रवृक्षः
कुठिञ्जरः	सू० ४६/२७४	कुरहञ्जक
कुठेर	सू० ४६/२२१	कालमाल भेद
कुणावी	चि० १०/५	यवपर्पटी
कुतुम्बक	सू० ४५/२७४	द्रोणपुष्प
कुधान्य	सू० ४६/२०	कुत्सितधान्य
कुन्दुरुक	सू० ३८/२४	शल्लकी चोच
कुब्ज	चि० ७/६	गुञ्जा
कुमुद	सू० १३/१३; ३८/५२; ४०/११२; ४६/२५८; ४६/३०८	श्वेतोत्पल
कुमुदोत्पलम्	सू० ३९/८	श्वेतोत्पल
कुरवक	सू० ४६/८; क० ५/८६	कृष्णषष्टिक

१	२	३
कुरुबकः	सू० ४२/११	कण्टसेलयाक
कुलत्थिका	चि० १६/२६	चक्षुष्या
कुलाहल	सू० ३८/१८; ४६/२२१	मुण्डिका
कुलीर	चि० २५/१८; उ० ५२/४७	कर्कट वनस्पति
कुलीर	उ० २१/४५	कर्कटशृंगी
कुलेवर	सू० ४६/२९०	खुखुण्डक
कुवलय	सू० १३/१३; ३८/५२; ४६/२८५	कुमुदभेद, रक्तोत्पल, ईषद्नील धवल (पुष्प-भेद)
कुश	सू० ३८/१२ उ० ६०/३३	ह्रस्व दर्भ दर्भः
कुशिम्बि	सू० ४६/४६	शूकशिम्बी
कुस्तुम्बरू (कुस्तुम्बरी)	सू० ३८/५०, ४६/२२१; उ० ३९/१५२; ४९/३०	धान्यक
कृतमाल	चि० ३१/५	किरमाल
कृतवेधन	सू० ३९/३; ४२/११; ४३/६; ४५/११५, शा० १०/२१; चि० ६/१२; ३१/५; उ० ५५/५३	कोशातकी; कोशातकी भेद
कृमिघाति	उ० ४२/४२	विडंग
कृमिघ्ना	उ० १०/८; २१/५२ २९/२९; ४०/४०	विडंग

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

१	२	३
कृमिशत्रु	उ० ६९/३६	विडंग
कृष्णव्रीहि	सू० ४६/१२	कृष्ण-तुषतण्डुल
कृष्णा	चि० १५/२०; उ० १७/९; ५०/२६; ५१/४०; ६०/४३	पिप्पली
कृष्णाबीज	उ० १२/४४	पिप्पली-तण्डुल
केवूक	उ० ५४/२५	केसर
कैडर्य	शा० १०/९९; चि० १८/२२; उ० २८/४	पर्वतनिम्ब, महानिम्ब
कोकिलाक्षक	उ० ५८/४४	खग्गली
कोरदूषः	सू० ४६/२१	कोद्रव (कुधान्यवर्ग)
कोल	सू० ४६/१३९;	बदर (मध्य प्रमाण)
	उ० ६९/१२	
कोलस्य-मध्ययम्	उ० ४६/१७	बदरमज्जा
कोल	उ० ५९/३९	बदरमज्जा, अक्षोड (उत्तरापथे)
कोला	सू० ४५/१२०	बदरमज्जा, अक्षोड (उत्तरापथे)
कोविदार	सू० २८/६५; ३९/३; ४२/११;	काञ्चनार काञ्चनार-

१	२	३
	४६/२४९; ४६/२८१	भेद
कोशकार	उ० ४०/१२६	इक्षुभेद
कोशवती	चि० १०/८;	कटुकोशातकी,
	चि० १८/२०	देवदाली
कोशातकी	सू० ११/११;	घोषक,
	३७/१८;	देवदाली
	३९/५; ४६/२६२; चि० १७/३७; क० १/४९; २/४५	
कोशाम्र	सू० ४५/१२४	कोशाम्ब्र
	सू० ४६/१३९	कोशाम
कीटजायवाः	उ० ४०/४०	इन्द्रयवाः
कंटकी	सू० ३८/६	विकङ्कत, वृक्षकण्टकारि
	ख	
खर्जूर	सू० ४६/१८२; ३३४	पिण्डखर्जूर
खदिर	सू० ३८/१२	गायत्री, स्वनामख्यात
खरमञ्जरि	चि० १८/२३; २५/१४; ३१/५	अपामार्ग
	ग	
गवाक्षी	सू० ३७/१३;	इन्द्रवारुणी;
	३८/२९;	श्वेतपुष्प-
	३९/४;	इन्द्रवारुणी
	चि० ३१/५; उ० ४४/३०	

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

१	२	३
गजादनामा	चि० १८/४५	हस्तिपिप्पली
गजाशना	उ० ४०/१५५	शल्लकी
गजाह्वा	उ० ६०/४०	गजपिप्पली
गन्धनाकुली	क० ६/२२; उ० ३२/७	सुगन्धमूला, सुगन्धारास्ना
गन्धर्वहस्त	चि० ४/३०	एरण्ड
ग्रन्थिक	उ० ४२/२५; ५२/३८; ५२/४२	पिप्पलीमूल
गलोड्य	चि० ५/८	पद्मबीज
गवेधुक	सू० ४६/२१	तृणविशेष
गङ्गेरुकी	सू० ४६/१६३	नागबला
गायत्री	उ० ४१/५०; ५२/१९	खदिर
गिरिः	उ० ३१/४	गिरिकर्णिका
गिरिकर्णी	उ० ६१/३२	श्वेतस्यन्द
गिरिकर्णिका	सू० ३९/६; चि० ८/३९; ११/९०; उ० ५९/१७	श्वेतस्यन्द, अपराजित-भेद, सेफन्द
गिरि-कदम्बकः	उ० ३२/६	महाकदम्ब
गिरिह्वा	चि० १८/३८	श्वेतस्यन्द
गिर्याह्वा	क० २/४५	श्वेतस्यन्द
गिलोड्यः	सू० ४२/११; चि० ११/१०	कालङ्कृत, सितोड्य-कन्द
गुञ्जा	चि० १४/८; १७/१५	चिरिहिर्ण-टका
गुडशर्करा	उ० ४२/७०	गांगेटीफल
गुन्द्रा	सू० ३८/१०; चि० १७/६; ३७/३१; उ० १०/८	पाट्टरकभेद, एरकाभेद; गवेधुक
गुप्तफल	उ० ४६/२३	कपिकच्छु-फल
गुहा	क० ६/३; ८/५१	शालपर्णी, पृश्निपर्णी
गुहाति-गुहा	सू० १९/२९	शालपर्णी पृश्निपर्णी
गृञ्जन	उ० ५६/१४	रसोनभेद
गृध्रनख्य	सू० ३८/६७३; उ० ४१/३०	हिंस्रा
गोचन्दना	चि० २८/२२	प्रियंगु
गोप	क० १/३७; ३/१८	सारिवा, सुगन्धमूला, सारिवा,
गोपवल्ली	उ० ५१/२६	सारिवा
गोलोमी	चि० ८/३९; उ० २९/३; ३२/४; ६०/४७; ३६/६	दूर्वा
घ		
घन	उ० ४०/६५; ५५/२८	मुस्ता
घोण्टाफल	चि० १७/३४	बदरी

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

१	२	३
च		
चण्डा	सू० ३८/२४	ईषत्कृष्णा चोरकभेदः,
	सू० ४२/११	अजमोदाकारा, सुगन्धिद्रव्य
चतुरङ्गुला	सू० ३९/४; ४४/७२, ४४/७३	किरमालक
चन्दन	सू० ३८/१२;	श्रीचन्दन,
	३८/३९;	श्रीखण्ड,
	उ० २६/१३;	रक्तचन्दन;
	४७/६१	श्वेतचन्दन
चम्पक	सू० ४५/१२	राजचम्पक
चव्य	सू० ३८/२२	हस्तिपिप्पलीमूलं स्वनामख्यातं
चिल्ली	सू० २०/५;	चैत्रवास्तुक,
	४२/११;	गोडवास्तुक,
	४६/२५६;	इत्यन्ये, यव-
	४६/३३५	शाक-एके
	चि० ६/८,	यवशाकान्तर-
	उ० १७/५०	अन्ये
चिरबिल्व	सू० ३७/१०	वृद्धकरञ्ज
	चि० २/८९	वृक्षकरञ्ज
चित्रफला	उ० ३२/८	गुडुचिका, इन्द्रवारुणी पर्याया
	५८/६६	चित्राण्डिकेत्यन्ये
चूत	चि० २५/३२	आम्र
चोच	सू० ३८/२४,	त्वक्, वनवासिकात्वक्

१	२	३
	चि० १७/१५;	स्थूलत्वक्,
	क० ६/३	शालमकम्
चोरक	सू० ३८/२४,	ग्रन्थिपर्णा-
	क० ५/८४	नुकारी, ग्रन्थिपर्णाकार, ग्रन्थिपर्णकभेद
चोरकपत्र	सू० ३८/४८	लाक्षावृक्ष
छ		
छत्रातिछत्र	सू० १९/२९	द्रोणपुष्पीद्वयं
छिन्नरुहा	सू० ३८/३५	गुडूची
ज		
ज्योतिष्क	चि० ९/१०; १४/१०	काकमर्दनिका
ज्योतिष्मती	सू० ३९/४; ३९/६;	काकमर्दनिका
	४२/११; ४५/११५;	कंकुमर्दनिका,
	चि० ८/३९; ३१/५; उ० ६२/३१	ककुन्दनी
जटा	क० ६/१५; ७/२२;	जटामांसी,
	उ० ६०/४७; ६२/३०	गन्धमांसी
जटिला	सू० १८/२८; उ० ३६/६; ६१/२८	मांसी
जम्बू	चि० ६/१२	भूमिजम्बू
जम्बूद्वय	सू० ३८/४६	एक राजजम्बु एवं दूसरा काकजम्बु

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

१	२	३
जाति	उ० ११/१५	कोरक जाती-कलिका
जातिकन्द (पाठ०)	सू० ३७/१७	गुग्गुलुक उत्तरापथे प्रसिद्धः
जातिमूल	सू० ३७/१७	जाति की जटा
जाती	सू० ३९/६	मालती
जाती	चि० २४/२१	जातीफल
जातीकटुकयोः	सू० ४६/२०२	जातीफलं फलं
जातीकोशी	सू० ४६/२०२	जातिपत्रिका, जातिवनी
जातुक	सू० ४६/२७४	शुक्लशालपर्णी
जातुकशाक	सू० २०/१३	पौष्करशाकं
जाम्बव	सू० २०/८; ४६/१६३	जम्बु, जम्बुफल
जालिनी	क० ७/१५	कोशातकी
जिङ्गिणी	सू० ३८/१४	गुडमज्जनिका
जीमूत (जीमूतक)	सू० ३१/३; ४३/४; ४५/११५; चि० १२/२१; १४/१२; १८/२१; ३१/५	देवदाली
जीमूत	चि० ३७/२७	मुस्तक
जीरकद्वयम्	सू० ४६/२२९	शुक्लपीतभेदेन
जं।वक	सू० ३८/४; ३८/३५;	कूर्चशीर्षक स्वनामख्यातः
	४६/२७४	जीवनामा स्वनाम प्रसिद्ध
ट		
टिण्टुक	चि० २२/७०	श्योनाक
टुण्टुकः	सू० ३८/६८; चि० ३१/५; क० ६/३	श्योनाक
डिण्डिमाणवक	सू० ४६/६७	डिण्डिमोत्कटध्वनिः
त		
त्वक्क्षीरी	सू० ४४/१६	वंशलोचनम्
त्वक्सार	सू० ८/१५	वंश
तर्कारी	सू० ३८/८; ४६/२५४; उ० १७/५१; २१/६; ३५/३	अरणिका
तमाल (पाठ०)	सू० ३९/६; उ० ४७/६१	तमालपत्र
तरुष्क	उ० ५१/५२	सिह्लकः
तलकोट	उ० ५१/४५	अङ्कोट
तस्कर	चि० ३९/१७	चोरक
ताम्बूलपत्र	सू० ४६/२७९	नागवल्लीपत्र
तामलकी	उ० ३९/२१९; ५१/२७	दलफलिका दरफलिका
ताल	सू० ४६/१७७	ताड़ी
तालपत्री	सू० ११/१३; ३७/२८ चि० १८/५; २५/१८;	मूषली

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

१	२	३
तालमूली (तालमूलिका)	चि० ७/१८; उ० ५१/२९	मूषली
तालीतल	चि० १७/२५	मूषलीमूल
तालीश	सू० ३९/६	तालीसपत्र
तार्क्ष्य	उ० ५१/२१	रसाञ्जन
तार्क्ष्यशैलम्	चि० ९/१३; २५	रसाञ्जन
तिक्ता	चि० ९/२९; उ० ६०/४७	कटुका कटुतुम्बी
तिन्तिडीक	सू० ४६/१३९	वृक्षाम्ल
तिन्दुक	सू० ४६/१६३	कालसार वृक्ष
तिन्दुकी	सू० ३८/४८	तिन्दुक
तिनि	चि० १६/४३	तिनिस
तिनिशः	सू० ३८/१८; चि० ११/१०; १९/४२; ३४/१७, क० ६/३; ६/२२; उ० ४०/११९	स्यन्दन
तिमिर	उ० ५१/३२	नखरागिपत्र
तिलपर्णी	सू० ३९/९; क० ६/१४	हुलहुल
तीक्ष्णगन्धा	उ० २३/४	शोभाञ्जनक
तुङ्ग	चि० ११/१०	पुन्नाग
तुम्बी	सू० ४५/१२४	तिक्तालाबु
तुरङ्गगन्धा	उ० ४१/४३	अश्वगन्धा
तुरुष्क	सू० ३८/२४	सिह्लक

१	२	३
तूलफल	सू० १८/१६	शाल्मलीफल
तृण (पा०)	सू० ४७/६१	सुगन्धितृण
तेजोवती	चि० २/९०; २२/२४; उ० २४/३६; ३९/२५८; ४७/४२; ५१/२८	काकमर्दनिका
तोदन	सू० ४६/१६३	राजप्रिय
तोय	क० २/५१; उ० ६/१६; ४७/५८	बालक
दधित्थः	उ० २१/६; ३९/३०३; ४९/२७	कपित्थ
दर्भ	सू० ३८/८; ३८/७५	कुश
दाडिम	सू० ४२/११	प्राचीनामलक
दारु	उ० २४/३३; ३९/१३०	देवदारु
द्रवन्ती	सू० ११/१३; ३९/४; ४४/४६; ४४/४०; ४५/१२४; चि० २/८९; १९/६९; उ० ४२/६३	दन्ती भेद चीरितपत्रा शम्बरी
द्राविडी	सू० ३८/५४	एला

ध

१	२	३
धन्वन	सू० १४/३६; ४६/१५४; चि० १५/९; ३८/८६	धनुर्वृक्षफल

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

१	२	३
धान्य	उ० ४२/८७	धान्यक
धामार्गव	सू० ३६/३; ४७/३७; चि० १४/१२; ३१/५	पीतपुष्पा कोशातकी पीतघोष, महाकोशातकी
धात्री	उ० १०/८; १२/११; १६/१३; ३६/२१३; ४६/१६; ५२/१८	आमलकी
	न	
नक्तमाल	सू० १४/३५; ३८/८; चि० १/१०३; ४/३०	करञ्ज; महाकरञ्ज बृहत्करञ्ज
नगवृत्तिका	चि० १५/६; क० ५/७६	शल्लकी
नत	उ० १८/१०३; १४/७	तगरमूल
नदीभल्ला-तकः	सू० ४६/२४६; उ० ३४/३	नदी पिप्पलिका गण्डोपलीति-पर्याय; ली जनक लोजनक
नराधिपः	चि० ३७/११	कृतमालक
नरेन्द्र	चि० १८/६; क० ५/६१	किरमालक
नरेन्द्र द्रुम	चि० १/४०	आरग्वध
नलद	सू० ३८/४१; क० १/३५; उ० ३१/२३६; ३१/४; ३६/२६२	मांसी
नलद	क० ६/१८	उशीरभेद-लामज्जक,
	उ० १७/४२; ३६/१७२	उशीर
नलिन	सू० १३/१३; ३८/४३,	ईषद्रक्त
	उ० १७/११; १७/८	पद्‌म
न्यग्रोध	सू० ३८/४८; नि० २/१३	वट
नाग	सू० ४५/१२; ४६/२८७ उ० ४७/६१	नागकेशर
नागर	उ० ४०/६४, ४०/६१; ५२/२५; ६२/३१	शुण्ठी
नादेयी	चि० ४/३२	जल जम्बु
नालिका	सू० ४६/२७३;	नाडिका;
	शा० १०/३	शाकविशेषः
नालिनी	चि० २/६१	कोशातकी
निकुम्भ	चि० ११/६; १७/२५; उ० २४/३३; ४२/४६; ५५/५२; ५६/१०	दन्ती
निकोचक	सू० ४६/१८७	औत्तरा-पथिक, कोल्लकफल

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

१	२	३
निर्गुण्डी	सू० ३८/१८;	नील-निर्गुण्डी
	उ० ५२/३०	नील-सिन्धुवार
निचुल	चि० ११/१०; १६/१८; ३७/४०; १९/२९; २२/१९; क० ६/३, ८/५०	वेतस जलवेतस
निदिग्धिका	उ० ५१/५५; ५५/५१; ५८/३९	कण्टकारी
निशा	चि० ७/३०; उ० ३९/२५६	हरिद्रा
निशाच्छद	चि० ३८/४३; ३८/६७	शटी
निशायुग्म	उ० ६१/३८१	हरिद्रा-द्वयम्
निशे	क० ८/५२	पिण्ड हरिद्रा एवं दारु हरिद्रा
निष्पाव	सू० १८/१६; २१/१८; चि० ९/४; १८/३७	राजशिम्बी शिम्ब
नीपः	सू० ६/३२ ४६/१३९; चि० ४/३२	धूलिकदम्ब, महाकदम्ब, कदम्बफल
नीरज	चि० २५/३३	नीलोत्पल
नीली	सू० ४४/२२	नीलिनी
	सू० ४४/२२	श्रीफलिका
	सू० ४४/२६	नीलाञ्ज-निका
	सू० ४४/२६	शारदाफल
	चि० १९/६८; २५/२८; २/६०; क० ६/१५	
नीलिका	सू० ४५/१२४	नीलिनी, नीलाञ्जनिका
	चि० ९/३७	श्रीफलिका, शारदाफला
नीलिनी	सू० ३९/४; ४४/६६	नील बुघ्ना
	सू० ४४/६६	नीलिका
	सू० ४४/६६	श्रीफलिका
	चि० ९/३८ ३१/५; क० १/४३; उ० ६१/३६	शारदाफल नीलाञ्जनिका
नीवार	सू० २०/५; २१/१८; २२/१९; ४६/२७; चि० ११/१२; १४/४	प्रसातिका
नूतकौण्डक	उ० ५१/३४	मर्कटक
नृपवृक्ष	उ० ४२/६१;	गिरिमल्लिका
	उ० ५७/९	गिरिमालक
नैचुल	उ० ५१/२३	जलवेतस फल
नैषध	सू० २१/२३	कोरक
प		
पटोल	सू० ३८/६	कुलक; स्वनाम-ख्यातः
पर्णिनीद्वयम्	उ० ३९/२३०	शालपर्णी, पृश्निपर्णी
पर्णी	उ० २१/४८	शालपर्णी

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

१	२	३
पत्तङ्ग	सू० १४/३६;	रक्तचन्दन,
	१६/२८;	
	चि० १८/४१;	रक्तकाष्ठ
	२१/१०; २२/१५;	
	२२/६१; उ० २४/२७	
पतरो (पत्तूरत)	सू० ३९/७	कुचन्दन
	सू० ४६/२७४	शिरबालिकाभेदो महापत्रः
	चि० ७/१०;	शिरबालिका,
	१९/३५;	
	उ० ९/१९;	सिर बालिका
	उ० ११/५;	शर बालिका
	५४/२६	
पथ्या	सू० ३७/७;	हरीतकी
	चि० २/७४; उ० ४५/३३;	
	५५/४५; ६१/२८	
पद्म	सू० १३/१३	ईषच्छुक्ल
	सू० ३८/४५	स्वनामख्यात
	सू० ४६/२२५	कमल
	उ० ४/५	ईषतशुक्लम्
	उ० ३९/१७८	अरुणपद्मम
	उ० ३९/२३६	स्वनामख्यातम्
	उ० ४७/५८	
पद्मक	सू० ३८/३५;	पद्मकाष्ठ
	उ० ३९/३११	
पद्मा	शा० १०/६०;	भार्गी
	चि० २/७३;	
	२/८२; ११/१०;	
	उ० ४०/७३; ४०/७४;	
	४०/१२२	
पयस्या	सू० ३९/८	क्षीरकाकोली
पलङ्कषा	उ० ३१/४;	गुग्गुलु
	३९/२६२;	
	५५/४५; ६१/२७	
पलाण्डु	सू० ४६/२२१;	लशुनभेद
	४६/२४७; उ० १९/१५	
पत्रम्	सू० ३८/२४;	पत्रक
	उ० १२/१३;	
	१७/८९;	
	३९/२६७; ४७/६१	
पाण्डुक	सू० २०/५;	पाण्डुक शालि; पाण्डुक-
	सू० ४६/४	तुषयुक्त एवं पाण्डुशूक
पाटल	सू० ४६/१२	पाटला पुष्पवर्ण व्रीहि
पाठा	सू० ३८/६	अबिद्धकरणी
पापचैलिकम्	उ० ३९/१५१	पाठाशाकम्
पारावत	सू० ४६/१२	पारावतशुक्लतण्डुलः
पारावतपदी	चि० ९/३२	ईषत्लोहित हंसपदी भेद
पारिजात	चि० ११/९	पारिभद्रक
प्राचीनामलक	सू० ४७/१३९	प्राग्देशोद्भव पानीयामलक

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

१	२	३
पिचुक	चि० ७/१७	करीर; तस्यफलं कर्पासफलं इत्येके
पिचुमर्द	चि० ९/७; ९/८९; २०/१५; ३१/५; क० ६/३	निम्ब
पिण्डफला	चि० १८/१३	तिक्तालाबु
पिण्डीतक	सू० ३७/७; चि० १७/४०; २५/२८; २५/३२; ३१/५	मदन, कृष्णपुष्पो मदनः
पिप्पली	चि० ९/९	गजपिप्पली व उपकुल्याद्वयं च बोद्धव्यम्
पीतदारु	चि० ३१/५	देवदारु
पुण्डरीक	सू० १३/१३; ३८/५२; ४६/४; ४६/१०५; ४७/६१	श्वेतपद्म; अतिश्वेतपद्म (सुन्दर वर्ण एवं सुगन्ध के कारण देवगृह में प्रयोग होता है)
पुट	सू० ४६/२७	स्वल्पास्त्रिपुटा धान्यविशेषः
पुनर्नवा	सू० ३८/४; ४६/२५४	वर्षाभूः
पुरः	क० ५/६९; उ० ३९/१९०	गुग्गुलु
पुष्करबीज	सू० ४२/११	पद्मबीज
पुष्कर	चि० २८/६; उ० ५१/२८	पुष्करमूल, पद्मवराटक
पुष्पकवर्ति	सू० ४६/१६३	'आमोद' इत्युत्तरापथे
पुष्पफलं	सू० ९/४; ४६/२११; उ० ४७/४५	कूष्माण्डक; कूष्माण्डक
पुत्रश्रेणी	सू० ३८/२९; क० ६/३	द्रवन्ती
पृथक्पर्णी	सू० ३७/२६; ३८/४	पृश्निपर्णी
पौष्करः	चि० ३७/८; उ० ६१/३५	पुष्करमूल
प्रकीर्या	सू० ३९/९; उ० ११/९	कण्टकी करञ्ज; कंटकीविटपकरञ्ज
प्रग्रह	क० ६/३	किरमालक
प्रत्यक्पुष्पा	सू० ४३/३	अपामार्ग
प्रियक	उ० ४७/६१	बीजक
प्रियाल	सू० ३८/४८; ४२/११; ४६/१३९; ४६/२०५; चि० ३/६७; ५/१२; ९/७; १८/२९; ३१/५; उ० ४०/११९; ५२/३४	चारः
प्लव	चि० ११/९	गोपालदमनक
प्लक्ष	सू० १२/२३;	पर्कटी

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

१	२	३
	३८/४८; क० ६/३; ४०/११९	
फ		
फल्गु	सू० ४६/१६३; चि० ९/२९; उ० ६१/३४	काकोदुम्बरिका
फल	सू० ४३/३; चि० ३७/११२; ३८/५३	मदनफल
फल	चि० ३८/२४	त्रिफला
फलत्रिक	उ० ५२/१५	त्रिफला
फलाम्ल	चि० ६/४	बीजपूरक
फेनिला	उ० ३९/२८४	उपोदिका
ब		
बन्धुजीव	सू० ३९/३; क० १/६९; उ० ६/१८	मध्याह्न पुष्पक
बन्धूक	सू० ६/३७	बन्धुजीवक
बरिहिष्ठ	चि० १८/२१	वालक
बलातिबले	सू० ३९/७	शुक्लपीतपुष्पं बलाद्वयम्
बस्तगन्धा	उ० २१/६, ३४/६	बोथायिका, बोबयिका
बहुपत्रा (पा०)	क० १/६८	मयूरशिखा
बहुपुत्रा	क० १/६८	शतावरी
बर्हिष्ठ	उ० ११/६;८; ३९/२३०	बालक

१	२	३
बाण	सू० ६/३७	सहचर
बाह्लीक	क० ६/३	कुङ्कुमम्
बिम्बी	सू० ३८/८; ३९/३, ६; ४६/१६३; क० ६/२२; उ० ४४/१९; ४७/२८	कुन्दरिका
बिम्बीतिका	सू० ४६/२४९	कुन्दरिका
बिम्बीलोट	उ० १२/११	भिल्लोट
बिल्व	सू० ३८/८; उ० ४०/६३, ६६, ९९; ४७/५२	बिल्वफल श्रीफल
बिल्वशलाटु	उ० ४०/४४, ७३	कोमल; बिल्वफल
बिम्बपेशिका	सू० ३८/४६; चि० ५/७	बिल्वगिरि
बिस	सू० २१/२३; ४६/१६, २९८, ४६४; चि० ५/८; ११/१०; उ० ४८/२३	पद्ममूल, भिसण्डक, विसेन्द्रक
बिसग्रन्थि	सू० ४५/१७	पद्ममूल
बीज	उ० १०/८	पीतसार बीजक इति यावत्
बीजक	उ० ५८/४७	असनसार
बीजसार	चि० २५/३२	असनसार
बृहती	सू० ४६/२६२; उ० ३०/७; उ० ४२/१२८	स्थूलफला अणुफला स्थूलफला वा

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

१	२	३
बृहतीद्वय	सू० ३८/४, ६	कण्टकारि-द्वय
	शा० १०/६१	एकस्थूलफला
	उ० २१/२४	द्वितीया ह्रस्वफला
	उ० ४०/४१	स्थूलफला-
	उ० ४२/४६	चणकबृहती
भ		
भद्रकाष्ठ	क० ७/२२	देवदारु
भद्रदारु	सू० ३७/३; ३८/२४; ३८/२७; उ० ५५/२४	देवदारु
भद्ररोहिणी	उ० ४०/१०५	कटुका
भद्रश्री	शा० २/१५	शुक्लचन्दन
	चि० ५/८	श्रीचन्दन
	क० ६/१५	
भद्रा	चि० २८/६०	कट्फलम्
भल्लुकः	चि० ७/६	श्योनाक
भल्लूकः	सू० ३८/१०	श्योनाक
भुजङ्गपुष्पम्	उ० ४६/१७;	नाग-केशरम्
	४७/३८	नागपुष्पम्
भूतकेशी	उ० ६०/४७	मांसी
भूनिम्ब	उ० ३९/२२७;	किरात-
	४०/६३;	तिक्त,
	६१/६५	किरातक
भूमिकदम्ब	चि० २/९०	मुण्डितिका
भृङ्ग	उ० ४७/५२	भृङ्गराज

१	२	३
भृङ्गराज	चि० २५/२९	मार्कवः
म		
मकुष्ठ	सू० ४६/२७	मोठ
मगधा	उ० ४०/१८१; ४७/३८	पिप्पली
मगधोद्भवा	उ० ४१/४१	पिप्पली
मंगल्य	सू० २०/५	पाण्डुवर्ण मसूर
मंडूकपर्णी (मण्डूकी)	सू० २०/५; ४२/९९; ४६/२६२, ३३५, ४३३;	ब्राह्मी;
	चि० ९/५;	ब्राह्मीभेद
	उ० २१/४५; ५७/११	
मदन	सू० ३८/६; उ० ५५/५१;	पिण्डीतक
	सू० ३८/२०,२६	मदनफल
मदयन्तिका	चि० २/९१; ९/३४;	मोन्दिका
	२५/४३	नखरञ्जनी
मदयन्तिका	क० १/६	मल्लिका
मधुक	सू० १२/३४; ३८/४८, ३८/५२; क० ६/३; उ० १२/३१; १९/१५; २६/३३; ३९/२१४; ४०/६७; ४३/१५; ५५/२४; ५८/३६; ५८/५८	यष्टीमधु
मधुपर्णी	शा० १०/६१	मधुमष्टिका

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

१	२	३
मधुरसा	सू० ३८/२२; चि० १७/४४; उ० १९/१४; २६/३४; ४९/२८	मूर्वा
मधूलिका	सू० ४२/११	मर्कटक
मधूक	सू० ३८/४८; उ० ३९/१७५; ४७/४५	गुडपुष्प
मन्दारी	चि० १९/६४	आली
मयूरक	सू० ३७/१९; ३८/१६; चि० ५/७;२३/१२	अपामार्ग
मरिचशुक्ल (मरिचसित)	उ० ११/१३, १६ उ० १२/१६; ४६/२२५	शोभाञ्जन-बीज
मलपू	चि० ८/५०	कालोदुम्बरिका
महातण्डुल	सू० ४६/४	महाशालि
महानिम्ब	सू० ३८/२२	द्रेक्का
महावृक्ष	सू० ३९/४; ४४/८२, सू० १४/८; १० क० ६/३; २१/४५; ४१/४८	सेहुण्डभेद; सेहुण्ड
महाश्यामा	सू० ३८/२९	वृद्धदारुक
महासहा	सू० ३८/४; उ० ४२/११३	माषपर्णी
महौषध	सू० ३७/३; उ० ४०/३८, ४५	शुण्ठी
मार्कव	चि० ७/२४; १७/४२; १९/४७; २०/२९; २५/३२; उ० ५३/१०	भृंगराज
मागधी	चि० ८/४३; उ० १७/४३; ५१/३३; ५५/५३	पिप्पली
मालती	सू० ३७/२५; ३८/६४; ४६/२८६; चि० ९/५४; क० ५/८२; उ० १७/३७	जाती
माषपर्णी	सू० ३८/३५	अरण्यमाष
मुकुन्द	सू० ४६/२१	मुलुन्द
मुकुन्दक	सू० २०/५	ईषत्कृष्ण षष्टिक
मुरङ्गी	सू० ३९/६; चि० ६/९; १४/१०; २३/१२; क० ५/६८; उ० २१/१७	शोभाञ्जनक रक्तकुसुम; शोभाञ्जनक; मधुशिग्रु
मुष्कक	सू० ३८/२०; ४६/२८४; चि० ४/३०; क० १/७१	क्षारवृक्षः; कृष्णपुष्प-मुष्कक; कालमुष्कक
मूलक	उ० ४२/७२	पिप्पलीमूलम्

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

१	२	३
मूलकजा-शिम्बा	सू० ४६/४६	मूलकशिम्बी (कुधान्य)
मूलकपोतिका	सू० ४६/३३५; उ० १७/५०	बाल-मूलक
मूल	क० ६/३	पिप्पलीमूल
मृगभोजनी	चि० १७/३७	इन्द्रवारुणी
मृगैर्वारु	सू० ३९/३; उ० ३०/६	इन्द्रवारुणी
मृद्वीका	सू० ३८/३५	द्राक्षा
मेषविषाण	उ० १७/३१	मेषशृंगीफल
मोच	सू० ४६/१७७, उ० ४८/२३	कदली
मोचकी	चि० २/६४	शाल्मली
मोचरस	सू० ३८/४५	शाल्मली निर्यास,
	चि० ११/१०; १७/२८	शाल्मली चुम्प
मोहनवल्लिका	उ० ६०/४८	वटपत्रिका
मोहनिका	चि० २८/२२	पुत्रञ्जीवी; अवाक्पुष्पी
	य	
यवक	सू० २१/२३	शूकधान्य, यवाकार तण्डुल वाला
यवफला	क० ६/१५; उ० ३१/७	दुग्धिका
यववेणु	उ० २१/६	वेणुयव-अन्नजाति
यवशूक	उ० ५७/१३	यवक्षार
यवास	सू० ४४/४९	दुरालभा
यवास	उ० ५२/४२	धन्वयास
यष्ट्याह्वय	उ० ४०/१२३; ५०/१६	यष्टीमधु
यष्टिका	चि० ७/२४	यष्टिमधु
यष्टिकाह्वय	उ० ४५/४०	यष्टीमधु
यास	उ० ३९/२२७; ६१/३६	दुरालभा
योजनवल्ली	सू० ३८/४५	मञ्जिष्ठा
	र	
रक्तवृक्ष	सू० ४६/२८४	रक्तचन्दन
रक्ता	चि० ३७/३१;	मञ्जिष्ठा
(रक्तलता)	क० ५/६८; ५/६९	
रजनी	सू० ३८/७२ चि० २/७३; उ० ५७/१०	हरिद्रा
रञ्जनी (पा०)	सू० ३८/७२	शिरहलक
रम्भा	चि० १/१०८	कदली
रसोन	सू० ४६/२४४	पञ्चरसः स्वल्पकन्दो लशुनः
रसाञ्जन	सू० ३८/४५; ३८/४१	दार्वीक्वाथ-समुद्भव, दारुहरिद्राक्वाथेन कृत्रिमं, अन्ये त्वेवं वदन्ति—रसाञ्जनं द्विविधं स्रोतोऽञ्जनं कृष्णपाषाणाकृति

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

१	२	३
		धातुद्रव्यं; अन्यद् दारुहरिद्राक्वाथेन कृत्रिमं पीतलोहितं, अत्र धातुद्रव्यमेव सौवीराञ्जनसाहचर्यात् ।
राजद्रुम	क० ३/९	किरमालक
राजवृक्ष	सू० ३७/१८; ३८/२९; चि० ९/१६; ११/९; २/८७; उ० २१/४१; ३८/२५	आरग्वधः किरमालक
राजसर्षप	सू० १६/१९	श्वेतसर्षप
रात्रि	चि० ९/१२; उ० १०/५	हरिद्रा
रुक्	उ० ४२/२९	कुष्ठ
रूपिका	सू० ४३/३; ४३/३; चि० ९/५; १७/१५	अर्क श्वेतार्क
रेणु	चि० ३७/४०; ३८/५९	पर्पटक
रोध्र	उ० ४०/६४	शाबर
रोहिणी	सू० ३८/४८ चि० १/८३; उ० ३४/५	कट्फल
रोहिणी	चि० १८/५; उ० ३९/२१४	कटुका
रोहिणी-शाक	सू० २०/१३	कटुका-शाक

१	२	३
	ल	
लता	शा० १०/६०; उ० ६०/४८	प्रियंगु
लम्बा	चि० १९/६४ उ० ३४/७	कटुकालाबु; तिक्तालाबु
लवलीफल	सू० ४६/१८९	सुगन्धिफल
लाङ्गल	सू० ११/१३; ३९/९; ४२/११	कलिकारिका
लाङ्गली	सू० ३७/१३ चि० २/३९; २/६०; उ० ५७/११	कलिहारिका
लाङ्गूली	सू० १९/२९	कपिकच्छु
लावाक्ष	सू० ४६/१२	लवाक्षिसदृश तण्डुल
लोणिका	सू० ४६/२७४	लोणिया
लोहित-शालि	सू० ४६/४	रक्तशालि
लोहि	चि० ८/४८; १८/५२	अगरु
	व	
वक्र	क० ५/६३; ६/३, ७/२९; ८/४७; उ० ९/१३, १८/९४	तगर
वज्राख्य	चि० ९/५५	द्वितीय सेहुण्ड

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

१	२	३
वञ्जुल	सू० ३८/४८, चि० ५/८, उ० २६/१३	वेतस
वञ्जुल	क० ८/१०८	जलवेतस
वनमुद्ग	सू० ४६/२७	जंगली कृष्णमुद्ग
वर्धमान	क० ६/३	एरण्ड
व्याधिघात	चि० ९/१४	किरमालक
वरांग	क० ६/३	वनवासिका-त्वक्
वरवास्तुक	उ० १७/५०	वरवास्तुक, टंकवास्तुक
वरी	चि० ३७/२०, उ० १७/६४	शतावरी
वराहकन्द	सू० ४७/३०९	वराहकन्द
वंशज	उ० १२/३५	वंशकरीर, वंशाङ्कट
वर्षाभू	सू० ४६/२२१, चि० २३/१२; (श्वेतपुनर्नवा, रक्तपुनर्नवा) उ० २१/६, ३९/२०२; ४१/२४, ४२/४६, ४७/४६, ५५/४६	पुनर्नवा
वह्नि	उ० ५२/३५	अजमोदा
वाजिगन्धा	उ० ४१/४२	अश्वगंधा
वात्सक फल	उ० ४०/४४	इन्द्रयव
वार्ताक	सू० ४६/२६२	वृन्ताक, वर्तुलफल

१	२	३
वारणकेशर	उ० ५०/२३	नागकेशर
वाराहि-कन्द	सू० ४६/३०९, चि० १७/३६	गृष्टिका-कन्द
वांशी	उ० ३५/३	वंशलोचन
वास्तुक	सू० २०/५; ४६/२५६, ४६/३३५, चि० ६/८; ४५/२५६	टङ्कवास्तुक
विकङ्कत	चि० ११/१०, चि० १८/१३	कण्टकिका, कटायिका
विडंग	सू० ३८/१८, ४५/११५	प्रसिद्ध क्रमिघ्न
विडंगसार	सू० ४४/९	विडंगबीज
विजया	उ० २८/२९; ३९/१९६	हरीतकी
विदारी	सू० ३८/४, ४४/१६, ३८/७२, ३९/८, ४४/१६	विडाली, विराली
विदारिगन्धा	सू० १५/३३, १६/१९, ३८/४, ३८/६६	शालिपर्णी
विदुल	सू० ३९/३, चि० १/९६, उ० ४७/२८	वेतस
विश्वभेषज	सू० ४४/५०	शुण्ठी
विश्व	उ० ३९/२५६, ५२/१८	शुण्ठी

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

१	२	३
विशाला	चि० १/२	इन्द्रवारुणी
वृष	सू० ४६/२८१ उ० ३९/२२६; चि० १७/२२, १८/४६, २३/१२; सू० ३८/२०, ४५/१५	वासक
वृक्षक	उ० ४०/४०, ६९	कुटज, इन्द्रयव
वृक्षज	उ० ४२/६९	
वृक्षबीजम्	उ० ४२/५०	
वृक्षाम्ल	उ० ४२/२९	तिन्तिडीक
वेणु	सू० २०/५	वेणुयव
वेणुयव	सू० ४६/२१; चि० १०/५	वेणुयव, अन्य जाति
वेत्रकरीर	सू० ४२/११; ४६/२६२,	वेत्रांकुर
वेत्रफल	सू० ४६/१३९	पद्मबीजम्
	श	
शक्रजा यवा	चि० ३८/२७	इन्द्रयवा
शक्रयवा	उ० ३९/२२७, ४०/६६	इन्द्रयवा
शर्करा	सू० ४५/१३२	सितोपला
शण	सू० ३७/९; ४६/२८१	परिपाके सस्वनफल बन्धनार्हं त्वक्
शणपुष्पी	सू० ३९/३	शणसदृशविटप
शतपर्वक	उ० ५८/४४	जलगण्डीर
शम्पाक	सू० ४६/२०७ चि० ३१/५, ३८/४३	क्रियमालक
शमीफल	सू० ४६/१९३	सारङ्ग
शरकाण्ड	चि० ४०/४	शरेषिका
शल्लका (पा०)	उ० ५१/३४	शल्लकी
शल्लकी	उ० ४१/३०	गोधानुकारी वज्रशकल:
शल्लकी	सू० ३८/१४	गजभक्ष्या
श्वदंष्ट्रा	सू० ३८/१०, ३८/४, ४६/४३३, चि० ९/७, १९/१७०, उ० ५८/४४, ५८/५८; ५९/१७	गोक्षुरक
श्वेत	चि० १९/४२	श्वेतस्यन्द
शष्प	सू० ४६/११५	बालतृण
शाल	चि० २२/६९, १९/३३	शङ्कु
	उ० १७/३	सर्जभेद
शालनिर्यास	उ० ५०/१८, ५१/५१	सर्जरस, राल
शालामुख:	सू० ४६/१२	कृष्ण शुक्लाकार तण्डुल:
शाबर:	क० २/५९	रोध्र
शिखी (पा०)	क० ८/१३७	लाङ्गुलकी
शिरीष	सू० ३८/१२; ३९/६	विषघाती
शिरीषमाषका	क० १/५०	शिरीषबीजानि
शिंशपा	सू० ३८/२०	कृष्णसारा, स्वनामख्यात:

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

१	२	३	१	२	३
शीतपाक्य	सू० ४६/१६०	बलाफल	श्रवण	चि० ३१/५	तापसवृक्ष
शुकनसा	चि० १७/३७	चर्मकारवट	श्रवणाह्वया	सू० ३७/२८	मुण्डितिका
शुकनासा	चि० १/११५, १६/६४	चर्मकारवट	श्री	चि० २२/६६, उ० २४/२७	नवनीतखोरी, नवनीतधूप
शुकाह्वय	चि० १८/४८	चर्मकारवट	श्रीनिकेत	चि० ६/१२	नवनीतधूप; सरल निर्यास
शेलु	सू० ४६/२४६, ४३१, चि० ३८/८६, क० २/४५, उ० ४०/११३	श्लेष्मान्तक	श्रीपर्णी	उ० १२/११, २४/२८ ३६/१७५, ४३/१५; ४७/४०	काश्मीरी गम्भीरी
शैरीष	उ० ६१/३२	शिरीषबीज	श्रीवेष्टक	सू० ३७/२२, ३८/२४, चि० ११/१०; २२/५	सरलवृक्ष, सरलनिर्यास
शैलभेद	उ० १०/४	पाषाणभेद	श्लेष्मातकः	चि० ५/१०, क० ६/३	शेलु, बहुवार
शैवाल	सू० ४६/११५	शैवल	श्लेष्मातकी	क० ५/७५	बहुवार
श्यामा	सू० ४४/२३	वृद्धदारुक	श्वदंष्ट्रा	सू० ४६/४३३, चि० ६/७, उ० ३६/१७०, ५८/४४; ५६/१७, ५८/५८	गोक्षुर
शृगालविन्ना	चि० ५/७, उ० ५८/५६	पृश्निपर्णी	श्वेत	उ० ५८/४२	कर्कटकं, त्रपुसम्
शृगालविन्ना	उ० ४२/११३, उ० ५२/१४	पृश्निपर्णीभेद, कर्कटशृंगी	श्वेता	क० ७/२४	श्वेतस्यन्द
शृङ्गाटक	सू० ४२/११, ४६/२६८, चि० ३/६१; १६/६	जलज फल, त्रिकंटक द्विविध स्थूल एवं अल्पबल	श्वेते	क० ६/१६	कटभी द्वयं
श्रवण	चि० ३१/५	तापसवृक्ष	श्वेता (पा०)	क० ६/६	वचा
शृङ्गाटी	उ० ४२/७०	जलजद्रव्य त्रिकण्टकफल	श्वेतसुरसा	सू० ३८/१८	सुरसे द्वे श्वेतकृष्णकुसुमे च 'तुलसी'
शृङ्गवेर	सू० ३९/६, उ० ४०/४३	शुण्ठी			

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

१	२	३
	ष	
षड्ग्रन्था	चि० ९/९, ३८/६८, उ० ४२/७१	वचा
षष्टिक	सू० २०/५; ४६/८	गौरषष्टिक
	स	
स्थूल	सू० ४६/३०६	ग्राम्यकन्द
स्नुक्	सू० ३९/४	सेहुण्ड
स्नुही	चि० ४/३०; ८/४८ ९/५४, १४/१०	सेहुण्ड
स्नुहीक्षीर	सू० ३७/१७	सेहुण्ड दुग्ध
स्वयंगुप्ता	चि० २६/३४, ५८/५४, उ० ४९/२९	कपिकच्छु
स्वादुकण्टक	सू० ४२/११	विकङ्कत वृक्षकण्टकारिका
स्थिरा	चि० १७/११ क० २/४८, ८/४५, उ० ३९/२१९	शालपर्णी
सर्जः	सू० १४/३६ चि० ९/१४	शालभेद लघुसर्ज
सर्जरस	सू० १४/३६, ३७/२२, ३८/२४, चि० २२/६९, उ० २४/२७	राल
सतीन	सू० २०/५, ४६/२७; ४६/२६२, ४६/३३५; चि० ३/५; उ० ४५/१६; ४६/१६,	वर्तुलः, वर्तुल-कलाय
सदापुष्पी	सू० ४३/३	अर्क
सदाभद्रा	उ० २४/३२	काश्मरी
सप्तछद	सू० ३८/६४, ३९/४ उ० ३९/१८६, ३९/२५७, ५१/३६	सप्तपर्ण
सप्ताह्व	सू० ६/३७, चि० ९/५०	सप्तपर्ण
सर्पाक्षी	क० ६/२२, ८/११७	लोहितपुष्पा, शंखपुष्पी भेद रक्तपुष्पा पूर्वदेशे प्रसिद्धा
सप्तलिका	चि० १८/३४	यवतिक्ता
सर (कुधान्य)	सू० ४६/२१	सरकर्णिका
सर्षप	सू० ३९/३	श्वेत सर्षप
सहकार	सू० ४५/१२७	आम्र
सहचर	चि० ३७/२०	सैरीय
सहचर	सू० ३९/७	कण्टशेलियाकः
सहचरद्वय	सू० ३८/१०	कण्टशैलुद्वयं
सहदेवा	शा० २/३२ चि० ५/१२ उ० ३०/७	पीतपुष्पा, गांगेरुकी पीतपुष्पा वला
सहस्रदंष्ट्र	सू० ४६/११३	महापाठीनः
सहस्रवीर्या	सू० १८/२८ उ० ५८/५९	श्वेत दूर्वा दूर्वा
सहे	सू० ४६/४६, चि० २/३९, क० ६/२१; ७/२१; उ० ३१/३; ४०/४१	मुद्गपर्णी एवं माषपर्णी च

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

१	२	३
सारिवाद्वय	उ० ६१/३५	आस्फोता, काकवल्ली
सारिवाद्वय	३९/२३०	सारिवा उत्पलसारिवा च
सालः	सू० १४/३६, ३८/८	शंकु
	३८/१४	सर्ज
सालसारः	सू० ३८/१२	सालसार
सावरक	उ० ४०/४०	रोध्र
सावररोध्र	सू० ३८/१४	लोध्र
	सू० ३८/४६	श्वेतस्थूल त्वक्
सिता	उ० ५०/२६	शर्करा
सितोपला	उ० ५२/१८	शर्करा
सिद्धार्थ	सू० १८/२८, ३९/६, ४६/४९; उ० १७/८८, ४०/३०, ६०/४१, ४३, ४६	सर्षप, श्वेत
सिन्धुवार	सू० ४६/२८६, क० ५/६६; ५/८४, उ० ४५/१६	निर्गुण्डी
सिंहा	चि० ९/२७	रक्तशोभाञ्जनक
सिंही	उ० ३९/२१९	बृहत्कण्टकारी
सुगन्धिका	क० ५/६९	सर्पगन्धिका
	६/१५	सर्पसुगन्धा
सुधा	सू० ३८/२८, ४४/४; ४४/३६ चि० २/९१; १८/५२	सेहुण्ड
सुधा	चि० ८/५०	स्नुही
सुनिषण्णकः	सू० १८/३२; १८/३४, २०/५; ४२/११; ४६/२६२; उ० १७/५०; ४५/१६	सिरिवालिका चतुष्पत्री
सुमना	सू० २८/११; ३७/१२; ३९/९; ३९/२३६; ४२/११; चि० ९/१०; ९/४०; १६/१७; उ० १७/९७, ३९/२३६	जाती
सुमनः फल	सू० ४६/४८५	जातिफल
सुमनोमुकलानि	सू० ३७/३२	जातिकलिका
सुरद्रुम	चि० ३७/१६; उ० ६१/३१	देवदारु
सुरभि	चि० ५/७	रास्ना
सुरसी	क० ५/७०	तुलसीपुष्प
सुरसा	उ० ४२/२८	तुलसी
	सू० ४६/२२१	सुरभिपर्णी
	सू० ४६/२३५	श्वेतकृष्णकुसुमे
	सू० ३८/१८	श्वेत-कृष्ण-पुष्पा
सुरसी	क० ५/७०	तुलसी
सुराह्व	उ० ४१/४८	देवदारु

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

१	२	३
सुरेन्द्रकन्दः	सू० ४६/३०५	वज्रकन्द
सुवहा	चि० २/६०; उ० ३४/३; ५६/२३	गोपदी
सुषवी	सू० ३८/६;	कारवेल्लक, पानीयवल्ली
	चि० ५/७; ५/१२	पानीयवल्ली
सेव्यक	उ० ४२/११६	उशीर
सैरीयक	सू० ३८/७३; चि० २५/३२	कण्ठ शेलियाकः
सैरेय	चि० ५/१२	कण्ठशेलुनाक
सैरेयक	चि० ३/६१	कण्ठशेलुकः
सैरेयकद्वयम्	सू० ३८/८	रक्तपुष्पनील-पुष्प कण्ठ-शेलुमद्वय
सोमराजी	क० ५/८४; ६/१८	वाकुची
सोमवल्क	सू० ३७/२६; चि० १२/६; क० १/६८; ३/६	कट्फल
सोमवल्ली	क० १/५४; उ० २८/२७	गुडूची
सौगन्धिक	उ० ४५/५०	कुमुदभेद
सौव	सू० ४४/७८	सेहुण्डभव
	ह	
हयमारः	सू० ३७/१०	करवीर
हरिद्रे	चि० ९/८; उ० ४०/४०	हरिद्राद्वयम्
हरिद्रा	उ० ४४/१७	पिण्ड हरिद्रा केचित् हरिद्रा-शब्देन आदौ दारुशब्दलो-पात् दारु-हरिद्रा गृह्यन्ति
हस्ति-पिप्पली	सू० ३८/२२	गजपिप्पली
हस्त्यालुक	सू० ४६/२९८	महाकाण्ठा-लुक
हायनक	सू० २१/२३	घोटकपुच्छः
	४६/४	शालिविशेष जेज्जटाचार्य (शङ्कुवाक-लोके)
हियम्	उ० ४२/६१	चन्दन
हिरण्यपुष्पी	शा० १०/११	कलि-कारिका
हिंस्रा	उ० ५१/१८	वृहद्-हिंस्रा
हुतभक्	उ० ४२/२९; ५२/३०	चित्रक
हुताशन	उ० ६१/३२	चित्रक
हुताश	उ० ४१/४७	चित्रक
हेयक्षीरी	चि० ९/१४	कङ्कुष्ठम्

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

१	२	३
हैमवती	चि० २८/७	वचा श्वेत-वचा इत्यर्थः
	सू० ३८/५४; ४४/३६,	श्वेतवचा
	उ० ३९/१३०; क० ५/७८	वचा
हंसपादी	सू० ३८/४	मधुश्रवा
हंसाह्वया	चि० १८/४७	हंसपदी
ह्रीबेरम्	सू० ३९/८ चि० १७/७; उ० ९/१३; ३९/३००; ४०/६६; ४७/३१	बालकम्
	क्ष	
क्षणदा	उ० १७/१७	हरिद्रा
क्षीर-काकोली	सू० ३८/३५	तद् (काकोली) भेदः स्वनाम-ख्याता
क्षीर-शुक्ला	सू० १६/१९; चि० ३/६१; १६/१५	क्षीर-विदारी
क्षीरिणी	चि० ९/२७	अर्कपुष्पी
क्षीरिक-पीतन	उ० ४८/२६	आर्द्रशिरीष
क्षुद्र श्वेता	सू० ३८/१६	श्वेतस्यन्दा श्वेतपुष्पा
क्षुद्रसहा	सू० ३८/४ उ० ४२/११३	मुद्गपर्णी
क्षुद्रा	चि० १२/९	लघुकण्ट-कारिका
क्षुद्रैला	क० ६/१७	सूक्ष्मैला
क्षुमा	सू० २५/२१	अतसी
	त्र	
त्रपुसः	चि० ३१/५	सुधावास लोके त्रपुष
त्रपुस	सू० ४२/११	लोके तिरसी तेवसा
	सू० ४६/२१६	साधवास
	चि० ३/६७	कर्कटीभेद
	उ० ५८/४२	साधुवास
त्रायन्तिका	चि० ११/१०	मदयन्तिका
त्रायन्ती	उ० ३९/२२३	त्रायमाणा
त्रिकण्टक	सू० ३८/६६; ७३, उ० ५२/३०; २४/३१	गोक्षुरक
त्रिपर्णिका	सू० ४६/२७४	दुग्धिका
त्रिफला	सू० ३८/२०	हरीतकी, आमलक एवं विभीतक
त्रिभण्डी	सू० ४४/१५	त्रिवृत
	चि० ९/५०; १७/२२	शुक्ल-त्रिवृत

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

१	२	३	१	२	३
त्रिवर्ग	चि० २/७३;	त्रिफला		४४/३;	त्रिवृत
	उ० ४१/४५;	त्रिकटु		४४/१६	निशोथ
	५६/१५				
			त्रिवृता	चि० १९/६८	त्रिवृत
त्रिवर्ण	सू० ४४/७	त्रिजातक			
त्रिवृत	सू० ३८/२९;	रक्तमूला	त्रिसुन्धिक	उ० ४९/३३	त्रिजातका

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

नवम अध्याय

संहितोक्त वनस्पतियों के डल्लण द्वारा संकेतित लोकप्रचलित नाम

द्रव्यगुण क्षेत्र के वनस्पति-परिचय प्रकरण में लोक में प्रचलित नामों का अत्यधिक महत्व है। यह महत्व तब और भी उपबृंहित हो जाता है जब यायावर या पर्यटक या सर्वेक्षक वनस्पतिवेत्ता अपने एवं इतर क्षेत्रों में प्रचलित लौकिक नामों को विभिन्न वनस्पतियों के पर्याय के रूप में प्रस्तुत करता है। एक ही ओषधि भिन्न-भिन्न प्रान्तों में सर्वसाधारण में लोकभाषागत नाम को धारण करती है और संग्राहक अपना समस्त ज्ञान गोप; अविप एवं अजप से प्राप्त करते हैं। गुण कार्मुकता की दृष्टि से प्रसिद्ध वनस्पतियों को आबाल वृद्ध जानते एवं सुनते रहते हैं।

डल्लण को उत्तर भारत एवं मध्य भारत के भ्रमण का सम्भवतः अनेक बार अवसर प्राप्त हुआ था क्योंकि वे एक राजा के आश्रय में थे। सर्वेक्षण के लिए सभी सुविधायें उन्हें सुलभ थीं यही कारण है कि उन्होंने अपनी वनस्पति-परिचय की जिज्ञासा को लोक के माध्यम से शान्त करना चाहा है। यदि इसकी व्यवस्थित सूची बन जाय तो ओषधियों की सन्दिग्धता का निर्णय हो सकता है।

मूलशब्द	सन्दर्भ	लौकिक नाम
	अ	
अंकोठः	सू० ३७/१२	अङ्कोल्ल
अग्निमन्थ	सू० ३८/६८;	पूर्वदेशे अग्निवधू
	३८/१०;	पूर्वदेशे आगथ
	३८/१२	अंगशूर
अगस्त्यः	सू० ४६/२८१	अगथीयाः
अजकर्ण	चि० १६/३३, ६/१४; २७/८	पियासाल, गन्धमुण्ड
अजा	चि० १९/१४	बोबई
अञ्जकी	चि० १८/३४	श्रीफलिकः
अतसी	सू० ३६/७	अलसी

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

१	२	३
अतिमुक्तक	उ० ६०/३५	अवेतक
अनन्त (पा०)	सू० ४६/२४९	कलिहारी
अपामार्ग	सू० ३९/६	अन्धडक
अभिषुक	सू० ४६/१८७	अभिषु
अम्बष्ठा	चि० ११/१०	सांकुरड
अरिमेद अरिभेद	सू० १४/३६	अरिमञ्ज
अलवणा	सू० ३८/१६	काकमर्दनिका
अश्मन्तक	शा० १०/५९	अम्ललोट्क
	सू० ४६/१६३	आसन्त
आ		
आर्तगलः	चि० ७/६	कौहा (पूर्व देश में प्रसिद्ध)
आदारि (शिम्बी)	उ० ४४/१९	आलि आउलि
इ		
इन्द्रवल्ली	उ० २८/७	गण्डदूर्वा
इक्षुर	चि० ४/३२	तालमखाना
उ		
उन्दुरुकर्णिका (उन्दुरकर्णा-पा०)	सू० ३८/१८	उन्दुरी
उपकुञ्चिका	सू० ४६/२३०	वृहज्जीरक
ए		
एकैषिका	सू० ४५/१२६	पाठा
क		
कर्कारु	सू० ४५/१२०; खरवारु ४६/२१६ खेरसा	खीरा

१	२	३
कच्चक	चि० ६/६	कवहक (मालवा में)
कट्फल	सू० ३८/१५	कायफल
कदम्बपुष्पी	सू० १९/६३	मुण्डतिका
कन्दली	सू० ३९/७	सर्पच्छत्रक
कर्बुदार	सू० ३९/३	बबहार-लिहूसाड़क
करमर्दी	सू० ३८/७३	करमदी
कलम	सू० ४६/४	कलवि (अन्तर्वेदी में)
कह्लार	सू० ३९/८	बृहत्पत्रिका
काकणन्ती	सू० १४/१३; उ० ४०/१४	चिरिहष्टिका
काकाण्डफल	सू० ४६/३६	शूकरशिम्बी
कालमाल	सू० ३८/१८	बर्बरिका
कालिन्द	सू० ४६/२११	कलिन्दा
कालेयक	सू० ३९/९	मलयाद्रि चन्दन
कुटन्नट्ट	उ० ११/५ ३६/४	फज्जीमदनक
कुटिञ्जर	सू० ६/९३	कोल्हसुआ
कुमुद	सू० ४६/२८५	कुइआं या कुइया
कुरण्टक	सू० ३८/६	कण्टाशेलुआ
कुरुण्टिका	चि० ७/१०	सिरिवालिका
कुस्तुम्बरी (आर्द्रा)	सू० ४६/२३१	अल्ला

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

१	२	३
कृष्णसारिवा	सू० ३८/४	कालवेली
केशराह्वय	उ० ६२/२३	चडुकी
कोशातकी	सू० ४६/२६२	घुसुण्डी; तोरई
कंटकी	सू० ३८/६	कांकई
	ग	
गवेधु	सू० ४६/२१	गलगोधूम, गरल (देशान्तर में)
गिलोड्य	सू० ४२/१८; चि० ५/८; ११/६	गिल्लोठी गुगिलोट गोन
गोपघोण्टा	सू० ३८/६; चि० ११/६; क० ६/३	ग्रामकोलिका
	च	
चाङ्गेरी	सू० ४६/२७३; उ० ४०/५५, १८०	अम्ल-चांगेरी
चिरबिल्व	सू० ३६/१०; चि० २/८६; क० ६/३; उ० ४२/६०	चिरिहिली
चुञ्चू	सू० ४६/२४६; २५१, ३३५; ४३२; चि० १/४१; ६/८; उ० ४०/११३	चूञ्च, चुचु
	ज	
जिङ्गिनी	सू० ३८/१४	गुलहुणि
	त	
त्वक्	चि० १५/२१; उ० ५८/४८	गुड़तज
तण्डुलीयक	सू० १६/२७	चौलाई
तमाल	सू० ३६/६	पत्रक
ताम्बूलपत्र	सू० ४६/२७६; चि० २४/२१; २६/८	पर्ण
तामलकी	उ० ३६/२१५; २२१; ५१/२७	भूम्या-मलकी
तिनि	उ० ४०/११६	टिम्ब-रुपणि
तिनिश	क० ६/३; २२	सादण
तिमिर	उ० ५१/३२	तिवरिया
	द	
द्रवन्ती	सू० ११/१४; ३६/४; ४२/१८; ४४/४६; ४५/१२४; चि० २/८६ १८/२०; ३१/५; उ० ४२/६३; ५२/१६	संवरी
दाडिम	सू० १६/३४	पानीयामलक
दाधिका		रायुका
देवदाली	सू० ३६/४; क० ७/३५; ३६	देवली
	ध	
धन्वन	सू० ४६/१६३; चि० १५/६	धम्मण धामण धामन

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

१	२	३
श्यामक	सू० २८/१३; ३८/२४ चि० २२/६९; क० २/४८; ५/६६; ६/१६	रोहिषतृण
	न	
नदी वृक्ष	सू० ३८/४६, ४८	पार्श्वं-पिप्पल
नालिका	सू० ४६/२७३	नाली
निर्गुण्डी	चि० १८/२१	शेफालिका
नीली	सू० ४४/२२	श्रीफलिका
नीलिनी	सू० ४४/६५	श्रीफलिका
नीवार	सू० २०/५	तुलजी धान्य, उलजी धान्य
	प	
पतरो (पत्तूर)	सू० ४६/२७४	सिरिवाली
पनस	चि० ३१/५	कटहल
परुषक	सू० ४६/१४३	फालसा
पृथक्पर्णी	सू० ३८/४	पीठवनी
पाठा	सू० ३८/६	पाढ
पालङ्का	सू० ४२/११	पालंक
प्रियङ्गु	सू० ४२/१८	कङ्गुनिका
प्रियाल	सू० ४६/२०५	चारुली
पीलु	सू० ४६/१९४	पीलु
पुन्नाग	सू० ३८/२४	राजचम्पक
पुनर्नवा	स० ३८/४	साटोडी
पुलाक	सू० २२/८; ९	जलगोधूम
पुत्रश्रेणी	सू० ३८/२९; ६/३	शम्बरी
	फ	
फाणिज्झक	सू० ३८/१८	मरुबक, फणिजा
फल्गु	सू० ४६/१६३	कदुम्बरी
	ब	
बन्धुजीव	सू० ३९/३; क० १/६९, उ० ६/१८	मरुनीया
बन्धूक	सू० ६/३७	बादुली
बरुकः	सू० ४६/२१	बरुक
बिस	सू० २१/२३	विसाड़
बिस	सू० ४६/४६४	भिषटंक
	भ	
भल्लूकः	सू० ३८/९; चि० ७/६, १०	शेणा
भाण्डी	चि० ३१/५	भाण्डनी
	म	
मत्स्याक्षक	शा० १०/६८	मत्स्याक
मदन	सू० ३९/२	मयणफल
मदयन्तिका	चि० २/९१	मेंहदी, मेंदिका
मधुर	सू० २८/५	चोरस्नायु
मधूलकम्	चि० ३८/२८	पीशीका (मध्यदेश)

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

१	२	३
मधूलिका	सू० ४५/१७९	मर्कटी
महानिम्बफल	सू० ३८/२२	पर्वतनिम्ब
महीकदम्ब	चि० १७/१५	मुण्डि-तिकेति
माषपर्णी	सू० ३८/३४	माषवनी
मुष्कक	सू० ३८/२०	माखक मोखड़
मूर्वा	सू० ३८/६	दूधउ
मृणाल	सू० ४६/२९८	हरिणद्रव
मोदयन्ती	चि० २५/३३	मल्लिका
मोरट	सू० ३८/८; चि० ७/९	मादूहर
	य	
यवतिक्ता	सू० ४५/१२५	यवेन्तिका
यवक्षार	सू० ४६/३२२	शीतलिका, यवक्षार
	र	
रम्यक	सू० ३८/२९; ३९/४; चि० ४/२७	महानिम्ब बकाइण राजनिम्ब
	ल	
लोहमलः	सू० ३८/६२	कट
	व	
वज्रवृक्ष	सू० ३८/२०	सेदुण्ड
वत्सादनी	सू० ४६/२५४	वत्सवतिया
वनमुद्ग	सू० ४६/२७	मुदिगक
वराहकन्द	सू० ४६/३०९	बलालुक
वसुक	सू० ३९/७	बकपुष्प
वार्ताक	सू० ४६/२६२	वड्गण
वायसी	चि० ९/२९	चिरपीटिका
वास्तुक	सू० ४६/२५६	टंक चुच्चू
विश्वदेवा	सू० ३८/४	गुडशर्करा (पूर्वदेश)
वृक्षशायिका	सू० ४६/७६	गिली
वृक्षादनी		कवलेरव
श्वेतसुरसा	सू० ३८/१८	तुलसी
शर्करा	सू० ४५/१६२	तवराज
शणपुष्पी	सू० ३९/३	सण्हुली
शतपत्र		काष्टकुट्टक
शतावरी	सू० ३८/४	शतावरी
शल्लकी	उ० ४१/३०	शल्यका
शल्लकी	सू० ३८/१४	साल
शाक	चि० १५/२२	सागवान
शाका	क० ६/३	श्रीपर्ण
शार्ङ्गेष्टा	चि० १२/९	भुमुरुटा भुभुरुट
शिरीष	सू० ३८/१२	सिरस
शिंशपा	सू० ३८/१२	सांसई
शैलुः	सू० ४६/२४९	लिसाड़
श्लेष्मातक	चि० ५/१०	लिसोड़ा
शृंगाटक	सू० ४६/२९२	सिंघाड़ा
श्रवण	चि० ३१/५	इंगुदी
श्री	उ० २४/२७	गुग्गुली

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

१	२	३	१	२	३
श्रीवेष्टक	सू० ३८/२४	गुग्गुली		ह	
सप्तच्छद	सू० ३८/६४	सातवन	हस्तिकर्ण	सू० ४५/१५	भूपलाश
सर	सू० ४५/७८	तर	हायनक	सू० ४६/४	शङ्कुवाक
सहदेवी	सू० ३८/४	काङ्कसी	हंसपादी	सू० ३८/४	हंसपाई
सहदेवा	सू० ३८/४	काङ्कटी		क्ष	
			क्षवक	सू० ४६/२२;	छिक्नी
सुनिषण्णक	सू० २०/५	सिरिवालिम	क्षुद्रश्वेता	सू० ३८/१६	सेफन्द
सुरसा	सू० ३८/१८	तुलसी		त्र	
सुरसी	सू० ३८/१८	बिल्वनासी	त्रपु	सू० ४२/१८	कथीर
सुवर्चला	सू० ४५/११५	सौञ्चली	त्रपुस	सू० ४५/१२०	त्रपुष
सुवर्ण	सू० ३६/४; ४५/१३	हियावली	त्रपुस	सू० ४२/११	तिरसी, तेवसा
सुवहा	चि० १७/४०; उ० ३४/३; ५१/२३	नापिणी	त्रिवृत	सू० ४४/३	निशोथ
				सू० ४४/१६	निशोथ

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

दशम अध्याय

वनस्पतियों का डल्लण द्वारा आकृतिपरक परिचय

इस अध्याय में उन वनस्पतियों का सन्निवेश किया गया है जिनका डल्लण ने आकृतिपरक परिचय दिया है। वनस्पतियों के विभिन्न अङ्ग-प्रत्यङ्गों का वही परिचय दे सकता है जिसने उन्हें अत्यन्त समीप से देखा हो। यह तभी सम्भव है जब वह उसका मर्मज्ञ एवं तलस्पर्शी विद्वान् हो।

आयुर्वेदीय टीकाकारों में सम्भवतः डल्लण प्रथम व्यक्ति हैं जिनको वनस्पतियों का वैज्ञानिक दृष्टिकोण से भी ज्ञान था। यह प्रवृत्ति निघण्टुकारों में भी उपलब्ध नहीं होती। आकृति परिचय विज्ञान वनस्पतिशास्त्र के पर्यालोचन में परम सहायक होता है।

यदि विभिन्न वनस्पतियों के मूल, प्ररोह, पत्र, पुष्प एवं फल के आकार का ज्ञान रहे तो वनस्पति-परिचय में परम सरलता हो जाती है और इसके कारण उनकी सन्दिग्धता का निवारण भी हो जाता है।

इन प्रस्तुत वनस्पतियों के परिचय में डल्लण ने जहाँ एक ओर अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है वहाँ अनेक स्थलों मे विभिन्न तद्शास्त्रीय विद्वानों के कथनों को भी उद्धृत किया है। डल्लण की वनस्पति परिचयात्मक यह शैली सभी वनस्पति-गवेषकों को मन्त्रमुग्ध कर देती है।

अर्कपुष्पी — सू० ४६/२६२	अर्कपत्रसदृशलता।
शा० १०/६६	अर्कसदृश पयः पुष्पा लता।
अंकोठ — सू० ३७/१२	चीरित स्वल्पपत्र।
अजरुहा — क० १/७८	कन्दः श्वेतः सपिड्को भेदे चाञ्जन सन्निभ (उशनसाप्तोक्तम्)।
अर्जक — सू० ३८/१८	बर्बरिकाकारो लघुमञ्जरीकः सूक्ष्मपत्रो निर्गन्धः।
उ० ३६/२७२	अन्ये सितपर्णसमाहुः।
अतियवा — सू० ४६/४३	निःशूका कृष्णारुणयवा।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

अलवणा — सू० ३८/१६	(ज्योतिष्मती) वर्तुलपक्वरक्तफलापीततीला।
चि० १७/३४	तस्या इदं पत्रमालवणम्।
अश्मन्तक — सू० २५/२०	अम्ल लोटकसदृशवृक्षः।
सू० ४६/१६३	यमलपत्रकः।
शा० १०/५९	कोविदार सदृशोऽम्लपत्रः।
अश्वकर्ण — सू० ११/१२	पिप्पल सदृश।
सू० ३७/२७; ३८/८, ४६/१६३; चि० २/६४, ९/७; १९/३३, २१/१०	अश्वत्थ सदृश।
अश्वबला — सू० ४५/२५६	बृहत्पत्रा मेथिकाभेद।
चि० १/११३	यवनभूमौ मेथिकाकारवीजा।
अशोकः — सू० ३८/१४	लोहित कुसुमः।
अक्षीवः — क० ८/१२०	अक्षीवात् महानिम्बाज्जातपिप्पलः अक्षीवपिप्पलः।
अक्षोड — सू० ४६/१८७	मदनफलाकार फलः मध्ये किञ्चिदुन्नतरेखान्वितः।
आदारी — उ० ४४/२९	वेल्लन्तरसदृशपुष्पा।
आम्रातक — सू० ४६/१३९	आम्रफलसदृश।
आर्तगल — चि० ७/६	बहिःकेशरः कण्टकितफलो विटप इत्यन्ये।
उ० ९/१९	कण्टकफलो जलमुक्तदेशजः।
इंगुदी — सू० ४५/११५	कण्टकीवृक्षः।
इन्दीवर — सू० ३८/१२	दीर्घपत्रो बहुलपुष्पः।
चि० ७/११, ७/१७	दीर्घपत्रो बहुलपुष्पः, महापुष्पः।
इन्द्रवृक्षः — सू० ११/११	द्विविधो हि कुटजो बृहत्फलः श्वेतपुष्पः स्निग्धपत्रः पुमान्; अणुफलवृन्ता श्यामारुणपुष्पा स्त्री।
उच्चटा — सू० २६/३५	शणघण्टाकारः स्वल्पविटपः।
चि० ३८/३४	शणघण्टाकारफलोऽल्पो विटपः।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

उपकुञ्चिका —	सू० ४६/२३०	स्थूलजीरक ईषत्कृष्ण।
एर्वारू —	सू० ४२/११	रोमशा कर्कटी।
	सू० ४६/२१६; चि० ३१/५	लोमशा कर्कटी।
एलवालुक —	सू० ३८/१४	कृष्णगन्धकफल।
ऐरावत —	सू० ४६/२६१	कृष्णलोहिताल्पफला।
कच्चक —	चि० ७/६	मध्यलेखानिचितः ऋजुकपत्र ईषद् रक्तमूलः।
कटुकिका —	सू० ४६/२६२	अपरे तु कटुतिक्तपुष्पामर्कफलाकार फलां....।
कतकफल —	सू० ३८/४३	शशकपुरीषप्रतिमम्बुप्रसादनम्।
	सू० ४५/१७	शशकपुरीष प्रतिमं फलं।
	चि० ७/७	अम्बुप्रसादनं शशकपुरीषप्रतिमम्।
	उ० १२/३१	शशपुरीषानुकार्यम्बुप्रसादनं फलम्।
कदर —	सू० ३८/८	खदिराकारः श्वेतसारः।
	चि० ११/६	अपीतसारः खदिराकरः।
कन्दली —	सू० ३६/८	श्वेतश्लक्ष्ण बहुपुटकन्द विशेषः।
कपोतवङ्का —	सू० ३८/१२	अन्ये शिरीषसदृशपत्रा स्वल्पविटपा।
	चि० ७/६	कट्भी सदृशपत्रो विटपी।
कम्पिल्लक —	चि० ४/२७	रोचनिकावृक्षः फलारुण रेणुः।
करमर्दी —	सू० ३८/७३	क्षीरफला।
करीर —	उ० ५७/६	गूढ़पत्रो मरुदेशेऽतिप्रसिद्धकण्टकिवृक्षः।
कलाय —	सू० २१/१६, १६/१६	त्रिपुटक।
काकणान्तिका —	नि० ५/८	गुञ्जा; तत्फल (वत्) रक्तानिमध्ये कृष्णानि।
काकाण्ड फल —	सू० ४६/३६	कपिकच्छुसदृश शिम्बी।
काञ्चनक्षीरी —	चि० ८/४०	अन्या पीतदुग्धा वृहत्पत्री यवतिक्ता।
कालिन्द —	सू० ४६/२११	कृष्णबीजं कूष्माण्डसदृशं।
कालीयक —	उ० १२/७; ४५/३६	दारुहरिद्रानुकारि।
कालेयक —	उ० ४४/३१	दारुहरिद्रानुकारि।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

कुक्कुटाण्डक — सू० ४६/१२	कुक्कुटाण्डानीव वर्णेन वर्त्तुलया च तण्डुला यस्य सः।
कुक्कुटी — उ० २९/७	कुक्कुटशरीरवत् कुसुमचित्रा वल्ली स्फटिक-रचित कुक्कुटाण्डतुल्यकन्दा।
उ० ३३/७	स्फटिकरचित कुक्कुटाण्डसदृशकन्दा कुक्कुटी-शरीरवत् कुसुमचित्रा वल्ली।
उ० ६१/४७ (पा०)	कुक्कुटसदृशकन्दा महौषधि।
कुन्तलिका — सू० ४६/२७४	चुच्चू सदृशा दीर्घपत्रा।
कुन्द — उ० ५१/३८	निर्गन्ध श्वेतपुष्प।
कुमुद — सू० ४६/२८५	चन्द्रोदय विकासि।
कुम्भी — उ० ५९/१७	स्थलकुम्भी यस्यास्त्वग् वक्रा।
कुम्भीक — सू० २८/४५	श्लक्ष्णत्वक्को रोमशः कुम्भीनामा वृक्षः, यस्य त्वग् वस्त्राकारा भवति।
कुम्भीका — उ० ३/१०	दाडिमाकारफला।
कुरण्टिका — सू० ३८/१२	कृष्णसूक्ष्मफला।
कुरुण्टिका — सू० ४६/२७४	अम्लानसदृशपत्रकुसुमा हरितपुष्पा।
चि० ७/१०	शरबालिकापेतो लोहितपुष्पः।
कुरबक — क० ५/८३	स्निग्धपत्रः सितकुसुम।
कुरुण्टक — सू० ३८/१६	पीतपुष्पः।
कुवलय — सू० ३८/५२	ईषन्नीलधवलम्।
कुश — सू० ३८/७५	ह्रस्वो मृदु सूचिपत्रः।
कृष्णसारिवा — सू० ३८/४	छिलहेण्टा पत्र सदृशच्छदा चन्दन गन्धा।
कोशातकी — सू० ११/११	चतुर्विधा-वृहत्फला, अल्पफला-पीतपुष्पा-श्वेतपुष्पा इति।
गिलोड्य — सू० ४२/११	शितोड्यकन्दः प्रावृड्जातः शण पत्रिका-कारवल्लीयुक्तः।
चि० ११/१०	कन्दः प्रावृड्जातः शणपत्राकारो वल्लीयुक्त-श्चर्मण्वतीनदीभवः श्वेतवर्तुलपाषाणसदृशः।
गोजिह्वा — सू० ४६/२६२	कर्कशा दीर्घपत्रा।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

चण्डा — सू० ३८/२४ अजमोदाकारा ।
सू० ४२/११ अजमोदाकारा सुगन्धिद्रुमम् ।

चर्मवृक्ष — चि० ११/१० लकुचद्रुमाकारो महावृक्षः ।

चित्रा — सू० ३६/३ पटोलफलाकारफला ।

चुच्चू — सू० ४६/२४ नाडिकाकारपत्रः ।

चोरक — सू० ३८/२४ ग्रन्थिपर्णकभेदो ग्रन्थिपर्णाकार एव ।
क० ५/८४ ग्रन्थिपर्णाकारी ।

जतुमुख — सू० ४६/१२ जतु लाक्षा तदाकृति मुखं यस्यासौ ।

जीवन्ती — सू० ३८/३५ लतार्कफलाकारसक्षीरफला (डोडिका लोके) ।
सू० ४६/२४६, ३३५ तण्डुलीयक सदृशी (जीवा) ।
सू० ४४/३ शुष्कयावानालवर्णा लतौषधि पर्ववती ।
उ० ५१/२७ टोलसमानपत्रा कन्दवती ।

तालपादिका (पा०)—चि० ७/१८ मुषली मूषक पुच्छाकारशिफा ।

तालमूलिका — चि० ७/१८ मुषली मूषक पुच्छाकारशिफा ।

तिल्वक — सू ३८/२६ रोध्राकारो बृहत्पत्रो रक्तत्वक्यो ।
चि० ३१/५ रोध्राकारो बृहत्पत्रो वैरेचनिकः ।

तुवरक — सू० ४५/१२२ पत्रैस्तु केशराकारैः कपित्थसदृशै फलैः ।
सू० ४६/४२३ पत्रैस्तु केशराकारैः कलायसदृशै फलैः ।

दर्भ — सू० ३७/७५ पृथुलः खरपत्रो दीर्घः ।

द्रवन्ती — सू० ४४/३६ चीरितपत्रा ।
चि० २/८६ चीरितपत्रा दन्ती ।
चि० २३/११ चीरितपत्रादन्तीभेद ।
उ० ४२/६३; ५२/२०

धन्वन — चि० १५/६ बदरी सदृश पत्रः ।

धामार्गव — सू० ३६/३ पीतपुष्पा कोशातकी ।

नन्दीमुख — सू० ४६/१२ आड़ी चञ्चु सदृशमुख तण्डुलः ।

नल — सू० ३८/१२ दूर्वाकारोऽन्तः सुषिरः स्वनामख्यातः ।
(पा०) चि० १७/२५, सुषिरपर्वा ।
२६/१३; उ० ५८/४७

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

नागपुष्प — सू० ३८/२४	अन्ये नागकेशरपुष्पसमपुष्पो महातरुरित्याहुः ।
नीवार — सू० २०/५	प्रसादी (ति) का धान्यमध्ये रक्तशूको भवति ।
सू० २२/१६	प्रसातिका धान्यमध्ये रक्तशूको भवति 'उलजीधान्यम्' इति लोके ।
चि० १४/४	उलिकाधान्यम् ।
सू० ४६/२१	उलिकाधान्यं, तद्द्विविधं—एकं धान्यसदृशविटपं धान्यक्षेत्रजं, द्वितीयं महादल काण्डं तु सलिलजं, तत्रसलिलजं सलिलवृद्धि मात्रस्तम्बपुरोहं रक्तशूकञ्च, तदेव 'प्रशान्तिका' इति तन्त्रान्तरेऽपि पठ्यते ।
चि० ११/१२	उलिकाधान्यं, तद् द्विविधं—एकं धान्य सदृश विटपं धान्य क्षेत्रजं, द्वितीयं महादलकाण्डं तत्तु सलिलजम् ।
पञ्चाङ्गुल — सू० ३९/४ (पाठ)	अन्ये तु पञ्चाङ्गुलशब्देन पटोलफल सदृशफलां लतां स्निग्धपत्रां शारदाफलामाहुः ।
पद्म — सू० ४६/२८५	पद्म पुष्पं सूर्योदय विकासि ।
पनस — सू० ४६/१७७	बहिः कण्टकी महाफलः ।
परूषक — सू० ४६/१६३	अल्पास्थिर्मृदुफलः ।
पलाण्डु — सू० ४६/२४६	स्थूल नालाग्रपत्रो गुन्द्रालिकाभेदः ।
पाटल — सू० ४६/१२	पाटलापुष्पवर्ण व्रीहिः ।
पाटला — उ० ४७/५१	सुगन्धि पुष्पवृक्षः ।
पाण्डुक — सू० २०/५	पाण्डुकशालिः स च पाण्डुतुषयुक्तः ।
सू० ४६/४	पाण्डुतुषः पाण्डुशूकश्चः ।
पारावत — सू० ४२/११	कामरूपे मधुराम्लरसफलम् ।
सू० ४६/१३८	कामरूपे फलं पाककाले धवललोहितं मधुराम्लञ्च ।
सू० ४६/१२	पारावतवच्छुकल तण्डुलः ।
पारावतपदी — चि० ९/३२	ईषल्लोहितो हंसपदी भेदः ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

पारिभद्र — क० ३/६	फलभद्रो रक्तकुसुमः कण्टकी रोहिणी सदृशपत्रः ।
क० ६/३	रक्तकुसुमः कण्टकी ।
उ० ५८/४८	अन्ये कण्टकीवृक्षं रक्तकुसुमं ।
पारिभद्रक — सू० ११/११	अन्ये तु रक्तकुसुमः कण्टकिवृक्षः विशेषः ।
पिण्डीतक — चि० १७/४०	पिण्डीतकस्त्रिविधः कृष्णपुष्पः, श्वेतपुष्पः पीतपुष्पश्च ।
चि० २५/३८	कृष्णपुष्पोमदनः ।
पीलु — उ० ५५/४३	उष्ट्रप्रियो गुडफलः ।
पुण्डरीकम् — सू० ४६/४	श्वेतपद्मं तत्सदृशः सौकुमार्य वर्णसौरभैर्यः स पुण्डरीको देवग्रहादेव बहुपोषनामा ।
पुत्रञ्जीवक — उ० ३१/८	मध्यवर्त्तुल तीक्ष्णाग्रफलो जम्बीरपत्रो वृक्षः ।
पुत्रश्रेणी — सू० ३८/२६	एरण्डसदृशफलपत्राऽल्पविटपः ।
पुष्पाण्डक — सू० ४६/४	पुष्पार्णव सुगन्धानि सुकुमाराण्यण्डानि तण्डुलानि यस्य सः ।
प्रतिविषा — उ० ४०/३७, ४५	श्यामकन्दातिविषाभेदः ।
प्रियाल — सू० ४५/१२०; ४६/१३६	मधुराम्ल फलः ।
बाष्प — चि० ४/३२	बाष्पिकाद्वयं तच्च लोहितं कृष्णं च सिन्धु-विषये ।
बिम्बी — उ० ४४/१६	रास्नानुकारि विटपा लोहितफला च ।
उ० ४७/२८	ओष्ठोपमफला ।
सू० ३८/१०	ओष्ठोपमफला ।
बृहती — सू० ३८/१०	एकास्थूलफला, द्वितोया ह्रस्वफला ।
उ० ४२/४६	एका अणुफला, द्वितीय कण्टकिनी स्थूलफला ।
भव्य — सू० ४२/११	तालफल सदृशमहावल्कलं कषायाम्लमधुर-मित्यन्ये ।
सू० ४६/१३८	तालफलोपमं केवलवल्कल संहतिमात्रयः इत्यपरे ।
भिल्लोटक — उ० १७/४०	ककुभानुकारिफलोवृक्षविशेषः ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

मत्स्याक्षक — शा० २०/६८	अन्ये रक्तपुष्पमानूपं ।
मधुशिग्रु — सू० ४६/२२१	लोहित कुसुमोऽल्पविटपः शोभाञ्जनकभेदः ।
मधूलक — सू० ४५/१७०	स्वल्प गोधूमः ।
मसूर — सू० ४६/२७	मसूरा द्विविधाः कृष्णाः पाण्डुराश्च, तत्र कृष्णवर्णा मसूराभिधाना, पाण्डुवर्णं मङ्गल्यकाभिधानाः ।
मुञ्जात — सू० १७/१५	स्वल्पकन्दः ।
मुञ्जातक — सू० ३८/८	
मातुलुङ्गी — सू० ३८/६	सुरभिफला वनजोऽरण्यबीजपूरकः ।
मुष्कक — चि० ४/३०	कृष्णपुष्प मुष्कक ।
मूर्वा — सू० २५/२१	अन्ये कोविदारसदृशयुग्मपत्रां लतां विशेषां मूर्वामाक्षते ।
सू० ३८/८	कन्दली सदृशस्वल्पविटपः ।
मूषिका — क० १/७८	लोमशा कृष्णा ।
मृणाल — सू० २१/२३	पद्ममूलात् स्थूलः प्ररोहाङ्कुरः ।
सू० ४६/२६८	पद्ममूलात स्थूलप्ररोहः अन्ये तु सूक्ष्मं नालमाहुः ।
चि० ११/१०	तस्य (विसस्य) स्थूल प्ररोहः ।
मेषशृंगी — सू० ३८/६	पुत्रजीवकतरुसदृशपत्रो वृक्षः ।
यव — नि० १३/५	स्थूलमध्य निम्नान्तत्वे ।
यवतिक्ता — सू० ४५/१२५	यवक्षेत्रेषु जायते तिक्तसप्ताष्टपत्रा ।
यविका — सू० ४६/४३	निःशूकाः स्वल्पाः ।
यूथिका — सू० ४६/२४८	वृक्षविशेषः सा त्रिधा—ईषत् श्वेतपुष्पा अतिश्वेतपुष्पा पीतपुष्पा च ।
राजक्षवक — सू० ४६/२७६	अन्ये तु राजक्षवको बृहत्पत्रः क्षवथुकाकार इत्याहुः ।
रोध्रपुष्पक — सू० ४६/४	रोध्रपुष्पाकाराः शूका यस्य सः ।
रोहित — उ० १७/४१	दाड़िमपुष्पतुल्यपुष्पः ।
लक्ष्मणा — शा० २/३२	पुत्रकाकार रक्ताल्पबिन्दुर्मिलाञ्छितच्छदा । लक्ष्मणा पुत्र जननी बस्तगन्धाकृतिर्भवेत् ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

लताकस्तूरिका — सू० ४६/२०४	शकुनापि तुल्य।
लवली — सू० ४६/१८६	लवलीफलं सुगन्धिफलं; घनस्निग्धा हरितांशु प्रपुनाटसहक्छदा। सुगन्धिमूला लवली पाण्डुकोमलवल्कला।
लावाक्ष — सू० ४६/१२	लावाक्षिसदृश तण्डुलः।
वार्त्ताक — सू० ४६/२६२	वृन्ताको वर्तुलफलः।
विदारी — सू० ३८/४	विपादिक कन्द, कोहलाकारो लोहितकुसुमः स च द्विविधः दीर्घकन्दो बहुक्षीरः; हस्तिपादकोऽल्पक्षीरः।
वीरतरु — सू० ३८/१२	"वेल्लन्तरुर्जगति वीरतरु प्रसिद्धः श्वेतासितारुण विलोहितपीतपुष्पः आदारितुल्य कुसुमः शमिसूक्ष्मपत्रः स्यात् कण्टकी विजल देशज एष वृक्षः।
वृश्चिकाली — सू० ३८/४	कण्टकित मेषशृंगयुगाकारफला पाठापत्रा ईषद् रोमशा श्वेतपुष्पगुच्छा दक्षिणावर्तवल्ली मेषशृंगीभेदः।
व्रीहि — सू० ४६/४	वार्षिकास्तु व्रीह्यः, "कण्डितशुक्लातु व्रीह्य इत्यन्ये।
शङ्खिनी — सू० ३७/१२	सुदुग्धावृहत्पत्रा।
शण — सू० ३७/६	परिपाके सस्वनफलः।
सू० ४६/२८१	बन्धनार्हत्वक् प्रसिद्धः।
शणपुष्पी — सू० ३६/३	शणसदृश विटप।
शतावरी — सू० ३८/४	सूक्ष्म पत्रा।
शाक — सू० ३८/४३	मसृणकर्कशोदर पृष्ठदलो वृक्षः विशेषः।
सू० ४२/११	खरमसृणपत्रपृष्ठोदरः।
चि० ७/६	कर्कशमसृणपृष्ठोदपत्रो वृक्षः।
चि० ६/१०	महाखरपत्रः।
चि० १५/२२	कर्कशपत्रवृक्षः।
चि० १८/३२	खरमसृणपत्रो महातरु।
नि० १६/३७	वृक्षविशेषोमहाखरपत्रलक्षणः।
शा० १०/५६	महावृक्ष कर्कशपत्र।
क० ६/३	महापर्ण।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

शाङ्गेष्टा — सू० ३८/६	अन्ये तु शाङ्गेंष्टा काकतिक्ता गौरवर्तुला-वगुण्ठितफला ।
सू० ३८/५४	काकतिक्ता गौरवर्त्तुलावगुण्ठितफला ।
चि० ३७/३६	भुम्भूरुट्टाको वेष्ठितफलः काकमाच्यनुकारः ।
शालमुख — सू० ४६/१२	कृष्णशुक्लाकारतण्डुलः ।
शीर्णवृन्त — सू० ४६/२१६	एके तु शीर्णवृन्तं पाकावस्थायां यस्य वृन्तं शटितं भवतीत्यर्थः ।
शृगालविन्ना (पा०)—सू० ३८/४	दीर्घपत्रा सिंहपुच्छा ।
सप्तपर्ण — सू० ३८/६	शाल्मलीसदृशपर्णो गजमदगन्धपुष्पः शरदि विकसनशीलः उच्चैर्वृक्षः ।
सावररोध्र — सू० ३७/१४	श्वेतस्थूलत्वक् ।
सुनिषण्णक — सू० ४६/२६२	श्रीब्रह्मदेवस्तु चतुर्दलमाह । तल्लक्षणं कथ्यते चांगेरी सदृशैः पत्रैः सुनिषण्णैश्चतुर्दलैः । शाको जलान्विते देशे चतुष्पत्रीति कथ्यते ।
सुवर्णक्षीरी — सू० ३८/२६, ३६/४	अनन्तासदृशपत्रा ।
सूर्यवल्ली — चि० ३१/५	पटोलसदृशपत्रा वल्ली ।
क० २/४५	पटोलसदृशपत्रायस्याः पत्ररसेनाक्तं मांसं स्विन्नमित भाति ।
सौगन्धिक — सू० १३/१४	गर्दभपुष्पाभिधानमत्यन्तसुरभि चन्द्रोदय विकासि ।
सू० ३८/५२	नीलोत्पलाकारवर्णमुत्पलं सुगन्धि च ।
सौवीर — सू० ४६/१३६	महत्तमयामपक्वावस्थासु मधुरं मरुदेशजम् ।
स्पृक्का — सू० ३८/२४	कुटिलपुष्पा सुगन्धिद्रव्यमौत्तरापथिकम् ।
स्फूर्जक — चि० ५/१८	फणिञ्जकाकारः प्रायशः पारियात्रे भवति ।
हंसपादी — सू० ३८/६	हंसपादाकारपत्रापीतपुष्पा ।
हठ — सू० ४५/११	अभूमिलग्नमूलः तृणविशेषः ।
हस्तिकर्ण — सू० ३६/६	गजकर्णाकारैकपत्रः ।
सू० ४५/११५	महापर्णः ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

क्षवक — सू० ३८/८	क्षवथुकारः फणिज्जकाकारः ।
सू० ४६/२६०	अन्ये तु क्षवकं द्रोणपुष्पीसदृशं विटपमाहुः ।
क्षीरपलाण्डु — सू० ४६/२४७	स (पलाण्डु) एव सक्षीरो मधुररसः ।
क्षीरविदारी — चि० ५/७	दीर्घकन्दा भृशं मधुरा ।

गुणकर्मज्ञापक परिचय

अजरूहा — क० १/७८	"गन्धलेपनपानैस्तु विषं जारयते नृणाम् । दष्टानां विषपीतानां ये चान्ये विषमोहिताः विषं जारयते तेषां तस्यादजरूहास्मृता ।"
अश्वबला — सू० ४६/२५६	तन्त्रान्तरे मेथिकाहिस्फित्थयो पृथक् गुणनिर्देशकृतः "वातपित्तहरातिक्ता लघ्वी श्लेष्मविरोधिनी मेथिका, तत्समं किञ्चिद्हिस्फित्थं पुष्टिदं गुरु ।"
इक्षुविकार — सू० ४४/६	इक्षोर्विकारैः खण्डादिभिः, न पुनर्गुडेन, उष्णवीर्यत्वात्तस्य, न च फाणितेन; त्रिदोषकरत्वात्तस्य, नापीक्षुरसेन, विदाहित्वात्तस्येति ।
क्षवक — सू० ३८/१८	क्षवथुकारः ।
सू० ४६/२२१	छिक्काकरः ।
उ० ४०/१५५	छिक्काकरः ।
चन्दन — शा० २/१५	रक्तचन्दनम्, गयी तु गोशीर्षाख्य चन्दनवरं न तु रक्तचन्दनं, तस्य हि गन्धायहरणशक्तेरभावात् ।
प्रपौण्डरीक — सू० ३८/५	यष्टीमधु द्रव्यादोषत् स्थूलं मधुर रसं नेत्राश्च्योतनार्हः ।
भल्लातक — सू० ३४/५	भल्लातकच्छाया तत्क्षणात् शोफकारिणी ।
मदयन्तिका — चि० ६/३४	नखादि रागजननी ।
चि० २५/४३	यस्याः पिष्टैः पत्रैर्नखानां रागं स्त्रिधा उत्पादयन्ति ।
मधूक — उ० ४७/४५	गुडपुष्प ।
लक्ष्मणा — शा० २/३२	पुत्रजननी ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

लशुन — उ० ६०/४६	लशति भिनत्ति रोगान् इति ।
वाताम — सू० ४६/१८७	तत्रवातामा मज्जमधुरस्निग्धो दीर्घाकारः ।
शिम्बी — उ० १७/२७	शिम्बीशब्देनात्र हरितमुद्ग चक्षुष्यत्वात् ।
शीतभीरुक — सू० ४६/४	शीताद् विभेतीत्येवं शीतभीरुको लोकादवगन्तव्यः ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

एकादश अध्याय

डल्लण द्वारा प्रतिपादित सन्दिग्ध वनस्पतियाँ

सन्दिग्ध वनस्पतियों की समस्या द्रव्य गुणशास्त्र के क्षेत्र में एक विकट समस्या है जिसका समाधान किए बिना आयुर्वेदीय भेषज-संहिता (फार्माकोपिया) का निर्माण सम्भव नहीं और न ही भेषज स्तर का निर्धारण सम्भव है, जं चिकित्सा शास्त्र की आधारभित्ति है। यह समस्या आज की नहीं, यह प्राचीन काल से विद्यमान है। कारण यह है कि हमारी मूल संहिताओं में द्रव्यों का वर्णन गुणकर्मात्मक किया गया है तथा रूप ज्ञान पर कोई ध्यान नहीं दिया गया। यही परम्परा संहिताओं के बाद निघण्टु ग्रन्थों में भी अपनाई गई है।

प्राचीन काल में द्रव्यों का परिचय न देने का एक कारण यह प्रतीत होता है कि उस समय जिन ऋषि मुनियों का आयुर्वेद से सम्बन्ध था उनके लिए द्रव्यों की पहिचान कोई समस्या नहीं थी। प्रकृति की गोद में वे जन्म से ही द्रव्यों का बोध करते थे और व्यक्तिगत सम्पर्क से उनका द्रव्य-विषयक पूर्ण परिचय हो जाता था। पिता से पुत्र को और गुरु से शिष्य को इस तरह ज्ञान होता रहा। जब मानव प्रकृति से दूर हटता गया और वन कटते-कटते बड़े-बड़े नगरों में बदलते गए तो स्थिति यह आ गई कि द्रव्यों का ज्ञान केवल नाम एवं गुण कर्मात्मक शास्त्रीय ज्ञान तक ही सीमित रह गया और यह ज्ञात न रहा कि अमुक नाम से किस द्रव्य को ग्रहण किया जाए। एक समय था जब वैद्य स्वयं जंगलों में जाकर द्रव्यों को संगृहीत कर औषध निर्माण करते थे। समय के प्रभाव से व्यापारियों से द्रव्य खरीद कर औषध निर्माण किया जाने लगा। चरक-संहिता (सूत्र-स्थान, अध्याय १५) में 'क्रय' एवं 'अक्रय' शब्दों का वर्णन हुआ है। 'क्रय' का अर्थ देश के भीतर द्रव्य की खरीद और 'अक्रय' का अर्थ बाहर से द्रव्यों का आयात है। इस तरह व्यापारियों के हाथ में द्रव्यों की उपलब्धि रह गई।

शास्त्रों में एक-एक द्रव्य का गुणकर्मात्मक वर्णन है परन्तु भारत जैसे विशाल देश में प्रत्येक के लिए उस द्रव्य को प्राप्त करना सम्भव नहीं था, क्योंकि किसी द्रव्य की उत्पत्ति पूर्व में तो किसी की पश्चिम में, कोई उत्तर में तो अन्य दक्षिण में पैदा होने वाला है। प्राचीन समय से ही यह समस्या सामने

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

थी और इसका सरल समाधान यह किया गया था कि यदि मूल द्रव्य उपलब्ध न हो तो उसी के समान गुण कर्म वाले क्षेत्रीय द्रव्य को प्रतिनिधि रूप में ग्रहण कर लिया जाए। इस प्रतिनिधि परम्परा का कालक्रम से यह प्रभाव हुआ कि बाद में उन प्रतिनिधि द्रव्यों को ही मूल द्रव्य माना जाने लगा और एक स्थिति यह उत्पन्न हो गई कि यह कह पाना कठिन हो गया कि शास्त्रोक्त द्रव्य का वह मूल द्रव्य है या उसका प्रतिनिधि द्रव्य है। आलस्य एवं लोभ के वशीभूत हो इसका लाभ भी उठाया गया और सुलभ द्रव्यों को ही शास्त्रोक्त द्रव्य के रूप में ग्रहण किया जाने लगा। भौगोलिक विविधता के कारण एक ही शास्त्रोक्त द्रव्य के लिए एक क्षेत्र में किसी एक वनस्पति को तो दूसरे क्षेत्र में किसी दूसरी वनस्पति को ग्रहण किया जाने लगा और वास्तविक कौन है, यह निर्णय कठिन हो गया।

इस समस्या के समाधान में द्रव्य-निर्धारण हेतु जो कार्य हुआ और होना है उसमें संहिताओं के व्याख्याकारों द्वारा द्रव्यों के परिचयात्मक विवरण महत्व के हैं। आचार्य डल्हण ने अपनी व्याख्या में जो कार्य किया वह इस दिशा में महत्वपूर्ण है। उनके जीवन परिचय से यह बात स्पष्ट है कि वे राजचिकित्सक और राजा के मित्र थे, वैद्य परिवार के थे एवं चमत्कारिक प्रतिभा सम्पन्न विद्वान् थे तथा सभी सुविधाएँ उन्हें प्राप्त थीं। देशाटन एवं क्षेत्रीय सर्वेक्षण के आधार पर उन्होंने द्रव्यों का ज्ञान प्राप्त किया था तथा तदनुसार द्रव्यों की व्याख्या की थी। तो भी संदिग्धता की इस उलझी हुई समस्या में कितने ही स्थलों पर वह स्वयं उलझ कर रह गए और कहीं-कहीं उनकी व्याख्या विषय को स्पष्ट करने वाली न होकर भ्रमोत्पादक हो गई। ऐसे द्रव्यों के प्रकरण में यद्यपि उन्होंने बहुत ईमानदारी से काम किया और अपना मत देने के साथ-साथ अन्य मत; एकीय मत; अपर मत देकर वर्णन दिया तो भी कितने ही द्रव्यों के विषय में आचार्य ने एक स्थान पर जिस द्रव्य को ग्रहण किया, दूसरे स्थान पर अन्य को ग्रहण किया तथा ऐसा भी हुआ कि किसी द्रव्य के विषय में पहले जो अपना मत बताया और अन्य मत में दूसरे किसी द्रव्य को ग्रहण करने का निर्देश दिया तो दूसरे सन्दर्भ में अन्य मत को अपना मत बता दिया तथा अपने मत को अन्य मत में लिख दिया। इस तरह के विवरण से भ्रम उत्पन्न हुआ न कि स्पष्टीकरण।

यह दोष रहने पर भी इतना कहना पड़ेगा कि डल्हण ने द्रव्यों के परिचय में बहुत योगदान किया। द्रव्यों के परिचयात्मक स्वरूप का वर्णन हमने अलग से लिखा है तथा भौगोलिक दृष्टि से उनकी उपलब्धि का वर्णन तथा लौकिक नाम देकर उन्होंने द्रव्यों का परिचायक मार्ग प्रशस्त किया है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

इस शोध-कार्य में संदिग्ध द्रव्य की परिभाषा में हमने उन द्रव्यों को लिया है जिनके विषय में डल्हण ने एक से अधिक मत दिए हैं। जिन द्रव्यों का निश्चित एक मत दिया है उनको पीछे अलग प्रकरण में दे चुके हैं। इनमें यह निश्चय करने की आवश्यकता है कि किस-किस शास्त्रोक्त द्रव्य के लिए कौन द्रव्य ग्रहण किया जाए।

आधुनिक युग में ऐसे संदिग्ध द्रव्यों के परिचय एवं द्रव्य निर्धारण हेतु इस शती के आरम्भ से ही कार्य आरम्भ हुए और श्री रूप लाल जी वैश्य एवं श्री भागीरथ जी स्वामी के आरम्भिक प्रयत्न सराहनीय हैं। वनस्पतिवेत्ता डॉ० बलवन्त सिंह का कार्य वैद्य समाज के लिए उल्लेखनीय है। वर्तमान विद्वानों में वयोवृद्ध एवं ज्ञानवृद्ध वैद्य श्री बापा लाल जी, आचार्य श्री विश्वनाथ जी द्विवेदी; आचार्य श्री प्रियव्रत जी शर्मा एवं डॉ० श्री राम सुशील सिंह जी का कार्य महत्वपूर्ण है जिन्होंने द्रव्यों की संदिग्धता का समाधान करने का प्रयत्न किया है।

यद्यपि शोध-कार्य का उद्देश्य डल्हण का इस क्षेत्र में योगदान की समीक्षा है तो भी इन विद्वानों का संदिग्ध द्रव्यों के विषय में क्या मत है यह अध्ययन कर डल्हण द्वारा प्रदत्त स्वमत एवं विमत के आधार पर क्या माना है इसका समीक्षात्मक अध्ययन हमने प्रस्तुत किया है, जिसमें बहुत स्थानों पर इन विद्वानों के मत डल्हण के मत से मिलते हैं और कितने ही जनों ने द्रव्यों के विषय में डल्हण के मत को भ्रामक बताया है।

इस शोध-कार्य का उद्देश्य इस विषय को पूर्णतः प्रकाश में लाना है और आगे कार्य करने वालों को सामग्री देना है कि वे डल्हण द्वारा प्रतिपादित मतों पर गुणकर्मात्मक दृष्टि से तथा परिचयात्मक विवरण से निर्णय करें कि किस द्रव्य से कौन अर्थ ग्रहण किया जाए।

नीचे हमने ऐसे द्रव्यों पर डल्हणोक्त स्वमत एवं अन्य मतों को दिया है तथा यत्र-तत्र विद्वानों द्वारा तत्तद्विषयक विचार भी दिए हैं—

अग्निक —	सू० ३७/१०	कलिकारिका अन्ये भल्लातक।
	क० २/४५	अजमोद अन्ये मोरट।
	उ० २३/१०	चित्रक अन्ये अजमोद।
	उ० ४२/४६	चित्रक अन्ये अग्निमन्थ अपरे मोरट।
अजकर्ण —	सू० ३८/८	सर्ज शालभेद एव।
	चि० २७/८	महासर्जः गन्धमुण्ड इत्येके।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

चि० १६/३३ 'पियासाल' इति लोके ।
चि० ३४/१७ अश्वकर्णः प्रसिद्ध एवं पूर्वदेशे ।

आचार्य प्रियव्रत शर्मा का कथन है कि एक ही वृक्ष के लिए चार भिन्न वृक्षों को बताना डल्हण की पूर्णतः भ्रमावस्था का द्योतक है, उनका मत है कि अजकर्ण को शालभेद ही माना जा सकता है जिसे स्थानीय भाषा में सजः या सर्जः (**Terminalia Tomentosa**) कहा जाता है ।

अजगन्धा — सू० ३७/६ बोबयिका, लतौषधीत्येके, अन्ये यवानिका ।
चि० ५/२८ क्षेत्रयवानी (गयदास मतानुसार) ।
सू० ४४/१६ यवानिका, बोबयिका इत्यन्ये ।
उ० ३५/४ बस्तगन्धा ।

आचार्य प्रियव्रत शर्मा वन्ययवानी को अजगन्धा मानने के पक्ष में हैं जो **Thymus serphyllum Linn** है । चक्रदत्त के अग्निमान्द्याधिकार में आचार्य शिवदास सेन ने वन्ययवानी को अजमोदा माना है ।

आचार्य बापा लाल वैद्य ने अजगन्ध को तिपर्णिका का पर्याय माना है और इसको **Gyandropis pentaphylla** स्वीकार किया है (**Pages 290-291, S. C. D. I. M.**) ।

अजशृंगी — सू० ३७/६ कर्कटशृंगी अन्ये छगलविषाणिका उत्तमारणी मेढ़िका ।
चि० १७/१४ छागलविषाणिका अन्ये कर्कटशृंगी उत्तमारणी(गयादासाचार्यमता) ।

द्रव्यगुण विज्ञान, भाग ५ में अजशृंगी को **Gymnema sylvestre R. Br.** माना है ।

अम्बष्ठा — सू० ३८/४६ माचिका अपरे पाठा

द्रव्यगुण विज्ञान, भाग ५ में अम्बष्ठा को माजूफल (**Quercus infectorie Oliv**) ग्रहण करने का मत दिया है ।

अर्कपुष्पी — सू० ४६/२६२ अर्कपत्र सदृशीलता अन्ये अर्कपर्ण ।
शा० १०/६६ पयस्या केचित् श्वेतदूर्वाविशेष अन्ये वृक्षजाति ।

द्रव्यगुण विज्ञान, भाग ५ में इससे **Holostemma rheedei wall** को ग्रहण करने का मत व्यक्त किया गया है ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

अर्जक — उ० ३९/२७२ कुठेरक; अन्ये सितपर्णा।

इससे 'अजगुर' नाम से प्रसिद्ध Orthosiphon pallidus Royle का ग्रहण किया जाता है।

अश्वबला — चि० १/११३ उपोदिका अन्ये मेथिकाकारबीजा (ब्रह्मदेव)।

तुरुष्क देश में होने वाली वनस्पति—जो 'हिस्फित्थ' नाम से डल्हण ने लिखी है—को स्वीकार करना चाहिए। यह अरबी में फिसफित और फारसी में इस्फिशत कहलाती है।

आर्तगल — सू० ३९/७ ककुभ, अन्ये कण्टकी वृक्ष।
चि० ७/६ ककुभ, अन्ये कुरबक।
उ० ६/१६ कण्टकीफलो जलयुक्त देवाजः, अन्ये ककुभ।

ग्लौसरी में ठा० बलवन्त सिंह का यह मत है कि ककुभ नाम से अर्जुन का ग्रहण नहीं किया जा सकता क्योंकि यह 'सैरयक' की जाति है।

इंगुदी — सू० ३९/६ इंगुक, अन्ये पुत्रजीवकः।
सू० ४५/११५ कण्टकी वृक्ष प्रसिद्ध, अन्ये पुत्रजीवक।

वैद्य बापा लाल का मत है कि इंगुदी पुत्रजीवक से सर्वथा भिन्न है वास्तव में इगुदी को Balanites aegyptiace DEL माना है। उन्होंने डल्हण के कण्टकी वृक्ष पर्याय का पूर्णतः समर्थन किया है (S. C. D. I. I. M., pages 177-178)। ग्लौसरी में ठा० बलवन्त सिंह ने तापस वृक्ष को इंगुदी मानने का परामर्श दिया है। डॉ० रामसुशील सिंह भी वैद्य बापा लाल की तरह ही डल्हण के मत के समर्थक हैं और कण्टकी वृक्ष को ठीक मानते हैं।

उत्पल — उ० ४५/३६ नीलोत्पल, अपरे नागकेशर।
उन्दुरुकर्णिका — सू० ३८/२८ मूषिककर्णिका, अन्ये द्रवन्ती, अपरे दन्ती।

ग्लौसरी में डल्हणमतानुसार ठा० बलवन्त सिंह ने मूषिककर्मि माना है।

एकैषिका — सू० ४५/१२३ अविद्धकरणी 'पाठा' इति लोके जेज्जट (अन्ये) त्रिवृत्।
चि० १७/१४ शतावरी, अन्ये त्रिवृत् भेद।
चि० १८/४६ अम्बष्ठा; एके त्रिवृत्।

श्री प्रियव्रत शर्मा का मत यह है कि एकैषिका से अम्बष्ठा का ग्रहण करना चाहिए (द्रव्यगुण विज्ञान, भाग ५)।

ऐन्द्री — उ० ६२/३० इन्द्रवारुणी, अन्ये मत्स्याक्षक।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

द्रव्यगुण विज्ञान (भाग ५) में लिखा है कि ऐन्द्री से **Bacopa monnieri** (**Linn**) **Pennell** का ग्रहण करना चाहिए। डल्हण ने इन्द्रवारुणी और लवणिका पर्याय दिया है। यही उत्तर प्रदेश में जलनीम तथा बंगाल-बिहार में बरमी के नाम से प्रसिद्ध है। इसी को इन्द्रवल्ली माना जाना चाहिए।

कच्छुरा — उ० ४०/११० कङ्कतिका, एके शूकशिम्बा, अन्ये दुरालभा।

कटुका — सू० ४६/२०२ लताकस्तूरिका, अन्ये लघु कक्कोलक (पञ्जिकाकार) (श्री ब्रह्मदेव)।

द्रव्यगुण विज्ञान (भाग ५) में यह मत प्रस्तुत किया गया है कि डल्हण ने इसमें अपना मत तो दिया है फिर भी श्री ब्रह्मदेव के मत को मानकर इसे लघु कक्कोलक स्वीकार करना चाहिए।

कटुकिका — सू० ४६/२६२ अरण्यकासमर्दनिका; अन्ये तिक्तारिका; अपरे कटुतिक्त पुष्पामर्कफलाकारफलां प्रसिद्धा।

आचार्य प्रियव्रत शर्मा का यह मत है कि कटुफला (कटुका) और कटुकिका एक ही है (द्रव्यगुण विज्ञान, भाग ५)।

कदम्बपुष्पी — उ० ४४/१९ भूमिकदम्ब; अपरे अलम्बुषा।

कनकक्षीरी — सू० ११/१३ सुवर्णक्षीरी, अन्ये कंकुष्ठ।

सुवर्णक्षीरी उपयुक्त है, हमने सुवर्णक्षीरी के प्रकरण में स्पष्ट किया है कि उसकी एक जाति हिरवी से प्राप्त होने वाला पदार्थ ही सम्भवतः कंकुष्ठ है। अतः अन्य मत में कंकुष्ठ माना जाना केवल पर्याय भेद है। कंकुष्ठ के विषय में द्रव्यगुण विज्ञान (भाग ५) में लिखा है कि प्राचीन काल में सुवर्णक्षीरी का निर्यास कंकुष्ठ था। मध्य काल में उसारे रेवेन्द था और अब **Gracinia morella** नामक वृक्ष का निर्यास कंकुष्ठ नाम से प्रसिद्ध है।

कनकाह्व — सू० ४४/४९ कंकुष्ठ, अन्ये नागकेशर।

ग्लोसरी का मत है कि डल्हण ने कंकुष्ठ को कनकाह्व ठीक ही माना है।

कपोतवङ्का — सू० ३८/१२ सुवर्चला; अन्ये शिरीषसदृशपत्रा स्वल्पविटपा।

अन्यत्र कटभी सदृश पत्र विटपी जो मध्य प्रदेश में प्रसिद्ध है (चि० ७/६) को तथा ब्रह सुवर्चला जिसे लौकिक भाषा में कवड़क कहते हैं (उ० ३२/३) को कहा है। अतः डल्हण स्वयं भ्रमित प्रतीत होते हैं। श्री प्रियव्रत शर्मा का मत है कि कपोतवङ्का को गोरख (**Dalbergie Lancelorle**) स्वीकार करना चाहिए।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

करवी — सू० ४६/२६० एके यवानी, अपरे अजमोदा, अन्ये राजिका।

कल्हार — सू० ३६/८ रक्तोत्पल, अन्ये सौगन्धिकोत्पल।

यह उत्पल के ही भेद हैं।

काकणन्तिका — सू० २/१३ गुञ्जा, अपरे काकादनी।

इसे गुञ्जा मानने का मत ग्लौसरी में दिया है। सम्भव है काकादनी के रक्त फल होने से दूसरे लोग इसे काकादनी कहने लगे हों। काकादनी की टिप्पणी में हम यह स्पष्ट करेंगे।

काकादनी — क० ३२/८ काकतिन्दुक काता इत्यन्ये।
चि० १८/१३ वायसतिन्दुक, अन्ये अहिंस्रा।

ठा० बलवन्त सिंह ने ग्लौसरी में लिखा है कि अवगुत्थ और वेगनाम को काकादनी का पर्याय कहा गया है।

द्रव्यगुण विज्ञान (भाग ५) में इसे Andmirta cocculus W.A. जिसे काकमारी कहते हैं, स्वीकार करने का मत दिया है। इसके फल पकने पर नखाकृति एवं रक्त वर्ण के होते हैं। अतः ध्वाङ्क्ष, नखी, रक्तिका, रक्तला आदि इसके पर्याय कहे गए हैं। इसी से सम्भवतः काकादनी को रक्तिका के पर्याय रूप में गुञ्जा मानने का भ्रम हुआ हो जैसा डल्हण ने शाङ्गेंष्टा के प्रकरण में काकादनी को गुञ्जा कहा है।

काण्डेक्षु — सू० ३८/७५ महती खगाली, अन्ये इक्षु।

ग्लौसरी के अनुसार इसे काष्टेक्षु या काठगन्ना माना जाना चाहिए।

काम्बोजि — चि० १६/४२ कूविका अन्ये माषपर्णी (जपी)।

द्रव्यगुण विज्ञान (भाग ५) में दिया है कि निघण्टुओं में इसे माषपर्णी का पर्याय माना गया है। माषपर्णी का एक पर्याय हणपुच्छिका भी आता है। श्री शर्मा का मत है कि इससे Anstida setacea Retz जो घोड़ा लेज्जी (Horse' stall) के नाम से प्रचलित है; का ग्रहण करना चाहिए।

काला — सू० ३७/६, चि० हिंस्रा।
८/३०, १८/१३,
उ० ५८/५६, कालानुसारिवा, अन्ये श्रीपर्णिका
चि० १७/१४ में डल्हण ने कासमर्द भी लिखा है।

ग्लौसरी के अनुसार ठा० बलवन्त सिंह का मत है कि इससे कृष्णसारिवा का ग्रहण करना चाहिए। यह उपयुक्त लगता है। द्रव्यगुण विज्ञान (भाग ४-५)

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

में लिखा है कि संहिताओं के अनुसार काला शीत वीर्य है जब कि हिंस्रा ऊष्ण वीर्य है। अतः हिंस्रा का ग्रहण नहीं किया जा सकता। अतः कालानुसारिवा को ग्रहण करना चाहिए।

कालानुसारिवा —	चि० ३/६०	तगर।
	क० ६/१७	तगरभेद।
	चि० १५/३२	कृष्णसारिवा।
	चि० २२/६९	कालवल्ली।

द्रव्यगुण विज्ञान (भाग ५) इससे पत्तंग (Caesalpinina sappan Linn) का ग्रहण करना चाहिए—ऐसा मत दिया है। वहाँ तगर मानने को डल्हण का भ्रम बताया गया है।

कालीयक —	सू० ३८/८	मलेग्द्री चन्दन।
	क० १/५४	दारुहरिद्रा।
	क० ६/१५	पीत चन्दन।

कालीयक का प्रयोग कामला में दारुहरिद्रा के साथ है, अतः यह दारुहरिद्रा नहीं हो सकता। चिकित्सा स्थान २५/३९ में श्वेत, रक्त और कालीयक तीनों को एक स्थान पर दिया गया है, अतः मूलतः यह चन्दन-भेद है (द्रव्यगुण विज्ञान, भाग ५)।

कीटारि —	चि० २/८१	विडंग, अन्ये कीटमारी।
कुटन्नट —	सू० ३८/१४	श्योनाक।
	चि० २०/२५	तगर।
कुम्भीक —	सू० ३८/४५	कुम्भीनाया वृक्ष; अन्ये पाटला, अपरे स्वल्पविटप।
कुरण्टिका —	सू० ३८/१२	कृष्णसूक्ष्मफला 'सिरिवालिका' लोके।
	सू० ४६/२७४	अन्ये कुनालिका।
कृष्णगन्ध —	चि० १८/५	शोभाञ्जन, अपरे शमी।
क्रमुक —	क० ५/७०	पूगफल, अन्ये रूबुक।
	सू० ३८/८	पूग, अन्ये वृक्षरोध्र।

वैद्य बापा लाल जी क्रमुक से डल्हणानुसार पूग (Arcea catechu) को ग्रहण करते हैं। वे बलवन्त सिंह के इस विचार से सहमत नहीं है कि क्रमुक तूद है। पूग मानने का सबसे बड़ा तर्क उन्होंने यह दिया है कि इसकी गणना संहिताकारों ने आसव योनि के रूप में की है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

आचार्य प्रियव्रत शर्मा का मत है कि क्रमुक से जारूल का ग्रहण किया जाना चाहिए जिसे Legerstroemia speciosa pers माना जाता है। इसका वृक्ष सारवान् भी होता है और फल पूगवत् होते हैं।

क्षवक — सू० ४६/२६०	छत्रक; अन्ये द्रोणपुष्पीसदृश विटप। इससे Centipeda minima का ग्रहण किया जाता है।
खरपुष्प — सू० ४६/२२१	मरुवक, अन्ये क्षवकभेद, केचित् बोडयिका।
सू० ३८/२८	क्षवकभेद, अपरे बोवइका, अन्ये मरुवक।
गाजी — चि० १८/५	गोजिह्विका, अन्ये शाखोटक।
सू० ६/२५	
चि० २८/३२	दार्वीपत्रिका, अन्ये शाखोटक।

वैद्य बापा लाल ने गोजी से गोजिह्वा (Elephantopsus sc Aber) का ग्रहण किया है। वे बलवन्त सिंह के स्थानीय नाम मयूर चुटिया (बिहार की वनस्पतियाँ) विचार से सहमत नहीं हैं।

आचार्य प्रियव्रत शर्मा गोजिह्वा और गोजी को भिन्न मानते हैं। उनका कहना है कि गोजिह्वा का शाक वर्ग में पाठ आया है, गोजी का नहीं।

गोपघोण्टा — सू० ३८/६	कर्कोटी, अन्ये बदरभेद, अपरे पूगभेद।
चित्रा — चि० २/४८	एरण्ड, अन्ये दन्ती।
सू० ३९/३	चित्राण्डिका, अन्ये द्रवन्ती।
चित्रफला — उ० ३२/८	इन्द्रवारुणी, अन्ये चित्राण्डिका।
चिल्ली — सू० ४६/२५६	क्षेत्रवास्तुक; अन्ये गौड़वास्तुक; एके यवशाक, अन्ये यवशाकान्तर।
छगलान्त्री — सू० ३८/३९	वृद्धदारुकभेद, अन्ये बुहनाभेद।
सू० ४६/२४९	
जलगण्ड — चि० ९/२१	जलगण्डीरक; अन्ये नदी पिप्पलिका।
जीवन्ती — सू० ३८/३५	डोडिका, अन्ये स्वर्णजीवन्ती।
सू० ४६/२४९	जीवा; अन्ये तण्डुलीय सदृशी, अपरे डोडिका।

वैद्य बापा लाल जीवन्ती को डल्हण के 'डोडिका' लौकिक नाम का समर्थन करते हैं और लिखते हैं कि यह गुजरात में शाक के रूप में प्रचलित है जो

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

चरकानुसार ठीक है। उन्होंने जीवन्ती को **Leptadenia reculiculata** माना है। उनका यह भी कथन है कि बंगाल में एक अन्य प्रकार की जीवन्ती का प्रयोग होता है जिसे वे **Dosmotrichun Fomhriatum** मानते हैं।

तापस वृक्ष — सू० ३८/१६ इंगुद, अन्ये पुत्रजीवक।

ताम्रवल्ली — शा० १०/५६ रामतरुणी अचेर मञ्जिष्ठा।

तिलपर्णिका — सू० ४६/२२१ चोरक, अपरे श्रीहस्तिनी।

तुगा — उ० ५२/१७ वंशलोचना; अन्ये वंशलोचनानुकारि पार्थिव-द्रव्य।

तुगाक्षीरी का पर्याय है।

तुगाक्षीरी — सू० १२/२३ वंशरोचना, अन्ये वंशरोचनानुकारि पार्थिव-द्रव्य।

वंशलोचन को ही डल्हण स्वीकार करते हैं परन्तु अन्य मत से ऐसा प्रतीत होता है कि पार्थिव द्रव्य का भी प्रयोग उस समय होता था जैसा सम्प्रति नकली वंशलोचन **Calcium silicate** से बना बिक रहा है।

तुङ्ग — क० ८/१०८ पद्मकेशर; अपरे पद्मकेशर।

त्रिपर्णिका — सू० ४६/२७४ दुग्धिका; अपरे वनकार्पसी।

दीप्यक — उ० ४०/४२ यवानी, अन्ये अजमोदा।
उ० ४७/२४ अजमोदा, अपरे यवानी।

डल्हण का अपना ही एक मत नहीं है; एक स्थान पर यवानी और दूसरे स्थान पर अजमोदा ग्रहण कर रहे हैं।

दीर्घमूला — सू० ३८/४५ दुरालभा, अपरे शालपर्णी।

दीर्घवृन्त — उ० ४०/७० अरलु, अन्ये श्योनाक।

नगवृत्तिक — चि० २०/१२ जिङ्गिनी, अन्ये वृश्चिकाली।

नन्दीवृक्ष — सू० ३८/४६ काश्मरी, अन्ये गर्दभाण्ड।

वैद्य बापा लाल ने नन्दीवृक्ष को **Ficus retusa** माना है। डल्हण द्वारा इसे काश्मरी मानना इ हें स्वीकार नहीं।

नागदन्ती — क० ६/३ इन्द्रवारुणीभेद, अन्ये दन्ती (जेज्जटाचार्य)

नागपुष्प — सू० ३८/२४ नागकेशर; अन्ये नागकेशर पुष्प समपुष्पो महातरु।

नागविन्ना — उ० ६२/३१ (पा०) इन्द्रवारुणीभेद, अन्ये वृश्चिकपत्रिका।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

निर्दहनी —	चि० ४/३२	मोरट, एके अग्निमन्थ, अपरे चित्रक।
	उ० ५५/४८	अग्निमन्थ; अन्ये गणिकारिका।
पञ्चांगुल —	सू० ३९/४ (पा०)	एरण्ड, अन्ये शारदाफल।
पयस्या —	सू० १५/३३	अर्कपुष्पी, अन्ये क्षीरकाकोली।
	शा० १०/५६	अर्कपुष्पी; अन्ये क्षीरविदारी या क्षीरकाकोली (गयी)।
	उ० ४०/७४	अर्कपुष्पी, अन्ये दुग्धिका, अपरे क्षीरकाकोली।
	उ० ५०/५९	अर्कपुष्पी, अन्ये दुग्धिका।
	चि० १६/१०	क्षीरकाकोली, अन्ये जेज्जटाचार्य मतानुसार अर्कपुष्पी।
	सू० १६/१९	विदारीभेद, केचिद् अर्कपुष्पी।
	चि० १७/८	क्षीरविदारी, अन्ये जेज्जटाचार्य अर्कपुष्पी।

डल्लण अर्कपुष्पी को मानने के साथ-साथ क्षीरकाकोली-विदारीभेद या क्षीरविदारी को भी ग्रहण करते हैं; जो भ्रमात्मक है।

परिपेलव —	क० २/५१	वन्यक, अन्ये कैवर्त्तमुस्तक।
प्रचीबल —	उ० ३४/३	मत्स्याक्षक, अन्ये काकजंघा।

प्रचीबल का पर्याय है।

प्राचीबल —	सू० ३८/१८	मत्स्याक्षक, अन्ये काकजंघा, अपरे नदीपिप्पली।
प्रपौण्ड्रीक —	सू० ३८/५	यष्टीमधु द्रव्यादीषत्स्थूलं मधुरसं नेत्राश्च्योतनार्हं द्रव्यम्, अन्ये श्रीपुष्पम्।
पृथ्वीका —	चि० २/८९	स्थूलजीरक, अन्ये एला, अपरे हिंगुपत्रिका।
	उ० ४२/२५	हिंगुपत्रिका, अन्ये कृष्णजीरक।

एक स्थान पर अपना मत स्थूल जीरक और दूसरे स्थान पर हिंगुपत्रिक देने से डल्लण भ्रम में हैं, ऐसा प्रतीत होता है।

पारिभद्र —	उ० ५८/४८	पर्वतनिम्ब; अन्ये कण्टकिवृक्ष रक्तकुसुमं।

यह पारिभद्रक का पर्याय है।

पारिभद्रक —	सू० ११/११	देवदारु, अन्ये कण्टकीवृक्ष विशेष रक्तकुसुम।

सम्प्रति फरहद (**Erythrina variegata Linn Var Orientalis** (**Linn**) को ग्रहण किया जाता है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

पालिन्दी — क० ५/७० त्रिवृत्, अपरे कालवल्ली ।
उ० १०/७ श्यामा त्रिवृत्, अन्ये सारिवा ।

पुराह्वया — उ० ५२/२४ शल्लकी, अपरे गुग्गुलु ।

पूतिकरञ्ज — चि० १४/१३ चिरबिल्व, अन्ये कण्टकीकरञ्ज ।

फञ्जी — उ० ४०/११३ पाठाभेद, अन्ये भार्गी ।

फणिञ्झक — सू० ३८/१८ तीक्ष्णगन्ध स्वनाम प्रसिद्ध, अन्ये निर्गुण्डी ।
सू० ४६/२२१ फणिज्ज लोके; अन्ये मरुवक ।

ब्रह्मचारिणी — सू० १६/२६ मुण्डितिका, अपरे पतंगकाष्ठ ।

ब्रह्मी — उ० ६२/३० मण्डूकपर्णी, अन्ये लवणिका ।

भव्य — सू० ४२/११ भव्यफलं कर्मरङ्ग इत्येके, अन्ये तालफल सदृशमहावल्कलं कषायम्लमधरम् ।
सू० ४६/१३६ आरुकं अन्ये कर्मरङ्गफल, अपरे तालफलोपमम् ।

आजकल निश्चित रूप से भव्य के लिए चालता (**Dillenie indica Linn**) का ग्रहण किया जाता है । डॉ० रामसुशील सिंह ने वनौषधि निर्दशिका में स्पष्ट किया है कि कर्मरंग भव्य नहीं है, वास्तव में यह चालता है ।

भूस्तृण — सू० ४६/२२१ रोहिषं अन्ये तुम्बाक ।

मत्स्याक्षक — शा० २०/६८ ब्राह्मी; एके पत्तूर, अन्ये रक्तपुष्पमानूप मत्स्याक इति लोके ।

वैद्य बापा लाल जी ने मत्स्याक्षक से ब्राह्मी (**Bacopa monnieri**) को ग्रहण किया है और मत्स्याक्षी से **Alternanthera sessilis** लेते हैं । ठा० बलवन्त सिंह इस मत को मानते हैं परन्तु हिमोचिका (**Enhydra Fluctuans Lour**) को प्राथमिकता देते हैं ।

मधुशिग्रु — क० ६/३ शाकविटप, अपरे रक्तशोभाञ्जनक ।

शिग्रु के प्रकरण में लिख दिया गया है ।

मधूलक — सू० ४५/१७० स्वल्पगोधूम, अथवा मर्कटहस्ततृण ।

मधूलिका — उ० २४/२८ गुडूची, अपरे मर्कटतृण ।

मर्कटी — उ० ३३/७ कपिकच्छू, अन्ये मर्कटमूली, अपरे शूकशिम्बी ।

मरिचं शुक्लं — उ० १५/१६ शोभाञ्जनबीज, अन्ये शुक्लमरिच ।
सू० ४६/२२५

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

अमरकोष में शिग्रुबीज को श्वेत मरिच कहा गया है। डल्हण का यह कहना कि अन्ये मरिच यह सिद्ध करता है कि उस समय की दक्षिणी मिर्च का छिलका हटा कर श्वेत मिर्च काम में आती थी और अभाव में शिग्रु बीज का प्रयोग होता था।

महासुगन्धा — उ० २६/४० उत्पलसारिवा, अपरे सर्वसुगन्धा।

महीकदम्ब — चि० १७/१५ अलम्बुषा, अन्ये भूकदम्ब (जेज्जटाचार्य)

ठा० बलवन्त सिंह ने अलम्बुषा और भूमिकदम्ब को श्रावणी का पर्याय बताया है। श्रावणी मुण्डी या गोरखमुण्डी है।

मातुलुंग — उ० ४५/३६ बीजपूरक, अन्ये मधुकर्कटी।

माषपर्णी — सू० ३८/५५ माषवनी इति लोके; एके अरण्यभास।

सम्प्रति माषपर्णी Teramnus labialis Spreng को स्वीकार किया जा रहा है।

मुचुलुन्द — चि० १८/१० कण्टकोमदन, अन्ये मुचुकुन्द।

मूर्वा — सू० ३८/३३ दुधौड़, एके चोरस्नायु।

चिन्हारू या मोरमेल (Marsdenia tenacissinea W A) को मूर्वा माना जाए और महुरसि (Chonemorpha mearophylla) इसका उत्तम प्रतिनिधि द्रव्य हो सकता है (द्रव्यगुण विज्ञान, भाग ५)।

मूषिकपर्णी — उ० ५४/२७ दन्ती, अन्ये।

मेषशृंग — चि० २/६४ कर्कटशृंग, अन्ये पुत्रजीवकभेद।
उ० १५/२७ इंगुदीभेद, केचित् मेषविषाण।

वैद्य बापा लाल ने मेषशृंग को Dolichondron Faleata माना है। मेषशृंग को कर्कटशृंग मानना डल्हण का भ्रम है।

मेषशृंगी — चि० ९/७ कर्कटशृंगी, अन्ये गयी–पुत्रजीवकभेद।
सू० ३९/६ मेढ शृंग, अन्ये कर्कटशृंग।

आचार्य बापा लाल इसे Gymnenea sylvestre मानते हैं।

मोरट — सू० ३८/१० अंकोलपुष्प, अन्ये हस्तिकर्णपलाश।
सू० ३८/१२ अंकोलपुष्प, एके हस्तिकर्णपलाश, अपरे इक्षुमूल।

रम्मक — सू० ३८/२९ द्रेक्का, अन्ये पटोलमूल।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

राजादन — उ० ४८/२६ चारः, अन्ये क्षीरिका।

रोहिणी — चि० १/६५ हरीतकी भेद, अन्ये कटुतुम्बी।

लोहितिका — चि० ११/१० मञ्जिष्ठा, अन्ये रामतरुणी।

वत्सादनी — सू० ४६/२५४ वत्सपुत्रिका, अन्ये गुडूची।

श्री शर्मा ने द्रव्यगुण विज्ञान (भाग ५) में लिखा है कि पद्म गुडूची **Tinospora sinensis** को वत्सादनी मानना चाहिए।

वयस्था — उ० ३६/६ गुडूची, अन्ये ब्राह्मी।
उ० ३२/४ ब्राह्मी, अन्ये गुडूची।
सू० २१/२६

वयस्था का पाठ संज्ञा-स्थापन महाकषाय में होने से तथा मानस रोगों में विशेष उपयोग होने से इसका अर्थ ब्राह्मी करना अधिक उपयुक्त है, ऐसा द्रव्यगुण विज्ञान के लेखक आचार्य श्री शर्मा का मत है। डल्हण एक स्थान पर अपना मत गुडूची देते हैं और दूसरे स्थान पर ब्राह्मी। अतः लगता है कि वे स्वयं भ्रम में हैं, उन्हें स्वयं निश्चय नहीं।

वर्णक — उ० ३५/७ रोचनिका अर्थात् कम्पिल्लक, अन्ये कंकुष्ठ।

वशिर — सू० ३८/१२ अपामार्ग, एके सूर्यावर्तभेद।
सू० ३९/७ सूर्यावर्त, अपरे अपामार्ग।
चि० ७/५ मर्कटसंक्षस्तृणजाति विशेष; अन्ये सूर्यावर्त।

डल्हण स्वयं भ्रम में नहीं, उनका अपना एक निश्चित मत नहीं, कहीं उन्होंने अपना मत दूसरे सन्दर्भ में अन्य या अपर मत में दिया है।

द्रव्यगुण विज्ञान (भाग ५) में आचार्य शर्मा ने इसे मर्कट तृण (मकड़ा घास **Eleusine aegyptica Dest**) की ओर अपनी अभिरुचि दिखाई है।

वायसी — चि० ९/२९ काकतिक्ता अन्ये काकमाची।

महानील घृत में वायसी और काकमाची का पृथक् पाठ होने से ये दोनों स्पष्टतः भिन्न हैं। वायसी से काकतिक्ता (**Physalis minima Linn**) का ग्रहण करना चाहिए। इसके प्रतिनिधि रूप में सम्प्रति सभी स्थितियों में काकमाची का प्रयोग होता है (द्रव्यगुण विज्ञान, भाग ५)।

विशल्या — उ० ५५/४९ काष्ठपाटला, अन्ये इन्द्रवारुणी।

डल्हण ने उ० ६२/३० में विशल्या को गुडूची भी कहा है। वैद्य बापालाल जी ने लागली को माना है जो **Gloriosa superba** है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

विश्वदेवा — सू० ३८/४ गाङ्गरूकी, अन्ये सितकुसुमा बला।

विषघ्नी — उ० ६२/३० हरिद्रा, अन्ये निर्विषा।

विषमुष्टिक — सू० ३८/१८ द्रेक्का, अपरे वृहदलम्बुषामपरे, अन्ये कर्कोटी।

ऐसा माना जा रहा है कि प्राचीन काल में विषमुष्टी का वर्णन तिन्दुक भेद कह कर हुआ। मध्य काल में राजनिम्ब (द्रेक्का) और आधुनिक काल में कुचिला के लिए किया जाता है (द्रव्यगुण विज्ञान, भाग ५)।

वीरतरु — सू० ३६/७ बिल्वनासिका, अन्ये शर।
चि० १५/४४ एके अर्जुन, अपरे कोकिलाक्ष।

वृक्षादनी — सू० ३८/१२; वन्दाक; अन्ये वृक्षकलम्बु।
४३/२४६
चि० ८/१३;
उ० ६/१८

वृश्चिकाली — सू० ३८/४ मेषश्रृंगी भेद; अन्ये वृश्चियाशाक।

एक स्थान पर डल्हण ने इसे उत्तमारणी नाम दिया है—ऐसा लगता है कि वह भ्रान्त थे।

आचार्य शर्मा का मत है कि वृश्चिकपत्रिका (Tragia involucrate Linn) को वृश्चिकाली मानना चाहिए (द्रव्यगुण विज्ञान, भाग ५)।

वेणुपत्रिका — क० १/५३ वंशपत्री; अन्ये वंशसदृशपत्रिका द्रव्यान्तर।

डल्हण का मत वंशपत्र है जबकि अन्य मतानुसार ध्यान बांसी (Setaria glauca) की ओर आकर्षित होता है।

शंखनी — सू० ४४/८४ यवतिक्ता भेद; अपरे श्वेतबुध्ना।

ग्लोसरी में ठा० बलवन्त सिंह ने लिखा है कि इसे कोडेना (Colonyction muricatum) मानना चाहिए।

शतवीर्या — सू० १६/२६ शतावरी, अन्ये नीलदूर्वा।

ज्ञातव्य है कि चक्रपाणि ने शतवीर्या और सहस्रवीर्या से श्वेत और नील दूर्वा को ग्रहण किया है परन्तु वर्तमान में इन दो से शतावरीद्वय का ग्रहण होता है। इसीलिए सम्भवतः डल्हण का अपना मत शतावरी है और अन्य मत (चक्रपाणि मत) नीलदूर्वा है।

शाङ्गर्ष्टा — सू० ३८/६ काकजंघा, अन्ये काकमाची।
अन्ये काकतिक्ता, अपरे काकादवी।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

सू० ३८/५४	काकतिक्ता, अन्ये काकजंघा अपरे काकमाची।
सू० ४४/३५	विटपकरञ्ज, अन्ये चिरयोटिका, अपरे काकजंघा।
चि० ६/७	काकतिक्ता, अपरे गूथकरञ्ज।

डल्हण का अपना एक मत नहीं और वह स्वयं भ्रान्त हैं।

द्रव्यगुण विज्ञान (भाग ५) में आचार्य शर्मा ने लिखा है कि शाङ्र्गेष्टा मूर्वा की जाति की वनस्पति है। सुश्रुत में अनेक स्थलों पर दोनों द्रव्यों को एक साथ लिखा है और दोनों का अर्थ भी एक ही है कि दृढ़ सूत्र वाली वनस्पति जिसका उपयोग मौर्वी बनाने के लिए होता है। इसे **Dregia Volubilis Benth** मानना चाहिए।

शिग्रु —	सू० ४६/२२१	शोभाञ्जनक, अन्ये सुवास।
	उ० २१/६	शोभाञ्जनक, अन्ये विटपशाक।
	चि० ६/१०	विटपशाक, अन्ये शोभाञ्जन।
	उ० ४२/६४	
	उ० ३९/२७४	शोभाञ्जनानुकारी विटप, अपरे शोभाञ्जन।

डल्हण स्वयं भ्रान्त हैं कि दो बार शोभाञ्जन को अपना मत लिखा जब कि बाद में तीन बार अन्य मत में शोभाञ्जन दिया।

वानस्पतिक दृष्टि से शिग्रु को **Moringa oleifera Linn** माना जाता है और इसकी दूसरी जाति (मधुशिग्रु या रक्तशिग्रु) को **Moringa coricancensis Himpuo** कहा जाता है।

शिवारी —	उ० २३/४	श्वेतपुनर्नवा, अन्ये शेफालिका।
शीतम् —	उ० १७/१३	रसाञ्जन, अन्ये कर्पूर।
शीतफल —	सू० ४६/१६३	रावणाम्लिका, अन्ये काश्मीराम्लिका।

द्रव्यगुण विज्ञान (भाग ५) के अनुसार यह गोरख इमली (**Adansonia degitata Linn**) प्रतीत होता है।

शीतशिव —	सू० ३९/६	कर्पूर एके शतपुष्पा, अपरे गवेधु।
	क० ६/१८	कर्पूर, अपरे शमी।

शीतशिव एवं शतपुष्पा श्लेष्म-संशमन वर्ग में एक साथ पठित हैं। द्रव्यगुण विज्ञान (भाग ५) में श्री शर्मा ने लिखा है कि शीतशिव से सोया का ग्रहण करना चाहिए। धन्वन्तरि निघण्टु में शीतशिव मिश्रेया का पर्याय है। शतपुष्पा वास्तव में मधूरिका (सौंफ) है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

शीर्णवृन्तं — सू० ४६/२१६ त्रपुषभेद; अन्ये कर्बूर, अपरे कर्बुर भेद।
शुकाख्या — उ० ४४/१९ चर्मकारवट; अपरे शुकशिम्बा।
उ० ५१/२३ चर्मकारवट, अपरे शुकशिम्बा।

डल्हण ने कई सन्दर्भों में शुकनासा को भी चर्मकारवट कहा है परन्तु इन दो शुकाख्या के साथ अन्य मत देते हुए शुकशिम्बा को ग्रहण किया है। द्रव्यगुण विज्ञान (भाग ५) में आचार्य शर्मा ने लिखा है कि चर्मकारवट और चर्मवृक्ष एक ही हैं जो **Ehretia Laevis Var Pubes Lens** है और शुकनासा वस्तुतः शुकशिम्बा है जिसमें फल शुकनासा की तरह लाल मिर्च के समान होता है; इसे **Corallocerpua epigeus Senth Ex Hock** कहते हैं।

शेलू — उ० ४५/१६ दक्षिणापथजं शाक, अपरे श्लेष्मान्तक।

शैवल — उ० २१/४५ दूर्वा, अन्ये हठ।

ग्लौसरी ऑफ वेजीटेबल ड्रग्स ऑफ बृहत्त्रयी में बताया है कि शैवल एक जलीय वनस्पति है जिसे साधारणतया 'सेवार' नाम से जाना जाता है।

श्यामा — चि० ५/७ त्रिवृद्विशेषः, अन्ये वृद्धदारुक।
क० १/३७ श्यामलता अपरे प्रियंगु।

श्वेता— क० १/६५ वचा; अन्ये गयी मतानुसार कटभी।

चि० २२/६३ और क० ५/७६ में डल्हणाचार्य ने श्वेता को श्वेतस्यन्द भी कहा है।

द्रव्यगुण विज्ञान (भाग ५) में आचार्य शर्मा ने स्वीकार किया है कि श्वेता को अपराजिता (**Clitoria ternatea Linn**) तथा महाश्वेता को कटभी (**Albizzia procera (Roxb.) Benth**) मानना चाहिए। उनका कहना है कि बृहत्त्रयी में अपराजिता का नाम नहीं आता, उस समय श्वेता शब्द ही प्रचलित था।

समङ्गा — उ० ४०/६९ लज्जालु; अन्ये वराहक्रान्ता।
चि० १ /१५ मञ्जिष्ठा; अपरे वराहक्रान्ता।

डा० बलवन्त सिंह का मत है कि समङ्गा लज्जालु (**Mimosa pudica Linn**) है। डल्हण भ्रम में हैं, क्योंकि वे एक स्थान पर अपना मत लज्जालु और दूसरे स्थान पर मञ्जिष्ठा दे रहे हैं। श्री सिंह का कहना है कि मञ्जिष्ठा लज्जालु के अभाव में प्रयोग किया जा सकता है।

सरला — सू० ३७/२४ सरल, अन्ये विशसिका।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

सप्तला — सू० ३६/४ सेहुण्डभेद, अपरे बुध्ना ।
सू० ३६/५ स्नुही भेद, अपरे श्रीफलिका ।

आचार्य बापा लाल जी ने इसे स्नुही माना है जिसे **Euphorbia dracunculoides** कहा है ।

ठा० बलवन्त सिंह का भी यही मत है और हिन्दी में उन्होंने जायची या तितली नाम दिया है ।

द्रव्यगुण विज्ञान (भाग ५) में आचार्य शर्मा ने लिखा है कि चोपाली (**Euphorbia pilosa Linn**) को सप्तला मानना चाहिए और उपर्युक्त तितली को शंखुनी मानना चाहिए । उनका मत है कि तितली के बीजों का प्रयोग होता है और वह वास्तव में यवतिक्ता है जब कि सप्तला यवतिक्ताभेद है । आचार्य शर्मा ने लिखा है कि श्री माया राम उनिमाल ने पारम्परिक प्रयोग के आधार पर ऐसा प्रस्तुत किया है ।

सुनिषण्णक — सू० १६/३३ शिरवालिका; अन्ये चतुष्पर्णी ।
उ० १७/६० चतुष्पर्णी, अन्ये शिरबालिका ।

इस विषय में डल्हण का अपना कोई मत नहीं है । एक स्थान पर अन्य मत में चतुष्पर्णी दे रहे हैं तो दूसरे स्थान पर अपना मत चतुष्पर्णी दिया है तथा पहले जो अपना मत था वह अन्य मत कर दिया है । लगता है डल्हण स्वयं भ्रम में थे ।

सुमुख — सू० ३८/८ राजिका, अन्ये बनबर्बरिका ।

सुवर्चला — सू० ४६/२६२ सूर्यावर्त्ती, केचित् लप्पसम ।

शा० १०/११ और चि० २/८२ में सूर्यभक्ता भी कहा है ।

ठा० बलवन्त सिंह का मत है कि सूर्यवर्त्ता या सूर्यभक्ता से हुलहुल का ग्रहण करना चाहिए । सुवर्चला हुलहुल को मानना चाहिए ।

सुवर्णक्षीरी — सू० ३८/३६ अनन्तासदृश पत्रा; अपरे कङ्कुष्ठ ।
सू० ३६/४

इसका लौकिक नाम डल्हण ने हिमवली दिया है । वैद्य बापा लाल ने इसे **Euphorbia thomsonians Boills** माना है और काश्मीर में इसकी प्रसिद्धि हिरवी नाम से बताई है और उन्होंने इसे काश्मीर में स्वयं देखा है । वैद्य जी इसकी अन्य जाति को सत्यानासी मानते हैं जिसे **Argemone maxicana Linn** मानते हैं ।

सुश्रुत चिकित्सास्थान ८/४० में काञ्चनक्षीर्यौ द्विवचन में सुवर्णक्षीरीद्वय का वर्णन किया है जो वास्तव में यही दो हैं ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

कङ्कुष्ठ सम्भवतः प्रथम जाति—जो काश्मीर में आज भी हिरवी नाम से प्रसिद्ध है—से प्राप्त होने वाला पदार्थ प्रतीत होता है।

सुवहा — चि० १७/४० गन्धनाकुली, अपरे गोधापदी, अन्ये कन्दाली।
सुसवी — सू० ३८/६ कारवेल्लक, अन्ये पानीयवल्ली।

आचार्य चक्रपाणि ने सुखवी का अर्थ कारवेल्लक ही किया है। डल्हण ने अन्यत्र भी पानीयवल्ली कहा है। पानीयवल्ली से कई वनस्पतियों का ग्रहण किया जा रहा है। पानीबेल नामक आहोरी लता—जिसे **Vitis litifolia Roxb** कहा जाता है—को पानीयवल्ली मानना चाहिए, ऐसा आचार्य प्रियव्रत शर्मा का मत है (द्रव्यगुण विज्ञान, भाग ५, पृ० २९२)।

सूर्यवल्ली — सू० ४५/१२० अर्कपुष्पी, अन्ये सूर्यावर्तभेद पूर्वपठित्वात् सुवर्चला।

सोम — सू० ३७/२३ सोम, अन्ये सोमवल्कल, अपरे ब्राह्मी।
चि० १८/३३ सोमलता, अपरे कट्फल।
चि० १७/२३ सोम संज्ञ, अन्ये सोमलता, जेज्जटाचार्य कट्फल। परन्तु गयदास कट्फल को नहीं मानते क्योंकि यह तीक्ष्ण होता है।

सोमलता से अनेक वनस्पतियों की ओर ध्यान जाता है परन्तु सोम से सम्प्रति **Ephadra gerardiana (Wall)** का प्रयोग हो रहा है और इसका चूर्ण श्वास रोग में प्रयोग किया जा रहा है।

सोमा — क० १/३७ गुडूची, अन्ये सोमलता।

सोमाह्वया (पा०) — चि० २/३९ त्रिसन्धिका अन्ये सोमलता।

हठ — सू० ४५/११ जलकुम्भिका एकं अभूमिलग्न मूल तृणविशेष।

हरिवृक्ष — चि० ११/१० इन्द्रवृक्ष, एके धवाकार।

हस्तिकर्णपलाश — सू० ३९/९ भूपलाश, अन्ये रक्तारण्ड।

वैद्य बापा लाल ने हस्तिकर्णपलाश को हतकन लौकिक नाम दिया है और वानस्पतिक नाम **Leeamacrophylla** दिया है। ग्लोसरी में ठा० बलवन्त सिंह का भी यही मत है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

द्वादश अध्याय

जाङ्गम द्रव्यों का डल्लणाभिमत विभावन

जांगम द्रव्य

वानस्पतिक द्रव्यों के अतिरिक्त आचार्य डल्लण ने जांगम सृष्टि के विभिन्न पशु-पक्षी आदि का तथा उनसे प्राप्त जांगम द्रव्यों का विस्तार से वर्णन किया है। सुश्रुत-संहिता (सूत्र-स्थान ४६) में मांस वर्ग का वर्णन है और छः मांस वर्ग बताये गये हैं। उन पर आचार्य डल्लण ने व्याख्या कर प्रत्येक का लक्षण स्पष्ट किया है। यथा—

१. जलेशया — कोशस्थाः पादिनो मत्स्याश्च।

२. आनूपा — कूलचराः प्रवाश्च।

३. ग्राम्या }
४. एकशफा } — ग्राम्य शब्देनैकशफशब्देन च ग्राम्याः।

५. क्रव्यभुज — क्रव्यभुक् शब्देन च गुहाशयाः प्रसहाश्च।

६. जाङ्गला — जाङ्गलशब्देन जङ्घालविष्किरप्रतुदपर्णमृग विलेशया।

इनको प्रधान रूप से दो भागों में वर्गीकृत किया गया है—जांगल और आनूप। इस अध्याय में जाङ्गल वर्ग को आठ प्रकार का बताया गया है ! प्रत्येक का लक्षण आचार्य ने बहुत सुन्दर ढंग से दिया है—

१. जङ्घाला — जङ्घाला इति प्रशस्तजङ्घावन्तः।

२. विष्किरा — विकीर्य भक्षयन्तीतिविष्किराः।

३. प्रतुदा — प्रतुद्य भक्षयन्तीति हेतोः।

४. गुहाशया — गुहासु पर्वतविवरेषु शेरत इति गुहाशयाः।

५. प्रसहा — प्रसह्य भक्षयन्तीति प्रसहाः।

६. पर्णमृगा — प्रायेण वृक्षस्थायित्वात् पर्णमृगाः।

७. बिलेशया — बिलशायित्वाद्विलेशयाः।

८. ग्राम्या — प्रायो ग्रामवासित्वाद् ग्राम्याः।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

आनूप वर्ग पांच प्रकार का कहा गया और प्रत्येक का लक्षण डल्लण ने दिया है; यथा—

१. आनूपाः	—	अनुगता आपोऽस्मिन्निति सजलस्थलात्मको देशः तद्भवा आनूपाः।
२. कूलचराः	—	कूलं नद्यादितटं, तत्र चरन्ति भक्षयन्ति भ्रमन्ति च ये ते कूलचराः।
३. प्लवाः	—	प्लवन्ते पानीये तरन्ति ये ते प्लवाः।
४. कोषस्थाः	—	कोशः शंखादीनां सम्पुटः, तत्र तिष्ठन्तीति कोशस्थाः।
५. पादिनो	—	पादिनः पादवन्तः।
६. मत्स्याः	—	प्रसिद्धाः।

इस प्रकार डल्लण ने जांगम-सृष्टि के संहितोक्त सभी प्रकार के जीवों के वर्गों की सुन्दर निरुक्ति की है। उन्होंने कई सन्दर्भ दिये हैं जो यह सिद्ध करते हैं कि इन जांगमों का ज्ञान तत् तत् विशेषज्ञों से प्राप्त किया जा सकता है और सम्भवतः उन्होंने ज्ञान प्राप्त कर सहेतुक वर्णन भी किया है। ऐसे सन्दर्भ निम्नलिखित हैं–

"कैवर्तेभ्यो ज्ञेयाः" — सू० ४६/११३।

"समुद्रतीरवासिभ्यो ज्ञेयाः" — सू० ४६/११८।

"कथितो मत्स्यवेदिभिः" — सू० ४६/११३।

"एते कीटविशेषाः देशान्तरे लोकतो ज्ञेयाः" — क० ३/५।

"लालनपुत्रिकादिमूषिकजातिविशेषज्ञानं नानादेशीयलोकेभ्यो ऽवगन्तव्यम्" — क० ७/४२।

आचार्य डल्लण का जांगम अध्ययन इस बात से सिद्ध होता है कि उन्होंने न केवल कितने ही पशुओं, पक्षियों तथा अन्य जांगमों का स्वरूप इतनी निपुणता से वर्णन किया है अपितु उनके आहार-व्यवहार का भी यत्र-तत्र निर्देश किया है। ऐसे परिचायक सभी सन्दर्भ हम इसी प्रकरण में उद्धृत कर रहे हैं। उदाहरण रूप में निम्नलिखित अवलोकनीय हैं—

रुरु

"विकटबहुविषाणः शम्बराकारदेहः।
सलिलतटचरत्वाच्छम्बरेभ्यो विभिन्नः॥

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

त्यजति शरादिश्रृंगं रौत्यतेऽसौ रुरुः ।
स्यात् पृथुल मृगविशेषः प्रायशश्चेदि देशे ।।" सू० ४६/६४

शरभ

"अष्टापदउष्ट्रप्रमाणो महाश्रृंगः
पृष्टगतचतुष्पादः काश्मीरे प्रसिद्धः ।" सू० ४६/५८

उत्कोश

"कुररभेदो मत्स्याशी ।" सू० ४६/१०५

और इसी तरह के परिचायक लक्षण डल्हण ने बहुत सुन्दर ढंग से दिए हैं जिनको देखने से मानना पड़ता है कि उनकी इस विषय में विशेष जानकारी थी जिसे उन्होंने शास्त्र अध्ययन के साथ-साथ, स्थान-स्थान पर भ्रमण कर तत्-तत् विशेषज्ञों से प्राप्त की थी और तभी उन्होंने उनकी सूक्ष्म एवं सुन्दर विवेचना की। आज जीव वैज्ञानिकों के लिए कार्य सुलभ है कि देखें क्या डल्हणोक्त परिचय तत्-तत् जांगम के प्रकरण में वैज्ञानिक रूप से उचित हैं कि नहीं ? क्या शारभ जैसे अष्टपाद जांगम काश्मीर में हैं ?

अस्तु; जहाँ इतना स्वाध्ययन एवं सर्वेक्षणपरक वर्णन डल्हण ने किया वहाँ कई स्थानों पर वे भ्रमित भी लगते हैं। कई जांगमों में अन्य मत दिया है। प्रवाल के प्रकरण में विशेष रूप से ऐसा लगता है कि उनको इस विषय में सही ज्ञान नहीं था, उन्होंने प्रवाल की व्याख्या निम्न प्रकार से की है—

"समुद्रजातोऽत्यन्तरक्तो वल्लीविशेषः ।" सू० ३२/४

यहाँ वल्लीविशेष शब्द प्रवाल के जांगम होने की ओर संकेत नहीं देता अपितु इसके वानस्पतिक होने का ज्ञापक है, जब कि प्रवाल जांगम है। इससे डल्हण का भ्रम प्रतीत होता है।

डल्हण ने सुश्रुत संहितोक्त जांगमों का सही अर्थ एवं उनके परिचायक स्वरूप एवं स्वभाव ज्ञापक लक्षणों के साथ उनके लोक-प्रचलित नाम भी दिए हैं, जो उनके विभिन्न क्षेत्रों में जाकर तत् विषयक अध्ययन के द्योतक हैं। आचार्य ने जांगम सृष्टि से प्राप्त होने वाले पदार्थों पर भी व्याख्या की है। दूध और दूध से बने दधि, घृत, तक्र आदि के साथ-रोचना; विषाण-अहित्वक्-कूर्चिका आदि का लक्षण स्पष्ट किया है।

इस प्रकार यह मानना पड़ता है कि डल्हण ने जांगम सृष्टि पर महत्वपूर्ण व्याख्या देकर ग्रन्थ में आये सूत्र एवं नाममात्र विषय को बोधगम्य बना दिया।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

उनका एतद् विषयक अध्ययन एवं प्रत्यक्ष ज्ञान उच्च कोटि का था जो आज के जीव वैज्ञानिकों के लिए अनुसन्धान की उत्तम सामग्री प्रस्तुत करता है।

सू० २०/१३ पर डल्हण ने पित्त का अर्थ किया है—"कालखण्डलग्नम्" जिस पर वैज्ञानिक विचार कर सकते हैं कि कालखण्ड गॉलब्लैडर को माना जाए तो क्या 'बाइल' के अर्थ में पित्त की व्याख्या आचार्य ने की है।

इस शोध कार्य में जांगमों पर डल्हणोक्त अभिभावन को चार भागों में वर्गीकृत किया गया है, जो निम्नलिखित है—

(क) जांगमों का डल्हणोक्त अर्थ।
(ख) कतिपय जांगमों के लोक-प्रचलित नाम।
(ग) कतिपय जांगमों का डल्हणोक्त परिचायक विवरण।
(घ) जांगम सृष्टि से प्राप्त द्रव्यों का डल्हणोक्त अर्थ

१. क्षीरज द्रव्य—जो दूध के रूपान्तर हैं।
२. अन्य द्रव्य—जो दूध से अतिरिक्त हैं।

(क) जांगमों का डह्लणोक्त अर्थ

जांगम नाम	संदर्भ	डल्हणोक्त अर्थ	जांगम नाम	संदर्भ	डल्हणोक्त अर्थ
१	२	३	१	२	३
अ			अश्व	सू० ४६/८५	घोटक
अज	उ० ६०/३८	छगल	अश्वतर	सू० ४६/८५	वेसर
अजगर	सू० १/३०	सर्पा मन्द-गामिनः		उ० ४१/३७	
			आ		
	सू० ४६/७८	महासर्प	आखु	उ० ४१/३६	वृक्षमूषिक
अजा	उ० ४०/१४८	छागी	आगार-गोधिका	सू० ४६/१०५	आरा
अम्बुकुक्कु-टिका	सू० ४६/१०५	जलकुक्कु-टकी; कृष्णवर्ण		चि० १/१०८	गृहगोधिका
			इ		
अम्बुज	क० ४/२६	शंख	इन्द्रगोप	क० १/३७	कीट विशेष
अवकुश	सू० ४६/७६	गोलाङ्गूलो बानर विशेष	इभा	उ० ४१/४९	हस्तिनी
			उ		
अवि	उ० ३९/२६२	मेषी	उत्क्रोश	सू० ४६/१०५	कुररभेद
	उ० ४०/१४८	भेड़		शा० १०/५७	

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

१	२	३
उन्द्र	चि० ४/१७	पानीयविडाल
उपचक्र	सू० ४६/५६	क्रकरभेद
उरग	सू० २६/८०	सर्प
	उ० १७/३५	कृष्ण सर्प
उरभ्र	सू० ४६/८५	मेष
	सू० ५१/५४	
उलूक	सू० ४६/७४	कौशिक
उष्ट्र	सू० ४६/८५	करभ
	ऋ	
ऋष्य	उ० ६०/४०	नीलाण्डो मृगभेद
	क० १/५७ नि० ५/८	नीलाण्ड
ऋक्ष	उ० ६०/४८ उ० ६१/२४	भल्लूक
	ए	
एणः	सू० २०/५ सू० ४६/५४ उ० १७/३५ उ० ३६/१५३ उ० ४०/१४८ उ० ५२/४७	कृष्णमृग कृष्णसार
	ओ	
ओद्र	सू० ४६/६४	पानीयबिडाल
	औ	
औरभ्र	चि० ३७/१०७	मेष
	क	
कङ्क	सू० ३०/२२	कङ्कमल्ल
कपि	उ० ४१/३०	वानर

१	२	३
कपिञ्जल	सू० २०/५	
	सू० ४६/५६	गौरतित्तिर
	उ० ३६/१५३	
कपोत	सू० ४६/६७	वनवासी; नानाविध
करभ	उ० ६०/४१	उष्ट्र
कराल	सू० ४६/५४	कस्तूरी मृग
	सू० २०/५	
काचाक्ष	सू० ४६/१०५	कर्पादियाक
काणकपोतक	सू० ४६/६६	वनवासी पाण्डुकपोत, अन्य मत अरुणदर्शाकपोत
कुक्कुट	सू० २०/१३	ताम्रचूड़
कुतित्तिरी	सू० ४६/५६	तित्तिरिभेद
कुम्भीर	सू० ४६/१०६	नानाभेद-घड़ियाल-गोधादि
कुरङ्ग	सू० २०/५	चतुरगति
	सू० ४६/५४; ३३३,	चतुरगति; चतुरंगोमेदुलापति
	उ० ३६/२५३	चतुःशृंग
कुरुवाहक	सू० ४६/५६	कुरुकुरुक
कुलिङ्ग	सू० ४६/७६	वन्यचटक, ग्रामचटकाकारा
कुलीर	चि० २६/२६	कर्कटक, गृहचटक इत्यन्ये, मत्स्य विशेषः इत्यपरे

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

१	२	३
कूर्म	सू० ४६/१०९	कच्छप
	सू० ४६/३३३	
	चि० २६/२६	
क्रूकर	सू० ४६/५९	लावान्तक; कपिञ्जल से स्थूल
कृकलास	उ० ४१/३०	कृकण्टक
क्रव्यभुक्	उ० १७/३५	गृध्रादय
कोयष्टि	सू० ४६/६७	कोयङ्गका, दीर्घ जंघा
कोष्ठागारिका	शा० १०/५७	गृहकारिका कीटावशेष
क्रौञ्च	सू० ४६/१०५	क्रोञ्चि
	उ० ३९/१५४	क्रौञ्च
	उ० ५८/४४	
	ख	
खङ्गी	सू० ४६/९४	गण्डक
खर	सू० ४६/८५	गर्दभ
	उ० ६०/८९	
	ग	
गज	सू० ४६/८४	हस्ती
गवय	सू० ४६/९४	गोसदृश
गिरिश	सू० ४६/६७	गिरिर्वातिका, पर्वतवाही इत्येके
गृहकुलिङ्ग	सू० ४६/६७	पुण्ड्रचटक
गोकर्ण	सू० ४६/९४	गो सदृश कर्ण
गोधा	चि० २५/१८	पञ्चनखी
	क० ३/५	पवित्र सौम्य कीट
	उ० ५०/२९	

१	२	३
गोक्ष्वेड	सू० ४६/६७	गोनर्द
	च	
चटक	चि० ३८/८४	ग्रामचटक
	उ० ५२/४७	
चाष	सू० २९/२९	करटास
	उ० ३५/६	कर्णायस
चिल्लि	सू० ४६/७४	चिल्ह
	ज	
जीवजीवका	क० १/३१	पक्षीविशेष
	त	
तरक्षु	सू० ४६/७२	मृगशत्रु व्याघ्र विशेष
	क० ७/४३	
ताम्रचूड	चि० ५/१८	कुक्कुट
	उ० ३९/२१७	
	उ० ५८/५२	
तित्तिर	सू० २०/५	कृष्ण तित्तिर, चित्रपक्ष
	सू० ४६/५९	
	उ० ३९/१५४	
	उ० ४०/८४	
तिमि	सू० ४६/११८	महत्तमो-मत्स्य
तिमिङ्गल	सू० ४६/११८	ततोऽपि महत्तमः
	द	
दात्यूह	सू० ४६/६७	कालकण्टक
द्विरद	उ० ५०/१०	हस्ति
दीपिका	सू० ४६/८४	राजिमन्त सर्पभेद

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

१	२	३
द्वीपि	सू० ४६/७२, चि० ९/१६, क० ४/२८, उ० ६०/४९	व्याघ्रभेद, चित्रव्याघ्र चित्रक
	ध	
ध्वाङ्क्ष	सू० २८/१८	काक
	न	
नक्र	चि० २६/२६	मत्स्य भेद
नकुल	सू० ४६/७८	भुजङ्ग शत्रु
नन्दीमुख	सू० ४६/१०५	पत्राटी; आटीभेद
नाग	उ० ३९/२५९, उ० ४१/३७, उ० ६१/२४	हस्ती
नीलकण्ठ	उ० ४१/३०	मयूर
	प	
प्लव	सू० ४६/१०५	महाप्रमाण प्रसेवकगल
परभृत	सू० ४६/६७	कोकिल
पारावत	सू० ४६/६७	गृहदेव कुलालय
पिपीलिका	सू० १/३०	चिटिका
प्रियक	चि० ३८/३७	ललिको जगर प्रायः श्लक्ष्णो दीर्घः
पुण्डरीक	सू० ४६/१०५	नलिन नयन
पुष्कर-शयिका	सू० ४६/१०५	पद्मपत्र-शयिका

१	२	३
पूतिघास	सू० ४६/७६	वृक्षविडाल, सुगन्धिवृषण
पृषत	सू० ४६/५४, क० १/३३, क० ५/३१, उ० ३९/१५३, उ० ६१/२४	बिन्दु चित्रित चित्रमृगः, चित्रविन्दु।
प्रचलाक	चि० १८/२८	मयूर, अन्य-मत कृकला-
	क० ३/५	सक, सौम्यकीट, कीटविशेष
प्रवाल	सू० ३२/४, उ० ४४/२१	विद्रुम
	ब	
बक	सू० ४६/१०५	पाण्डुर पक्ष प्रसिद्ध
बलाका	सू० २०/१३, सू० ४६/१०५	बकभेद
बस्त	सू० ४६/८५, चि० २६/२७, उ० ३०/४८	छाग
बस्ताण्ड	चि० २६/२५	अजमुष्क
बिडाला	उ० ४१/३६	मार्जार
	भ	
भल्लूक	सू० ४६/१०८	कर्पदक, अन्ये शम्बूकभेद
भास	सू० २०/१४, सू० २९/३७, सू० ४६/७४	गृध्रविशेष

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust
Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

१	२	३
भृङ्गराज	सू० ४६/६७	भ्रमर
	क० १/३२	
भेदाशी	सू० ४६/६७	पुत्रशुक
	म	
मकर	सू० ४६/११८	हिंस्रदंष्ट्रक
मद्गु	सू० ४६/१०५	जलकाक
मद्गुमूषिक	सू० ४६/७६	मालुयासर्प, (अन्ये तु मद्गुमूषिकौ भिन्नावाचक्षते । तद् मुद्गुः पूर्वार्थ एव; मूषिको वृक्षमूषिकः) ।
मण्डुकी	उ० १५/२५	मुक्ताशुक्ति
मत्कुणा	सू० २८/१२	शय्यादिजा क्षुद्रकीट
मल्लिकाक्ष	सू० ४६/१०५	शुक्ल शबल
महाबभ्रु	सू० ४६/७८	नकुलभेद
मार्जार	सू० ४६/७२	विडाल
	उ० ६०/४०	
	उ० ६०/४९	
मातङ्ग	चि० ९/१६	हस्ती
मातृनिन्दक	सू० ४६/६७	प्रियात्मक
मुक्ता	सू० ४५/१७	मौक्तिक
	उ० १८/९०	
	उ० ४४/२१	

१	२	३
मूषिक	सू० ४६/७८	भूमिमूषिक
मूत्रय	सू० ३९/६	गोमूत्र
मृगप्रिय	सू० ४६/७८	गोनस
मेघराव	सू० ४६/१०५	चातक
मेदःपुच्छक	सू० ४६/८५	दुम्बक, अन्ये एडक
	य	
यवालक	सू० ४६/५९	यव गुडुरुक
	र	
रासभ	उ० ५८/३५	गर्दभ
रोहिष (पा०)	सू० ४६/९४	कच्छशूकर, अपरे फलशूकर
	ल	
लट्टूषक	सू० ४६/६७	द्वितीय फेञ्जातक, अन्ये प्रतुद विहंग
लट्वा	सू० ४६/६७	फेञ्जातक, अन्ये भरद्वाज भेद
लोपाक	सू० ४६/७८	शृगालभेद
	चि० ८/३७	लाङ्गलक
	चि० २५/२५	लांगरक
लोमशकण	सू० ४६/७८	नलत्कर
	व	
व्याघ्र	सू० ४६/७२	विकृतमुखो निद्रालुर्हिंस्र
वर्त्तक	सू० २०/५	वर्तीरभेद

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

१	२	३
वर्तिका	सू० २०/५	वर्तीरभेद
वर्मि	सू० ४६/११३	सर्पाकार मत्स्य
	सू० ४६/३३३	सर्पाकार मत्स्य; अन्ये रोहितमत्स्य
वराह	सू० ४६/९४	शूकर
वाजि	सू० २९/२९ उ० ६०/४८	घोटक
वार्तीका	सू० ४६/५९	वर्तिचटकाः स्वल्पांसघात-चारिणः
वानर	सू० ४६/७६	मर्कट
वायस	सू० ४६/७५	काक
विद्रूप	उ० १७/९८ उ० १८/२४ उ० १८/९०	प्रवाल
वृष	सू० २९/२७	वृषभ
वृषदेश	सू० ४६/७८	ग्राममार्जार- अन्ये वनमार्जार
	सू० ५०/२९	वनमार्जार
वृक्ष-शायिका	सू० ४६/७६	वृक्षमर्कटिका
वेकरञ्जा	क० ४/१०	सर्प विशेष
	श	
श्येन	सू० ४६/७४	सिञ्चान गदड़ान्वय

१	२	३
श्वदंष्ट्रा	सू० ४६/५४	श्वदंष्ट्रः- चतुर्दंष्ट्रोऽतिदुष्टः 'कर्कटक' इति कार्तिकपुरे
श्वा	सू० २८/१२ सू० ३०/२२ क० ७/४३ उ० ६०/४१	कुक्कुर
श्वानि	सू० ४६/७८	श्वावित
श्वावित	उ० ५०/२०	सेटिका, सेहिका
	उ० ५९/३३	
	उ० ६०/५०	सेढा
	उ० ५४/३०	
श्रृषभ	चि० २६/२७	वृषभ
शङ्खनक	सू० ४६/१०८	क्षुद्रशङ्ख, शङ्खभेद एव
शतपत्र	सू० ४६/५८	दार्वाघाट
	सू० ४६/६७	राजशूक
शम्बूक	सू० ४६/१०८	आर्तव कोश
शाकुन	उ० १७/५०	लावादिक
शिखी	सू० २९/२९ उ० ३९/१५४	मयूर
शिखी	क० ५/७१	मयूर, अन्ये कुक्कुट
	उ० ४०/१४९	
शिशुमार	सू० ४६/१०८ चि० २०/४४	पादीजलचर

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

१	२	३
शुक्ति	सू० ४६/१०८	समुद्रजा शिम्बि
	उ० ५२/४७	जलशुक्ति
शुक्लाक्ष	सू० ४६/१०५	मल्लिकाक्ष भेद
शौकर	चि० ३७/१०७	वन्य शूकर
स		
समुद्रमण्डूकी	चि० १/१००	जलशुक्ति, ब्रह्मदेवमत-मुक्ता-
	उ० १५/२५	शुक्ति, मुक्तानां शुक्तिः
सहस्रदंष्ट्र	सू० ४६/१/३	महापाठीन

१	२	३
सारङ्ग	सू० ४६/१५९	चातक; अन्ये-कृष्णकर्बुर्श्चात काकरोऽविष्किरः।
	सू० ४६/३३३	गौरहरिण
सिंह	सू० ४६/७२	पराक्रमी निद्रालु
सुगृहा	सू० ४६/६७	पीत मस्तका
सुवर्ण	क० ४/२१	गरुड़
	सू० ४६/९४	महाशूरक अन्ये
सूकर	शा० ३/२७	महाश्वाकारश्च-मरानूक
क्ष		
क्षुद्रा	सू० ४५/१३३	मक्षिका, पिंगला एवं स्वल्प

(ख) जांगमों के डल्हणोक्त लोक-प्रचलित नाम

अम्बु-कुक्कुटक	सू० ४६/१०५	बुड़ियाक
	क० ४/२६	
अश्वतर	सू० ४६/८५	वेसर
आगार-गोधिका	चि० १/१०८	ब्राह्मणी
इन्द्रगोपक	सू० १४/२२	इन्द्रवधू
इन्द्रगोप	सू० १/३०	इन्द्रवधू
ओद्र	सू० ४६/९४	ओदन
ऋष्य	क० १/५७	रोरु
	नि० ५/८	
ऋक्ष	नि० ५/८	रीछ
	सू० ४६/७२ क० ९/४३	रीछ

	सू० ४६/५४	रोरु
कपोत	सू० ४६/६७	पाण्डुक
कराल	सू० २०/५	कस्तूरी मृग
	सू० ४६/५४	
काचाक्ष	सू० ४६/१०५	बहुड़ी
कुरङ्ग	सू० २०/५	चतुरङ्ग
	सू० ४६/५४	
	उ० ३९/२५३	मेदुली
कुरर	सू० ४६/७४	कुरबइ
कुलिश	सू० ४६/११८	कुडिश
क्रकर	सू० ४६/५९	कयर
कृकलास	सू० २९/३७	कण्टिकाया
	उ० ४१/३०	'गिरगिट' (पूर्वदेशे)

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

१	२	३
कोयष्टि	सू० ४६/६७	कोयङग
कोनालक	सू० ४६/१०५	पानीय-वर्तिका
क्रौञ्च	उ० ५८/४४	कैंचर
खञ्जरीटः	सू० ४६/६७	कवड़िया
गृहकुलिङ्ग	सू० ४६/६७	ग्रामचटक
गोकर्ण	सू० ४६/६४	गोन
गोधा	उ० ५०/२९	पञ्चनखा
चाष	सू० २९/२९	करटाशन
	सू० ४६/७४	
	उ० ३५/६	
चीरल्लि	उ० ३५/६	चिल्ल
जीवजीवकाः	क० १/३१	कुरिच
तरक्षु	सू० ४६/७२	जरख
	क० ७/४३	
दात्यूह	सू० ४६/६७	रायुक
द्वीपि	सू० ४६/७२	चित्रक
नक्र	चि० २६/२६	घड़ियाल
नप्तृक	सू० ४६/५९	घुड़रूका
न्यङ्कु	सू० ४६/६४	न्यंगुण
प्लव	सू० ४६/१०५	सगड़
पाठीन	सू० ४६/११३	वोयाल
पुत्तिका	सू० ४५/१३३	बग
पूतिःकीट	चि० ९/१६	तेलिनी, पुण्डालिका-पूर्वदेशे
	उ० ५०/२३	भोदुलिका
पूतिघास	सू० ४६/७६	कर्पूरक

१	२	३
पृषत	उ० ३९/१५३	चीतल
	क० ५/३१	चित्तल
बलाका	सू० ४६/१०५	बगुली
भृङ्गराज	सू० ४६/६७	पक्षिराज
	क० १/३२	
मातृनिन्दकः	सू० ४६/६७	पुत्ररञ्जक
मृगमातृका	सू० ४६/५४	मेदली
मृगेर्वारु	सू० ४६/७२	हरिणद्रव
लट्वा	सू० ४६/६७	लाट
लोपाकः	सू० ४६/७८	लाङ्गलक
वर्तीर	सू० २०/५	धर्धर
	सू० ४६/५९	
वल्गुली	सू० ४६/६७	गदुलिका
वागुञ्जार	सू० ४६/१३३	वाहस
वार्तीका	सू० ४६/५९	बगेड़ा
वृक्षशायिका	सू० ४६/७६	गिली
श्वतर	सू० ४६/८५	वेसर
श्वावित्	सू० ४६/७८	सिहै
श्वदंष्ट्र	सू० २०/५	कर्कटक
	सू० ४६/५४	कर्कटक इति कार्तिकपुरे
श्वेतवारल	सू० ४६/१०५	ज्येष्ठ-बलाका
शतपत्र	सू० ४६/५९	काण्टकुट्टक
शम्बूक	सू० ४६/१०८	सांखुला
शल्यक	सू० ४६/७८	साला
	उ० ६०/५०	

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

१	२	३	१	२	३
शल्लकी	उ० ४१/३०	शल्लक	शिशुमार (दीर्घ)	सू० ४६/१०६	फाणित
शरारीमुख	सू० ४६/१०५	गिर्गराटी	सुगृहा	सू० ४६/६७	वया
शशघाती	सू० ४६/७४	शशाग्नि पाजी	ह्रद	सू० ४६/११७	द्रह
			हारीत	सू० ४६/६७	हरिताल

(ग) कतिपय जांगमों का डल्हणोक्त परिचायक विवरण

	परिचायक विवरण
अम्बुकुक्कुटक — सू० ४६/१०५	कृष्णवर्णा, 'बुडियाक' इति लोके ।
अर्घा — सू० ४५/१३३	तीक्ष्णतुण्डास्तु याः पीतवर्णाः षट्पदसन्निभाः
अश्वतर — सू० ४६/५	अश्वायां गर्दभेन जनितोऽश्वतरः ।
इन्द्रगोपक — सू० १४/२२	प्रावृटकालज उद्भिज्जः 'इन्द्रवधूः' इति लोके स च अनेक प्रकारवर्णः, अत्र तु रक्ता एव गृह्यते ।
इन्द्रगोपा — सू० १/३०	प्रावृट्कालजा अतिरिक्तकृमयः ।
उत्क्रोश — सू० ४६/१०५	कुररभेदो मत्स्याशी ।
उद्दालका — सू० ४१/१३३	कपिलकीटाः स्वल्पाः प्रायशो वल्मीकेष्वन्तर्मधु चिन्वन्ति ।
उपचक्र — सू० ४६/५६	कृशचञ्चुर्मदाविलः ।
ऋक्ष — सू० ४६/७२; क० ७/४३	भल्लूको इति लोमशः ।
कर्कट — सू० ४६/१०६	कर्कटोऽपि द्विविधः कृष्ण शुक्ल भेदेन ।
कङ्क — सू० ४६/७४	दीर्घचञ्चुमहाप्रमाणः, उक्तं च 'कङ्कः स्यात् कङ्कमल्लाख्यो बाणपत्राहं पक्षकः । लोहपृष्ठो दीर्घपादः पक्षाधः पाण्डुवर्णभाक् ।
चि० ३५/६	वक्र चञ्चुः कृष्णवर्णः प्रसिद्ध एव ।
कदली — सू० ४६/७८	महाबिडालसमो व्याघ्राकारः 'कदली हण्ड' इति पौण्ड्रे प्रसिद्धः । अन्ये सर्पविशेषमाहुः; अपरे कदलीमृग इति समस्तं पठन्ति, तत्रापि स एवार्थः ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

चि० ८/३७	कदलीमृगः पूर्वदेशे प्रायशः शबलो दृष्टः, स तु बृहत्तमबिडालसमो व्याघ्राकारो बिलेशयः।
कराल — सू० ४६/५४	करालोऽधोनिष्क्रान्तदन्तो हिमवदादि पर्वतेषु।
कलिविङ्क — सू० ४६/५९	काल चटको भृंगराजाद्भिन्नः, अपरे भृंगराजमाहुः, अन्ये रक्तशिरसं कृष्णग्रीवं ग्रामचटकाकारं कलविङ्कमाहुः।
कादम्ब — सू० ४६/१०५	कलहंसोऽतिधूसरपक्षः, अन्ये तु रक्तचञ्चुशिरः कृष्णपादादीनां लक्षणेन कृत्वा 'कयंब' इति पठन्ति।
कारण्डव — सू० ४६/१०५	शुक्लहंसभेदोऽल्पः, अन्ये 'करवव'माहुः। उक्तं च—कारण्डवः काकवक्त्रो दीर्घांघ्रि कृष्णवर्णभाक् इति।
कालपुच्छ — सू० ४६/६४	कालपुच्छको लसत्कृष्णपुच्छकः।
कुतित्तिरि — सू० ४६/५९	पाण्डुः कपिलः।
कुरर — सू० ४६/४७	चिल्लमाकारो नादोत्थापित मत्स्यो हस्तमत्स्यग्राही।
सू० ४६/१०५	अन्ये तु कङ्कमल्ल सदृशजलचरं कुररमाहुः।
कूर्म — सू० ४६/१०९	कच्छपः स तु नानाविधो वर्त्तुलदीर्घमहदादि भेदेन।
कृतमाला — सू० ४६/५४	बहवः संघातचारिणो मृगः देशान्तरे लोकादवगन्तव्याः।
कृष्णमत्स्य — सू० ४६/११३	कृष्णमत्स्यस्तु शकली बहुकण्टक संयुतः। कषायवर्णोरक्ताच्चः कथितो मत्स्यवेदिभिः।
कोनालक — सू० ४६/१०५	श्यामपृष्ठश्वेतोदरः।
कोयष्टि — सू० ४६/६७	कोयङ्गका दीर्घजंघा।
खञ्जरीट — सू० ४६/६७	सितासितवर्णो द्रुतललितगति।
गृध्र — सू० ४६/७४	मांसाशी योजनदृष्टिः।
चकोर — सू० ४६/५९	रक्ताक्षो विषसूचकः।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

चक्रवाक — सू० ४६/१०५	द्वन्द्वचरो निशावियोगी।
चन्द्रक — सू० ४६/११८	पार्श्वेषु कण्टकवलयितो वर्तुलो मत्स्यः।
चारुष्क — सू० ४६/५४	चारुशरीरः स्वल्पतनर्मगभेदः एव।
चाष — सू० ४६/७४	इन्द्रनीलमणि सदृशपक्षः शस्तदर्शनः।
चिलचिम — सू० २०/८	मत्स्यः शकली लोहिताक्षः सर्वतो लोहित-राजिः प्रायो भूमौ चरतिस्थलमीन-संज्ञकः।
जीवञ्जीवक — सू० ४६/१०५	जीवञ्जीवको विषदर्शनमृत्युः।
जलशूक — सू० १६/१६	जलनीलिका जलान्तवर्ती रोमयुक्तः सविष-प्राणी वा, जलशूको जलसंस्थस्तृणसक्तो जन्तुविरचितः शूकसंघातवान् निवासोऽन्दुक इत्यन्ये, जलचारी कृष्ण कीटः इति लक्ष्मण टिप्पणकेनोक्तम्।
डिण्डिमाणवक — सू० ४६/६७	डिण्डिमोत्कटध्वनि।
दर्भर — सू० ४६/६०	पौण्ड्रकदर्भरो देशान्तरे लोकादवगन्तव्यः।
दला — सू० ४५/१३३	अन्ये तु कपिला एव स्वल्पतर माक्षिकाः प्रायेण वृक्ष कोटरोद्भवा दला इत्युच्यन्ते।
द्रुमा — सू० ६/३६	वल्मीककारिण्यः सूक्ष्माः पिपीलिकाः।
नप्तृका — सू० ४६/५९	लोके घुड्डुरुकाभिधा हुङ्कारिण्यल्पा पाण्डु-रोदरा।
पाठीन — सू० ४६/११३	पुनरशकल एव दीर्घो निर्मलः सोऽपि।
पुत्तिका — सू० ४५/१३३	पिङ्गला महत्यो मक्षिकाः पुत्तिका अन्ये मशकोपमाः मक्षिकाः कृष्ण वर्णाः पुत्तिका इति वदन्ति पीत कपिगला।
पूतिकीट — सू० ९/१७	शस्यादौ वर्षाकाले कर्बु रक।
पौण्ड्रक — सू० ४६/६०	पौण्ड्रकदर्भरो देशान्तरे लोकादवगन्तव्यो।
प्रवाल — ३२/४	स च समुद्रजातोऽत्यन्तरक्तो वल्ली विशेषः।
विडाला — उ० ४१/३६	ग्राम्यादि भेदेन षट् प्रकाराः मार्जाराः तथा च—"ग्राम्यो वन्यस्तोयजातः पक्षिमार्जार-

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

	बिज्जको सुगन्धि वृषणश्चेति मार्जाराः षट् प्रकीर्तिताः ॥"
भास — सू० २०/१४	गृध्रविशेषः स्वल्पतुण्डो धूसरवर्णः ।
सू० ४६/७४	गोकुलचारी गृध्रविशेषः श्वेताशखावान् ।
भृंगराज — सू० ४६/६७	धूम्याटसदृश ।
मृगमातृका — सू० २०/५	स्वल्पा पृथूदरा चतुरंगस्त्री ।
सू० ४६/५४	मृगमात्रिका अल्पा पृथूदरा चतुरङ्गस्त्री ।
मृगेर्वारू — सू० ४६/७२	मृगभक्षः श्रृगालाकृति ।
राजीव — सू० ४६/११८	वज्राभः वह्वायतः स्वनामप्रसिद्धः ।
राजिमन्त — क० ४/१०	रेखायुक्ताः फणावर्जिता ईषद्विषा गमालादयः ।
रूरू — सू० ४६/८४	शरदि श्रृंगत्यागी; तल्लक्षणमुच्यते— "विकटबहुविषाणः शम्बराकारदेहः सलिल तट चरत्वाच्छम्बरेभ्यो विचित्रः । त्यजति शरदिश्रृंगं रौत्यतोऽसौ रूरू स्यात् पृथुल मृगविशेषः प्रायशश्चेदिदेशे ॥
रोहित — सू० ४६/८४	लोहितवर्णो मृग विशेषः ।
चि० २८/१३	लोहितवर्णो मृगजातिः ।
सू० ४६/११३	घनशकलः ।
लट्टूषक — ४६/६७	अन्ये सश्वानचश्ववाकृतिचञ्चु दीर्घपुच्छादि लक्षणेन प्रतुदं विहंगमाहुः ।
लट्वा — सू० ४६/६७	फेञ्जातको रक्तपुच्छाधोभागः ।
वर्तीर — सू० ४६/५८	कपिञ्जलानूकः कपिञ्जलादल्पो वर्तिकातः किञ्चित् महान् वर्तिका सदृश एव ।
वर्मि — सू० ४६/३३३	वर्मीमत्स्येषु, वर्मी रोहितक इत्येके 'रोहितो मत्स्यानां' इति चरकवचनात्, अन्ये सर्पाकारं मत्स्यमाहुः । श्री ब्रह्मदेवस्तु वर्मी महाशकलो रोहितभेदोऽत्र न पुनः सर्पाकारमत्स्यः ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

वार्तीका — सू० ४६/५६	वर्तिचटका स्वल्पाः संघातचारिणः ।
वृक — सू० ४६/७२	कुक्कुर सदृशः पशुः क्षुद्रः ।
श्वदंष्ट्र — सू० २०/५	चतुर्दंष्ट्रोऽतिदुष्टः ।
सू० ४६/५४	
श्वावित् — सू० ४६/७८	सूचि सदृश रोमयुक्ता ।
शरभ — सू० ४६/५८	अष्टापद उष्ट्रप्रमाणो महाश्रृंगः पृष्ठगत चतुष्पादः काश्मीरे प्रसिद्धः ।
उ० ३९/१५३	अष्टापादुष्ट्रप्रमाणो महाश्रृंगः ।
शरारीमुख — सू० ४६/१०५	खदिरवर्णः ।
शल्लक — उ० ६०/५०	गोधानुकारी वज्रशल्यकः ।
सू० ४६/७८	वज्रशकलो बृहद्गोधानुकारी ।
शल्लकी — उ० ४१/३०	गोधानुकारी वज्रशकलः ।
शशघाती — सू० ४६/७४	चिल्लपाकारो महाचरणनखः प्रहारेण शशकाहरणशीलः ।
शिशुमार — सू० ४६/१०९	शिशुमारो हत्याकारोऽन्तर्वक्रो बहिर्निःश्वासमुक्, सोऽपि द्विविधो वर्त्तुल दीर्घ भेदेन ।
शुक्लाक्ष — सू० ४६/१०५	अन्ये मलिन चञ्चु चरणो हंसभेद एवेत्याहुः ।
श्वेतवारल — सू० ४६/१०५	शुक्लपक्षः प्रसेवकगलः ।
सारस — उ० ३९/१५४	रक्तचञ्चुक पक्षिविशेष ।
सू० ४६/१०५	रक्तशिराः प्रसिद्ध एव ।
हंस — सू० ४६/१०५	कलस्वरो ललितगति प्रसिद्धः ।
हारीत — सू० ४६/६७	हरितपीत वर्णः ।

(घ) जांगम सृष्टि से प्राप्त द्रव्यों का डह्लणोक्त अर्थ

१. क्षीरज द्रव्य

अभ्यज्य — चि० २०/५०	सर्पि ।
उदश्वित् — उ० ४२/९२	अर्धोदक तक्र ।
कट्वर — सू० २१/२१	वक्र ।
सू० ४६/४५१	अस्नेह दधि ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

किलाट — सू० ४५/६१	कूर्चिकी भूत क्षीरस्य घन भागः किलाटः यं लोकाः क्षीरांशुमित्याहुः ।
सू० ४६/४०६	किलाटः क्षीरकूर्चिकापिण्ड ।
कूर्चिका — सू० २१/२१	विग्रथितं तक्र ।
सू० ४६/४०३	विग्रथितं क्षीरं घनत्वमापन्नं कूर्चिका ।
घृत — चि० ३१/४	घृतमपि द्विविधं क्षीरोत्थं दध्युत्थ च ।
दध्यम्ल — सू० ४६/३७७	दधिमस्तु ।
उ० ४२/३१	दध्ना क्रियते योऽम्लो यूषः स दध्यम्लः ।
दधि — सू० २१/२१	सस्नेहं गव्यम् ।
दधिमण्ड — उ० ४०/११०	दधिमस्तु ।
दधिमस्तुक — चि० ३१/३८	दधिसर ।
दधिसर — उ० ४०/१३७	दध्न उपरितनो भागः ।
पय — उ० २९/७	दुग्ध ।
उ० ४२/६३	
उ० ६१/२९	
पीयूष — सू० ४५/६१	सद्यः प्रसूताया गोक्षीरं सप्ताहं यावत् ।
मण्ड (मस्तु) — सू० ४५/६०	मस्तुक । 'कूर्चिकाभूतं यद्दधि तक्रं च ताभ्यां जातो यो मण्डः स तक्राल्लघुतरः, प्राकृत-दधि जातं पुनर्मस्तु लाघवात्तक्रसममेव । अन्ये त्वेवं पठन्ति—'दधिकूर्चिक तक्रजः' इति । तत्र प्राकृत दधिजः, कूर्चिकीभूत-दधिजः कूर्चिकीभूत तक्रजः इति मस्तु त्रयसंग्रहः ।
सन्तानिका — चि० २२/३५	सर इति भाषा क्षीर सान्निध्याद् सन्तानिका घृते, क्षीरोत्थे एव ।
सर्पिर्मण्ड — सू० ४५/१०६	विलीन घृतस्य घनीभूत उपरितनो भागो मण्डः ।
क्षीरघृत — उ० ४५/२९	क्षीरोत्थं घृतम् ।
क्षीरसर्पि — उ० २६/१५	क्षीरसर्पिरत्र मथ्यमान क्षीरोत्पन्न नवनीत-जातम् ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

२. अन्य द्रव्य

अहित्वक् — उ० ३४/६	सर्प कञ्चुका ।
गोपित्त — क० १/७१	गोरोचन ।
गोविषाण — उ० ५०/१८	गोशृंग ।
छगलाम्बु — उ० ५२/२२	छागमूत्र ।
जतु — सू० २७/१८	लाक्षा ।
दंत — क० ८/१३७ उ० १२/३१	गोदन्त ।
पित्त — सू० २०/१३	कालखण्डलगनम् ।
मधुशर्करा — सू० ४५/१६६ चि० १७/११	मधुशर्करा ।
मधूच्छिष्ट — उ० ५१/५१	मदनम् ।
माक्षिक — उ० १८/८७ उ० ३९/३७४ उ० ५६/२६	मधु ।
मांसोदक — उ० ४८/२८	मांसपरसस्याच्छो भाग सोरावाख्यः ।
मेध्याण्ड — उ० ४०/१५४	छागलाण्ड ।
रोचना — उ० १४/५	गोरोचना ।
वसा — सू० १९/१६ उ० १८/८८	शुद्ध मांस स्नेह ।
विषाण — सू० २६/२२	शृंग ।
व्याघ्रनख — उ० ३९/२९८	व्याघ्र नख ।
शफ — सू० ४६/५३	खुर ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

त्रयोदश अध्याय

पार्थिव द्रव्यों का डल्हणाभिमत विभावन

पार्थिव द्रव्य

डल्हण ने वानस्पतिक और जांगम द्रव्यों के अतिरिक्त पार्थिव द्रव्यों पर भी अपनी निबन्ध-संग्रह टीका में प्रकाश डाला है।

सुश्रुत-संहिता मूल में पार्थिव वर्ग का वर्णन निम्नलिखित प्रकार से है—

"पार्थिवाः सुवर्णरजतमणिमुक्तामनःशिलामृत्कपालादयः।"

सू० १/३२

इसमें 'मुक्ता' शब्द आया है जो जांगम द्रव्य है। इस विषय में डल्हण ने लिखा है—

"अत्र पार्थिवेषु मुक्तायाः पाठो नार्षं प्रतियाति;
मुक्तायाः शुक्त्याख्य जलचरप्राणिजन्यत्वात्॥" अस्तु

मूलपाठ में पार्थिव द्रव्यों की गणना में 'आद्य' शब्द की व्याख्या करते हुए डल्हण ने लिखा है—

"सूत्रे आदिग्रहणाल्लोहमलसिकतासुधाहरिताल-
लवणगैरिकरसाञ्जनप्रभृतीनां ग्रहणम्॥"

और इस प्रकार मूल में गिनाये गए कुछ द्रव्यों के साथ उन्होंने अनेक अन्य द्रव्य बताकर विषय का विस्तार किया है।

पार्थिव द्रव्यों में 'धातु' कौन है और 'लौह' कौन है; यह व्याख्या आचार्य डल्हण ने की है, जिनके कुछ उदाहरण अवलोकनीय हैं—

धातु

१. सू० ३७/३२ में धातु चूर्ण पर उनका व्याख्यान इस प्रकार है—"धातु चूर्णानि हरिताल पुष्प कासीसरसाञ्जन प्रभृतीनि।"

२. चि० ३०/३६ में 'धातुभिः गैरिकादिभिः' ऐसा लिखा है।

३. उ० १२/२४ में 'धातवो मनःशिला गैरिकादयः' दिया है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

लोह

१. सू० ७/७ में 'लोहा: पञ्च सुवर्णादय:' लिखा है।

२. चि० १०/११ में "सर्व लोहेषु त्रपुसीसताम्ररजतसुवर्णेषु" ऐसा प्रतिपादन किया है।

३. चि० १३/५ में "त्रप्वादीनि त्रपुसीसताम्ररुप्यसुवर्णकृष्ण लोहानि षट्" ऐसा लिखा है।

त्रप्वादिगण का वर्णन सुश्रुत मूल में होने से त्रप्वादीनि अर्थ किया है। आचार्य ने लोह के रोग प्रतिरोध क्षमता उत्पादक गुण का उद्बोधन कराया और बताया है कि सुवर्ण आदि लोह यदि पहले से प्रयोग कराये जाँय तो रोग प्रतिरोधक क्षमता उत्पन्न हो जाती है—

"सुवर्ण लोहादि विरोधि रोगहरं पूर्वमेव सेवेत।"

'अञ्जन' के लिए भिन्न-भिन्न स्थलों पर उन्होंने उस पद से स्रोतोञ्जन, सौवीराञ्जन और रसाञ्जन का ग्रहण किया है और उन्होंने रसाञ्जन पर निम्नलिखित प्रकार से टिप्पणी की है—

> "रसाञ्जनं दारुहरिद्राक्वाथेन कृत्रिमं; अन्ये त्वेवं वदन्ति रसाञ्जनं द्विविधं स्रोतोञ्जनं कृष्ण पाषाणाकृति धातुद्रव्यं, अन्यद् दारुहरिद्रा क्वाथेन कृत्रिमं पीतलोहितम्।" (सू० ३८/४१)

आचार्य ने स्रोतोञ्जन के विषय में जो व्याख्या की है उसे इस प्रकरण के 'ख' भाग में दिया गया है, वहाँ ऐसा लिखा है—

'जलोद्भवं स्रोतोञ्जनं।' (उ० १७/४०)

और इसी तरह सौवीराञ्जन की व्याख्या में यही लिख दिया है—

'स्रोतजं सौवीराञ्जनम्।' (उ० १७/६८)

इस प्रकार सौवीराञ्जन की व्याख्या से दोनों में अन्तर स्पष्ट नहीं हो पाता।

उत्तरतन्त्र (४५/३२) में 'लाजाञ्जन चूर्ण' का पाठ आया है, उस पर टिप्पण करते हुए आचार्य डल्हण ने लिखा है—

> "लाजाञ्जनचूर्णं इत्यत्र 'कालाञ्जनचूर्णं इति केचित् पठन्ति' तत्र कालाञ्जनं सौवीराञ्जनम्।"

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

इस प्रकार ऐसा माना जाता है कि डल्हण अञ्जन के विभिन्न भेदों के सही परिचय कराने में सफल नहीं हुए और उनमें स्वतः सन्देह बना ही रहा।

'रत्न' एवं 'मणि' इन पर अपनी व्याख्या में आचार्य ने लिखा है—

"रत्नानि सप्त पद्मरागमरकतनीलवैडूर्यमुक्ताप्रवालहेमानि।" (उ० १८/९४)

'मणि स्फटिकादि।' (सू० ४५/१७)
'मणयो मुक्तास्फटिका प्रभृतयः।' (उ० ४६/१४)

लवण वर्ग पर आचार्य ने सारगर्भित एवं स्पष्ट मन्तव्य दिया है तथा तुरंग-भूमि में उत्पन्न होने वाले लवण का भी वर्णन किया है। उन्होंने सुश्रुत-संहितोक्त पार्थिव द्रव्य आल, शिला, तापीज; रीति आदि का सुस्पष्ट अर्थ बताया है तथा अयस्कान्त, कासीस, तुत्थ; मृत्तिका आदि पर विशेष टिप्पण कर विषय-वस्तु को और भी सुगम कर दिया है।

सर्वतोभावेन यह स्वीकार करना पड़ेगा कि आचार्य डल्हण ने सुश्रुत के पार्थिव द्रव्यों को उसी रूप में समझ सकने योग्य महत्वपूर्ण व्याख्या की है और अतिरिक्त सम्बन्धित जानकारी देकर मूल-पाठ की श्रीवृद्धि की है। यहाँ हमने उनके इस कार्य का विवरण दो खण्डों में प्रस्तुत किया है—

(क) सुश्रुतोक्त पार्थिव द्रव्यों का डल्हणोक्त अर्थ।
(ख) कतिपय पार्थिव द्रव्यों पर डल्हणोक्त विशेष व्याख्या।

(क) सुश्रुतोक्त पार्थिव द्रव्यों का डल्हणोक्त अर्थ

	डल्हणोक्त अर्थ
अयस्कान्त — सू० २७/४	पाषाणविशेष।
अयोमल — उ० ४४/२४	लोहसिद्धाणु।
अयोरज — उ० ४४/१७	लोहचूर्ण।
अश्मन्तक — उ० १५/२६	शिलोपमं मणिविशेष।
आल — चि० १/१०७; १०८; चि० ९/२७; ५५; १८/४१; क० ६/३; उ० ११/१९; ५२/२२	हरिताल।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

उपल — सू० २६/२२	पाषाण।
सू० २९/११	
ऊषक — सू० ३८/३७	क्षारमृत्तिका (वाराणसी के पास बड़हर देश में)।
औदुम्बर — उ० १८/८५	ताम्र।
कटशर्करा — सू० ११/१२	गांगेष्ठी, अदग्ध सुधापाषाण।
कुरुविन्द — उ० १५/२६	पद्मराग, अन्य मत निशानोपल।
सू० ३७/३२	पद्मराग-लोहितरत्न।
कृष्णलोह — सू० ३८/६२	तीक्ष्णलोह।
सू० ४६/४४९	कृष्ण लोह; अन्ये कान्तलोह।
गैरिक — उ० ४५/३९; ५०/२७	सामान्य गैरिक, सुवर्ण गैरिक।
गोमेदक — सू० ४५/१७; नि० ३/७	पुष्पराग: मत्कोलं केचित् पीतमणि।
टङ्कणक्षार — सू० ४६/३२२	सौभाग्य (लौकिक नाम) 'सुहागा'।
ताप्य — उ० ४४/२३	माक्षिक धातु।
तापीज — चि० १३/१७	तापीनदीजं-सुवर्णमाक्षिक तथा रजतमाक्षिक।
तार — क० ३/१४	रूप्य।
नदीज — चि० ९/२५	तापी नदी उत्पन्न माक्षिक धातु।
नदीज धातु — उ० ४४/३१	सुवर्ण माक्षिक।
नेपाली — उ० १४/४	मनःशिला।
नेपालजा — १९/१४	
नेपालजाता — ११/१६	
नैपाली — चि० २/९१; उ० १२/१६; ६०/५९	मनःशिला।
पारद — उ० ३५/७	शम्भुरेत।
पुलक — उ० १५/२६	"स्फटिकमेव पाकाद्वर्णान्तरमापन्नं।"
पुष्प — चि० १९/४०	पुष्पाञ्जन।
क० ६/१७	पुष्पकासीस।
उ० १४/४	पुष्पाञ्जन।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

मण्डूर — उ० ४४/२३	लोहकिट्टानुकारी द्रव्य ।
मनोह्वा — उ० १३/७	मनःशिला ।
माक्षिक — उ० १३/७	सुवर्ण माक्षिक ।
रजत — सू० ३८/६२	रूप्य ।
रीति — सू० २६/२०	पित्तलभेद ।
चि० ३५/१२	पित्तल ।
लोहकिट्ट — उ० ४४/३२	लोहमल ।
उ० ४४/३४	लोहसिघाणक ।
लोहपुरीष — चि० १८/५२	लोहमलं ।
लोहमल — सू० ३८/६२	'काट' इति लोके ।
वज्र — सू० ४६/४५३	षट्कोटिक रत्न; हीरक ।
वैदूर्य — सू० ४६/४५३	'विदूर गिरिजं भवम्; अत्यच्छमानीलम्' ।
वैडूर्योपलक — उ० १५/२६	वेरुडिक ।
शातकुम्भ — उ० १८/६२; १०/६; १८/८५	सुवर्ण ।
शिला — उ० २१/४८; चि० २०/२३; क० ६/१७; उ० १२/२६; १४/७	मनःशिला ।
शिलाजतु — उ० ४१/५७, ४४/३१; ५६/२४	अश्मजतु अश्मसार शैलजतु ।
स्वर्जिकाक्षार — सू० ४५/३२२	साजी ।
सिकता — सू० ३३/१२; ४४/७३	बालुका ।
सीधु — चि० ६/१३	शस्यक ।
सीस — सू० ३८/६२	नाग ।
सुतार — क० ३/१४	पारद ।
सुधाशर्करा — सू० ११/११	सुधापाषाण ।
सुराष्ट्रजा — सू० ३७/१४	तुम्बरूमृत लोके तूरी ।
चि० १७/२४	अपरे सामान्य कृष्णमृत्तिका ।
उ० ४१/५०	तुवरमृत्तिका ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

सुवर्चिका — उ० ५५/४४	स्वर्जिकाक्षार।
स्रोतोञ्जन — सू० ३८/४५ चि० १७/७	सौवीराञ्जन।
सौराष्ट्री — चि० १६/४० उ० ६२/३६	तुवरमृत्तिका। तुवरिका।
हिरण्य — सू० २८/२८	स्वर्णम्; अन्ये कर्यदकम्।
त्रपु — सू० ३८/६२ उ० ५४/३३	वंग } लोके कथीर। रंग }

(ख) कतिपय पार्थिव द्रव्यों पर डल्हणोक्त विशेष व्याख्या

अञ्जन — चि० १३/३५	अञ्जनं स्रोतोञ्जनं, तस्योत्पत्तिस्थानं वर्णसा, सिन्धुश्च महानदः।
उ० १७/३६	सिन्धु स्रोतसि वर्णसापर्णसासान्निध्योः स्रोतसि वा यत् समुत्थितं स्रोतोञ्जनम्।
उ० ६०/४८	स्रोतोञ्जनं पर्णसा नद्यां सिन्धु नदे वा भवति। तल्लक्षणं—"वल्मीकशिखराकारं रूपे नीलोत्पलद्युति। स्रोतोञ्जनं प्रशंसन्ति तच्च प्रत्यञ्जने हितम्।
अयस्कान्त — सू० ७/१५; सू० २७/४	"अयस्कान्तः पाषाण विशेषः, आकर्षक-द्रावक चुम्बकभ्रामक भेदाच्चतुर्विधः।"
कासीसद्वयं — सू० ३८/३७	"कासीसं भस्म सदृशं किञ्चिदम्ललवणरसं, द्वितीयं पुष्पकासीसमीषत् पीतं तुवररसं तदभेद एव।"
गैरिक — उ० ५०/१६	काञ्चनाह्वं गैरिकं सुवर्ण गैरिकं दक्षिणात्य-प्रसिद्धम्।
मृत्तिका — उ० ४४/३	मृत्तिका सर्वदोषप्रकोपणी; नानाविधित्वम्-कषाया मारुतं, पित मूषरा मधुरा कफं च।
क० ३/१२	विषघ्नत्वाद् वल्मीकस्य।
तुत्थ — उ० १०/६५	मयूरग्रीवाख्य तुत्थ को उत्तम कहा गया है। दूसरे को खर्परिका तुत्थ बताया गया है, जिसे लोक में 'खपरिया' कहते हैं।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

उ० १७/३९	तुत्थ की प्राप्ति सुवर्ण की खानों से बताई गई है।
रसाञ्जन — सू० ३८/४१	दारुहरिद्रा क्वाथ से कृत्रिम निर्मित पदार्थ। अन्य मत देते हुये आचार्य ने लिखा है कि रसाञ्जन दो प्रकार का होता है—१. स्रोतोञ्जन—जो कृष्णपाषाण की आकृति वाला धातु द्रव्य है एवं २. दारुहरिद्रा—क्वाथ से निर्मित कृत्रिम द्रव्य है।
चि० २५/३३	"अञ्जनं नीलवर्णं रसाञ्जनम्।"
लवण — सू० ३९/६	"लवणानि पार्थिव विशेषाः" उपर्युक्त अर्थ में आचार्य ने लवणों को पार्थिव माना है। सू० ३७/१४ और उ० १२/२४ में पांच प्रकार के लवण बताए गए हैं—१. सैन्धव, २. सौवर्चल, ३. विड, ४. गड एवं ५. सामुद्र। आचार्यश्री ने अन्य मत देते हुए गड के स्थान पर काल-लवण की गणना की है और व्याख्या की है कि काल-लवण सौवर्चल का भेद है जो निर्गन्ध होता है। क० ६/१९ में लवणों की संख्या के विषय में आचार्य ने लिखा है—"अष्टौ लवणानीति जेज्जटाचार्यः, तन्नेच्छति गयी।" आचार्य ने अनेक स्थलों पर विभिन्न प्रकार के लवणों पर टिप्पणी की है—
१. सैन्धव — उ० १९/१५	लवणोत्तमं सैन्धवम्।
उ० १९/३३	नादेयं सैन्धवम्।
उ० १५/१२	लवणस्य सैन्धवस्य।
२. सौवर्चल — सू० ४६/३१३	सौवर्चलं प्रसिद्धं, तदेव निर्गन्धं काल लवणमित्युच्यते।
उ० ४२/९२	काललवणशब्देन यद्यपि निर्गन्ध सौवर्चलमुच्यते; तथाऽप्यत्र गन्धवत् सौवर्चलं ग्राह्यं तन्त्रान्तरोक्तत्वात्।
सू० ४६/३१३	सामुद्रात् सौवर्चलस्योष्णत्वात्।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

३. सामुद्र — उ० ४२/५६	सामुद्रं समुद्रलवणम् ।
सू० ४२/११	सामुद्रं समुद्रसमीपभवं गुर्जरराष्ट्रे प्रचुरं भवति ।
सू० ४६/३१३	दक्षिणसमुद्रसमीपभवं सामुद्रम् ।
४. विड — सू० ४६/३१३	विडं कृत्रिमं स्वनाम्ना ख्यातम् । तच्च प्रसारणीकल्कभक्तलवणसंयोगादग्निदाहेन निर्वृतम् ।
५. रोमक — सू० ४६/३१३	रोमकं शाकम्भरी देशोत्थं, साम्भरसरः संभव इत्यन्ये ।
सू० ४२/११	रोमकं शाकम्भरी देशोत्थान्, श्वेत लवणमित्यन्ये ।
६. औद्भिद — सू० ४६/३१३	भूमिमुद्भिद्योत्पन्नस्य क्षारोदकस्य । सूर्यरश्मिभिर्वह्निना वा क्वथनाल्लवणमुत्पद्यते तदौद्भिदम् ॥
सू० ४२/११	पाक्यमुद्भिदम् ।
७. गुटिका — सू० ४६/३२०	पकाने पर गुटिकाकार होने से इसे गुटिका लवण कहा गया है और इसे ही वृक्ष लवण की संज्ञा दी है ।
८. फुल्ल — सू० ४२/११	पाकित्रमं पाकाभिनिर्वृत्तं 'फुल्ललवणम्' इत्युच्यते ।
९. ऊषर — सू० ४२/११	ऊषर प्रसूतमूषरलवणम् ।
१०. मूलाकरोद्भव — सू० ४६/३२१	मूलभूत आकारो मूलाकरः प्रशस्यतरतुरंगमोत्पत्तिभूमिः, तत्रोद्भवं मूलाकरोद्भवम् ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

चतुर्दश अध्याय

डल्हण द्वारा व्याख्यात कृतान्न-वर्ग

कृतान्न-वर्ग

द्रव्यगुण शास्त्र में जहाँ प्राकृतिक, वानस्पतिक, जांगम एवं पार्थिव द्रव्यों का वर्णन मिलता है वहाँ एक अन्य महत्व का प्रकरण भी समाविष्ट है और वह है 'कृतान्न-वर्ग' और यही प्रकरण है कि निघण्टुकारों ने अलग से कृतान्न-वर्ग का वर्णन किया है। आचार्य डल्हण ने इस विषय पर सुन्दर प्रकाश डाला है और विभिन्न प्रकार के संस्कृत अन्न एवं पान किस नाम से और किस प्रकार बना कर प्रयोग में लाये जाते हैं इसका सुन्दर वर्णन किया है।

आचार्य ने अपनी व्याख्या में स्पष्ट किया है कि 'सूदशास्त्रोक्त विधि' से अन्न-पान संस्कृत किए जाते हैं जो यह स्पष्ट संकेत करता है कि पाकशास्त्र उस काल में ज्ञात था और तदनुसार ही कृतान्न-पान का विचार किया जाता था (उ० ५१/५४)। इसके लिए विशेषज्ञों को आचार्य ने "पाकनिष्ठातत्व-ज्ञानी" माना है (क० १/११)।

सुश्रुत-संहिता में षड्रसात्मक आहार को चार भागों में विभाजित कर उस पर टिप्पणी करते हुए आचार्य डल्हण ने लिखा है—

"अशितं भोज्य भोजनादि"
"पीतं पेय क्षीरादि"
"लीढं लेह्य मध्वादि"
"खादितं भक्ष्यं मोदकादि।" (सू० ४६/३)

इसे और स्पष्ट करते हुए उन्होंने भक्ष्य एवं भोज्य में अन्तर बताया है—"घनं भोज्यं, भक्ष्यादि कठिनम्" (सू० ४६/४६२)।

फिर उदाहरण देकर भी स्पष्ट किया। यथा—

भोज्य

"भोज्यं रक्तशाल्यादि।" (सू० ४६/४६२)
"भोज्यानि अन्न यवाग्वादीनि।" (सू० ४६/२३०)

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

भक्ष्य

"भक्ष्या लड्डुकादयः।" (सू० ४६/३९२)
"भक्ष्याणि वटकादीनि।" (सू० ४६/२३०)

आचार्य ने इन चारों का केवल दो के अन्तर्गत ही समावेश करते हुए लिखा है—"अन्नं भक्ष्यादि, पानं जलादि" (उ० ६०/९) जिससे अन्न एवं पान का ग्रहण किया जा सकता है।

डल्हण ने विभिन्न प्रकार के कृतान्न-पान की सुन्दर परिभाषा दी है, जो कहीं-कहीं तो देखते ही बनती है। इस प्रकरण में हमने इस विषय पर अध्ययन कर ऐसे ही सन्दर्भों की व्याख्या प्रस्तुत की है। 'फेनी' जैसी प्रसिद्ध मिठाई का कितना सुन्दर वर्णन लिखा है वह देखते ही बनता है—

फेनक

"विमर्द्य विमलां शुक्लां सामितां नाति शर्कराम्।
संवेष्टनाय गर्भार्थं खरपाकं घृते पचेत्॥
फेनकं फेनसंकाशं सम्पूर्णं शशिसन्निभम्॥"
सू० ४६/३९९

पूर्णकोश शब्द वर्तमान कचौड़ी का द्योतक है। इसी तरह अन्य कृतान्न-पान की व्याख्या डल्हण ने सुन्दर की है जो इस प्रकार उद्धृत है—

अपूप — चि० १०/५ स्थूलपूपा।

अम्लम् — शा० २/२१;
चि० ४/२९; ८/१७;
८/३८; २३/११;
३२/१२; काञ्जी।
उ० २६/४०; ३९/१३१;
३९/२८४; ५५/४३;
५६/१५

आमलकेषु पायस — उ० १७/४९ आमलकेषु पायस इति आमलकश्रृत पयसाकृतः पायस इत्यर्थः। अन्ये तु शतावरी स्वरस सिद्धा यवागूः शतावरी पायसः, आमलक स्वरस सिद्धा यवागूश्चामलकपायसः॥

आरनाल — उ० ४२/३१ काञ्जिक।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

आक्षिक — सू० ४५/१८६	विभीतक क्वाथ और गुड़ घात की कुसुम आदि से संस्कारित 'शीधु'।
उत्कारिका — सू० ४४/२२	
चि० १०/५;	संयावप्रकारा।
१४/१०; १५/२०;	
२६/१७; ३२/११;	
उ० ५१/४५;	लप्सिका।
५२/२५	
उलुम्बक — सू० ४६/४१०	होलका, अन्नमुद्ग कलाय अग्निपक्वा।
चि० १०/५	सरसभ्रष्टयवा।
काम्बलिक — सू० ४६/८६	"काम्बलिकेन दधिमस्त्वम्लसिद्धयूषेण।"
कुणावी — चि० १०/५	कुणावी यव पर्पटी।
कुल्माष — सू० १८/२८;	यव पिष्टमुष्णोदके सिक्तमीषत् स्विन्न
२०/१३;	मुदितं शृंगाटादि प्रकारं कुल्माषमाहुः।
४६/४०८;	
चि० ६/८३; १०/५;	
उ० ४०/१३४;	"कुल्माषा उत्स्विन्नं माषादि।"
४२/६६; ६०/३४;	
६२/२१	
कृशरा — सू० १८/१६; २०/१३;	"तिलतण्डुलमाषकृता यवागूः।"
२१/२३; ४६/३४६;	
चि० २/२५; ३२/८२;	
८६/६; उ० ४२/८८	
खड — सू० ४६/४५१	यूष विशेष सतक्रशमीधान्य सतक्रशाक।
खला — उ० ४२/५५	खलाः कपित्थदण्डिम तक्र शाकादि संस्कृत।
गुड़शुक्त — सू० ४५/२१२	"गुडाम्बुना सतैलेन सन्धानं काञ्जिकं तु यत्। कन्दशाक फलैर्युक्तं गुडशुक्तं तदुच्यते।"
गौडिका — सू० ४६/३८४	"समिताप्रधाना गुडप्रधानोदरा गोडिका इत्युच्यन्ते।"

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

घृतपूरा — सू० ४६/३९३	"मर्दिताः समिताः क्षीर नालिकेर सितादिभिः। अवगाह्य घृते पक्वो घृतपूरो यमुत्तमः।" घेर (उ) इति लोके॥
उ० ४२/१०२	घृतपूपा इत्यर्थः।
चिवा — चि० १०/४	अपूप विशेष।
चुक्र — उ० ४२/९२; ४२/९७	शुक्त।
जगल — सू० ४५/१९०	जगलोऽस्यः किट्टं मद्यस्य यो बहिस्त्यज्यते। अन्ये किण्वभक्तसुरा जगलमित्युच्यते।
जाम्बव — सू० ४५/१८६	जम्बुफलरस; तुम्बरु धातकी आदि कृतसंस्कारो 'शीधु' विशेषः।
तक्रकूर्चिका — सू० ४५/९०	'विनष्टं तक्रं घनावयवं तक्रकूर्चिका'।
तिलकल्क — सू० ४६/२९४	तिलपिण्याक।
तुषाम्बु — सू० ४५/२१३	काञ्जिकाभेद।
तुषोदक — चि० ११/५	काञ्जी।
दाडिमाम्लः — स० ४६/३७६	दाडिमेव क्रियते योऽम्लोयूषः।
दाधिका — उ० ४०/११३	दध्ना संस्कृता।
धान्याम्ल — सू० ४६/४२०; चि० ५/८; उ० ३९/२८४; ४२/१३०; ४३/२१; ५४/२८, चि० ६/४	काञ्जिका।
धान्वन — उ० ४२/१०७	जांगल मांसरस।
धाना — सू० ४६/४१० चि० १०/५	भृष्टयवा,
उ० ५१/३६	शुष्कभृष्टयवा।
परिशुष्क — सू० ४६/३५३	प्रदिग्धयोऽयं विशेषः—'भृष्टं बहुघृते सिक्तं मुहुरुष्णाम्बुना मृदु। जीरकाद्यैर्घनं मांस

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

	परिशुष्कं तदुच्यते ।। तदेव गोरसादनं प्रदिग्धमिति विश्रुतम् ।' इति ।
सू० ४६/४५०	'सिक्त्वा बहुघृते भृष्टं मुहुरुष्णाम्बुना मृदु । जीरकाद्यैर्घनं मांसं परिशुष्कं तदुच्यते । तदेव गोरसादनं प्रदिग्धमिति विश्रुतम् ।'
प्रसन्ना — सू० ४५/१७७ उ० २९/७	सुरा, सुरायामण्ड उपर्यच्छोभागः ।
प्रक्षुद्रा — चि० ३१/३८	क्षुद्रावगाही क्षुद्रफाणित } लोके 'काकवी'
प्रदेहा — सू० ४०/१४९	पाकेन घनीभूताः रसाः प्रदेहाः ।
पृथुका — सू० ४६/४१५	आर्द्रशालिधान्यं मृदुभृष्टं मुसलाघात चिप्पटीभूतावयवं 'पृथुका' इत्युच्यते ।
पलल — चि० २०/५१ उ० ३२/८	तिलपिष्ट ।
पानक — सू० ३८/८० उ० ४५/३१	पीयन्ते इति पानका—यूषादि ।
पायस — सू० १८/१६; २०/१३; २१/२३; ४६/३४५ ४६/४२५; चि० १४/६; १६/६; ३२/१२; ४२/८९	दुग्धसिद्धातण्डुल ।
पालला — सू० ४६/४००	तिलपिष्टं गुडाद्युपेतं, तेनकृता पाललाः ।
पिण्याक — सू० ४६/२९४	उमा सर्षपादीनां यन्त्रादिपीड़ितानां निःस्नेहकल्क पिण्याकः ।
पिष्ट — सू० २०/८, सू० २१/२३	तण्डुलपिष्ट ।
पिष्टान्न — सू० ४६/४२४	तण्डुलपिष्टान्न ।
पूर्णकोश — चि० १०/५	पूर्णकोशाः यवपिष्टमया एव कुण्ठहित शमीधान्यस्विना विदालादि पूर्णकोष्ठाः ।
पूपा — सू० ४६/३९५	पूआ (लोके) ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

पेया — सू० ४६/३४२	'यवागूः' सा विरलद्रवा।
सू० ४६/३४४	तदुपरितनो भागो 'मण्डः'।
	एतद्द्वयमपि पेयम्।[1]
पेष्टिका —	तण्डुलपिष्टकृता।
फाणित — सू० ४४/२८;	काकवी।
४५/१५६;	क्षुद्रगुण काकवी इतिलोके त्रिदोषकरत्व।
उ० ४०/६०;	
४०/१२५	स्वनाम मध्वाकृति।
फेनक — सू० ३६/३६६	"त्रिमर्द्यं विमलां शुक्लां समितां नाति शर्कराम्। संवेष्टनाय गर्भार्थं खरपाकं घृते पचेत्। फेनकं फेन संकाशं सम्पूर्णं शशिसन्निभम्॥"
बक्कस — सू० ४५/१८१	"बक्कसो जगल एवाद्रवः किण्वौषधमात्रम्।"
भर्जित — सू० ४६/३५६	भर्जितं स्याद्घृतादौ तु पिष्टवा यत् साधितं पुनः। अपूपादि कृतं पिष्टं दधिदाड़िम सौरभैः॥
मत्स्याण्डका — सू० ४५/१६२	द्रवखण्ड (खण्डद्रवलोके)।
मदिरा — उ० १७/१६	पिष्ट सुरा।
उ० ५५/२१	मद्य।
मध्वासव — सू० ४५/१८८	मधुगुडाभ्यां सन्धानम्।
मधुमस्तक — उ० २६/३८	खजुका।
मधुशीर्षक — सू० ४६/३६५	समितावेष्टिताः पाकघनी भूता मधुरा घृतोदरा मधुमस्तका, त एव 'मधुशीर्षका' उच्यन्ते; केचिन्मधुमस्तकशब्देन मोदयित्वा खञ्जकमाहुः।
मधुशुक्त — सू० ४५/२१२;	जम्बीररस कृतः संधानविशेषः, तथा चोक्तं—"जम्बीरस्य फलरसं पिप्पली चूर्ण संयुतम्। मधुभाण्डे विनिक्षिप्य धान्य राशौ निधापयेत। मासेन तज्जात रसं मधुशुक्तं प्रकीर्तितम्।"
उ० ३६/२६८	

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

मद्यशुक्त — सू० ४५/२१२ "सर्वं मद्यं पञ्चरसं कालान्तर वशाग्पदा ।
त्यक्त्वान्यरसमम्लत्वं याति शुक्तं तदुच्यते ॥"

मधूदक — चि० १७/६ मधुमिश्रित उदक ।

मन्थ — उ० ४७/७३; ४८/३०; ५५/३४ सर्पिर्युक्तसक्तवः शीतजलप्लुता ।

मन्थहृत — उ० ४१/५२ खजविड़ोलित ।

मोदक — सू० २६/२८; सू० ४६/३६५ लड्डुका ।

मौरेय — सू० १६/१८; सू० ४५/१८६; चि० १६/३५; उ० १२/४० सुरा और आसव का एक साथ सन्धान ।

यवास शर्करा — सू० ४५/१६७ यवास क्वाथ को घनीभूत कर बनी शर्करा ।

रसक्रिया — सू० ३७/२१ फाणिताकृति, काकवी इति लोके । कल्पना चेत्थं—'द्रव्यापेक्षयाष्ट गुणं षोडशगुणं वा जलं दत्वाष्टभागावशेषः, षोडशभागापशेषो वा क्वाथः कार्यः, तत पूतं कषायं पुनस्तावत् पचेद्यावत् फाणिताकृतिः ।

रसशुक्त — सू० ४५/२१२ सन्धान द्रव—इक्षु रसादि से निर्मित गुड़ शक्कर की तरह सन्धान क्रिया ।

रसाला — सू० ४६/३८४ शिखरिणी ।

राग — सू० ४६/३८३; सू० ४६/४५३ "सितारुचक सिन्धूत्थः सवृक्षाम्लपरुषकैः ।
जम्बूफल रसैर्युक्तोरागो राजिकया कृतः ।"

लाज — उ० ५०/२६ पुष्पितधान्य ।

लाजा — उ० ४५/३२ भृष्टधान्य ।

वटक — सू० ४६/२६५ पिष्टकासमर्दक कूष्माण्डकमूलकादिकृता मुद्गादिकृताश्च । सवाततोदशूला मला प्रवृत्तिर्विष्टम्भः ॥

वाटी — सू० ४६/४१० "यवगोधूमादिभिर्दलितैः कृतः, अन्ये तु भृष्टयवकृत भक्ष्य ।"

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

वारुणी — सू० २०/१३; उ० ४२/११२	मद्यापरपर्याया सुरा।
विरूढ — सू० ४५/५१	अङ्कुरजनन शक्तिरहित अन्ये, 'विरूढमङ्कुरितं, अपरे ईषदभृष्टं चणकमुद्गादि।
सू० ४६/३८१	अंकुरितविगतरोहंता, अन्ये शाकमेवात्यन्तरूढम्।
विरूढककृता — सू० ४६/४०४	अङ्कुरित मुद्गादिकृता।
विलेपी — सू० १९/३१-३४	स्वल्पद्रवा बहुसिक्था।
सू० ४६/३४२	घनसिक्था सा च लेह्या; तत्र मण्डपेया।
सू० ४६/३४५	विलेपीनां तण्डुलजलप्रमाणादिकं सूपकारा एव जानन्ति।
विष्यन्द — सू० ४६/३९८	'आमगोधूमचूर्णं च, सर्पिः क्षीरगुडान्वितम्। नातिसान्द्रो नातिघनो, विष्यन्दो नाम नामतः इति।। अन्ये तु घृतभ्रष्टतण्डुलान् विष्यन्दशब्देनाहुः; तन्नेच्छति गयी।।
वेशवार — सू० ४६/३९९; सू० ४६/४००	स्विन्नपिष्टमुद्गादिकल्कः।
चि० २/२५	निरस्विन्न स्निग्ध पिष्टमांसैः।
चि० १६/६	संस्कृतमांसरसविशेषः, 'चटनी' इति
चि० ३२/१२	भाषा।
शतावरी पायस — उ० १७/४९	'शतावरीमूलश्रृतेन पयसाकृतः।'
शष्कुली — सू० २९/७०	चणकादिपिष्टकृता सितला तैलभृष्टा शष्कुलीत्युच्यते।
सू० ४६/४००	'शांकुली' इति लोके।
चि० १०/५	शष्कुल यव प्रकारेण संस्कृतैस्तिलैर्यवपिष्टेन शष्कुलीकल्पेन विधेया।
शीधु — सू० १९/१८	शीधुः शस्यकः; सोऽपि नाना प्रकार पक्वरसिक शीतरसिक आदि भेदेन।
सू० ४५/१९१	शीधुसस्यक इक्षुरसेन, क्वथितेन धातक्यादि बद्धः पाकः कालान्तरेण निष्पन्नः, किञ्चिद्गुडघृतावायः सस्यको वाच्यः।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

शूलिकाप्रोत — सू० ४६/३५५ लोहादि शलाकारोपितम् (मांस)।

षाडव — सू० ४६/४५३ "षाडवाः पुनर्मधुराम्ललवणसंयोगजा नानाविधाः, विशेषतः सूदेभ्यो ज्ञेयाः।"

उ० ४७/२५ 'षाडवो यूषविशेषः। आम्रातकादिभिः क्वथितैरिक्षुविकारयुक्तैः षाडवः कार्यः। तथा च तन्त्रान्तरे षाडवकल्पना—'युतमिक्षुविकारेण क्वथितं चूतजं फलम्। घृतशुण्ठी तिलयुतं विज्ञेयो घनषाडवः॥'

सू० ४६/३७८ 'स्पष्टाम्लमधुरो स्पष्ट कषाय लवणोषणः अतिक्तः खाडवः कोल कपित्थाद्युपवृंहित॥

उ० ५७/१२ केचित् 'सितारुचकसिन्धूत्थैः सवृक्षाम्लपरुषकैः। जम्बूफलरसैर्युक्तो रागो राजिकया कृतः। मधुराम्लकटूना तु संस्काराः षाडवा मताः॥

स्थूणिका — सू० ४६/२६४ नानाशाकैः कृता वटकाः।

सट्टक — सू० ४६/४५३ "लवङ्गव्योषखण्डैस्तु दधि निर्मथ्य गालितम्। दाड़िमीबीज संयुक्तं चन्द्रचूर्णावचूर्णितम्॥ सट्टकं तु प्रमोदाख्यं जलादिभिरुदाहृतम्।"

सिण्डाकी — सू० ४६/२६५ मूलकादिशाकमेव किञ्चित् स्विन्नं क्षुण्णं सुगन्धि कटुद्रव्यान्वितं वटकीकृतं सूदेषु 'सिण्डाकी' इत्युच्यते।

सू० ४६/३८२ 'सिण्डाकी अनाषुता शुष्कार्द्रा सह्येषु, अन्नादिष्वासुतसिण्डाकी शुक्तगुणा नोक्तगुणा।'

सूद — सू० ४६/४५४ 'सूपकारः सूपप्रतिहतमोदनं भक्तम्।'

सौवरिक — क० ५/१८; उ० ४२/६२; उ० ५२/२१ काञ्जी।

संयाव — उ० २६/३८ संयावः कण्डकघृतैश्चातुर्जातक कर्पूर सुगन्धः लप्सिकेति लोकेः।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

सू० ४६/३९५	समितां मधु (घृत) दुग्धेन मोदयित्वा सुशोभनाम्। पचेद्घृतोत्तरे खण्डे क्षिपेद् भाण्डे नवे ततः। संयावोऽसौ युतश्चूर्णैः खण्डैलामरिचार्द्रकैः ॥ इति ॥
स्वस्तिक — उ० ६०/३३	स्वस्तिको यवादिचूर्णैः कृतोऽधोभागे विस्तीर्ण ऊर्ध्वभागे तीक्ष्णो मध्ये वलित्रयमुद्राङ्कितो भक्ष्यः विशेषः।
क्षीरकृताभक्ष्या — सू० ४६/३९२	गोधूमपिष्ट विकृतिं क्षीरेणालोड्य ये क्रियन्ते ते 'क्षीर कृताःभक्ष्याः'।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

पञ्चदश अध्याय

देशानुसार कतिपय द्रव्यों का परिचय

यद्यपि पूर्व अध्याय में डल्हण की व्याख्या में वनस्पति परिचय एवं अन्य द्रव्यों के वर्णन के प्रसंग में उपन्यस्त भौगोलिक सामग्री का विस्तार से सचित्र परिचय दिया जा चुका है तथापि प्रस्तुत इस अध्याय में स्थालीपुलाकन्यायेन कतिपय उन ओषधियों का संकेत किया जा रहा है जो देश के पारम्परिक विभाग के किसी भी खण्ड में डल्हण के काल में उपलब्ध थीं।

इस अध्ययन से देश के तत्तत् खण्डों में एक ओषधि का विभिन्न नामों से व्यवहार होने का ज्ञान प्राप्त होता है। कुछ ऐसी भी वनस्पतियाँ हैं जो किसी माध्यम के द्वारा उस देश में लाई गयीं। उदाहरणार्थ शकुनाहृत शालि (सू० ४६/४) को डल्हण ने उत्तरकुरु के पास के हंसों के द्वारा लाया गया बतलाया है। इसी शालि को पुनः उसी स्थल पर (सू० ४६/४) अवन्ति नगरी (साम्प्रतीन इन्दौर नगर) में 'वक्र' नाम से प्रसिद्ध भी बताया गया है। पुनः इसी स्थल में शकुनाहृत शालि को द्वीपान्तर (सम्भवतः अन्य कोई विदेशीय देश) से महात्मा गरुड़ के द्वारा लाया बताया गया है और यह भी कहा गया है कि इस शालि का नाम 'गरुड शालि' भी है।[1]

डल्हण के समग्र व्याख्यान से भौगोलिक देश-विभाग को हमने उत्तरापथ; पूर्वदेश, दक्षिणापथ, पश्चिम देश, मध्य देश एवं द्वीपान्तर—इन शीर्षकों में विभक्त कर दिया है और प्रत्येक खण्ड में उपलब्ध द्रव्यों को ससन्दर्भ प्रस्तुत किया है। भौगोलिक जनपदों; नगरों एवं पर्वतों का विभावन हम पूर्व अध्याय में कर चुके हैं, अतः पुनः उनका परिचय देना पिष्ट-पेषण होगा।

इस प्रकार की सामग्री से यह सम्यक्तया स्पष्ट हो जाता है कि डल्हण को अपने संरक्षक नृपति सहनदेवपाल की कृपा से भारत की सभी खण्डों में वनस्पति-

१. काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के सेवानिवृत्त द्रव्यगुण विशेषज्ञ प्रोफेसर राम सुशील सिंह जी से इस विषय पर विचार-विमर्श करने का अवसर मिला तो उनका यह अभिमत है कि गरुड एक जाति थी जिनके द्वारा यह विशेष शालि भारतवर्ष में लाया गया। वे गरुड पद से पक्षी का ग्रहण नहीं करते।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

परिचय की जिज्ञासा से भ्रमण करने का संयोग अवश्य प्राप्त हुआ था। एक ओर वे उत्तर में हिमालय के केदार खण्ड तक जाते हैं तो पूर्व में वे कामरूप तक पहुँच जाते हैं। आज भी पारावतफल (सूत्र ४२/११; ४६/१३९) कामरूप में प्राप्य है जो मधुर एवं अम्ल रस से युक्त होता है और पकने पर सफेद एवं लाल रंग में उपलब्ध होता है। लेखक को गौहाटी में रहने एवं कुछ समय निवास करने की अवधि में यह फल प्राप्त हुआ था। इस प्रकार के अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं। दक्षिणापथ में डल्हण ने बहुत अधिक भ्रमण नहीं किया था तो भी पुन्नाग (सूत्र ३८/२४, २५) के परिचय में उसे सुरंगी नाम से प्रसिद्ध बताया है। पश्चिम देश में वे तुरुष्क (अफगानिस्तान) तक पहुँचे हुए प्रतीत होते हैं जहाँ वे अश्वबला का स्थानीय नाम 'हिस्फित्थ' देते हैं। मालवा, मरुदेश, वहाँ का अरावली पर्वत (पारियात्र), शाकम्भरी एवं भादानक जैसे पश्चिम देशस्थ स्थानों का बड़ी सजीवता से वे परिचय देते हैं। वे भादानक में प्रचुर मात्रा में पाये जाने वाले पीलुफल को उष्ट्र का प्रिय खाद्य बतलाते हैं। वे मध्यदेश के मधूलक गेहूँ का 'पीशीका' नाम बतलाते हैं।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि यदि वनस्पतिवेत्ता देश के प्रत्येक भू-भागों का सर्वेक्षण करता रहे और उसके पश्चात् उसका विवरण लिखे तो वनस्पतियों के वास्तविक वर्णन में संशय का कोई अवकाश नहीं रह जाता और आने वाले वनस्पति-स्वाध्यायी को प्रामाणिक सामग्री मिल जाती है।

उत्तरापथ

अजाजी — उ० ४२/९५, उ० ४७/३१	जीरक विशेष उत्तरापथे।
अष्ठीला — उ० ५८/७	अष्ठीला उत्तरापथे दीर्घवर्तुल पाषाणविशेष।
अक्षोड — सू० ४५/१२०;	उत्तरापथे प्रसिद्धः।
सू० ५९/३९	बदरमज्जा, अक्षोड उत्तरापथे।
कारवी — सू० ४६/२२९	कृष्णजीरक, उत्तरापथे प्रसिद्धः।
कुरण्टिका — सू० ४६/२७४	अन्ये कुनालिका कुरण्टिके उत्तरापथजे इत्याहुः।
जम्बीर — सू० ४६/२२१	हरितशाक उत्तरापथजे जम्बीरगन्धिकिञ्चिदम्लम्।
जातिकन्द (पा०) — सू० ३७/१७	गुग्गुलु उत्तरापथे प्रसिद्धः।
निकोचक — सू० ४६/१८७	औत्तरापथिक कोल्लकफल।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

पुष्करवर्ति — सू० ४६/१६३	आमोदं इत्युत्तरापथे।
बिम्बिलोट — उ० १२/११	बिम्बिलोटाख्यो हिमाद्रितो वृक्षः।
भव्य — उ० ४७/४१; सू० ४६/१३६	भव्यं तालफलप्रमाणं उत्तरापथजम् अन्ये कर्मरंगमाहुः। आरुकं कार्तिकेयपुरे प्रसिद्धम्; अन्ये तु कर्मरंगफलं भव्यमाहुः।
भिल्लोटक — चि० २४/१५ उ० १७/४०	पर्वते केदारभूमौ प्रसिद्धः। हिमवदासन्नभूमिजः ककुभानुकारी फलो वृक्षविशेषः।
मुञ्जात — चि० १७/१५	उत्तरापथजः स्वल्पकन्दः।
मुञ्जातक — सू० ३९/९	स्वनामख्यातः स्वल्पकन्द उत्तरापथे।
वाताम — सू० ४६/१८७	वातामादीन्युरुमाणान्तान्युत्तरापथेजातानि।
टंक — सू० ४६/१९२	टंकं काश्मीरे स्वनामप्रसिद्धं बहुप्रकारम्।
शरभ — सू० ४६/५४	अष्टापद उष्ट्रप्रमाणो महाशृंगः पृष्ठगत चतुष्पादः काश्मीरे प्रसिद्धः।
शकुनाहृत शालि — सू० ४६/४	शकुनाहृत उत्तरकुरोः सकाशाद्हंसैरानीतः।
स्पृक्का — सू० ३८/२४	कुटिलपुष्पा सुगन्धिद्रव्यमौत्तरापथिकम्।
वसुक — सू० ४६/४३३	वसुकोऽबुकः केदारगिरौ 'बगहुल' इति प्रसिद्धः।

पूर्वदेश

अश्वकर्ण — १० सन्दर्भ	पूर्वदेशे गन्धमुण्डः अश्वत्थ सदृशः वृक्षः।
अग्निमन्थ — सू० ३८/११	अग्निमन्थस्तेजोवृक्षः पूर्वदेश आगथ प्रसिद्धः।
असन — उ० ३८/८	पूर्वदेशे प्रसिद्धः बीजकनाम्ना।
आन्तर्गल — सू० ३८/१०; चि० ७/६	ककुभः सुगन्धिमूलः कवहा (कौहा) इति नाम्ना पूर्वदेशे प्रसिद्धः।
ऊषकः — सू० ३८/३८	क्षारमृत्तिका वाराणसीसमीपे बड़हरदेशे बाहुल्येन भवति।
कृकलास — सू० २९/३७	'कटिकाया' इति लोके, पूर्वदेशीयास्तु 'गिरगितम्' आचक्षते।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

उ० ४१/३०	कृकण्टकः गिरगिट इति पूर्वदेशीया भाषन्ते ।
चर्मवृक्ष — क० ५/४६	पूर्वदेशे नौवृक्षः ।
जिङ्गिनी — सू० ३८/१४	गुडमज्जनिका पूर्वदेशे स्वनामप्रसिद्धा ।
पारावत — सू० ४२/११	कामरूपे मधुराम्लरसफलम् ।
सू० ४६/१३९	फलं पाककाले धवल लोहितं मधुरमम्लं च ।
प्राचीनामलक — सू० ४६/१३९	प्राग्देशोद्भवं पानीयामलक ।
पारिभद्र — क० ३/९	फलभद्रो रक्तकुसुमः कण्टकीरोहिणीसदृशपत्रः पूर्वदेशे प्रसिद्धः ।
प्रियाल — सू० ४६/१३९	मधुराम्लफलः प्रायशो मगधेषु ।
पुन्नाग — क० २/४५	तुंगपूर्वदेशे प्रसिद्धः ।
मूर्वा — सू० २५/२१	चोरस्नायु यया पूर्वदेशगुणान् कुर्वन्ति धनुषाम् ।
उच्चटा — चि० २६/३४; ३८/८४, २६/३४,	शण घण्टाकारा स्वल्पविटपः प्रायशो हिमवति सरयूनदीतीरे दृश्यते ।
चि० ३८/८४	घुर्घुराख्यः शणघण्टाकारफलोऽल्पो विटपः सरयू कण्ठे हिमवतिरेन्द्रचां च प्रायशः उपलभ्यते ।
विश्वदेव — सू० ३८/४	विश्वदेवा गांगेरुकी प्रसिद्धा, गुडशर्करा गुलशर्करा इति पूर्वदेशे ।
शाक — सू० ३८/१२	पूर्वदेशे प्रसिद्धः ।
शार्ङ्गेष्टा — सू० ३८/६	भुरुदाका इति पूर्वदेशे ।
सू० ३८/५४	झझरुष इति पूर्वदेशे ।
शकुनाहृत — सू० ४६/५	मगध देशेषु पाशक इति ।
सर्पाक्षी — क० ६/२२	रक्तपुष्पः पूर्वदेशे प्रसिद्धाः ।

दक्षिणापथ

पुन्नाग — सू० ३८/४५	तुंगस्वनामख्यातः; अन्ये सुरपर्णिका सुगन्धिपुष्पा दक्षिणापथे सुरपनी (सुरंगी) इति प्रसिद्धः ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

सू० ३८/२४	सुरपर्णिका सुगन्धिपुष्पा दक्षिणापथे सुरपति सुरजीति नामा प्रतीतः ।
कनकगैरिक — क० ३/५१	स्वर्णगैरिकं दक्षिणापथे प्रसिद्धम् ।
काञ्चनाह्व — उ० ५०/१९	गैरिकं स्वर्णगैरिकं दाक्षिणात्ये प्रसिद्धम् ।
कूर्पः — उ० ४०/१४६	कूर्पो दक्षिणापथे पाषाणविशेषः शंखमुण्डाकृतिः रसायनवादेषु प्रयुज्यते ।
शेलु — उ० ४५/१६	दक्षिणापथजं शाकं, श्लेष्मान्तकमपरे ।
लताकस्तूरिका — सू० ४६/२०४	दक्षिणापथे विटपः शकुनापितुल्यः ।
हैमवती वचा — चि० ४/३९	हैमवता इति हैमवता उत्तरापथसंभूताः ते पुनः कस्तूरी शटी-कुष्ठ-मांसी-सरल-सुरदारु सुरादयः दक्षिणपथगा चन्दनजाती फलकंकोल लवंगादयः ।

पश्चिम देश

अश्वबला — सू० ४६/२५६	हिस्फित्थ इति लोक मेथिकाभेदः । तुरुष्कदेशे बहुपुत्रा ।
चि० १/११३	ब्रह्मदेवस्तु अश्वबला यवनभूमौ मेथिका कारबीज भवतीत्याह ।
खर्जूर — सू० ४६/१८२	खर्जूरं द्विविधं वृक्षविटप भेदेन, त्रिविधमित्यपरे त्रैविध्यं च वृक्षखर्जूर द्विविधमितिकृत्वा, तत्र पारसीकेषु देशेषु महत् प्रमाणं स्वादुभिन्नं पिण्डखर्जूरमित्यतो हेतोः ।
जीवन्ती — उ० ५१/२७	पटोलसमानपत्रः कन्दवन्ती पश्चिमदेशे प्रसिद्धा, लाटदेशे स्थूलवल्ली विलक्षणैव ।
टंक — सू० ४६/१९१	काश्मीरे स्वनाम प्रसिद्धः ।
सू० ४५/१२२	तुवरकं पश्चिमार्णवतीरजातमाहुः तदुक्तं पत्रैस्तु केशराकारैः कपित्थसदृशैः फलैः । वृक्षस्तुवरको नाम पश्चिमार्णव तीरजः ।
द्रवन्ती — सू० ११/१३	दन्तीभेदः संबरीति भादानके ।
पीलु — उ० ५५/४३	उष्ट्रप्रियो गुडफलो भादानके पीलुरिति प्रसिद्धः ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

लवण — सू० ३७/१४	कालालवणं तु निर्गन्धं सौवर्चलभेदः, सुराष्ट्रजा तुम्बरुमृत् तूरीति लोके ।
शुकनासा — चि० १/११५	शुकनासा चर्मकारवटः 'कुप्यक' इति कान्यकुब्जे; 'चर्मकारजम्बूपलासिका' इति मालवीयाः ।
शकुनाहृत शालिः — सू० ४६/४	अवन्त्यां नगर्यां स एव वक्रनाम्ना प्रसिद्धः ।
कच्चकः — चि० ७/६	मध्यलेखानिचितः ऋजुकपत्र ईषद् रक्तमूलः 'कन्नहक' इति 'मालवके' प्रसिद्धः ।
फणिज्झकः — उ० ५६/१७	फणिज्जकाकारः प्रायशः परियात्रे भवति ।
क्षवकः — सू० ३८/१३	क्षवथुकारः फणिज्जकाकारः 'चिह्लरियाक' इति पारियात्रे प्रसिद्धः ।
स्फूर्जकः — चि० ५/१८	फणिज्जकाकारः प्रायशः पारियात्रे भवति ।
वरकः — सू० ४६/२१	वरटिका शाकम्भरीभूमौ प्रायशः ।
सौवीर — सू० ४६/१३६	सौवीरं महत्तममामपक्वावस्थासु मधुरं मरुदेशजम् ।

मध्यदेश

मधूलक — सू० ४५/१७६	मधूलकः स्वल्पगोधूमो मध्यदेशे 'पीशीका' इति ख्याता ।
महिषशूक — सू० ४६/४	मध्यदेशे तिलवासी इति प्रसिद्धः ।
रुरु (मृग) — सू० ४६/६४	परिचय प्रसंग में इसे चेदिदेश का बताया गया है ।
कपोतवङ्का — चि० ७/६	कटभी सदृशपत्रो विटपी मध्यदेशे प्रसिद्धः ।

द्वीपान्तर

शकुनाहृत शालिः — सू० ४६/४	द्वीपान्तराद् समानीतो गरुडेन महात्मना । शकुनाहृतः स शालि स्याद् गरुडापरनामकः ।
कलम — सू० ४६/४	कलमो अन्तर्वेद्यां 'कलवी' इति लोके ।
वरक — सू० ४६/२१	वरटिका शाकम्भरी भूमौ प्रायशः ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

षोडश अध्याय

उपसंहार

मध्यकालीन आयुर्वेदीय संहिताओं के टीकाकारों में डल्लण का एक महत्वपूर्ण स्थान है। सुश्रुत-संहिता पर यद्यपि अनेक प्राचीन टीकायें लिखी गई थीं किन्तु वे सभी प्रायशः नष्ट हो गई हैं। यदि उनमें से एकाध उपलब्ध भी हैं तो वह अपूर्ण हैं। डल्लण ही एक ऐसे मूर्धन्य टीकाकार हैं जिनकी टीका पूरी सुश्रुत-संहिता पर आज भी उपलब्ध है। टीकाकारों का यह वैशिष्ट्य रहा है कि वे अपने से पूर्ववर्ती टीकाकारों के उद्धरणों को जहाँ एक ओर प्रस्तुत करते हैं तो दूसरी ओर समकालीन सम्बद्ध सामग्री का भी संकेत करते हैं और अपने पाण्डित्यपूर्ण तथा क्रिया कुशलता के कारण ग्रन्थ के मर्म-भेदन में परम सहायक हो जाते हैं। टीकाकारों की टीकाओं के अध्ययन से आयुर्वेद के सभी अंगों की समृद्धि का ज्ञान हो जाता है। टीकाकारों के अध्ययन का श्रीगणेश काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के मौलिक सिद्धान्त विभाग से हुआ है जहाँ एम० डी० उपाधि निमित्त चक्रपाणि, डल्लण एवं आढमल्ल जैसे टीकाकारों पर मौलिक सिद्धान्त के दृष्टिकोण से गम्भीर अध्ययन कराया गया है। मेरे सतीर्थ्य डॉ० जयराम यादव ने १९७६ ई० में "आयुर्वेदीय मौलिक सिद्धान्त के क्षेत्र में डल्लण का योगदान तथा चक्रपाणि की भानुमती टीका से उसका तुलनात्मक अध्ययन" विषय पर एम० डी० उपाधि निमित्त अपना शोध-प्रबन्ध काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में प्रस्तुत किया था। उनका यह अध्ययन मौलिक सिद्धान्तपरक था। उन्होंने अपने उक्त शोध-प्रबन्ध की प्रस्तावना में यह विचार व्यक्त किया था कि "द्रव्यगुण के क्षेत्र में डल्लण का सर्वाधिक योगदान है और उस पर एक स्वतन्त्र शोध-कार्य अपेक्षित है।" अतएव उसकी पूर्ति का अनुभव कर "द्रव्यगुण शास्त्र के क्षेत्र में डल्लण का योगदान" शीर्षक यह विद्यावारिधि (पी-एच० डी०) उपाधि निमित्त ग्रन्थ लिखा गया।

प्रथम अध्याय में डल्लण का विशद परिचय दिया गया है। इस परिचय में उनके वंश, वर्ण और स्थान का संकेत निर्दिष्ट है। भादानक या भादालक जनपद के विभावन में अद्यावधि जितने भी पूर्ववर्ती मत-मतान्तर थे उन सबका निराकरण कर उनका ऐक्य प्राचीन भरतपुर राज्य; जिसके अन्तर्गत बयाना और मथुरा के वर्तमान जिले सम्मिलित थे, के साथ किया गया है। यही

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

स्थिति उनके निवास स्थान अंकोला के साथ भी रही है और इसका विनिश्चय भारतीय डाकघर की निर्देशिका के आधार पर डल्हण के संकेतानुसार आगरा जिले के अकोला के साथ किया गया है। इसकी पुष्टि के लिए अनेक प्रमाणों को प्रस्तुत किया गया है। बयाना के यदुवंशी राजाओं की वंशावली उपलब्ध हो जाने से डल्हण के काल-निर्धारण में मूल्यवान् एवं मौलिक सहायता मिली है। अतः डल्हण की उपर्युक्त टीका ही उसकी एकमात्र कृति है अतएव उसके व्यक्तित्व के मूल्यांकन के लिए वैदिक, दार्शनिक, वैयाकरणिक, ज्योतिषिक, धार्मिक, शल्यकर्मपरक, कायचिकित्सापरक, पर्यटनशीलता और भौगोलिक इन मानदण्डों का सृजन करना पड़ रहा है और इसी के अन्तर्गत इनके व्यक्तित्व को निखारकर इनका काल बारहवीं शताब्दी का अन्त एवं तेरहवीं शताब्दी का प्रथम दशक स्थिर कर दिया गया है। इसके लिए डल्हण द्वारा उद्धृत सामग्री एवं ग्रन्थ आधारभूत रहे हैं। इसके अतिरिक्त डल्हण जिनके द्वारा उद्धृत हैं वे भी उसकी पूर्व सीमा निर्धारण में परम सहायक प्रतीत हुए हैं।

द्वितीय अध्याय डल्हण द्वारा उद्धृत ग्रन्थ उनके प्रणेताओं एवं टीकाकारों का विशद परिचय देता है। यह अध्याय दो प्रखण्डों में विभक्त है—एक में आयुर्वेदीय आचार्यों का उल्लेख है; जिनका डल्हण की टीका में स्थानानुसार निर्देश हुआ है। उन सभी स्थलों का गणनानुसार यथावत् संकेत कर दिया गया है। अकारादि क्रम से प्रस्तुत इन आयुर्वेदीय आचार्यों के अन्तर्गत अमितप्रभ, आलम्बायन, उशनस्, औपधेनव, करवीर, कार्तिककुण्ड, काश्यप, कृष्णात्रेय, कांकायन, गयदास, गार्ग्य, गालव, गोपुररक्षित, चक्रपाणिदत्त, जेज्जट, दृढ़बल, नन्दि, नागार्जुन, निमि, भट्टार हरिचन्द्र, भद्रशौनक, भालुकि, भेड़, भोज, माधव, वशिष्ठ, वाग्भट, वाराह, विदेह, वैतरण, सात्यकि, सुकीर, सुधीर, सुबीर, हारीत एवं क्षारपणि के नाम उल्लेखनीय हैं; जिनका स्थल निर्देश पुरस्सर परिचय दिया गया है। आयुर्वेदेतर ग्रन्थ और आचार्य नाम के द्वितीय प्रखण्ड में अमरकोष, मेदिनीकोष, शक्तिसंगमतन्त्र, रति-रहस्य, वात्स्यायन कामसूत्र, पतञ्जलि और श्रीपति का स्थल निर्देश पूर्वक परिचय प्रस्तुत किया गया है।

तृतीय अध्याय में डल्हण को जिन व्याख्याकारों ने उद्धृत किया है उनके स्थलों को संकेतित किया गया है। इनमें से वृन्द के सिद्धयोग पर श्रीकण्ठ द्वारा विरचित एवं मामल्ल सुत नारायण द्वारा उपबृंहित व्याख्या कुसुमावली टीका में डल्हण के ७८ उद्धरण स्थल निर्देशपुरस्सर दिये गये हैं। इसके अतिरिक्त चक्रदत्त पर शिवदास सेन की तत्त्व-चन्द्रिका व्याख्या में उद्धृत डल्हण के ६ मतों

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

को सस्थल बतलाया गया है पर इन सबसे महत्वपूर्ण अष्टांगहृदय (सू० ७/४०) पर हेमाद्रि की रसायन टीका है जो कि मात्र एक बार डल्हण का नाम लेती है।

चतुर्थ अध्याय अन्ये, अपरे, इतरे, एके, क्वचित्, कश्चित्, केचित्, केषाञ्चित और लोके इस प्रकार ९ शीर्षकों के अन्तर्गत २९९६ मतों को स्थल निर्देश पुरस्सर प्रस्तुत करते हुए उनकी उपयोगिता पर प्रकाश भी डालता है।

पञ्चम अध्याय में भौगोलिक सामग्री निहित है। डल्हण ने वनस्पति-परिचय के प्रसंग में भौगोलिक सामग्री का सन्निवेश किया है। डल्हण को भारत का पारम्परिक विभाग पूर्णतया ज्ञात था, यही कारण है कि वे पूर्वदेश या पूर्वापथ, पश्चिम देश, उत्तरापथ, दक्षिणापथ एवं मध्य देश का बारम्बार उल्लेख करते हैं। पूर्वदेश के अन्तर्गत आने वाले देशों में गौड़देश, पौण्ड्र, बड़-तर, मगध एवं वाराणसी का परिचय दिया गया है। पश्चिम देश की परिधि में अवन्ति, इन्द्रप्रस्थ, उत्तरकुरु, कर्णाट, काम्बोज, तुरुष्क, पल्लव, पांचाल, मरु, मालवा, लाट, बाह्लीक, शाकम्भरी आदि सम्मिलित हैं। उत्तरापथ में काश्मीर एवं कार्तिकपुर का निर्देश हुआ है। विदेशों के अन्तर्गत चीन एवं नेपाल का डल्हण द्वारा स्पष्टतः उल्लेख है। दक्षिणापथ के अन्तर्गत पाण्ड्य का उल्लेख है। मध्यदेश के अन्तर्गत अन्तर्वेदी का निर्देश है। डल्हण ने सिन्धु एवं सोन नदी का महानद माना है। वह चम्बल, ताप्ती, नर्मदा, सरयू एवं वरुणा से सम्यक् परिचित था। उसको दक्षिण, पश्चिम एवं पूर्वसमुद्र भी पूर्ण-तया ज्ञात थे। उसने क्षीर समुद्र नाम से कैस्पियन सागर का भी निर्देश किया है। पर्वतों के अन्तर्गत केदारगिरि, पारियान, मलय, सह्य, हिमालय एवं विन्ध्य का भी चित्रण हुआ है।

इसके अनन्तर द्वितीय खण्डान्तर्गत **षष्ठ अध्याय** में स्रोतोभूत सामग्री का मूलपाठ प्रस्तुत किया गया है। द्रव्यगुण शास्त्रपरक एवं डल्हण द्वारा व्याख्यात सामग्री सूत्रस्थान के १, ६, ११ से १६, १८ से २२, २५, २६, २७, २९, ३०, ३२, ३३, ३६ से ४६ अध्यायों; चिकित्सास्थान के १ से ३०, ३२, ३३, ३७, ३८, ४० अध्यायों; कल्पस्थान के १ से ८ अध्यायों एवं उत्तरतन्त्र के ६, ९ से १५, १७ से १८, २१, २३, २४, २६, २८ से ३६, ३८ से ६३ अध्यायों से यथास्थल संगृहीत है। इसी ६३वें (उत्तरतन्त्र) अध्याय में रस के ६३ भेदों की सोदाहरण विवेचना कर डल्हण ने अपना एक मौलिक स्थान बना लिया है।

सप्तम अध्याय में डल्हण ने द्रव्यगुण शास्त्र के सिद्धान्तपक्ष की विवेचना

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

की है जिसमें उन्होंने द्रव्य, रस, गुण, वीर्य, विपाक, प्रभाव एवं कर्म की विशद व्याख्या की है। उन्होंने द्रव्य को औषध मानकर उसका अनेकविध वर्गीकरण किया है। मधुरादि षड् रसों के वनस्पतिपरक उदाहरण देकर रसों की दोष-कार्मुकता पर प्रकाश डाला है। गुरु आदि बीस गुणों की विवेचना एवं उनका लक्षण कर उनका उदाहरण दिया है और इसी प्रकार व्यवायी, विकासी एवं आशुकारी को भी इसमें सम्मिलित कर लिया है। योगवाही, युक्ति, संयोग, विभाग, पृथक्त्व एवं परिणाम जैसे गुणों का भी पूर्वोक्त शैली पर प्रतिपादन किया है। वीर्य को शक्ति एवं अचिन्त्य मानकर द्विविध अष्टविधवादी सम्प्रदायों की उन्होंने मीमांसा भी की है। विपाक की परिभाषा कर गुरु एवं लघु भेद से दो प्रकार के विपाकों का निरूपण किया है। उन्होंने प्रभाव को अमीमांस्य माना है। अग्निसादन, अपतर्पण, संशोधन जैसे लगभग ५० कर्मों की दोषानुगत व्याख्या की है।

अष्टम अध्याय में उन वनस्पतियों का उल्लेख स्थलनिर्देशपुरस्सर किया गया है जो डल्लण द्वारा विभिन्न अर्थों के रूप में व्याख्यात हैं। इनकी एक विशद तालिका संलग्न है।

नवम अध्याय में उन वनस्पतियों को प्रस्तुत किया गया है जिनका डल्लण ने लोक प्रचलित नाम दिया है।

दशम अध्याय में डल्लण द्वारा कतिपय वनस्पतियों के आकृतिपरक परिचय को विस्तार से प्रस्तुत किया गया है।

एकादश अध्याय में डल्लण द्वारा समस्त सन्दिग्ध वनस्पतियों की विवेचना की गई है और इस प्रसंग में अर्वाचीन द्रव्यगुण के आचार्यों के साथ आनुमत्य एवं वैमत्य को भी यथास्थल संकेतित किया गया है।

द्वादश अध्याय में जांगम द्रव्यों एवं उन पशु-पक्षियों का परिचय है जो औषध रूप में संहिता में निर्दिष्ट हैं और डल्लण ने बड़ी सावधानी से उनका स्वरूप चित्रण किया है।

त्रयोदश अध्याय में पार्थिव द्रव्यों की डल्लण मुख से विवेचना की गई है और इसके अन्तर्गत सुवर्ण, रजत, लौह आदि धातु, मनःशिला, टंकण, क्षार, शिलाजतु, मृत्तिका, अंजन आदि का विवेचन निहित है।

चतुर्दश अध्याय में डल्लण ने अपने काल में प्रचलित अनेक मिष्ठान्नों एवं पकवानों का सजीव चित्रण निर्माण प्रक्रिया सहित किया है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

पञ्चदश अध्याय में देशानुसार द्रव्यों का परिचय अंकित किया गया है। इनमें वे पशु एवं वनस्पतियाँ भी निर्दिष्ट हैं जिनकी तत्तत् देशों में विविध नामों से प्रसिद्धि है।

षोडश अध्याय उपसंहारात्मक है और उपर्युक्त सामग्री के आधार पर कहा जा सकता है कि डल्हण का व्यक्तित्व मध्यकालीन आयुर्वेदीय टीकाकारों के मध्य पूर्णतया स्वर्णाक्षरों में अंकित किया जा सकता है जिसने अपने वैदुष्य, चिकित्सा-चातुर्य, वनस्पति पाटव एवं देशाटन स्वभाव के आधार पर निबन्ध-संग्रह-व्याख्या में अपने से पूर्ववर्ती टीकाकारों के एतद्विषयक विचारों के माध्यम से आयुर्वेद के द्रव्यगुणशास्त्र के वाङ्मय को समृद्ध करने में श्लाघनीय कार्य किया है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

आयुर्वेदीय ग्रन्थ

ओझा, झारखण्डे — सन्दिग्ध द्रव्यों का वैज्ञानिक अध्ययन : ठाकुर प्रसाद ऐण्ड संस; वाराणसी; १९८३।

कर, माधव — माधवनिदान : निर्णयसागर प्रेस, बम्बई; १९२८।

चक्रपाणिदत्त — चरक-संहिता (आयुर्वेद-दीपिका व्याख्या) : निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९४१ (तृ० सं०)।

चक्रपाणिदत्त — सुश्रुत-संहिता (भानुमती टीका) : स्वामी लक्ष्मीराम ट्रस्ट; जयपुर, १९३९।

चुनेकर, कृष्णचन्द्र — भावप्रकाश निघण्टु : चौखम्बा संस्कृत सीरीज; वाराणसी; १९६९।

जेज्जट — चरक-संहिता (निरन्तरपद व्याख्या) : मोतीलाल बनारसीदास; लाहौर, १९४०।

डल्हण — सुश्रुत-संहिता (निबन्धसंग्रह व्याख्या) : चौखम्बा ओरियण्टालिया, वाराणसी; चतुर्थ संस्करण, १९८०।

द्विवेदी; विश्वनाथ — आयुर्वेद की ओषधियाँ व उनका वर्गीकरण : इंस्टीट्यूट फॉर पोस्ट ग्रैजुएट स्टडीज़ ऐण्ड रिसर्च; जामनगर, १९६६।

वाग्भट — अष्टांगहृदय (अरुणदत्तकृत सर्वांगसुन्दरा एवं हेमाद्रि कृत आयुर्वेद रसायन व्याख्या) : कृष्णदास अकादमी; चौखम्बा, वाराणसी; १९८२।

वैद्य, बापालाल — सम कण्ट्रोवर्सियल ड्रग्स इन इण्डियन मेडिसिन : चौखम्बा ओरियण्टालिया; वाराणसी, १९८२।

शर्मा, प्रियव्रत — द्रव्यगुण विज्ञान (पंचम भाग) : चौखम्बा ओरियण्टालिया, वाराणसी, १९७८।

शर्मा, प्रियव्रत — डल्हण एण्ड हिज कमेण्ट्स ऑन ड्रग्स : मुंशी राम मनोहर लाल; दिल्ली, १९८२।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

शर्मा, प्रियव्रत — आयुर्वेद का वैज्ञानिक इतिहास : चौखम्बा ओरियण्टालिया, वाराणसी, १९७५ ।

श्रीकण्ठदत्त — व्याख्या कुसुमावली (वृन्दमाधव पर) : आनन्दाश्रम, पूना, १९४३ ।

सिंह, बलवन्त — वनौषधि दर्शिका : आयुर्वेदिक कॉलेज यूनियन, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, १९४८ ।

सिंह, बलवन्त एवं चुनेकर, कृष्णचन्द्र — ग्लॉसरी ऑफ वेजीटेबुल ड्रग्स ऑफ बृहत्त्रयी : चौखम्बा संस्कृत सीरीज, १९७२ ।

सिंह, रामसुशील — वनौषधि निदर्शिका : आयुर्वेद एवं तिब्बती अकादमी, लखनऊ ।

सेन, गणनाथ — प्रत्यक्ष शारीरम् : कलकत्ता, १९४० ।

आयुर्वेदेतर ग्रन्थ

अमरकोष — रामाश्रमी व्याख्यासुधा : चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस, वाराणसी, १९७०, प्रथम संस्करण ।

अथर्ववेद — विश्वबंधु संपादक : विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान, होशियारपुर, १९६०, प्रथम संस्करण ।

कविराज, गोपीनाथ — तान्त्रिक साहित्य : हिन्दी समिति प्रकाशन, प्रथम संस्करण ।

कीथ, ए० बी० — संस्कृत साहित्य का इतिहास : मोतीलाल बनारसीदास, १९६० ।

गोडे, पी० के० — स्टडीज इन इण्डियन लिटरेरी हिस्ट्री : विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान, होशियारपुर ।

जग्गी, ओ० पी० — हिस्ट्री ऑफ साइंस ऐण्ड टेक्नोलोजी इन इण्डिया : आत्माराम ऐण्ड सन्स, दिल्ली, १९७३ ।

जॉली, ज्यूलियस — इण्डियन मेडिसिन, अनु० सी० जे० कासिकर : पूना, १९५१ ।

जिज्ञासु ब्रह्मदत्त — पाणिनीय अष्टाध्यायी : प्यारेलाल कपूर, गुरुबाग, अमृतसर, पंजाब, १९६४, प्रथम संस्करण ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

झारखण्डी, श्री विश्वनाथ — भारतीय ज्योतिष : प्रकाशन ब्यूरो, सूचना विभाग, १९५७, प्रथम संस्करण ।

दे, नन्दूलाल — द ज्योग्राफिकल डिक्शनरी ऑफ ऐन्शियण्ट ऐण्ड मेडिवल इण्डिया : १९२७, द्वितीय संस्करण ।

दासगुप्ता — हिस्ट्री ऑफ इण्डियन फिलॉसोफी : दि सेण्डिक्स ऑफ कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, लन्दन, १९६३ ।

मजूमदार, आर० सी० — द स्ट्रगल फॉर एम्पायर : भारतीय विद्या भवन, १९५७, प्रथम संस्करण ।

मुखोपाध्याय, गिरीन्द्रनाथ — हिस्ट्री ऑफ इण्डियन मेडिसिन : मुंशी राम-मनोहरलाल, नई दिल्ली, १९२३ ।

रुद्रट — काव्यालंकार :

विण्टरनिट्ज, एम० — हिस्ट्री ऑफ इण्डियन लिटरेचर : मोतीलाल बनारसी-दास, १९६७, प्रथम संस्करण ।

शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र — हिन्दी साहित्य का इतिहास : नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, सं० २०२९ ।

श्रीकण्ठमूर्ति, के० आर० — ल्युमिनरीज ऑफ इण्डियन मेडिसिन : मैसूर, १९६८, प्रथम संस्करण ।

सरकार, डी० सी० — ज्योग्राफी ऑफ ऐन्शिएण्ट ऐण्ड मेडिवल इण्डिया : मोतीलाल बनारसीदास, १९६० ।

आचार्य विश्वनाथ कविराज — साहित्य दर्पण : श्री हेमचन्द्र व्याकरणतीर्थ भट्टाचार्येण प्रकाशितम्, ४१ संख्यक सिद्धान्तविद्यालयात् ।

म्यूलेनवेल्ड, जी० जे० — द माधव निदान ऐण्ड इट्स चीफ कमेण्ट्रीज : ई० जी० ब्रिल, लीडेन, १९७४ ।

होशंग, पं० जगन्नाथ शास्त्री — नानार्थ शब्दकोश या मेदिनीकोष : चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, १९६८, तृतीय संस्करण ।

पत्र-पत्रिकाएँ

इण्डियन हिस्टॉरिकल क्वार्टरली ।

इण्डोलॉजिकल स्टडीज, जर्नल ऑफ दि डिपार्टमेण्ट ऑफ संस्कृत यूनि-वर्सिटी, देहली ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

जर्नल ऑफ रायल एशियाटिक सोसायटी; १६०६ ।

जीत श्रिफ्ट डेट्वायशेन मार्गेनलाण्डिशेन गेशेलशाफ्त ।

पोस्ट ऑफिस गाइड; भाग ३, अप्रैल, १६६६ ।

आर० मित्रा; बीकानेर कैटलॉग एन० आर० ।

कैटलॉग ऑफ संस्कृत मैन्युस्क्रिप्ट्स; भण्डारकर ओरिएण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पूना ।

कैटलॉग ऑफ संस्कृत मैन्युस्क्रिप्ट्स; मद्रास ।

न्यू कैटलॉगस कैटलॉगरम ।

धन्वन्तरि (वनौषधि विशेषांक) अलीगढ़ ।

●

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

शब्दानुक्रमणिका

(अ) प्रथम खण्ड

अ

अग्निमंथ ७४, ७५
अजातशत्रु ७७
अजःकर्ण ७५
अथर्ववेद ८, ७७; ८३
अध्वर्यु १०
अध्याय प्रभाषणीय १०
अध्याय शिष्योपनयन ६
अन्ध-पूतना १३
अन्तर्वेदी ८३
अन्नमलई हिल ८७
अनार्ष १६
अफगानिस्तान २, ७८, ८०; ८७
अभिहुति सहस्रसम्पात ६
अभिलेख ४
अमरकोषकार ७४
अमरकण्टक ८४, ८५
अम्बष्ठादिगण ७७
अयोध्या ८५
अरब सागर ८४, ८५
अरावली या आबू ८५
अरावल्ली ८४
अरावली पर्वत ८६
अलवर राज्य ३
अल्पपिलय ७६
अल्मोड़ा ८१
अवचारणा १६
अवघेया ८३
अवन्ति ८०
अशन ७५
अश्मरी १३
अश्विनी कुमार १, ८
अश्वत्थ ७४
अश्वकर्ण ७४
अश्मरी चिकित्सा ८०
अश्मघ ८२
अर्श १३
अस्सी नदी ७७
अहोरात्र १२
अहिच्छत्रा ७६
अकोला १, २, ५; ७२
अंगदेश ७४, ७६

आ

आगरा ७२
— जिला ५
आचूषण १६
आज्याहुति ८
आर्तगल ७४
आयुर्वेद ८; १२, ७१
आयुर्वेदीय संहिता ७३
आरग्वधादिगण ७४
आवृत्ति ७७
आसाम ७६
आत्रेय ८

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

इ

इटावा ८४
इतिहास ७२
इन्द्र ५; ८
इन्द्रप्रस्थ ७७, ७८
इलाहाबाद ८३

ई

ईरान ८५
ईश्वर कृष्ण ११

उ

उज्जियनी ७७
उदयपुर ४
उदर १३
उदावर्त ३
उत्तर प्रदेश ७२; ७८; ७९
उत्तर पाञ्चाल ७९
उत्तरापथ ७३, ८०
उत्तरकुरु ७८
उत्तरस्थान ६५
उत्तरी अफगानिस्तान ८०
उन्नयन १६
उपनयन ८
— संस्कार ८
उष्ट्र प्रिय ३

ए

एकीयमतानुसार १६
एषण १५, १६

क

कर्णव्यध अध्याय ८२
कर्णाट देश ८०
कर्णाटक प्रदेश ७८
कन्नौज ७८
कन्याकुमारी ८७
कनारा ७८
कर्पाट ७८
कम्बात की खाड़ी ८४
कामरूप ७५, ७६
कपिला (कम्पिल्लक) ७९
करण १२; १३
करीकोरम ८७
कल्पस्थान ६५, ६७, ७०
कश्मीर ७२; ७३, ८०, ८१; ८५
कश्मीरी २
कलिंग ७४
कल्हण २; ७२
कार्तिकपुर ८१
कान्यकुब्ज ७८
काबुल ८०
काबेरी ८७
— नदी ८६
काम्बोज ७८
काम्याइष्टिनिर्वपन ६
काल ११; १३
काशिका ७४
काशी ७४; ८३
— जनपद ७७
कुन्ती ८३
कुबेरपाल ४
कुमायूं ८५
— मण्डल ८१
कुरु ७८, ८३
कुरुक्षेत्र ८३
केदार नाथ ८५, ८७
केदारगिरि पर्वत ८५

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

कैलाश पर्वत ८७
कैस्पियन सागर ८५
कोणीय ५
कोयम्बटूर ८७
कोशल ७४
कोशी नदी ७६
कृकलास ७५
कृत्या ६
कृष्ण नदी ८७

ख

खम्भात की खाड़ी ८६
खान देश ७६, ८०
खेड़ा ८०

ग

गढ़वाल ७८
गणेश १३
गया (जिला) ७७
गर्गी आचार्य ६
गरुड पुराण ८३
गलगण्ड ७४
गुजरात प्रान्त ७६
गुर्जर ७६
— राष्ट्र ७८
गुणेश १६
गुरु ५
गोननगिरि ८४
गोण्डवाना खण्ड ८५
गोदावरी ८७
गोविन्द १
गौड देश ७६
गंगा ७७, ८३, ८५
गंगा नदी ७६, ७६
गंगोत्री ८३

घ

घाघरा ८५

च

चक्रपाणि १६, ७२
चन्द्रिकाकार ५
चम्बल ८३, ८५
— नदी ७६, ८४, ८६
चमोली गण्डक ८०
चर्मण्वती ८४
चालन १५
चिकित्सा ५
— चातुरी ६
— चतुष्पाद १०
— स्थान ६७, ७६
चिनराजवंश ८२
चिलाल ७८
चीन ७६, ८१, ८२
— पट्ट ८२
चूर्ण विडगतुण्डल ६
चूर्ण बिल्व ६
चैत्ररथवन ७८

छ

छात्र मधु ८०
छेदन १७

ज

जनपद ३
जनपावा ८४
जयपाल १
जयादित्यवामन ७४
जेज्जट ६

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

जेजीभुक्ति ८३
जेन्दावेस्ता ७६
जेतपाल ४
ज्योतिष ५
— रत्नमाला १२

ट

टर्की ७६
टीकाकार ७२
टेम्परिंग १६

ड

डल्हण १; २-३; ५, ७; ८, ९, ११-१३, १४, १५, १६ (११ बार), ७०; ७१, ७३; ७४, ७६, ७७, ७८; ८०, ८२; ८३, ८४; ८६; ८७
— परिचय १
— के गुरु ६
डॉ० स्टोन ७८
डॉ० फ्यूरट ८१

त

तमिलनाडु ८३
तरुष्क देश ७६
तहनगढ़ ४
तापी नदी ८०, ८४
ताप्ती नदी ८४, ८७
तारातम्य ७८
तिथि १२; १३
तिरहुत कमिश्नरी ७६
तिरुनेलवेल्सी ८३
ताहन पाल ४
तीरभुक्ति ७६
तुर्कमैंन ८५
तुंगभद्रा ८७
तैल १६

द

दारुण १६
दार्वी हैमिकविधि ६; ८
दिल्ली ७६
दिवोदास धन्वन्तरि ७७
देव ८
— शक्ति ७६
— गिरि ७
देवी पुराण ८१
द्वार समुद्र ७८
देशानुपातिनी प्रकृति ७८, ८०
दर्शन ८; १२
देहरादून ७८; ८७
दक्षिण समुद्र ८५
दक्षिणापथ ७३, ८२
दक्षिणी घाट ८६
दक्षिणी गुजरात ८०

ध

धनुर्वेद ८
धन्वन्तरि ८
धर्मपाल ४

न

नन्दादेवी ८७
नदियाँ २७
नर्मदा ८४, ८६; ८७
—नदी ८२
न्याय १०, ११
नक्षत्र अगस्त्य १२
नक्षत्र आश्विन १२
नक्षत्र १२; १३

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

नक्षत्र पुष्प ६
नागार्जुन ७
निघण्टु शोढल ६
निदानस्थान ६५, ६६; ६६
निबन्ध-संग्रह ७७
— व्याख्या ७२, ७४; ८१, ८३; ८५
— टीका ८७
नेपाल ८१, ८२

प

पटना ७७
पटच्चर ८३
परतन्त्र १०
परतोया ७६
पल्लव ७६
पहलवी भाषा ७६
पर्वत ७२
पश्चिम खण्ड ७४
पश्चिम देश ७३, ७७
पश्चिमोदधि ८५
पश्चिम समुद्र ८५
प्रक्रिया अर्थतान्त्रिकी ६
प्रजापति ८
प्रधमन १६
प्रमार्जन १६
प्रमाण प्रत्यक्ष ११
पाकिस्तान ७८; ८५
पाञ्चाल ७४, ७६; ८३
पार्जिटर ७६
पार्थिया ७६
पाटन १६
पाटव पौरोहित्य ६
पाटलिपुत्र ७७
पाणिनि ७४
— की अष्टाध्यायी ७४
पायना १६
— विधि १६
पारियात्र ८६
पाश्चिमार्णव ८५
पाशुपट १३
प्राच्य देश ७४
प्राचीन दिल्ली ७८
पिंगला ८०
पीलु ३
पुंसवन संस्कार ६
पुन्नाग ७५, ८२
पुण्ड्र ७६
पुंसवन प्रसंग ६
पुत्रकाम्येष्टि विधान ६
पुराणेतिहास ८
पूर्वसमुद्र ८५
पूर्वदेश या पूर्वापथ ७३, ७४, ७५
पूर्वी बंगाल ७६
पैठान ८२
पोतन ८२
पौण्ड्र ७६
पौण्ड्रक ७६
पौण्ड्रय ८२
पौरोहित्य ५
पंजाब ८०

फ

फरूंखाबाद ७६
फलवर्ग ७५
फारस ७६
फिरोजशाहकोटला ७६

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

फिलियोजा २

ब

बड़ागाँव ७६
बड़ौदा ८०
बड़तर ७६
बदरी केदार ७८
बद्रीनाथ ८७
बयाना ३, ४
बरेली ७६, ८३
बलिया ८५
बेलबा ८६
बाजीकरण ८५
बामनाथ ७८
बासमती ७६
बिन्ध्याचल ८५
बिहार ८५
— प्रदेश ७६
— प्रान्त ७७
बीरभूमि ७६
बैजनाथ ८१
बोपदेव ७
बौद्ध ग्रन्थ ७४
बौद्ध धर्म १३
बुन्देलखण्ड ८३
ब्रह्मपुत्र ७६
— नदी ७६, ८७
ब्रह्मपुराण ७७
ब्रह्मा ८, १०
ब्राह्मण ८
— वैदिक ८
— शाकद्वीपीय ५, ११
— सौरवंशज ५
बंगलादेश ७६
बंग (देश) ७४, ७६
बंगाल ७६
— की खाड़ी ८३, ८५
बांभीपुर ८५

भ

भगन्दर १३
भड़ौच ८०
भण्डारकर ८६
भदान ३
भदावरा ३
भरतपुर ३, ४
— राज्य ५
भरतिया ३
भरत पाल १
भञ्जन १६
भालुकि तन्त्र १६
भादानक ४, ५, ७
— देश २, ३
भादालक ३, ५
— देश १
भानट पर्वत ८६
भानुमति ६, १६
भारद्वाज ८
भारत ७३, ८२, ८७
— खण्ड ७४
भास्कर ७
— राजवैद्य ६
भिण्ड जिला ५
भिमनी ३
भिक्षु १३
भीमा नदी ८७

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

भूगोल ८, ७२
भूटान ७६
भेदन १६
भोज १६
भोजतन्त्र १६

म

मनुस्मृति ८३
मल्ल ८३
महाभारत ८४
महाराष्ट्र ८२

य

यजुष् ८
युजुर्वेदविद् १०
यदुवंशी राजा ४; ५
यन्त्र १४
— शलाका १५
— स्वस्तिक १४
— प्रणिधान १४
यमुना ८४
— नदी ७८; ८४
यवन देश ७९
यादव वंश ६
योग १०

र

रन्तिदेव ८४
रसायन अध्याय ६
रसायन सर्वौषधातशमनीय १
राजस्थान ३, ८०, ८४, ८५, ८६
राजपाल ४
राजतरङ्गिणी ७८
री नाऊ ऐट फिलियोजा ७२
रेवाड़ी तहसील ३
रैप्सन ७९
रोपण १६
रोमक नमक ८०
रोहित मत्स्य ७६
रुहेलखण्ड ७९
रूस ८५

ल

लाख्या नदी ७६
लाट देश ७८, ८०
लोहरो १६

व

वग्गूघोसा ८१
वनास नदी ८५
वरुणा ७७
वर्णसा ८५
वलख जिला ८०
व्याकरण ७, ११, १२
व्याखया-निबन्ध-संग्रह १, ७
व्यास नदी ८०
व्युत्पत्ति १६
व्यूहन १५
वाराणसी ७६, ७७
वारिन्द्र ८५
वाह्णीक ७९
वाह्लीक ८०
विजयपाल ४
विजया नगर ७८
विदेह ७४; ७६
विदूर-पर्वत या वैदूर्य ८६
विन्ध्य ८२; ८३, ८७
— पर्वत ८२; ८४
विह्लण २

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

विश्वदेह ७४
वेद ८
वेष्ट माकोट ७६
वैक्ट्रिया ८०
वैद्य १२
वैशाली ७७
वैशेषिक १०; ११
व्रण १४
वृक्ष (क्षीरि) ८

श

शक्ति संगमतन्त्र ६, ७७, ८२
शर्मा, प्रियव्रत ३
शरभ ८१
शल्य १६
— कर्म १६
— स्रोतोगत १४
श्लीपद ७४
शस्त्र १४; १६
शाक ७५
शाकम्भरी देश ८०
शार्गेस्ता ७४
शार्ङ्गदेव ७
शारीर-स्थान ११; ६५, ६६; ६९
शिरादि १६
शिरावेधन १६
शिवालिक पर्वत ८७
शिष्योपनयन ८
शुद्ध व्रण १६
शैव १३

स

सतलज नदी ८०
सतजल नदी ८३
सरस्वती ५; १३
सरयू ८५
— नदी ७४; ८३
सहस्रार ५
सहनपालदेव १, २, ३, ५
सह्याद्रि पर्वत ८७
सह्यपर्वत ८२
स्मृति ८
स्वस्तिक यन्त्र ७८
सांख्य १०
सांख्यकारिका ११
साम ८
साम्भर झील ८०
साहूल राजा ७
साहित्य ७
सिन्धु ८५
— नदी ८७
सिंह यन्त्र ७
सीदड ७८
सुगन्धक ७६
सुरसादिगण ८३
सुश्रुत १, ३; ८, ६; १२, १४-७०,
७२, ७५; ७८, ८२, ८३; ८७
— संहिता प्राचीन टीकाकार १
सुश्रुतोक्त १६
सूर्य ५
— मन्दिर ५
सूरत ८०, ८४
सूरसेन ८३
सूत्रस्थान ६५; ६९
सोन ८७
— नदी ७७, ८३

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

सोम १३
स्रोतो-अंजन ८५
सौवीर ७९
संचय ७९
संथाल परगना ७९
संगीत रत्नाकर ७

ह

हजारी बाग ७६
हरिद्वार ७९
हरिपाल ४
हार्नले २
हिन्द महासागर ८५
हिन्दुकुश ८७
हिमाञ्चल प्रदेश ८०
हिमालय ७९; ८३; ८५
— पर्वत ८७
हुमायूँ मकबरा ७८
हूणदेश ७८
हेमकूट पर्वत ७६
होता १०

क्ष

क्षणन १६
क्षार १६
क्षारतैल पायना १६
क्षार-पाक विधि १६
क्षीर समुद्र ८५

त्र

त्रिदोष १२
त्रिशूल ८७

ज्ञ

ज्ञान
— ज्योतिष-विषयक ११
— दार्शनिक १०
— धार्मिक १३
— वैयाकरण ११

श्र

श्री पथ ४
— पति १२
— रंगम् ८७
— शैल ८२
— सूक्त ९

ऋ

ऋक् ८
ऋग्वेद ९
ऋजूकरण १६
ऋषि ८

(ब) द्वितीय खण्ड

अकलिक २०६
अक्ष २०८
अक्षत २०८
अक्षीव २४२
अक्षोड २०४, २१३, २४२, ३०९
अक्षपीठ २०८
अङ्कोट २०६
अङ्कोठ २१६; २३५, २४१
अङ्कोल २०६
— पुष्प २६५
अङ्कलोड्य २०६
अंशुमती २०७

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

अग्नि २०६
अग्निक २५५
अग्निमन्थ २०५; २०६; २३५; २५५, २६३; ३१०
अगवृत्तिका २०६
अगस्त्य २३५
अगुरु १८६; २२६
अग्रकरवीर २०६
अज २७५
अजा २०६, २३५, २७५
अजाजी २०६, ३०६
अजकर्ण २३५, २५५
अजगन्धा १८६ २०६; २५६
अजगर २५७, २७५
अजमोदा २०६, २२७, २५६; २६२
अजरुहा २४१, २५१
अजशृंगी २५६
अञ्जकी २३५
अञ्जन २६१; २६२; २६५
— रसाञ्जन २६१
— सौवीर २६१
— स्रोतोञ्जन २६१
अञ्जनकी २०६
अण्डज १८१
अणु २०६
अणुफला २२२
अतसी २३३, २३५
अतिगुहा २०६
अतिच्छत्रा २०६
अतिबला २०६, २२२
अतिमुक्त २०६
अतिमुक्तक २०४, २०६, २३६
अतियवा २०६, २४१
अतिश्वेतपद्म २२१
अनन्त २३६, २७०
अपराजिता २६६
— भेद २१४
अपामार्ग २०६, २१२; २२१, २२४, २३६; २६६
अपूप २६६
अफगानिस्तान ३०६
अब्जकेशर २०६
अब्द २०६
अभया २०६
अभिषुक १८४; २३६
अभीरु २०६
अमृता २०७
— द्वय २०७
अमृतवतली २०७
अम्ब २०६
— कुक्कुट २८३
— कुक्कुटिका २७५
— कुक्कुटक २८१
अम्बष्ठा २३६, २५६
अम्बुज २७५
अम्बुजा २०६
अम्बुद २०६
अम्बुरुह २०६
अम्भोद २०६
अम्भोधर २०६
अम्भोरुह २०७
अमरकाष्ठ २०७
अमरकोष २६५
अमरदारु २०७
अमरवरायुष २०७
अमराह्व २०७

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

अम्लरस १८४; २६६
अम्लीका २०६
अयोमल २९२
अयोरज २९२
अयस्कान्त २९२, २९५
अरणी २०५; २०६
अरणिका २०५; २१६
अरण्यकासमदनिका २५८
अरण्य कोद्रव २०९
अरण्यमाष २२४, २६५
अरलू १८६, २०७; २१०, २६१
अरावली ३०९
अरविन्द २०७
अरिभेद २०७, २३६
अरुष्कर २०७
अर्क २०६, २०८, २२६, २३०
अर्कद्वय २०६
अर्कपर्ण २५६
अर्कपर्णी २०४
अर्कपत्र २०४
अर्कपुष्पी २३३, २६३, २७१
अर्कालर्क २०६
अर्घा २८३
अर्जक २४१, २५७
अर्जुन २०६; २१०, २६७
अलाबु २०७
— कटुक २२६
— तिक्त २०७, २२६
अलम्बुषा २५८, २६५
— बृहती २६७
अलर्क २०७
अलवणा २०७, २३६; २४२
अवन्ति, ३०८
अवकुश २७८
अवगुत्थ २०७, २५९
अवल्गु २०७
अवल्गुजा २०७
अवाक्पुष्पी २२५
अवि २७५
अशोक २४२
अश्मन्तक २०६, २०७, २३६, २४२; २९२
अश्मभिद २०७
अश्व २७५
अश्वक २११
अश्वकर्ण २४२, २५६, २१०
अश्वगन्धा २१७, २२७
अश्वत्त्थ १८५, २०७
अश्वतर २७५ २८१, २८३
अश्वबला २४२, २५१; २५७; ३०९, ३१२
अश्वमारक २०७
अश्वमूत्री २०७
अष्ठीला ३०९
असन २०७, ३१०
— पुष्पक २०७
— सार २२२
असान्द्र २०७
असित २०७
— मुष्कक २०८
— सारिका २०८
— सर्षप २०८
अस्थि १८२
अहित्वक् २७४; २८९
अहिपताका १८१
अहिपुष्प २०८

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

अहिंस्रा २०८; २५९
— बृहद् २०८

आ

आक्ष २०८
आक्षिक ३००
आखु २७५
आखेत २०८
आगारगोधिका २७५; २८१
आटरूषक २०८
आढकी २०८
आत्मगुप्ता २०८
आदारि २३६
आदारी २४२
आदित्यपर्णी २०८
आनूप २७२
— वर्ग २७३
आमपूगफल २११
आमलक १८४; २३३, २६९
आमलकी २१८
आमिष २०८
आमोद २२१
आम्र १८०; २१५; २३०
— फल १८०
आम्रातक १८०, १८४; २१०, २४२
आरग्वध २०८, २१८; २२६
आरनाल १८४; २६९
आरुक २६४
आर्त्तगल २३६, २४२, २५७, ३१०
आर्द्र श्रृंगवेर २०८
— शिरोष २३३
— अञ्जन २०८
आर्द्रक २०८
आल २६२
आली २२४
आलुक २०८
आवन्तक २०४; २०६
आविद्धकरणी २२०
आशुकारी १८५; १८७
आसुरी २०८
आस्फोटा २०८
आस्फोता २३१
आहार
— अशित २९८
— खादित २९८
— भक्ष्य २९८
— भोज्य २९८
— लीढ २९८
— पीत २९८
— षड्रसात्मक २९८
आहोरी लता २७१

इ

इङ्गुका २०४
इङ्गुद २६२
इङ्गुदी २०४; २४२, २५७
— भेद २६५
इत्कट २०८
इक्षु २५९
— भेद २१३
— भूत २०९
— मूल २६५
इक्षुर २०९, २३६
इक्षुरक २०९
इक्षुविकार २५१
इक्ष्वाकु २०८
इन्दीवर २०४, २४२

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

इन्दीर ३०८
इन्द्रा २०८
इन्द्रगोप २७५
इन्द्रगोपा २८३
इन्द्रगोपक २८१; २८३
इन्द्रपर्णी २०८
इन्द्राह्व २०८
इन्द्रयव २०८, २११, २१३, २२६; २२८
इन्द्रवल्ली २०८; २३६; २५८
इन्द्रवारुणी २०८; २१३, २१५, २१८, २२५; २५८; २६१, २६२ २६६
— श्वेतपुष्प २१३
इन्द्रवृक्ष २०८, २१२; २४२, २७१
इन्द्रसुरा २०८
इभा २०८; २७५
इभकणा २०८
इभकृष्णा २०८
इस्फिशत २५७

उ

उग्रा २०९
उच्चटा २०९; २४२, ३११
उत्कारिका ३००
उत्क्रोश २७४; २७५, २८३
उत्तरापथ २१६
उत्पल १८५, १८९; २०६, २५७
— रक्त २५९
— सारिवा २६५
— सौगन्धिक २५९
उपल २९३
उत्तमा २०९
उत्तमकरणी २०९
उत्तमारणी २०९; २५६, २६७
उत्तरापथ २१३; २२१
उदकीर्य २०९
उदकज २०९
उद्दालक २०९, २८३
उदश्वित् २८७
उद्भिज्ज १८१
उदुम्बर १८५
उनियाल मायाराम २७०
उदीच्य २०९
उदुम्बरी २०९
उन्द्र २७६
उन्दुरुकर्णिका २३६, २५७
उलूक २७६
उलुम्बक ३००
उपचक्र २७६; २८३
उपकुल्याह्वय २२१
उपोदिका २०९
उपकुञ्चिका २०५, २०९; २३६ २४६,
उपोदिका २२२, २५७
उन्मत्त २०९
उमा २०९
उरग २७६
उरभ्र २७६
उशीर २०६; २१८, २३२
— भेद २१८
उष्ट्र २७६
उसारेरेवन्द २५८

ऊ

ऊषक २९३, ३१०

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

ऊषण २०६
ऊषर २६७

ऋ

ऋक्ष २७६; २८१; २८३
ऋष्य २७६, २८१
ऋषभक २१०
ऋषभी २१०

ए

एकशफ २७२
एकैषिका २३६; २५७
एण २७६
एरकाभेद २१४
एरण्ड २१४, २२७, २६१, २६३
एर्वारु २०६; २४३
एलवालुक २०६, २४३
एला २०६, २१७, २६३
एलुकाख्य २०६

ऐ

ऐन्द्री २५८
ऐरावत २४३
ऐरावती २१०
ऐरावणिका २०६

ओ

ओद्र २७६, २८१
ओषधि १८०

औ

औद्भिद २६७
औदक २१०
औषधसार १८८
औरभ्र २७६
औदुम्बर २६३

क

ककुन्दनी २१५
ककुभ २०६; २१०; २५७
कक्कोल २१०
कक्कोलक (लघु) २५८
कक्कोलक (वृहत) २१०
कंकुष्ठ २१०, २३२, २५८, २६६; २७०, २७१
कङ्क २७६; २८३
कङ्कतिका २०६
कच्चक २४३
कचौड़ी २३६, २६६; ३१३
कट्फल २१०; २२०; २२३, २३२; २३६; २७१
कच्छुरा २५८
कटभी २१०
कटभीद्वय २२६, २६६
कट्वंग २१०
कट्वर २८७
कटंकटेरी २१०
कण्टकारिका २२७
कटायिका २२७
कटुका २१०; २२३, २२६, २५८
कटुकालाबु २०८
कटुकिका २४३; २५८
कटुकोशातकी २१३
कटुफला २५८
कटुतुम्बी २०६, २१७, २६५
कटुरोहिणी २१०
कटुशर्करा २६३

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

कठिल्लक २१०
कण्टकारिद्वय २२३
कण्टकारी बृहत् २३१
कण्टकी २१३
— वृक्ष २५९
— करञ्ज २६४
— मदन २६५
कण्टशेलियाक २३०, २३२
कण्टसेलयाक २१२
कण्ठशेलुक २३२
कण्ठशेलुद्वय २३०
कणा २१०
कतक २४३
कदम्ब २१०
— पुष्पी २३६, २५८
— फल २१९
— वृक्ष २१०
कदर २१०, २४३
कदली २१०, २२५; २८३
कनकाह्व २५८
कनकक्षीरी २५८
कनकगैरिक ३१३
कन्दली २३६, २४३
कन्दाली २७१
कपि २७६
कपिकच्छू २०८; २१०; २१४; २२६, २३०; २६४, २७६
कपित्थ १८४, २१७
कपीतन २१०
कपोत २७६, २८१
— वङ्का २४३, २५८, ३१३
कफशामक १७९
कम्पिल्लक २४३, २६६
कम्बोजिका २१०
कमल २०६
करञ्ज २१०, २१८
— कण्टकी २१०
— द्वय २१०
— विटप २१०
— वृक्ष २१०
करभ २७६
करमर्दी २४३
करवी २५९
करवीर २०७, २११, २३२
— रक्त २०६; २११
करहाट २११
कराल २७६; २८१; २८४
करीर २२१, २४३
कर्कट २८३
कर्कटक २२९
कर्कटाख्य २१०
कर्कटश्रृंगी २१० २१२, २२९ २५६; २६५
कर्कारु २१०, २३६
कर्कोटफल १८६
कर्कोटी २६१, २६७
कर्णपूरक २०४
कर्दमक २११
कर्पूर २६८
कर्बुदोर २३६
कर्बूर २६६
कर्म १९२
— अधोभागहर १९२
— अनुलोम १९२
— अभिष्यन्दी १९२
— अपतर्पण १९२

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

— अमृतत्व १६३
— अवसादन १६३
— अवृष्य १६३
— अहृद्य १६३
— अविदाहि १६३
— अविदग्ध १६३
— आप्यायन १६३
— आयुष्य १६३
— आशुकारी १६३
— आश्वासजनक १६३
— उत्क्लेद १६३
— उत्क्लेश १६३
— उत्सादन १६३
— उपनाह १६३
— उपलेप १६३
— कफप्रसेक १६४
— कर्शन १६४
— कायबिरेक १६४
— कृमिघ्न १६४
— केश्य १६४
— क्षपण २०३
— तर्पण १६४
— तापन १६४
— त्वच्य १६४
— दन्त्य १६४
— दन्तहर्ष १६४
— दारुणीकरण १६४
— दीपन १६५
— गौरव १६४
— चक्षुष्य १६४
— चक्षुः प्रसादन १६४
— छेदन १६४
— जरण १६४
— जीवन १६४
— दोषपाचन १६४
— दोषसंघातभेद १६५
— धारण १६५
— निर्वापण १६५
— पाचन २६५
— पुंस्त्वोपघात १६५
— पौरुषेय १६५
— प्रक्लेदन १६५
— प्रच्छर्दन १६५
— प्रसेकी १६५
— प्रह्लादन १६५
— प्राणद १६५
— प्रीणन १६५
— बन्धकारक १६५
— बलकर १६५
— बलप्रद १६५
— बल्य १६६
— बस्तिशोधन १६६
— बृंहण १६६
— मदावह १६६
— मादन १६६
— मेध्य १६६
— मूत्रविवर्धन १६६
— मूत्रवृद्धिकर १६६
— मूत्रशोधन १६७
— यात्राकर १६७
— रक्षोघ्न १६७
— रसायन १६७
— रोचन १६७
— रोपण १६७
— रोमसंजनन १६७
— रोमसंवेजन १६७

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

— लंघन १९७
— लेखन १९७
— वमन १९७
— वयःस्थापन १९८
— वाजीकरण १९८
— वातानुलोमन १९९
— विरेचन १९९
— वृष्य १९९
— विकासी १९९
— विदाही १९९
— विलायन १९९
— विरूक्षण २००
— विशोषण २००
— विष्टम्भि २००
— विष्यन्दन २००
— व्यवायि १९८
— शुक्रल २००
— शिरोविरेचन २००
— शोणितस्थापन २०१
— शोधन २०१
— शोषण २०१
— संग्राही २०२
— संशमान २०२
— संशोधन २०२
— हृद्य २०२
— हर्षण २०२
— ह्लादन २०२
— स्तम्भन २०२
— सन्धान २०२
— संहनन २०१
— स्कन्दन २०१
— स्थापन २०१
— स्नेहन २०१
— स्वेदन १०१
— स्रंसन २०१
— ह्लादि २०३
कलम २३६
कलशी २११
कलाम २११
कलाय २४३
— वर्तुल २३०
कलिहारिका २३१; २५५
कलिंग २११
कलिंविक २८४
कलिहारिक २२६
कल्हार २३६; २५९
कवडक २५८
कशेरुक २११
कश्मीर २७१
कषाय
काकजम्बु २१५
काकजंघा २६३, २६७, २६८
काकणन्तिका २४३, २५९
काकणन्ती २११; २३६
काकतिक्ता २६६, २६७, २६८
काकतिन्दुक २५९
काकनासा २०४; २११
काकमर्दनिका २०४, २१५, २१७
काकमाची २६६; २६८, २८९
काकवल्ली २३१
काकाण्डफल २११, २३६, २४३
काकादनी २०७; २५९, २६७
काकाह्वनोदुम्बरिका २११
काकोली १८९; २११; २३३
काकोदुम्बरिका २११, २२२; २२४,
काकोल्यादि १८४

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

काचाक्ष २७६, २८१
काञ्चनक्षीर्यौ २४३; २७०
काञ्चनाह्व ३१२
काञ्चनक २११
काञ्चनार २१३
काञ्जनक २११
काञ्जिक १८४
काञ्जी २६६
काठगन्ना २५६
काठिन्य १८२
काण्ड २११
काण्डेक्षु २५६
काणा २११
काणकपोतक २७६
काता २५६
कादम्ब २८४
कामरूप ३०६
कामला २६०
काम्बलिक ३००
काम्बोजि २५६
कारण्डव २८४
कारवी २११, ३०६
कारवेल्लक २३२, २७१
कार्पास २११
— फल २२१
कार्पासी २११
कारुमरी २५६
कालङ्कत २१४
कालखण्ड २७५
कालपुच्छ २८४
कालमाल २३६
— भेद २१२
कालमुष्कक २२४
कालवल्ली २०५; २६०, २६४
कालशाक २११
कालसार वृक्ष २१७
काला २५६, २६०
कालाञ्जन चूर्ण २६१
कालानुसारिता २०६, २५६, २६०
कालिका २११
कालिन्द २११; २३६; २४३
कालियाशाक २११
कालीयक २४३, २६०
कालेयक २०५, २११, २३६; २४३
काश्मरी २१०; २३०
काश्मर्य २११, २६२
काश्मीराम्लिका २६८
कासीस २६२
— द्वय २६५
कासमर्द २५६
काष्ठेक्षु २५६
काष्ठपाटला २६६
काष्ठोदुम्बरिका २०६
किरमाल २०८, २१२
किरमालक २१५, २१८; २२६, २२७, २२८
किरातक २२३
किराततिक्त १८५, २११, २२३
किलाट २८८
किंशुक २१२
कीटज यव २१३
कीटारि २०४, २१२, २६०
कीटमारणी २०४
कीटमारी २१२
कीटशत्रु २१२
कुक्कुट २७६

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

कुक्कुटा २१२
कुक्कुटी २४४
कुक्कुटाण्डक २४४
कुक्कुटशिम्बी २१२
कुंकुम २२२
कुचन्दन २१२, २२०
कुचला २६७
कुटज २०८, २१२, २२८
— फल २०८
कुटन्नट २३६, २६०
कुटिञ्जर २३६
कुठिञ्जर २१२
कुठेर २१२
कुठेरक २५७
कुणावी २१२, ३००
कुतित्तिरी २७६, २८४
कुतुम्बक २१२
कुत्सितधान्य २१२
कुधान्य २१२
कुन्तलिका २४४
कुन्दरुक २१२
कुन्द २४४
कुन्दरिका २२२
कुनालिका २६०
कुब्ज २१२
कुमुद २१२, २३६, २४४
— उत्पल २१२
— भेद २१२
कुम्भद्वय २०५
कुम्भी २४४
कुम्भीक २४४, २६०
कुम्भीका २४४
कुम्भीर २७६
कुम्भीवृक्ष २०५
कुरङ्ग २७६, २८१
कुरवक २१२; २५७
कुरर २८१; २८४
कुरहञ्जक २१२
कुरुण्टिका २३६; २४४; २६०, ३०६
कुरुवाहक २७६
कुरुविन्द २६३
कुरुण्टक २३६
कुलक २१६
कुलत्थ १८१
कुलिश २८१
कुलिंग २७६
कुलीर २१२, २७६
कुलत्थिका २१२
कुलाहल २१२
कुलेवर २१२
कुल्माष ३००
कुवलय २१२; २४४
कुविका २१०
कुश २१२, २४४
कुस्तुम्बरी २३६
कुष्ठ १८६, २०८; २२६
कूचिका २७४; २८८
कूर्प ३१२
कूलचर २७३
कूविका २५६
कूर्म २७७, २८४
कूष्माण्ड २१०
कूष्माण्डक २२१
कृकलास २७७; २८१; ३१०
कृतान्न वर्ग २६८
कृतमाल २०६; २१२

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

क्रतवेधन २१२
क्रमिघाती २१२
क्रमिघ्न २१२
क्रमिशत्रु २१३
क्रशरा ३००
कृष्णगन्ध २६०
कृष्णजीरक २६३
कृष्णगन्धिफल २०६
कृष्णमुष्कक २०८
कृष्णमुद्ग २२७
कृष्णलोह २६३
कृष्णवष्टिक २०७
कृष्णव्रीहि २१३
कृष्णषष्टिक २१२
कृष्णसार २२८
कृष्णसारिका २३७, २४४; २६०
कृष्णा २१३
कृष्णाबीज २११; २१३
कृतमाला २८४
कृतमालक २१८
कृतमत्स्य २८४
कृकर २७७
केदारखण्ड ३०६
केबुक २१३
केशराह्वय २३७
केसर २१३
कैडर्यं २१३
कैवर्त्तं २७३
— मुस्तक २३३
कोकिलाक्ष २०६, २१३; २६७
कोद्रव २१३
कोनालक २८२, २८४
कोयष्टि २७७; २८२; २८४
कोरक २१६
कोरदूष २१३
कोल १८१, २१३
कोल्लकफल २१८
कोविदार २०७; २१३
कोशाम्ब २१३
कोशाम्र १८०, २१३
कोशकार २१३
कोशवती २१३
कोशातकी २१२; २१३, २१६, २१८, २३७, २४४
कोशस्थ २७३
कोष्ठागारिक २७७
क्रकर २८१
क्रव्यभुक् २७२, २७७
क्रमुक २६०, २६१
क्रौञ्च २७७, २८२

ख

खगाली २०८
— महती २५६
खग्गली २१३
खड्गी २७७
खञ्जरीट २८२; २८४
खड ३००
खदिर १६१, २१३, २१४
खर १८७, २७७
— पुष्प २६१
— मञ्जरी २१३
खर्जूर १६०, २१३, ३१२
खला ३००
खुखुण्डक २१२
खुर १८२

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

ग

गज २७७
— पिप्पली २०८, २१४, २२१, २३२
— भक्ष्या २२८
गजाह्वा २२४
गजाशना २१४
गणिकारिका २६३
गन्धनाकुली २१४; २७१
गन्धमांसी २०५, २१५
गन्धमुण्ड २५५
गन्धर्वहस्त २१४
गम्भारीफल २११
गयदास २१०; २५६; २६३
गर्दभाण्ड २१०, २५९, २६२
ग्रन्थिक २१४
ग्राम्य २७२
— कन्द २३०
ग्रीष्मकर्कटी २०९
गलोड्य २२४
गवय २७७
गवाक्षी २१३
गवेधु २३७
गवेधुक २१४, २६८
गांगेटीफल २१४
गांगेरुकी १४; २३०, २६७
गायत्री २१३, २१४
गाल ब्लैडर १७५
गिरिकर्णिका २१४
गिरिकदम्बक २१४
गिरिमल्लिका २११
गिरिमाल २०९
गिरिमालक २१९
गिरिश २७७
गिरिह्व २१४
गिर्याह्व २१४
गिलोड्य २१४, २३७; २४४
गुग्गुलु २०८, २१६, २२०, २२१, २६४
गुञ्जा २१२; २१४, २२१, २५९
गुड २०९
— पुष्प २२४
— मज्जनिका २०४, २१६
— शर्करा २०४; २१४
— शुक्त ३००
गुडूची २०७, २१५, २६४; २६६, २७१
गुण १८५
— गुरु-लघु १८६
— गुर्वादि १८५
— शीतोष्ण १८६
— स्निग्ध १८६
गुदुम्बिका २१५
गुन्द्रा २१४
गुप्तफल २१४
गुरुत्व १८२
गुलशर्करा २०४
गुलहड़ी २०४
गुहा २१४
गुहातिगुहा २१४
गुहाशया २७२
गूथंकर २६८
गृञ्जन २१४
गृध्र २८४
— नख २१४
गृष्टिकाकन्द २२७
गृह कुलिंग २७७; २८२
गैरिक १८२, २९०, २९३, २९५

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

गोकर्ण २७७; २८२
गोक्ष्वेड २७७
गोचन्दन २१४
गोजिह्वा २४४, २६१
गोजी २६१
गोधा २७७; २८२
— पदी २७१
— मल्ली २०६
गोप २१४
गोपघोण्टा २३७; २६१
गोपवल्ली २१४
गोपदी २३१
गोपित्त २८९
गोमेदक २९३
गोरखइमली २६८
गोरखमुण्ड २६५
गोलोभी २१४
गोक्षुर २२९
गोक्षुरक २२८, २३३
गोविषाण २८९
गोडवास्तूक २१५, २६१
गोडिका ३००
गोरव २५८
गौरषष्टिक २३०
गोहाटी २०९

घ

घन २१४
घुघुंरा २०६
घृत १८२, २७४; २८८
घृतपूरा ३०१
घेड ३०१
घेर ३०१
घोटकपुच्छ २३२
घोण्टाफल २१४
घोडालेज्जी २५८
घोषक २१३

च

चकोर २८४
चक्रदत्त २५६
चक्रपाणि २६७; २७१
चक्रवाक २८५
चक्षुष्या २१२
चट्टक २७७
चण्डा २१५, २४५
चणक १८६
— बृहती २२३
चतुरंगुल २१५
चतुष्पर्णी २३१
चन्दन २१५, २३२; २५१
— अशुक्ल २०७
— कृष्णवर्ण २११
— पीत २११, २६०
— मलयाद्रिज २०५, २१२
— मलेन्द्री २६०
— रक्त २०७
चन्द्रक २८५
चम्पक २१५
चरकसंहिता १६१, २५३
चर्मकारवट २२९; २६९
चर्मवृक्ष २४५, २६९; ३११
चव्य २१५
चाङ्गेरी २३७
चामर पुष्प २११
चार २६६
चारुष्क २८५
चालता २६४

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

चाष २७७; २८२, २८५
चिञ्चा २०७
चिञ्चोटक २०६
चिरबिल्व १८६; २०९, २१५, २३७, २६४
चिरयोटिका २६८
चिरहिण्टिका २१४
चिलचिल २८५
चिल्लि २७७
चिल्ली २१५; २६१
चिह्लाद २६५
चित्रक १८६; १९१, २०६; २३२, २५५; २६२
चित्रफला २१५; २६१
चित्रा २४५; २६१, ३०१
चित्राण्डिका २१५, २६१
चीरल्लि २८२
चुक्र १८४; ३०१
चुक्रिका १८४
चुञ्चू २३७, २४५
चूत २१५
चैववास्तुक २१५
चोच २१२, २१५
चोपाली २७०
चोरक २१५, २१६, २४५, २६२
— पत्र २१५
— भेद २१५
चोरस्नायु २६५

छ

छगलान्त्री २६१
छगलाम्बु २८९
छगलविषाणिका २५६
छत्रातिछत्र २१५
छिक्काकर २०५
छिन्नरुहा २१५

ज

जगल ३०१
जङ्गम १८१
जङ्गाल २७२
जटा २०५; २१५
जटामांसी २०५, २१५
जटिला २०५; २१५
जतु २८९
जतुमुख २४५
जम्बीर ३०९
जम्बू १८०, २१५; २१६
— फल २१६
— द्वय २१५
जलकुम्भी २०५
जलकुम्भिका २७१
जरायुज १८१
जलगण्ड २६१
जलगण्डीर २२८
जलगण्डीरक २६१
जलजम्बु २१८
जलजा २०५
जलनीम २५८
जलवेतस २१९; २२७
— फल २१९
जलशूक २८५
जलेशय २७२
जाङ्गल २७२
— मांस १८६
जाति २१६

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

— कन्द २१६; ३०९
— पत्रिका २१६
— मूल २१६
जातिवनी २१६
जाती २१६, २२४, २३१
— कलिका २१६
— कोशी २१६
जातीफल २१६, २३१
जातुकशाक २१६
जाम्बव २१६; ३०१
जायची २७०
जारुल २६१
जालिनी २१६
जिंगनी २०४
जिंगणी २१६, २३७; २६२, ३११
जीमूत २१६
जीमूतक २१६
जीरक
— कृष्ण २०५; २११
— द्वय २०५; २१६
— पीत २०५
— विशेष २०६
— श्वेत २०५
— स्थूल २०९
— त्रय २०५
जीवक २१६
जीव-जीवक २७७, २८८
जीवञ्जीवक २८५
जीवन्ती २४५; २६१, २६२; ३१२
जीवा २६१
जेज्जट २५७, २६३, २६५
जेज्जटाचार्य २३२
ज्योतिष्क २१५
ज्योतिष्मती २०४, २०७

ट

टंक ३१०; ३१२
टंकणक्षार २९३
टंकणवास्तूक २२७
टिण्टुक २१६
टुण्टुक २१६
टीका (निबन्ध संग्रह) १७९

ड

डल्हण, १७९; १८३; १८६, १८९, १९२, २०४, २०५; २३५; २४१; २५३; २५४, २५८, २६८, २७२-२७५, २९०, २९२; २९८, ३०८, ३०९
डिण्डिमाणक २८५
डोडिका २६१

त

तगर २२९; २९०
— मूल २१८
तण्डुलीयक १८८, २३७
तमाल २१६, २३७
— पत्र २१६
तर्कारी २०५, २१६
तक्र १८४, २७४
— कूर्चिका ३०१
तरक्षु २७७; २८२
तलकोट २१६
त्वक् २१५; २३७
— क्षीरी २१६
— सार २१६
तस्कर २१६
ताडी २१६
तापसवृक्ष २२९; २५७, २६२

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

तार्पीज २९२; २९३
ताप्य २९३
तामलकी २१६; २३७
ताम्बूलपत्र २१६, २३७
ताम्र २९१
— चूड २७७
— वल्ली २६२
तार २९३
तार्क्ष्य २१७
ताल १८४, २१६
— पत्र २१६
— पादिका २४५
— फल २६४
— मूली २१७
— मूलिका २१७, २४५
तालीतल २१७
तालीश २१७
तालीसपत्र २१७
तिक्ता २१०; २१७
तिक्तारिका २५८
तिक्तालाबु २०९; २१७; २२१
तितली २७०
तित्तिर २७७
तिन्तिडीक १८४, २१७; २२८
तिन्दुक २१७, २६७
तिन्दुकी २१७
तिनि २१७; २३७
तिनिस २१७; २३७
तिपर्णिका २५६
तिमि २७७
तिमिर २१७; २३७
तिमिङ्गल २७७
तिरसी २३३
तिल १८१, १८९
तिलकल्क ३०१
तिलपर्णी २१७, २६२
तिल्वक २४५
तीक्ष्ण १८९
— गन्धा २१७
तुगा २६२
तुगाक्षीरी २६२
तुङ्ग २१७, २६२
तुत्थ २९२; २९५
तुम्बाक २६४
तुम्बी २१७
तुरंगगन्धा २१७
तुरुष्क २१६, २१७, २५७; ३०९
तुलसी २२९
— पुष्प २३१
तुतरी २०८
तुवरक १९१, २४५
तुषाम्बु ३०१
तुषोदक ३०१
तूद २६०
तूलफल २१७
तृण २१७
— विशेष २१४
तेजोवती २१७
तेजोवृक्ष २०६
तेवसा २३३
तोदन २१७
तोय २१७

द

दक्षिणापथ ३०८; ३०९, ३११
दधि २८८
दधित्थ २१७

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

दधिमण्ड २८८
दधिमस्तुक २८८
दधि सर २८८
दध्यम्ल २८८
दन्त २८९
दन्ती १६१, २१८; २५७, २६१, २६२, २६५
दन्तीभेद २१७
दर्भ २१७, २४५
दर्भर २८५
दर्भह्रस्व २१२
दरफलिका २१६
दला २८२
दही २७४
द्रवन्ती १८६, २१७, २२१; २३७; २४५, २५७; २६१, ३१२
द्राविडी २१७
द्रुमा २८५
द्रोणपुष्पक २१२
द्रोणपुष्पी २०६; २१५ (द्रय)
द्रव्य १७६
— ओषधि १८०
— औद्भिद २०४
— जंगम १७६, २०४, २७२, २६०; २६८
— पार्थिव १७६, २०४, २६०, २६८
— प्राकृतिक २६८
— लक्षण १८०
— वानस्पतिक २६०; २६८
— स्थावर १७६
— गुण विज्ञान २५६
— गुण शास्त्र १७६, २६८
द्विपद २७७
द्विवेदी, विश्वनाथ २५५
द्वीपान्तर ३१३
द्वीपि २७८; २८२
दाडिम १८४, १८६, २१७, २३७, ३०१
दाक्षिणात्य १८२; १८३
दात्यूह २७७, २८३
दाधिका २३७, ३०१
दारु २१७
दारुहरिद्रा २१०, २१६; २३२; २६०
दार्वीक्वाथज २२५
दार्वीपत्रिका २६१
द्राक्षा २२५
दीपिका २७७
दीप्यक २६२
दीर्घमूल २६२
दीर्घवृन्त २६२
दुग्धिका २२५, २३३, २६२, २६३
दुधीड़ २६५
दुरालभा १८५, २२५; २५८, २६२
दूध २७४
दूर्वा २१४, २६६
— नीला २६७
— श्वेत २३०, २५६, २६७
देवदारु २०७, २१७, २२१; २२३, २३१, २६३
देवदाली २१३, २१६; २३७
द्रेक्का २२४, २६५; २६७

ध

धत्तूरक २०६; २११
धनुर्वृक्षफल २१७
धन्वन २१७; २३७, २४५
धन्वयास २२५

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

धातु २०९
— नदीज २९३
धाना ३०१
धान्य २१८
— शमी १८३
धान्यक २१८
धान्याम्ल ३०१
धान्वन ३०१
धामार्गव २१८; २४५
धात्री २१८
धूलिकदम्ब २१९
ध्यामक २३८
ध्वांक्ष २५९, २७८

न

नकुल २७८
नक्र २७८; २८२
नक्तमाल २१०, २१८
नखरागिपत्र २१७
नखरञ्जिनी २२३
नखी २५९
नगवृत्तिका २१८, २६२
नदीज २९३
नदीवृक्ष २३८
नदीपिप्पलिका २१८, २६१
नदीभल्लातक २१८
नन्दीमुख २४५, २७८
नन्दीवृक्ष २६२
नप्तृक २८२, २८५
नराधिप २१८
नरेन्द्र २१८
— द्रुम २१८
नल २४५
नलद २१८
नलिन २१८
नवनीत खोटी २२९
नाग २१८, २७८
नागकेशर २०८, २१८, २२३, २२७
२५७; २५८; २६२
नागदन्ती २६२
नागपुष्प २२३, २४६, २६२
नागबला २१०; २१४
नागर २१८
नागवल्लीपत्र २१६
नागविन्ता २६२
नाडिका २१८
नादेयी २१८
नारिकेल १८४
नारङ्ग २०९
नालिका २१८, २३८
नालिनी २१८
निकुम्भ २१८
निकोचक २१८, ३०९
निचुल २१९
निम्ब १८५, २०७; २२१
निर्गुण्डी २१९; २३१, २३८, २६४
निदग्धिका २१७
निर्दहनी २६१
निर्विसा २०४, २६७
निशा २१९
निशाच्छद २१९
निशायुग्म २१९
निश २१९
निशोथ २३४
निष्पात २१९
नीप २१९
नीरज २१९

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

नीलनिर्गुण्डी २१६
नीलाञ्जनिका २०६, २१६
नीलसिन्धुवार २१६
नीलिका २१६
नीलिनी २१६, २३८
नीली २१६, २३८
नीलोत्पल २१६, २५४; २७८
नीवार २१६, २३८, २४६
नूतकौण्डक २१६
नृपवृक्ष २१६
नेपाली २६३
नेपालजा २६३
नेपालजाता २६३
नैषध २१६
न्यङ्कु २८२
न्यग्रोध १८५; १८६, २१८

प

पञ्चाङ्गुल २४६, २६३
पञ्चकषाय १८५
— बतकल १८५
— रस २२५
पञ्जिकाकार २५८
पटोल २१६
— मूल २६५
पत्तङ्ग २२०, २६०
— कोष्ठ २६४
पतरी २३८
पतरो २२०
पथ्या २२०
पद्म १८५, २०७, २०६, २१८, २२०; २४६
— ईषत् शुक्ल २२०
— काष्ठ २२०
— केशर २०६, २६२
— कुमुद २१०
— गुडूची २६६
— बीज २१४, २२१
— मूल २२२
— वरोटक २२१
पद्मक २२०
पद्मा २२०
पद्मोत्पल २०६
पनस २३८; २४६
पय २८८
पयस्या २२०, २५६, २६३
परभृत् २७८
परिपेलव २६३
परिमाण १८८
परिशुष्क ३०१
परुष १८६
परूषक २३८ २४६
पर्कटी २२१
पर्णमृग २७२
पर्णिनीद्वय २१६
पर्णी २१६
पर्पटक १८५; २२६
पर्वतनिम्ब २१३, २६३
पर्वतपीलु २०४; २०८
पलङ्कषा २२०
पलल ३०२
पलाण्डु २२०; २४६
पलाश २१२
पश्चिमदेश ३०८; ३१२
प्लक्ष १८५; २२१
प्लव २२१, २७३; २७८, २८२

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

पत्रक २२०
पत्रम् २२०
पाकनिष्ठा १८१
— तत्त्वज्ञानी २६८
— शास्त्र २६८
पाटल २२०; २४६
पाटला २२०, २४६; २६०
पाट्टरक भेद २१४
पाठा २२०, २३८, २५६, २५७
— भेद २६४
— शाक २२०
पाठीन २८२; २८५
पाण्डुक २२०; २४६
पादिन २७३
पानक ३०२
पानीय कुम्भिका २०५
पानीबेल २७१
पानीयवल्ली २३२, २७१
पापचैलिक २२०
पायस ३०२
पारद २९३
पारावत २२०; २४६; २७८; ३११
— पदी २२०, २४६
— फल ३०९
पारिभद्रक २२०, २४७, २६३, ३११
पारिजात २२०
पायस (शतावरी) ३०५
पालङ्क्या २३८
पालल ३०२
पालिन्दी २६४
पाषाणभेद २०७, २२९
पिचुक २२१
पिच्छिल १८९
— द्रव्य १८६
— विशद १८६
पिण्डखर्जूर २१३
पिण्डालु २०८
पिण्डालुक २११; २२१
पिण्डहरिद्रा २१९, २३२
पिण्डीतक २२१; २२३; २४७
पिण्याक ३०२
पित्त २७५, २८९
— शामक १७९
पिप्पल २०७
पिप्पली १८५, १८९; १९०; २०९; २१०; २१३, २२१, २२३, २२४
— मूल २१३, २१४, २२४, २२५
पिपीलिका २७८
पियासाल २५६
पिष्ट ३०२
पिष्टान्न ३०२
पीतघोषा २१८
पीतदारु २२१
पीतपुष्पा २१८, २३०
पीतसार २२२
पीयूष २८८
पीलु २३८, २४७
— फल ३०९; ३१२
पीशीका ३०९
पुआ ३०१
पुट २२१
पुण्डरीक २२१, २४७; २७८
पुष्करशायिका २७८
पुत्तिका २८२, २८५

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

पुन्नाग २१७, २२१; २२७, २३८; ३०६, ३११
— द्वय २०५
— पीतपुष्पा २०५
— रक्ता २२७
— रक्त पुष्पा २०५
— श्वेत २०५; २२७
— शाक २१०
पुर २२१
पुराह्वया २६४
पुलक २९३
पुलाक २३८
पुष्कर २२१
— बीज २२१
— मूल २२१
— वर्त्ति ३१०
पुष्प २९३
पुष्पाञ्जन २९३
पुष्पाण्डक २४७
पुष्पकासीस २९०; २९३
पुष्पकवर्त्ति २२१
पुष्पफल २२१
पुत्रजीवक २५७, २६२
पुत्रञ्जीवक २४७
— भेद २६५
पुत्रञ्जीवी २२५
पुत्रश्रेणी २२१, २३८, २४७
पूग २६०
— फल २६०
— भेद २६१
पूतिकरञ्ज २६४
— कीट २८५
— घास २७८, २८२
पूपा ३०२
पूर्णकोश २९९; ३०२
पूर्वदेश ३१०
पृथुका ३०२
पृथक्ख १८७
पृथक्पर्णी २२१, २३८, २६३
पृश्निपर्णी १८१, २०६; २११, २१४, २१९, २२१, २२९
पृषत् २७८, २८२
पेया ३०३
पेष्टिका ३०३
पोई २०९
पौण्ड्रक २८५
पौष्कर २२१
— बीज २१६
प्रकीर्या २२१
प्रग्रह २२१
प्रक्षुद्रा ३०२
प्रचलाक २७८
प्रतिविषा २४७
प्रतुद २७२
प्रत्यक्पुष्पा २२१
प्रदेहा ३०२
प्रपौण्डरीक २५१, २६३
प्रभाव १८९, १९१
— (अचिन्त्य शक्ति) १९०
— पर्याय १९०
प्रवाल २७४; २७८; २८५
प्रसन्नी ३०२
प्रसह २७२
प्रसातिका २१९
प्राचीबल २३६
प्राचीनामलक २१७; ३११

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

प्रियक २२१; २७८
प्रियंगु २१४, २२६, २६८
प्रियाल २२१, २३८; २४७, ३११

फ

फञ्जी २६४
फणिज्झक २३८, २६४, ३१३
फरहद २६३
फल २२२
फलाम्ल २२२
फलत्रिक २२२
फलनिष्ठा १८१
फल्गु २२२; २३८
फागित ३०३
फिगस्फित २५७
फूल दोपहरिया २०४
फेनक ३०३
फेनिला २२२
फेनी २६६

ब

बक २७८
बक्कस ३०३
बंग २९५
बदरभेद २१०, २१३, २६१
बदरी २१४
बन्धूक २२२, २३८
बन्धुजीवक २०४; २२२; २३८
बनवबेरिका २७०
बरुक २३८
बरमी २५८
बला २२२, २६७
— (पीतपुष्प) २३०
— फल २२६
बलाका २७४, २८२
बर्हिष्ठ २२२
बस्त २७८
बस्तगन्धा २२२; २५७
बस्ताण्ड २७८
बहुपुत्रा २२२
बहुवार २२६
ब्रह्मचारिणी २६४
ब्रह्मदेव २५७; २५८
बाइल २७५
बाकची २०७
बाडव २१०
बाण २२२; २५५, २६०, २६२; २६५; २६६
बापालाल २६१, २७०; २७१
बालक २०६, २०६, २१७; २२२; २३३
बालतृण २३८
बालमूलक २२५
बाह्लीक २२२
ब्राह्मी २२३, २६४; २६६, २७१
बिडाल २७८
बिभीतक २०८; २३३
बिम्बपेशिका २२२
बिम्बलोट ३१०
बिम्बी २२२, २४७
बिम्बीतिका २२२
बिम्बोट २२२
बिल्व २२२
बिल्वगिरि २२२
बिल्वफल २२२
बिलेशय २७२
बिस २२२

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

बीज २२२
बीजक २०७, २२१; २२२
बीजपुर १८४; २२२, २६५
बीजसार २२२
बुध्ना २७०
बुदनामभेद २६१
बृहत्करञ्ज २१८
बृहत्हिंसा २३२
बृहती २२२, २४७
— चणक २०५
— द्वय २०५, २२३
— स्थल २०५
बोडयिका २६१
बोथायिका २२२
बोवयिका २२२; २५६; २६१

भ

भक्ष्य २९९
— वटकादि २९९
भद्रकाष्ठ २२३
भद्रा २२३
भद्रदारुक १८९
भद्रनामा २०९
भद्ररोहिणी २२३
भद्रश्री २२३
भर्जित ३०३
भल्लातक १९१; २०७; २२३, २३८; २५१, २५५
भल्लूक २३८, २७८
भव्य २४७, २६४, ३१०
भाण्डी २३८
भादानक ३०९
भार्ङ्गी २२०; २६४
भास २७८, २८६
भिल्लोट २२२
भिल्लोटक २४७; ३१०
भुजंगपुष्प २२३
भूकदम्ब २६५
भूतकेशी २०५; २२३
भूनिम्ब २२३
भूमिकदम्ब २२३, २५८
भूमिजम्बू २१५
भृङ्ग २२३
भृङ्गराज २२३, २२४, २७९; २८२; २८६
भेदाशी २७९

म

मकर २७९
मकुष्ठ २२३
मगधा २२३
मगधोद्भवा २२३
मङ्गल्य २२३
मण्ड (मुस्ता) २८८
मण्डुकी २७९
मण्डूकपर्णी २२३; २६४
मण्डूर २९४
मञ्जिष्ठा २२५, २६६, २९९
मणि २९२
मत्कुणा २७९
मत्साण्डक २०८
मत्स्य २७३
मत्स्याक्षक २३८; २४८, २९३, २६४
मत्स्याक्षी २६४
मत्स्याण्डक ३०३
मद्गु २७९

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust
Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

मद्गु मूषिका २७९
मदन २२१, २२३, २३८
— फल १९१, २११, २२३
मदयन्तिका २२३, २३३, २३८, २५१
मद्यशुक्त ३०४
मदिरा ३०३
मधुक २२३; २५१
मधुकर्कटी २६५
मधुपर्णी २२३
मधुमस्तक ३०३
मधुयष्टिका २२३
मधुर २३८
मधुरसा २२४
मधुशर्करा २८९
मधुशिग्रु २२४, २४८; २६४
मधुशुक्त ३०३
मधुशीर्षक ३०३
मधुस्रवा २३३
मधूक १८४, २२४
मधूच्छिष्ट २८९
मधूदक ३०४
मधूरिका (सौफ) २६८
मधूलक २३८, २४८, २६४ ३०९; ३१३
मधूलिका २२४; २३९, २६४
मध्यदेश ३०९, ३१३
मध्याह्नपुष्प २०४; २२२
मध्वासव ३०३
मनोह्वा २९४
मन्थ ३०४
मन्थहृत ३०४
मन्दारी २२४
मनःशिला २९०; २९३
मयूरक २२४
मयूरचुटिया २६१
मयूरशिखा २२२
मार्कव २२३
मरिच १८५, १८६, २०९
मरिच (शुक्ल) २२४, २६४; २६५
मरुदेश ३०९
मरुबक २६१, २६४
मर्कटी २१९, २२४; २६४
मर्कटतृण २६४, २६६
मर्कटहस्ततृण २६४
मर्कटमूली २६४
मलयू २२४
मल्लिका २२३
मल्लिकाक्ष २७९
मसूर २२३, २४८
मसृण १८७
मस्तु १८४
महाकदम्ब २१९
महाकदम्बक २१७
महाकरञ्ज २१८
महाकाष्ठालुक २३२
महाकोषातकी २१८
महातण्डुल २२४
महानिम्ब २१३, २२४
— फल २३९
महानीलघृत २६६
महापाठीन २३०
महाबभ्रु २७९
महावृक्ष २२४
महाश्यामा २२४
महाशालि २२४
महाश्वेता २६९

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

महासहा २२४
महासुगन्धा २६५
महिष १८६
महिषशूक २१३
महीकदम्ब २३९, २६५
महुषसि २६५
महौषध २२४
माक्षिक २२४, २८८; २९४
माचिका २५६
माजूफल २५६
मातङ्ग २७९
मातुलुङ्ग १९०; २६५
मातुलुङ्गी २४८
मातृनन्दक २८२
मातृनिन्दक २७९
माधवीलता २९६
मार्कव २२४
मार्जार २७९
मालती २१६, २२४
मालवा ३०९
माष १८६, १८९
माषपर्णी २१०, २२४; २३०; २३६, २५९; २६५
माषवनी २६५
मांस १८२, २०५
मांसवर्ग २७२
मांसी २१५, २१८, २२३
मांसोदक २८९
मिश्रेया २६८
मुक्ता २७९, २९०
मुकुन्द २२४
मुचकुन्द २६५
मुचलुन्द २६५
मुञ्जात २४८, ३१०
मुञ्जातक २४८, ३१०
मुण्डतिका २२३; २२९, २६४
मुण्डिका २१२
मुण्डी २६५
मुद्‌गपर्णी २३०; २३३
मुषङ्गी २२४
मुलन्द २२४
मुष्कक १८९, २२४, २३९
मुस्तक २१६
मुस्ता २०६; २१४
मूर्वा २२४, २३९; २४८, २६५, २६८, ३११
मूल २२५
— कपोतिका २२५
मूलक २२४
— शिम्बी २२५
मूलकरोद्‌भव २६७
मूषली २१६, २१७
— मूल २१७
मूषिका २७९
मूषिककर्मी २५७, २६५
मूषिका २४८
मूत्र २७९
मृग १८३
मृगप्रिय २७९
मृगभोजनी २२५
मृगमातृका २८२; २८६
मृगेर्वारु २२५; २८२; २८६
मृणाल २३९, २४८
मृत्तिका २९२, २९५
मृत्स्न १८६
मृदु १८९

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

मृदुतीक्ष्ण १८६
मृद्वीका २२५
मेघराव २७९
मेढिका २५६
मेदःपुच्छक २७९
मेध्याण्ड २८९
मेष-विषाण २२५, २६५
— शृंग २६५
— शृंगी २४८; २६७
— शृंगीफल २२५
मैचुल २१९
मैरेय ३०४
मोठ २२३
मोदक ३०४
मोदयन्ती २३९
मोन्दिका २२३
मोचक २२५
मोचकी २२५
मोचरस २२५
मोरट २३९; २६३, २६५
मोरमेल २२५
मोहनवल्लिका २२५
मोहनिका २२५

य

यमलपत्रक २०७
यव २०८, २४८
यवक २२५
यवक्षार २२५; २३९
यवतिक्ता २०८, २३०, २३९; २४८, २६७, २७०
यवपर्पटी २१२
यवफला २२५
यववेणु २१५, २२५
यवशाक २६१
यवशाकान्तर २६१
यवशूक २२५
यवालक २७९
यवागू २९८
यवानी २५९; २६२
यवानिका २०६; २५६
यवास २२५
— शर्करा ३०४
यविका २४०
यष्टिका २२५
यष्टिमधु २२१, २२५; २६३
यष्टीमधुक १८४
यष्ट्याह्व २२५
यास २२५
युक्ति १८८
यूथिका २४८
योगवाही १८७
योजनवल्ली २२५
योधामल्ला २०९

र

रक्तकाष्ठ २०६, २२०
रक्तचन्दन २१२; २१५, २२५; २३०
रक्तवृक्ष २२५
रक्तमूला २३४
रक्तला २५९
रक्तशालि १८६; १८९, २२६
रक्तशोभाञ्जन २३१
रक्तसर्षप २०८
रक्ता २२५

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

रक्तिका २५९
रक्तोत्पल २१२
रजत २६१; २६४
रसाल ३०४
रजनी २२५
रञ्जनी २६२
रत्न २६२
— नील २६२
— पद्मराग २६२
— प्रवाल २६२
— मरकत २६२
— मुक्ता २६२
— वैदूर्य २६२
रम्भा २१०; २२५
रम्भक २६५
रम्यक २३९
रस १८३, १८४
— कटु १८५
— कषाय १८५
— क्रिया ३०४
— तिक्त १८५
— पित्तशमन १८५
— मधुर १८४
— वातशमन १८५
— श्लेष्मशमन १८५
— शुक्त ३०४
रसाञ्जन १८५; १९१; २०७, २०८,
२१७, २२५, २६८, २९०; २९६
रसोन २१४, २२५
राग ३०४
राजक्षवक २४८
राजचम्पक २१५
राजजम्बु २१५
राजद्रुम २२६
राजनिम्ब २६७
राजादन २६६
राजप्रिय २१७
राजमाष २०७
राजवृक्ष २२६
राजशिम्बी २१९
राजसर्षप २२६
राजिका १८६; २०८, २५९, २७०
राजिमन्त २८६
राजीव २८६
रामतरुणी २६६
राल २२८; २३०
रावणाम्लिका २६८
रासभ २७९
रास्ना २३१
रीति २६२
रुक् २२६
रुधिर १८२
रुरु २७३, २८६
रुरु (मृग) ३१३
रूपिका २२६
रूबुक २६०
रेणु २२६
रोमक २६७
रोचना २७४, २८९
रोचनिका २६६
रोध्र २२६; २२८, २३१
— पुष्पक २४८
— सावरक २३१
रोहित २४८, २८६
रोहिणी २२६, २६६

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

रोहिणी शाक २२६
रोहिष २६४, २७६

ल

लक्ष्मणा २४८; २५१
लघसम २७०
लघुकण्टिका २३३
लघुता १८६
लघुसर्ज २३०
लज्जालु २६९
लट्वा २७९, २८२; २८६
लट्टूषक २७९; २८६
लड्डुकादि २९९, ३०४
लता २२६
लतौषधी २५६
लताकस्तूरी २४९, २५९, ३१२
लप्सिका ३००
लम्बा २२६
लवण १८२, २९६, ३१३
— गुटिका २९७
— फुल्ल २९७
लवणिका २५८, २६४
लवली २४९
— फल २२६
लशुन २२५, २५२
— भेद २२०
लाङ्गूल २२६
लाङ्गली २६६
लाङ्गलकी २२८
लाक्षावृक्ष २१५
लाज ३०४
लाजाञ्जन चूर्ण २९१
लामज्जक २१८
लावक १८९
लावाक्ष २२९; २४९
लोजनक २१८
लोणिका २२६
लोध्र १८५
लोह २९०
लोपाक २७९; २८२
लोमशकण २७९
लोह २९१
लोहकिट्ट २९४
लोहतिका २६६
लोहतशालि १८२; २२९
लोह पुरीष २९४
लोहमल १८२, २३९; २९४
लोहित पुष्प २३०
लौहकृष्ण २९१

व

वक्र २२६
— फल २०७
वचा १८९; २०९; २२९, २३०,
२३३; २६९
वज्र २९४
— कन्द २०७, २३१
— वृक्ष २३९
वज्राख्य २२६
वञ्जुल २२७
वट २१८
वटक ३०४
वटपर्ण १८६
पटपत्रिका २२५
वत्सादनी २३९, २६६
वत्सपुत्रिका २६६
वनकार्पासी २९२

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

वनकोद्रव २०६
वृन्दाक २६७
वनमुद्ग २२७, २३६
वनवासिकात्वक् २१५; २२७
वन्ययवानी २५६
वन्यक २६३
वमि २८०
वयस्था २६६
वरक ३१३
वरवास्तूक २२७
वरांग २२७
वराह १८६, २८०
वराहकन्द २२७, २३८, २३६
वराहकान्ता २६६
वरी २२७
वर्ग
— कफसंशमन १८३
— पित्तसंशमन १८३
— वातसंशमन १८३
वर्त्तक २७६
वर्त्तिका २८०
वर्त्तीर २८२, २८६
वर्त्तुलफल २२७
वर्धमान २२७
वर्णक २६६
वर्मि २८६
वर्षाभू २२१; २२७
वल्गुली २८२
वल्ली १८१
वशिर २६६
वसा १८२, २८६
वसुक २३६; ३१०
वह्नि २२७
वाकुची २३२
वागुञ्जर २८२
— वाजि २८०
वाजिगन्धा २२७
वाटी २०४
वात्सकफल २०४, २१७
वातशामक १७६
वाताम १८४; २५२; ३१०
वायसफला २११
वायसतिन्दुक २५६
वायसी २३६, २६३, २८०
वारणकेशर २२७
वाराहकन्द २२७
वारुणी ३०५
वार्त्ताकि २२७, २३६, २४६
वार्त्ताका २८०; २८२, २८६, २८७
वाष्प २४७
वासक २०८; २२८
वास्तूक २२७, २३६
वाशी २२७; २६७
विकंकत २१३, २२७, २३०
विकासी १८५, १८७
विजया २२७
विटपकरंज २६८
विटपशाक २६८
विड २६७
विडाला २८५
विडाली २२७
विडङ्ग २१२, २१३, २२७
— बीज २२७
— सार २२७
विदारिगन्धा २२७
विदारी १८१, २२७, २४६

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

विदुल २२७
विद्रूप २८०
विपाक १९०
विभाग १८८
विरालो २२७
विरूढ ३०५
विलेपी ३०५
विल्वनासिका २६७
विशद १८६; १८७, १८९
विशल्या २६६
विशाला २२८
विश्व २२८
विश्वभेषज २२७
विश्वदेव २०४, २३९, २६७; ३११
विशासिका २६९
विष्किर २७२
विषघाती २२८
विषघ्नी २०४, २६७
विषमुष्टिक २६७
विषाण २७४; २८९
विष्यन्द २०५
विस २७२
वीरुतर २४९; २६७
वीरुध १८०
वीर्य
— अचिन्त्य शक्ति १९०
— पर्याय १८८
— भेद १८८, १८९
वृक २८७
वृक्ष १८०
वृक्षक २२८
वृक्षकण्टकारि २१३, २३०
वृक्षकरञ्ज २१५
वृक्षज २२८
वृक्षरोध्र २६०
वृक्षवीज २२८
वृक्षशायिका २३९, २८०, २८२
वृक्षादनी २३९, २६७
वृक्षाम्ल १८४, २१७, २२८
वृक्षकलम्बु २६७
वृद्धकरञ्ज २१५
वृद्धदारुक २२४; २२९, २६९
— भेद २६१
वृन्ताक २२७
वृश्चिक पत्रिका २६२, २६७
वृश्चिकाली २४९; २६७
वृष २२८, २८०
वृषदेश २८०
वृषभक २१०
वृष्य १९१
वेकरञ्जा २८०
वेग २०७
वेगनाम २५९
वेणु २२८
— पत्रिका २६७
वेणुयव २२८
वेतस २१९; २२७
वेशवार ३०५
वेत्रकरीर २२८
वेत्रांकुर २२८
वेत्रफल २२८
वैडूर्योपलक २९४
वैडूर्यं २९४
वैद्य बापालाल २५६; २५७
वैश्य रूपलाल २५५
वंश २१६

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

वंश करीर २२७
वंशज २२७
वंशपत्री २६७
वंशलोचन २१६, २२७, २६२
वंशाकुर २२७
व्यवायी १८५, १८७
व्याघ्र २७६
— नख २८६
व्याधिघात २२७
व्रीहि २२६, २४६

श

शङ्कु २२८, २३१
— वाक् २३२
शंखनक २८०
शंखिनी २४६, २६७
शंखपुष्पी भेद २३०
शक्ति १८८
शक्तु १६१
शक्रयव २२८
शक्रजयव २२८
शटी २१०, २१६
शण २२८, २४६
— पुष्पी २२८; २३६, २४६
— सदृश विटप २२८
शतपत्र २३६, २६०
शतपर्वक २२८
शतपुष्पा २६८
शतवीर्या २६७
शतावरी २०६, २२२, २२७, २३६, २४६, २५७, २६७, २६६
शफ २८६
शमी २६०, २६८
शमी फल २२८
शम्पाक २२८
शम्बरी २१७
शम्बूक २८०, २८२
शर २११, २२८; २६७, २७४, २८७ ३१०
शरारिमुख २८३, २८७
शतमात्र २८२
शल्यक २८२
शरेषिका २२८
शर्करा २२८, २३१, २३६
शर्मा, प्रियव्रत १८५; २५५, २५६, २६१; २६६, २६८; २६६; २७०; २७१
शललक २८७
शल्लकी २०६, २०७, २१२, २१४, २१८; २२८; २३६, २६४; २८३, २८७
शष्प २२८
शष्कुली ३०५
शशघाती २८३; २८७
शाक २३६; २४६, ३११
— विटप २६४
शाकम्भरी २०६
शारवोटक २३६; २५०; २५६, २६१, २६७, २६८, ३११
शातकुम्भ २६४
शाबर २२८
शारदफल २०६
शारदाफल २१६, २२८; २६३
शालपर्णी २८१; २०६, २०७; २१४, २१६; २२७, २३०; २६२
शालभेद २३०

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

शाल्यक २१५
शाल्मली १८६, २२५
— फल २१७
शालमुख २५०
शालामुख २२८
शालि १८१
— गरुडाहृत ३०८
— पाण्डुक २२०
— रक्त २६८
— शकुनाहृत ३०८, ३१०, ३११, ३१३
शिखरी २०६, २२८, २६५, २६८, २८०
शिग्र (मधु) २६८
शिग्रु रक्त २६८
शिम्ब २१९
शिम्बी २५२
शिरवालिका २२०, २७०
शिरहलक २२५
शिरीष २२८, २३९
— बीज २२८, २२९
— माषक २२८
शिला २९२, २९४
शिलाजतु २९४
शिवारी २६८
शिशुमार २८०; २८३, २८७
शिशपा २२८; २३९
शीत २६८
शीतपाक २२९
शीतफल २६८
शीतभीरुक २५२
शीतशिव २६८
शीधु ३००
शीर्णवृन्त २५०; २६९
शुकाख्य २६९
शुक्ल १८९
शुकनासा २२९, २६९, ३१३
शुकाह्वय २२९
शुक्ति २८१
शुक्रवृद्धिकर १९१
शुकशिम्बी २६९
शुक्लशालपर्णी २१६
शुक्लाक्ष २८१, २८७
शुक्लचन्दन २२३, २२४
शुण्ठी १८५; २१८, २२७, २२९
शूकधान्य २२५
शूकशिम्बी २५८; २६४
शूलिकाप्रोत ३०६
श्रवण २२९, २३९
श्रवणाह्वया २२९
श्रावणी २६५
श्री २२९; २३९
श्रीचन्दन २१५, २२३
श्रीपर्णी २११, २५९
श्रीपर्णिका २५९
श्रीपुष्प २६३
श्रीफल २२२
श्रीफलिका २१९; २७१
श्रीवेष्टक २३९
श्रीहस्तिनी २६२
शृंगाटक २२९, २३९
शृङ्गाटी २२९
शृगालविन्ना २२९; २५०
शृङ्गवेर २२९
शेलु १८६; २२९, २३९, २६९; ३१२

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

शीरीष २२६
शैवल २२६; २६६
शैवाल २२६
शैलभेद २२६
शोभाञ्जनक २१७; २२४; २६०, २६४; २६८
शौकर २२८
श्यामा २२६, २६४, २६६
श्यामलता २०८; २६६
श्योनाक २०७; २१६; २२३; २६०; २६२
श्येन २८०
श्लक्ष्णकर्कश १८७
श्लेष्मातक २२६, २३६
श्लेष्मान्तक २२८, २६६
श्वा २८०
श्वेत २२६
श्वतर २८२
श्वदंष्ट्र २२८, २२६; २८०; २८२, २८७
श्वावित् २८०, २८२; २८७
श्वानि २८०
श्वेत २२८; २२६
श्वेता २२६, २६६
श्वेतार्क २२६
श्वेतचन्दन २१५
श्वेतोत्पल २१२
श्वेतपद्मा २२१
श्वेतपुनर्नवा २६८
श्वेतपुष्पा २३३
श्वेतवचा २३३
श्वेतवारल २८२
श्वेतसर्षप २२६
श्वेतसार २१०
श्वेतसुरसा २२६, २३६
श्वेतस्यन्द २१०, २१४, २२८, २२६, २३३, २६६

ष

षड्गन्धा २३०
षष्टिक १८६; २२४, २३०
षाडव ३०६

स

सट्टक ३०६
सतीन २३०
सत्यानाशी २७०
सदाभद्रा २३०
सदापुष्पी २३०
सन्तानिका २२८
सप्ताह्व २३०
सप्तच्छद २३०, २४०
सप्तपर्ण २३०, २५०
सप्तला २७०
सप्तलिका २३०
समङ्गा २६६
समुद्रमण्डूकी २८१
सर २३०, २४०
सरकर्णिका २३०
सरला २६६
सरलनिर्यास २२६
सर्ज २३०, २३१, २५५
सर्जभेद २२८
सर्जरस २३०
सर्पसुगन्ध २३१
सर्पाक्षी २३०; ३११

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

सर्पगन्धिका २३१
सर्पिर्मण्ड २८८
सर्षप २३०
— श्वेत २३०, २३१
संयोग १८८
संयाव ३००, ३०६
संशमन वर्ग १७६
संस्वेदज १८१
सर्वसुगन्धा २६५
सहं २३०
सहकार २३०
सहचर २२२
— द्वय २३०
सहदेव २३०
सहदेवा २४०
सहदेवी २४०
सहनदेवपाल ३०८
सहस्रदण्ड २८१
सहस्रदंष्ट्र २३०
सहस्रवीर्या २३०, २६७
स्वयंगुप्ता २३०
साधुवास २३३
सान्द्र-द्रव १८७
सामुद्र २६७
सारङ्ग २२८, २८१
सारस २८७
सारिवा १८४, २०८, २१४, २३१, २६४
— द्वय २३१
साल २३१
सालसार २३१
सावरक २३१
— लोध्र २५०
सिकता १८२, २६४
सिण्डाकी ३०६
सिता २३१
सितपर्णा २५७
सितोड्यकन्द २१४
सितोपला २२८, २३१
सिद्धार्थ २३१
सिन्धुवार २३१
सिरिवालिका २३१, २६०
सिंह २८१
— बलवन्त २५५, २५७, २५६ २६०, २६१, २६५, २६६, २७०, २७१
— रामसुशील २५७, २५८, २६४, ३०८
सिंहा २३१
सिंही २३१
सिह्लक २१६, २१७
सीधु २६४
सीस २६१, २६४
सुतार १८२, २३१, २६४
सुधाशर्करा २६४
सुधावास २०४, २३३
सुनिषण्णक २३१, २४०, २५०, २७०
सुगन्धमूला २१४
सुगन्धारास्ना २१४
सुगन्धिफल २२६
सुगन्धिका २३१
सुगन्धितृण २१७
सुगृह २८१
सुगृहा २८३
सुपर्ण २८१
सुमना २३१

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

सुमुख २७४
सुरभि २३१
— पर्णी २३१
सुरा १८४, १८९
सुराष्ट्रजा २६४
सुरङ्गी ३०९
सुराख्य २३१
सुरद्रुम २३१
सुरसा २३१; २४०
सुरसी २३१; २४०
सुरेन्द्रकन्द २३२
सुवर्चला २४०, २५८; २७०; २७१
सुवर्चिका २६५
सुवर्ण १८२, २४०, २६१
— क्षीरी २१०, २५०, २५८, २७०
सुवहा २३१, २४०, २७१
सुश्रुत-संहिता १७९, १८५, १८६, २०४; २६०, २६८; २७०, २७२
सुषवी २३२, २७१
सूकर २८१
सूक्ष्मैला २०९, २३३
सूद ३०७
सूदशास्त्र २६८
सूर्यवल्ली २५०, २७१
सूर्यावन्ती २७०
सूर्यावर्त्त २०८, २६६, २७१
सूर्यभक्ता २७०
सेन शिवदास २५६
सेफन २१४
सेव्यक २३२; २६९
सेहुण्डक २३०, २३१
सेहुण्डभेद २२४, २७०
सेहुण्ड (निर्णय) २२६
सेहुण्ड दुग्ध २३०
सैन्धव २६६
सैरेय २३०; २३२
सैरेयक २३२
सोम २७१
सोमराजी २३२
सोमलता २७१
सोमवटक २१०, २३२
सोमवल्कल २७१
सोमवल्ली २३२
सोमा २७१
सोमाह्वया २७१
सोया २६८
सौगन्धिक २५०
सौराष्ट्रिक २६५
सौवर्चल १९०; २६६
सौवारिका ३०६
सौवीर २५०, ३१३
सौवीराञ्जन २२६
स्थलकुम्भी २०५
स्थावर १८०
स्थिरा २३०
स्थिरसर १८७
स्थूणिका ३०६
स्थूल २३०
— एला २०९
— त्वक् २१५
— पूपा २६९
— फला २२२
— सूक्ष्म १८७
स्थैर्य १८२
स्पृक्का २५०, ३१०

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

स्फूर्जक २५०; ३१३
स्नुक् २३०
स्नुही २३०, २३१
— क्षीर २३०
स्यन्दन २१७
स्योनाक २१०
स्वादुकण्टक २३०
स्वर्णजीवन्ती २६१
स्वर्णशालि २११
स्वर्जिकाक्षर २६४
स्वररसा १८१
स्वस्तिक ३०७
स्रोतोञ्जन २२५, २६५

ह

हठ २५०; २६६, २७१
हणपुच्छिका २५६
हतकन २७१
हयक्षरी २३२
हयमार २३२
हरिताल १८२, २६०, २६२
हरिद्रा १६१, २१६; २२५, २२६; २३२; २३३; २६७
— दारु २०५
— द्रव २०५, २१६; २३४
— पिण्ड २०५
हरिद्रे २३२
हरिवालुक २०६
हरिवृक्ष २७१
हरीतकी १८५, २०६; २०७
—भेद २२०, २२७, २३३, २६६
हस्तिकर्ण २४०, २५०; २६५
— पलाश २७१
— पिप्पली २०८; २१३; २१५, २३२
हस्त्यालुक २३२
हंस २८७
हंसपदी २२०
हंसपादी २३३, २४०, २५०
हंसाह्वया २३३
हायनक २३२, २४०
हारीत २८३, २८७
हिंगुपात्रक २६३
हिमालय ३०६
हिमोचिका २६४
हिरण्य २६५
— पुष्पी २३२
हिरवी २५८, २७०, २७१
हिस्फित्थ २५७, ३०६
हिंस्रा २१४; २५६, २६०, २६२
हुतभुक् २३२
हुताश २३२
हुताशन २३२
हुलहुल २१७, २७०
हेमवती २३३
हैमवती वचा ३१२
ह्रीवेर २३३

क्ष

क्षणदा २३३
क्षत्रक २६१
क्षवक २०५, २४०; २५१, ३१३
क्षवथुकार २०५
क्षारवृक्ष २२४
क्षीरकाकोली २२०; २३३, २६३

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

क्षीरकृतभक्ष्य ३०७
क्षीरघृत २८६
क्षीरपलाण्डु २५१
क्षीरविदारी २३३; २५१, २६३
क्षीरशुक्ला २३३
क्षीरसर्पि २८८
क्षीरिकपीतन २३३
क्षीरिका २६६
क्षीरिणी २३३
क्षुद्रश्वेता २३३, २४०
क्षुद्रसहा २३३
क्षुद्रा २८१
क्षुद्रैला २३३
क्षेत्रयवानी २५६
क्षेत्रवास्तूक २६१

त्र

त्रपु २४०; २६१; २६५
त्रपुष २१०
त्रपुस २२६, २३३, २४०
त्रपुस-भेद २६६
त्रायन्ती २३३
त्रायन्तिका २३३
त्रायमाणा २३३
त्रिकटु १८५; २३४
त्रिकण्टक २२६; २३३
त्रिजातक २३४
त्रिपर्णिका २३३; २६२
त्रिपुटक २११
त्रिफला २०६; २२२; २३३, २३४
त्रिभण्डी २३३
त्रिवृत् १६१, २३३, २३४, २४०, २६४
— शुक्ल २३३
— विशेष २६६
त्रिवृता २३४
त्रिवर्ण २३४
त्रिवर्ग २३४
त्रिसन्धिक २७१
त्रिसुगन्धिक २३४

Vaidyaraj Zandu Bhatt
National Ayurvedic Library
Punjabi Bagh, New Delhi
Call No.
Book No. 003667
Acc. No

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

के आयुर्वेद संकाय से १९८४ में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के आयुर्वेद संकाय के तत्कालीन प्रवाचक (सम्प्रति प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष) डॉ० ज्योतिर्मित्र के निर्देशन में 'द्रव्यगुण शास्त्र के क्षेत्र में डल्हण का योगदान' विषय पर पी-एच० डी० (विद्यावारिधि) उपाधि प्राप्त की।

आयुर्वेद-स्नातक होते ही आपने देवनगर, करोलबाग दिल्ली में स्वतन्त्र चिकित्सा व्यवसाय आरम्भ कर दिया। १९६२ में आपकी नियुक्ति अपनी मातृसंस्था में द्रव्यगुण एवं पञ्चकर्म के प्रवक्ता के रूप में हो गई। १९६२ से ६७ तक आप कॉलेज के आतुरालय के पञ्चकर्म विभाग के प्रभारी रहे। १९६४ से १९६७ तक आतुरालय-अधीक्षक का अतिरिक्त कार्य सम्पादित किया। १९६६ में आप वरिष्ठ प्रवक्ता हो गये। १९७२ से आपको उपाचार्य बना दिया गया। १९७४ से १९७६ तक तथा १९८२ से १९८५ तक आप कार्यवाहक प्राचार्य रहे। कॉलेज के दिल्ली विश्वविद्यालय से सम्बद्ध हो जाने पर आप द्रव्यविज्ञान में रीडर एवं विभागाध्यक्ष नियुक्त हुए और मृत्यु पर्यन्त (३०-७-८७) इस पद पर आसीन रहे। १९८३ से १९८६ तक आप दिल्ली विश्वविद्यालय के आयुर्वेद एवं यूनानी संकाय के डीन रहे और इस कारण सेण्ट्रल कौंसिल ऑफ इण्डियन मेडिसिन के भी सदस्य रहे।

चिकित्सा के साथ-साथ आपमें साहित्य सृजन में भी रुचि अध्ययन-काल से ही थी। कॉलेज-पत्रिका के सम्पादक के रूप में अपनी लेखनी को गतिमान् कर पञ्चकर्मविज्ञान एवं द्रव्यगुणविज्ञान नामक दो ग्रन्थों की रचना की जो उत्तर प्रदेश एवं मध्य प्रदेश की आयुर्वेद अकादमी से पुरस्कृत हुए। धन्वन्तरि पत्रिका के तीन विशेषांकों—पञ्चकर्म कल्पाङ्क (१९६२), नारी रोगाङ्क (१९८०) एवं जरा-व्याधि विशेषांक (१९८१) के आप प्रधान सम्पादक रहे।

देश के अनेक विश्वविद्यालयों के आयुर्वेद संकाय के सदस्य एवं परीक्षक के रूप में आप सम्बद्ध रहे। कूर्पर-सन्धि-भग्न के उपचारार्थ शल्यक्रिया से पूर्व संज्ञानाश अवस्था में ही ३० जुलाई, १९८७ को आपका आकस्मिक निधन हो गया। विधि की विडम्बना ही थी आप अपने इस शोध-कार्य को प्रकाशित अवस्था में न देख सके।

—प्रकाशक

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

कतिपय विशिष्ट सम्मतियाँ

कृतभूरिश्रम विद्वान् लेखक ने सौरवंशज ब्राह्मण (बंगीय गौड ब्राह्मण) वंश में प्रादुर्भूत डल्हण के द्रव्यगुणविज्ञानविषयक मनीषा को उनके व्यक्तित्व परिचय के साथ अति उत्तम एवं मनोरम रूप से प्रस्तुत कर द्रव्यगुणवेत्ताओं के लिए अनुशीलनार्ह उपादेय सामग्री का सटीक एवं सजीव चित्रण किया है। प्रस्तुत ग्रन्थ में एकीयमतपरक अध्याय डल्हण की सर्वाङ्गीण अभिज्ञता एवं वैदुष्यपरक उदारता का परिचय देता है। अपने से पूर्ववर्त्ती आचार्यों के विचारों का सश्रद्ध सम्मान देना डल्हण का एक अति वैशिष्ट्य परिलक्षित होता है। डल्हणाभिमत द्रव्यगुणविषयक सैद्धान्तिक एवं प्रायोगिक विचार-निचय के निरूपण में शोधकर्त्ता को पूर्ण सफलता मिली है।

द्रव्यगुण के स्नातकोत्तर छात्रों एवं शोधकर्त्ताओं के लिए यह एक मानक ग्रन्थ सा है और संहिता के टीकाकारों की तज्ज्ञता इसी प्रकार से पर्यवेक्षणीय एवं मननीय है।

लेखक का प्रयास सर्वथा प्रशंसनीय एवं अभिनन्दनीय है।

आचार्य विश्वनाथ द्विवेदी
भूतपूर्व द्रव्यगुण विभागाध्यक्ष
गुजराज आयुर्वेद विश्वविद्यालय
जामनगर

डॉ० शिवकुमार व्यास द्वारा पी-एच० डी० उपाधि निमित्त प्रस्तुत 'द्रव्यगुण शास्त्र के क्षेत्र में डल्हण का योगदान' नामक शोध-प्रबन्ध के परीक्षण का सुयोग मिला।

शोधकर्त्ता ने अति श्रम एवं मनोयोगपूर्वक सम्बद्ध सामग्री को डल्हण की टीका से आकलित कर उसके द्रव्यगुणशास्त्रीय वैदुष्य को विद्वज्जगत् के समक्ष प्रस्तुत कर एक चिरस्मरणीय कार्य किया है। डल्हण के यायावरत्व ने भौगोलिक पृष्ठभूमि पर तत्तद् वनौषधियों का लोक-प्रचलित संज्ञा सहित परिचय देकर एक अनुकरणीय दिशा निर्देशन किया है।

इस कार्य में लेखक के द्रव्यगुणशास्त्रीय पारंगमित्व का परिचय पदे-पदे दृष्टिगत होता है, एतदर्थ वे भूरिशः अभिनन्दनीय हैं। डल्हण का परिचय तो स्वतः अपने में एक अद्भुत कार्य है। मैं इनके अर्हता की अभिशंसा करता हूँ।

प्रोफेसर राम सुशील सिंह
विभागाध्यक्ष—आयुर्वेद संकाय
चि० वि० सं०, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection